इकाई 1 केंद्रीय समस्याएँ

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 अर्थशास्त्र की परिभाषा
1.3 असीमित इच्छाएँ तथा सीमित संसाधन
1.4 दुर्लभता तथा चयन
1.5 चयन की समस्या : एक उदाहरण
 1.5.1 अर्थव्यवस्था में वस्तुओं का अर्थ
 1.5.2 एक और व्याख्या
1.6 वास्तविक एवं आदर्श अर्थशास्त्र
1.7 सारांश
1.8 शब्दावली
1.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें
1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

1.0 उद्देश्य

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस इकाई के भलीभाँति अध्ययन से आप समझ पाएँगे कि :

- किसी व्यक्ति तथा समाज के लिए एक आर्थिक समस्या का क्या अर्थ है?
- इच्छाएँ क्या हैं, तथा उन्हें पूरा करने के लिए उचित संसाधन क्या हो सकते हैं?
- एक उत्पादन संभावना (सीमा) वक्र क्या होता है?
- उत्पादन संभावना वक्र द्वारा अर्थशास्त्र में चयन की समस्या किस प्रकार समझाई जा सकती है?
- चयन समस्या कैसे सुलझाई जा सकती है? तथा
- वास्तविक अर्थशास्त्र एवं आदर्श अर्थशास्त्र में क्या भेद है?

1.1 प्रस्तावना

इस इकाई का उद्देश्य एक अर्थव्यवस्था की केंद्रीय समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए एक विषय के रूप में अर्थशास्त्र की परिभाषा करना है। अर्थशास्त्र की परिभाषा कोई बहुत सहज कार्य नहीं है। इसमें वह सभी कठिनाइयाँ सामने आती हैं जो अर्थशास्त्र की पहली ही कक्षा में अर्थशास्त्र का परिचय कराने के प्रयास में अनुभव होती है। यही समझ नहीं आता कि कहाँ से शुरू करें और क्या बताएँ? क्या शुरुआत औपचारिक परिभाषा से की जाए या फिर यह बताया जाए कि अर्थशास्त्र में क्या कुछ आता है? प्रायः शुरुआत परिभाषा से की जाती है। लेकिन इसमें कठिनाई यह है कि अर्थशास्त्र की कोई भी एक ऐसी परिभाषा नहीं है जिस पर सबकी सहमति हो। सभी अर्थशास्त्री अपने-अपने ढंग से ही अर्थशास्त्र की परिभाषा करते हैं। सभी अपनी परिभाषा को सही और उपयुक्त समझते हैं। वास्तव में अर्थशास्त्र को पहली बार पढ़ रहे छात्रों के साथ न्याय तो तभी हो पाएगा जब हम उन्हें

यह बता सकें कि आखिर अर्थशास्त्र क्या है किसके बारे में, इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए हम एडम स्मिथ, अल्फ्रेड मार्शल अथवा जे.एम.केन्स की परिभाषाओं को न बताकर लॉयनेल रोबिन्स की परिभाषा को स्पष्ट करना चाहेंगे।

1.2 अर्थशास्त्र की परिभाषा

लॉयनेल रोबिन्स के अनुसार अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो लक्ष्यों तथा वैकल्पिक प्रयोगों वाले सीमित संसाधनों के बीच संबंधों के रूप में मानवीय व्यवहार का अध्ययन करता है। आइए देखें कि रोबिन्स ने अपनी परिभाषा में किन बातों पर बल दिया है? उनका सबसे महत्त्वपूर्ण विचार तो यह है कि इस विषय के अंतर्गत हम मानवीय व्यवहार का अध्ययन करते हैं। यह कहा जा सकता है कि ऐसे तो कई अन्य शास्त्र अथवा विषय हैं जो किसी न किसी तरह मानवीय व्यवहार के अध्ययन से जुड़े हैं जैसे समाजशास्त्र, मनोविज्ञान और राजनीति शास्त्र आदि। इन विषयों में भी व्यक्तियों के व्यक्तिगत तथा सामूहिक व्यवहार का ही अध्ययन होता है। पर अर्थशास्त्र में हम आर्थिक गतिविधियों से जुड़े मानवीय व्यवहार पर ही अपना ध्यान केन्द्रित रखते हैं। जैसे एक विद्वान का कहना है, "अर्थशास्त्र का मानवीय व्यवहार के अध्ययन का अपना विलक्षण अंदाज है जो इसे अन्य सामाजिक शास्त्रों से भिन्न स्वरूप प्रदान करता है। रोबिन्स का अपना कथन ही इस बात को स्पष्ट कर देता है। अर्थशास्त्र उद्देश्यों की प्राप्ति के निमित्त सचेत प्रयास के रूप में मानवीय व्यवहार की व्याख्या करता है।"

DIKSHANT IAS

1.3 असीमित इच्छाएँ तथा सीमित संसाधन

Call us @7428092240

अर्थशास्त्र का आरम्भ ही मानवीय इच्छाओं, अभिलाषाओं और आवश्यकताओं से होता है। इतिहास के हर चरण में लोगों की इच्छाएँ तथा आवश्यकताएँ अवश्य रही हैं। इनमें से कुछ तो जीवित रहने की बुनियादी आवश्यकताएँ कही जा सकती है, जैसे रोटी, कपड़ा और मकान आदि। यह भी कहा जा सकता है कि मानवीय आवश्यकताओं का उदगम् शरीर से जुड़ा हुआ हैं पर व्यवहारिक दृष्टि से देखा जाए तो हमारी अधिकतर आवश्यकताएँ समाज में मिलकर रहने से ही उत्पन्न होती है। समाज का अस्तित्व ही हमारी अधिकतर आवश्यकताओं का आधार हैं समाज की संस्कृति में निहित जटिल कारक इन आवश्यकताओं का निर्धारण करते हैं। हर समाज की भोजन जैसी मूलभूत आवश्यकताओं का स्वरूप भी समाज की सभ्यता एवं संस्कृति ही सुनिश्चित करती है। अतः हम कह सकते हैं कि यद्यपि आवश्यकताएँ शरीर से जुड़ी हैं लेकिन उनका स्वरूप मानवीय समाज ही निर्धारित करता है। इन मानवीय आवश्यकताओं की एक अन्य विलक्षणता यह है कि ये बार-बार पैदा होती रहती है। उदाहरण के लिए एक बार भोजन कर लेने से भूख कुछ समय के लिए ही मिटती है लेकिन कुछ समय बाद फिर लगती है। लोग चाहते हैं कि उनकी आवश्यकताएँ, अभिलाषाएँ और आकांक्षाएँ पूरी हों तथा इसी उद्देश्य से सभी मानवीय गतिविधियाँ प्रेरित होती हैं। इस तरह से अर्थशास्त्र मानवीय लक्ष्यों, उद्देश्यों तथा उपलब्ध संसाधनों के प्रयोग द्वारा इनकी प्राप्ति से जुड़ा है। ये प्राप्ति निजी भी हो सकती हैं और सामूहिक भी। उदाहरण के लिए यदि आपको कुछ ठंडा पीने की इच्छा है तो आपके पास पैसा होना जरूरी है। घर बनाने के लिए ईंट, सीमेंट, इस्पात, लकड़ी व शीशे आदि की आवश्यकता होती है, इसी प्रकार गेहूँ का उत्पादन तभी संभव हो पाएगा जब उपयुक्त ज़मीन के साथ बीज, उर्वरक और सिंचाई के लिए जल भी सुलभ हों। इन सभी उदाहरणों में आप उद्देश्य तथा संसाधन की स्पष्ट रूप से पहचान कर सकते हैं। एक अन्य उदाहरण पर गौर करें : आप काम पर पहुँचने के लिए अपनी कार से जाते है; आप काम पर पैसा कमाने की खातिर जाते हैं; और संभव

है कि पैसा आप नई कार खरीदने के लिए कमाना चाहते हों। इन सभी से यह बात तो स्पष्ट है कि उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए हमें संसाधनों की आवश्यकता होती है।

बोध प्रश्न 1

1) यदि आपकी मासिक आय एक हजार रुपया हो तो कुछ ऐसी जैविक आवश्यकताएँ बताइए जिनकी पूर्ति का प्रयास आप पहले करेंगे? (दूसरे शब्दों में, कुछ ऐसी वस्तुओं के नाम बताइए जिन्हें आप जीवन के लिए आवश्यक मानते हैं)।

....

....

....

....

....

2) आप जमीन के एक टुकड़े पर गन्ने की खेती करना चाहते हैं। उत्पादन प्राप्ति के लिए आप किन-किन संसाधनों का प्रयोग करेंगे?

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1.4 दुर्लभता तथा चयन

रोबिन्स की परिभाषा में मानवीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए संसाधनों की दुर्लभता पर बल दिया गया है। फिर भी यह प्रश्न उठता है कि आखिर इस दुर्लभता का इतना महत्व क्यों है? अर्थशास्त्र में इस दुर्लभता का अर्थ आवश्यकताओं की तुलना में साधनों का सीमित होना है। दूसरे शब्दों में, (किसी व्यक्ति या समाज की) आवश्यकताओं तथा संसाधनों के बीच अन्तराल ही 'दुर्लभता' है और इसी के परिणाम स्वरूप किसी आर्थिक समस्या का जन्म होता है। यहीं पर रोबिन्स की परिभाषा के एक और पहलू पर ध्यान दिलाना आवश्यक है। किसी आवश्यकता की संपूर्ति के लिए काम आने वाले संसाधन केवल इसी काम आ सकते हों, ऐसा नहीं है। इन संसाधनों के अनेक प्रयोग हो सकते हैं। एक संसाधन अनेक उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक हो सकता है। उदाहरण के लिए, इस इकाई के लेखन में अब तक मैं अपने कीमती समय का एक घंटा लगा चुका हूँ। यह समय एक संसाधन है तथा हर व्यक्ति के पास यह सीमित होता है। यदि मैं यह लेखन कार्य न कर रहा होता तो शायद रतन टाटा पुस्तकालय (देहली स्कूल ऑफ इक्नॉमिक्स) जाकर व्यष्टि अर्थशास्त्र की किसी नई पुस्तक को पढ़ रहा होता; या फिर किसी पुस्तक भण्डार में नई आयी किताबों में अपनी पसन्द की कोई पुस्तक ढूँढ़ रहा होता। या फिर मैं शायद टेलीविज़न पर कोई रोचक कार्यक्रम देखता या उससे चाहे किसी फिल्म के बारे ही सही, नई जानकारी पाने का प्रयास करता। यह तो आप समझ ही गए होंगे कि समय का प्रयोग कितने कार्यों के लिए किया जा सकता है। वैसे यहाँ इतना जान लेना ही पर्याप्त है कि प्रत्येक दुर्लभ संसाधन का एक से अधिक कार्यों में प्रयोग हो सकता है।

अतः हम कौन सा कार्य करें इसका चयन कर सकने की भरपूर गुंजाइश हमारे पास है। किसी भी एक कार्य में अपने सीमित साधन लगाने का अर्थ यह भी होता है कि हम इसे किसी अन्य कार्य में लगाकर जो लाभ पा सकते थे अब नहीं पाएँगे। अर्थशास्त्र का केवल दुर्लभता से ही संबंध नहीं है। यह हमें चयन करने में भी सहायक हो सकता है क्योंकि एक साधन के एक से अधिक उपयोग हो सकते हैं। उदाहरण के लिए यदि हम अपनी आय फलों तथा आइसक्रीम पर खर्च कर डालते हैं, तो रोटी तथा मक्खन नहीं खरीद पाएँगे। यदि अर्थव्यवस्था खनिज तेल का प्रयोग बिजली घरों में कर लेती है तो वह तेल वाहन चलाने के लिए सुलभ नहीं रह पाता। यदि आप अपना जितना समय अर्थशास्त्र के अध्ययन में लगा रहे हैं तो वह समय आप पैसा कमाने में नहीं लगा पाएँगे।

"इसी में अर्थशास्त्र का सार निहित है। जब किसी व्यक्ति (या समूह) के संसाधन उसकी सभी माँगों को एक साथ ही पूरा करने के लिए पर्याप्त सिद्ध नहीं होते तो अर्थशास्त्र अपने अस्तित्व में आता है अर्थशास्त्र दुर्लभ साधनों के श्रेष्ठतम प्रयोग में निहित चयन के साथ जुड़ा हुआ है। यदि साधनों की दुर्लभता नहीं हो तो फिर अर्थशास्त्र का अस्तित्व भी नहीं। नोट करें कि इस बात का सच होना कि मानवीय आवश्यकताएँ असीमित हैं, आवश्यक नहीं है। संभवतः वे असीमित हैं। फिर भी इस सच्चाई को परखने के लिए कि 'आवश्यकताएँ असीमित हैं' अनुसंधान की गुंजाइश है। आर्थिक समस्या को जानने के लिए तो केवल इतना ही समझना आवश्यक है कि साधन आवश्यकताओं की तुलना में दुर्लभ अर्थात् कम पड़ रहे हों।" (David Whynes : *Invitation to Economics*, पृष्ठ 15)।

बोध प्रश्न 2

1) यदि आप कुछ पाना चाहते हो वह प्राप्त कर सकने की स्थिति में भी हो तो क्या सही अर्थों में आपको चयन की समस्या का सामना करना पड़ेगा?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

....

2) अपने घर से काम करने की जगह पर जाने के लिए आप परिवहन के किन-किन माध्यमों के बीच चुनाव कर सकते हैं?

....

....

....

....

....

1.5 चयन समस्या : एक उदाहरण

साधनों एवं आवश्यकताओं के बीच असंतुलन से ही आर्थिक समस्याएँ पैदा होती हैं। इसी असंतुलन से यह प्रश्न पैदा होता है कि संसाधनों का लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उपयुक्ततम प्रयोग किस प्रकार

हो? किसी भी व्यक्ति एवं समाज के लिए विभिन्न (प्रतियोगी) उद्देश्यों के बीच सीमित संसाधनों का विभाजन करना एक अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण या केंद्रीय समस्या है। यदि संसाधन इतने काफी होते कि उन्हें बचाकर रखना जरूरी न रहता या फिर विभिन्न लक्ष्यों के बीच किसी तरह का टकराव नहीं हो, तो फिर समाज को किसी आर्थिक समस्या का सामना ही नहीं करना पड़ता। पर वास्तव में ऐसा नहीं है। संसार को न तो संसाधनों की बहुलता का उदार वरदान मिला है और न ही उनके और लक्ष्यों के बीच का संतुलन समाप्त हो पाया है। यह बात जहाँ सोमालिया, इथोपिया, वोलिविया, बंगलादेश, अल्बानिया आदि पिछड़े हुए देशों पर तो लागू होती ही है, संयुक्त राज्य अमेरीका, जर्मनी और जापान जैसे समुन्नत देश भी इसके दायरे से बाहर नहीं रह पाते। दूसरे शब्दों में, हम कह सकते हैं कि साधनों की सीमितता के दो स्वरूप हैं : स्थानीय तथा विश्वव्यापी। कभी-कभी किसी देश की संपन्नता ऐसा भ्रम-जाल पैदा कर देती है कि जैसे इन देशों में दुर्लभता नाम की कोई समस्या नहीं रह गई है। पर यह बात वास्तव में सच नहीं होती। हर समाज में ऐसी संस्थाएँ होती है जो सीमित संसाधनों के उचित बँटवारे की दिशा में कार्य करती हैं और इन संस्थाओं को ही समाज का आर्थिक ढाँचा या अर्थव्यवस्था का नाम दिया जाता है। ये ही अर्थव्यवस्था में निर्णय करती हैं कि किस वस्तु का उत्पादन कैसे हो तथा किसके लिए हो?

एक उत्पादन संभावना वक्र दो वस्तुओं के उन विभिन्न जोड़ों को दर्शाता है जिनका कोई फर्म उत्पादन कर सकती है, यदि

i) वह फर्म तकनीकी दृष्टि से उत्पादन की कुशलतम विधि का प्रयोग करे;
ii) संसाधनों का आर्थिक दक्षतापूर्ण आवंटन करे; तथा
iii) सभी संसाधनों का पूर्ण प्रयोग करे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

यह वक्र हमें बताता है कि यदि एक वस्तु का उत्पादन दिया गया हो तो हम दूसरी वस्तु का कितना अधिक से अधिक उत्पादन कर सकते हैं, यदि प्रौद्योगिकी तथा संसाधनों की मात्रा में कोई परिवर्तन न हो। इससे हमें यह ज्ञान होता है कि संसाधनों को एक उद्योग से दूसरे में स्थानांतरित कर किस दर पर एक वस्तु के स्थान पर दूसरी वस्तु का उत्पादन किया जा सकता है? यह हमें बताता है कि किस प्रकार खाद्य पदार्थों के स्थान पर कपड़े का उत्पादन किया जा सकता है। यानि साधनों का स्थानांतरण करके किस प्रकार एक वस्तु के उत्पादन स्तर में परिवर्तन करके दूसरी वस्तु के उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। इसी दृष्टि से उत्पादन संभावना वक्र को रूपातंरण वक्र **(transformation curve)** भी कहा जाता है। (देखिए रेखाचित्र 1.1)

चित्र 1.1

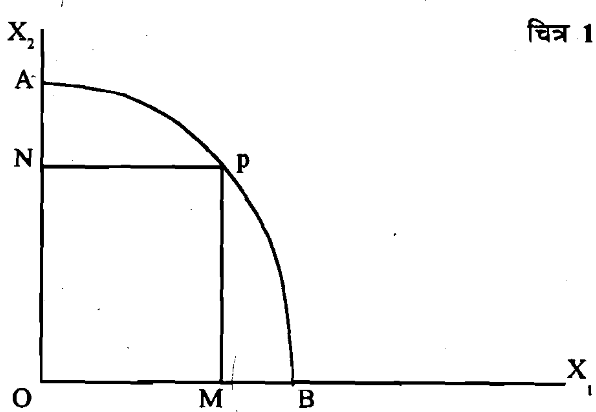

चित्र 1.1 : यदि समाज साधनों का कुशलतापूर्वक प्रयोग केवल X वस्तु के उत्पादन के लिए करें तो इस वस्तु का OB मात्रा में उत्पादन हो सकता है। इसी तरह केवल X_2 का उत्पादन करने की दशा में OA मात्रा उत्पादित होगी। वक्र AB दोनों वस्तुओं के उन सभी जोड़ों को दर्शाती है जिनका उत्पादन किया जा सकता है। यदि समाज बिंदु P पर उत्पादन करना चाहे तो X_1 की OM तथा X_2 की ON मात्रा का उत्पादन होगा। हम यह भी कह सकते हैं कि यदि समाज X_1 का उत्पादन OM मात्रा में करना चाहे तो वह X_2 की ON मात्रा का ही उत्पादन कर पाएगा।

उत्पादन संभावना वक्र के प्रयोग द्वारा हम अर्थव्यवस्था की केंद्रीय समस्याओं को समझाने का प्रयास भी कर सकते हैं। हमारी पहली समस्या है कि क्या उत्पादन किया जाए? मान लीजिए कि दो वस्तुएँ X_1 तथा X_2 हैं। इनमें से X_1 उपभोक्ता वस्तु तथा X_2 पूँजीगत वस्तु हैं। सैम्युलसन के अनुसार उत्पादन संभावना वक्र समाज का 'चयन पत्र' है। आर्थिक संसाधन तो सीमित मात्रा में ही उपलब्ध हैं। अतः समाज को यह कठिन निर्णय तो लेना ही पड़ेगा कि X_1 का अधिक उत्पादन किया जाए या फिर X_2 का उत्पादन बढ़ाने में ज्यादा संसाधन लगाए जाएँ या फिर दोनों के बीच कोई संतुलन रखा जाए। यह संभव है कि भारत जैसे विकासशील देश में पूँजी के आधार को बढ़ाने के लिए देश में पूँजीगत वस्तुओं पर अधिक बल दिया जाए। इसी प्रकार, मज़बूत पूँजीगत आधार वाले जापान जैसे देश में उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन को अधिक बल दिया जा सकता है। (देखिए चित्र 1.2)

चित्र 1.2

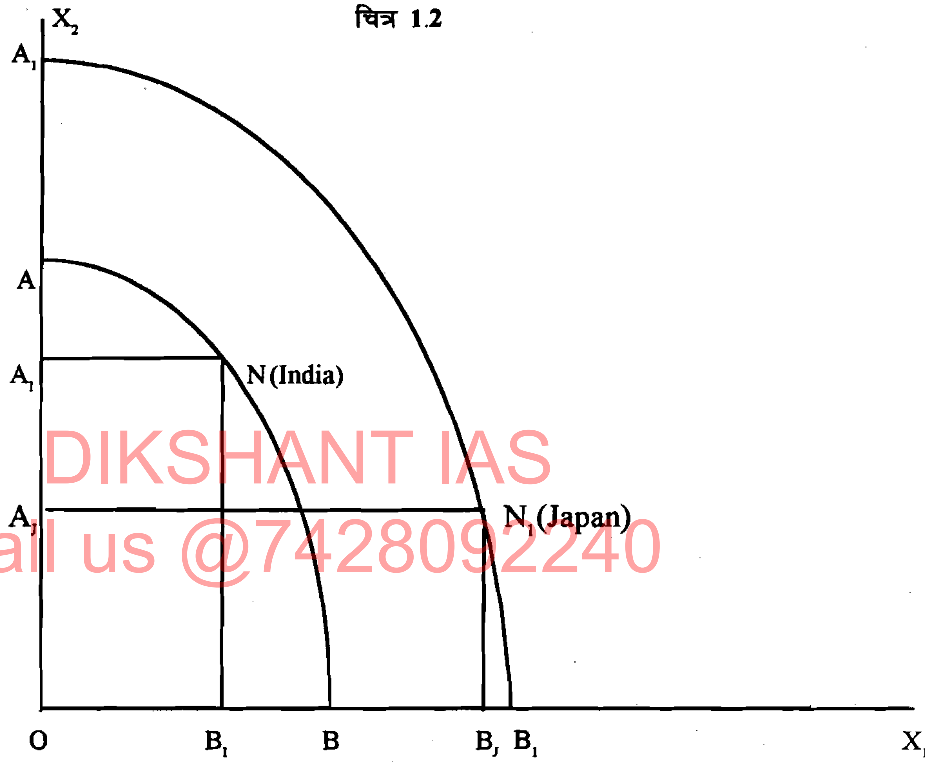

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 1.2 : भारत $A_I B_I$ संयोजन में पूँजीगत एवं उपभोक्ता पदार्थ उत्पादित कर सकता है और जापान $A_J B_J$ में। ध्यान दें कि जापान के संयोजन में उपभोक्ता वस्तु की बहुलता है जबकि पूँजीगत पदार्थ की मात्रा काफी सीमित रहती है।

इसी प्रकार उत्पादन संभावना वक्र द्वारा दूसरी केंद्रीय समस्या, अर्थात् कैसे उत्पादन किया जाए, पर भी प्रकाश डाला जा सकता है। वस्तु के उत्पादन के लिए संसाधन सम्मिश्रण का चुनाव ही उत्पादन तकनीक का चयन है। पर यह बात उत्पादन संभावना वक्र से सीधे-सीधे समझ पाना संभव नहीं होता। वस्तुतः हमें उस दक्षता पथ (efficiency locus) का पुनः अवलोकन करना पड़ेगा जिसके आधार पर हम उत्पादन संभावना वक्र का निर्माण करते हैं। मान लीजिए वस्तु X_1 श्रम प्रधान तकनीक से बनती है तथा X_2 पूँजी प्रधान तकनीक से। भारत का उत्पादन संभावना वक्र AB है। अब यदि इस पर N बिन्दु पर कार्य हो रहा हो तो यह स्पष्ट है कि यहाँ पूँजीगत वस्तुओं का अधिक उत्पादन हो रहा है। अब क्योंकि ये वस्तुएँ पूँजी प्रधान तकनीक से बनी हैं तो हम कह सकते हैं कि भारत में पूँजी प्रधान तकनीक का चलन अधिक है। दूसरी ओर, जापान के उत्पादन संभावना वक्र A_1, B_1, N_1 बिंदु पर उपभोक्ता वस्तुओं की प्रधानता दर्शाता है। पर इससे यह निष्कर्ष निकालना कठिन है कि जापान में श्रम प्रधान तकनीक का चलन अधिक है। जापान जैसे देश में तो

वस्तुतः उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन भी पूँजी प्रधान तकनीकों द्वारा ही होता है। अतः उत्पादन संभावना वक्र द्वारा उत्पादन तकनीकों के विषय में प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त करना कठिन है।

हमारी तीसरी केंद्रीय समस्या है : किसके लिए उत्पादन किया जाए? इसी को वितरण की समस्या भी कहा जाता है। इस समस्या के समझने के लिए भी उत्पादन संभावना वक्र का सहारा लिया जा सकता है लेकिन अप्रत्यक्ष तौर पर ही। यदि हम यह मान लें कि समाज में आय के वितरण में जितनी अधिक विषमताएँ होंगी उतनी ही विलासिता की वस्तुओं (जैसे कार, रंगीन टी.वी., फ्रिज आदि) की माँग अधिक होगी। विलासिता की वस्तुओं का उत्पादन प्रायः पूँजी प्रधान तकनीक से होता है। इस दृष्टि से चित्र 1.2 में भारत का उत्पादन बिंदु N हैं। यहाँ आय के बँटवारे की व्यापक विषमता को भी दर्शाया जा सकता है। अभी कुछ देर पहले हमने भारत में पूँजी प्रधान तकनीक से बनी वस्तुओं के उत्पादन की प्रधानता को एक विकासमान देश की आवश्यकता के नाम पर उचित ठहराया था। अतः जब तक हमें यह पता न हो कि X_2 अक्ष पर कौन-सी पूँजी प्रधान तकनीक से बनी वस्तुएँ दिखाई गई है हम किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकते। यदि ये वस्तुएँ उत्पादन करने वाली मशीनें आदि हैं तो यह एक विकासशील अर्थव्यवस्था का प्रतीक होगा। पर, यदि इस अक्ष पर केवल विलासिता की वस्तुएँ हों तो यह अर्थव्यवस्था में आय के असमान वितरण की ही जानकारी हमें दे पाएगा। इसी तरह जापान के उत्पादन बिंदु N_1, की व्याख्या भी अन्य सहायक जानकारी के आधार पर करना ही उचित होगा।

1.5.1 अर्थव्यवस्था में वस्तुओं का अर्थ

रोटी, मक्खन, कमीज़, पैंट, स्कर्ट, पैन्सिल, कुर्सी, मेज, साइकिल, कार, घड़ी आदि भौतिक पदार्थों, जिनसे मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, को हम वस्तुओं या चीज़ों का नाम देते हैं। ये मानवीय आवश्यकताओं को पूरा करने के भौतिक माध्यम हैं। इनकी उत्पत्ति प्रकृति में उपलब्ध सामग्री का भौतिक, रासायनिक, जैविक, स्थैतिक और सामयिक परिवर्तन द्वारा संभव होती है। अक्सर हम वस्तुओं, उत्पादों तथा चीज़ों आदि शब्दों का अर्थ एक समान मानते हुए ही इनका प्रयोग करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इन वस्तुओं/उत्पादनों/चीज़ों की तीन विशेषताएँ होती हैं:

i) इनकी भौतिक विशेषताएँ - ये किस प्रकार किसी मानवीय इच्छा की पूर्ति में सहायक हैं?

ii) वह समय (तिथि) जिस पर वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं - उदाहरण के लिए इस वर्ष उपलब्ध कार पिछले वर्ष उपलब्ध कार के अपेक्षा भिन्न मानी जाएगी, चाहे वह उसी नाम की कार हो।

iii) वह स्थान जहाँ पर ये वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं। पैरिस में उपलब्ध कमीज़ दिल्ली में उपलब्ध कमीज़ से भिन्न मानी जाएगी।

बोध प्रश्न 3

1) एक उत्पादन संभावना वक्र अर्थव्यवस्था का चयन-पत्र है। यदि अर्थव्यवस्था के सीमित साधनों का पूर्ण प्रयोग हो रहा हो तो वह अर्थव्यवस्था उत्पादन संभावना वक्र पर कार्य करेगी या उसके भीतर?

....

....

....

....

....

2) यदि संसाधनों की मात्रा बढ़ रही हो तो उत्पादन संभावना वक्र का क्या होगा? यह बाहर की तरफ खिसकेगा या अन्दर की तरफ?

....

....

....

....

....

1.5.2 एक और व्याख्या

आइए, रोबिन्स की परिभाषा के और पहलू पर भी ध्यान दें : उन्होंने अर्थशास्त्र को एक विज्ञान माना है। अब प्रश्न यह है कि यह किस प्रकार का विज्ञान है? क्या हम इसे भौतिक अथवा रसायन शास्त्र की कोटि का विज्ञान कह सकते हैं? कदापि नहीं। अर्थशास्त्र तो मानवीय व्यवहार का अध्ययन करता है और यह व्यवहार काल एवं परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाता। इसीलिए अर्थशास्त्र को एक यथार्थ **(exact)** विज्ञान नहीं कहा जा सकता। किस स्थिति में मानव क्या व्यवहार करेगा– यह सुनिश्चित नहीं है। अतः प्राकृतिक घटनाक्रम का पूर्वानुमान लगाने की तुलना में मानवीय व्यवहार का पूर्वानुमान कर पाना कहीं अधिक कठिन होता है। आर्थिक घटनाक्रम की अपेक्षा प्राकृतिक घटनाक्रम की नियमित आवृति कहीं अधिक निश्चित मात्रा में व्यक्त करने योग्य, प्रदर्शनीय तथा मापे जाने योग्य होती है। अर्थशास्त्र एक विज्ञान भी है और कला भी। इसका संबंध उत्पादन, वितरण और उपभोग से जुड़ी मानवीय गतिविधियों से है, इस नाते यह एक उदार कला **(liberal art)** है। किंतु अर्थशास्त्र की कार्यविधि तथा निष्कर्ष पद्धति तो विज्ञान की कार्य शैली जैसी ही है। वैज्ञानिक कार्य पद्धति कैसी होती है? वैज्ञानिक पद्धति में वास्तविक जगत् के पदार्थों तथा घटनाक्रमों पर आधारित कुछ पूर्व धारणाएँ होती हैं और साथ ही एक मॉडल **(model)** होता है जो तर्क के आधार पर इन पदार्थों तथा घटनाक्रमों के बीच संबंध स्थापित करता है। इस मॉडल को पूर्व धारणाओं पर लागू कर कुछ निष्कर्ष निकाले जाते हैं जिन्हें नियमों की संज्ञा दी जाती है। अंत में पदार्थों के बारे में वास्तविक जानकारी प्राप्त कर इन नियमों की सत्यता की जाँच की जाती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 4

1) यदि एक सेब ऊपर की ओर उछाला जाए तो वह हमेशा नीचे वापस आता है। यह पूर्वानुमान हमेशा शत प्रतिशत सही बैठता है। पर यदि सेब की कीमत कम की जाए तो क्या हमेशा ही लोग उसका अधिक उपभोग करेंगे? क्या इस विषय में भी आपका अनुमान सदा सत्य होगा?

....

....

....

....

....

2) अर्थशास्त्र किस दृष्टि से एक विज्ञान है?

....

....

....

....

....

1.6 वास्तविक तथा आदर्श अर्थशास्त्र

अर्थशास्त्र के अध्ययन में सामान्यतः वास्तविक (positive) तथा आदर्श (normative) अर्थशास्त्र के बीच भेद किया जाता है।

वास्तविक अर्थशास्त्र आर्थिक विचारों और प्रश्नों को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखता है। जैसे किसी वस्तु की कीमत का निर्धारण किस तरह होता है या फिर, किसी फर्म में अथवा अर्थव्यवस्था में रोज़गार का स्तर किन बातों पर निर्भर करता है, कोई फर्म आगतों का अनुकूलतम सम्मिश्रण किस प्रकार तय करती है आदि। इन सभी प्रश्नों में किसी प्रकार का कोई नैतिक विवाद नहीं होता। इसके विपरीत **आदर्श अर्थशास्त्र में हम नैतिक विषयों पर ही चर्चा करते हैं**। जैसे किसी अर्थव्यवस्था में संसाधनों के बँटवारे का 'सबसे अच्छा' तरीका क्या हो? एक समाज अपनी राष्ट्रीय आय का आबंटन किस प्रकार करे? मुद्रा-स्फीति अच्छी होती है या बुरी? क्या अर्थव्यवस्था को श्रम की दृष्टि से पूर्ण रोज़गार स्तर पर ही कार्य करना चाहिए आदि। इन सभी मामलों में कहीं न कहीं मूल्य-मान अवश्य जुड़े होते हैं और यह मूल्य-मान विश्लेषक स्वयं ही निर्धारित करते हैं। इसी कारण ये मानदंड आदर्श कहलाते हैं। ये वैज्ञानिक सिद्धांत नहीं कहे जा सकते। विश्लेषक इन सिद्धांतों को अपने वर्ग और विचारधारा के आधार पर बनाता है। इन सिद्धांतों में वैज्ञानिक प्रश्न नहीं उठाए जाते। इनमें पूर्व धारणाएँ तथा निष्कर्ष नैतिक आधार पर होती हैं। इन सिद्धांतों के पीछे पूर्व धारणाओं को स्वीकार (अस्वीकार) कर कोई भी इन पर आधारित निष्कर्षों को सहज ही स्वीकार या अस्वीकार कर सकता है। अर्थशास्त्र में विद्वानों के बीच में मतभेदों को दूर करना सामान्यतः संभव नहीं हो पाता क्योंकि इन सिद्धांतों में सभी पूर्व धारणाएँ तथा निष्कर्ष नैतिकता पर आधारित होती हैं। ऐसे मामलों में बिना किसी अंतिम फैसले पर पहुँचे कोई भी व्यक्ति चाहे जितनी देर विवाद कर सकता है। यही नहीं, नैतिक अवधारणाओं की सत्यता की जाँच आँकड़ों के आधार पर नहीं की जा सकती।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

दूसरी ओर, यद्यपि वास्तविक अर्थशास्त्र में वैज्ञानिक प्रश्नों से ही वास्ता पड़ता है तथा वैज्ञानिक विधि से ही सिद्धांत बनाया जाता है, पर फिर भी अर्थशास्त्रियों के बीच मतभेद हो सकते हैं। ये मतभेद किसी समस्या विशेष के अध्ययन में मॉडल या सिद्धांत के चुनाव से जुड़े हो सकते हैं। किसी समस्या के प्रति अर्थशास्त्रियों के नज़रिये में अंतर भी मतभेद का कारण बन सकता है। पर इस प्रकार के मतभेदों को आँकड़ों के आधार पर इनकी सत्यता की जाँच कर सुलझाया जा सकता है। किसी भी सिद्धांत की आँकड़ों के आधार पर पुष्टि के दौरान भी आँकड़ों की उपयुक्तता को लेकर मतभेद हो सकते हैं फिर चाहे वह अर्थशास्त्र हो या भौतिकशास्त्र। प्राकृतिक विज्ञान में तो प्रयोगशाला में परीक्षणों द्वारा आँकड़ों को इकट्ठा किया जा सकता है। किंतु अर्थशास्त्र में तो हमें अपूर्ण सांख्यिकीय विधियों के सहारे ही आवश्यक जानकारी का संग्रह करना पड़ता है। इसलिए एक ही समस्या के अध्ययन में दो वास्तविक अर्थशास्त्रियों के निष्कर्ष अलग-अलग हो सकते हैं। अन्ततः इन मतभेदों का निपटारा सिद्धांतों को आँकड़ों की कसौटी पर कसकर ही हो पाता है।

बोध प्रश्न 5

1) निम्नांकित वाक्यांशों को ध्यान से पढ़ें और यह बताएँ कि इनमें से कौन-सा वास्तविक तथा कौन-सा आदर्शी है?

   क) अर्थव्यवस्था में बेरोज़गारी कम की जानी चाहिए;

   ख) भारत का भुगतान-शेष संतुलन में नहीं है;

   ग) निवेश का निर्धारण आय द्वारा होता है;

   घ) स्फीति पर नियंत्रण रखना चाहिए;

   ङ) भारतीय अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र का होना वांछनीय नहीं है;

   च) कीमतों पर नियंत्रण होना ही चाहिए;

   छ) राशन व्यवस्था से कार्यकुशलता/दक्षता कम हो जाती है;

   ज) भारत पेट्रोल का आयात भी करता है, निर्यात भी;

   झ) भारत एक गरीब देश है; तथा

   ञ) विषमता कम करनी चाहिए।

....

....

....

1.7 सारांश

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस इकाई में हमने एक अर्थव्यवस्था की केंद्रीय समस्याओं के बारे में बातचीत की है। हम किसी भी काल में या समाज में हों, हमें संसाधनों को मितव्ययता से प्रयोग करने की समस्या का सामना करना पड़ता है। हमारी इच्छाएँ असीमित ही रहती हैं क्योंकि सामाजिक विकासक्रम नई-नई इच्छाओं-आवश्यकताओं को जन्म देता रहता है। यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। किंतु साधनों की सीमित मात्रा के कारण हम किसी भी समय केवल कुछ ही इच्छाओं की तुष्टि कर पाते हैं– सभी की संतुष्टि हो नहीं पाती। यह बात व्यक्ति के लिए भी उतनी ही सही है जितनी कि किसी सामाजिक परिवारों में रहने वाले समूह के लिए। इसी कारण से लॉयनल रॉबिन्स की अर्थशास्त्र की परिभाषा अपने आप में बहुत सटीक बन जाती हे। अर्थशास्त्र 'मितव्ययता' से जुड़ा है। साधनों की सीमितता तथा इच्छाओं की असीमितता दुर्लभता को जन्म देती है। इसी से अर्थशास्त्र की मूलभूत समस्या अर्थात् साधनों के वैकल्पिक उपयोगों के बीच में ऐसे उपयुक्त चयन की समस्या पैदा होती है कि मनुष्य की असीमित इच्छाओं में से कुछ की संतुष्टि की जा सके। दुर्लभता गरीब तथा संपन्न देशों पर समान रूप से लागू होती है। भारत में यदि जरूरतों के हिसाब से साधन सीमित लगते हैं तो संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे अमीर देश में भी साधन अपर्याप्त ही रहते हैं। हाँ, यह बात अवश्य सच है कि दोनों देशों में इच्छाओं और साधनों के स्वरूप काफी अलग-अलग हो सकते हैं। चयन की समस्या एक उत्पादन संभावना वक्र से समझाई जा सकती है। साधनों एवं इच्छाओं के असंतुलन से ही केंद्रीय समस्याएँ पैदा होती हैं:

i) सीमित साधनों से किन वस्तुओं का उत्पादन किया जाए? अर्थव्यवस्था खाद्य सामग्री का अधिक उत्पादन करे या महँगी कारों का? निर्यात के लिए ज्यादा उत्पादन हो या घरेलू उपभोग के लिए?

ii) वस्तुओं का उत्पादन कैसे किया जाए? अर्थात् मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सीमित साधनों का संयोजन किस प्रकार किया जाए? यह बात उत्पादन की तकनीक से जुड़ी है। इसका एक उदाहरण है : श्रम प्रधान तकनीक का प्रयोग हो या फिर पूँजी-प्रधान तकनीक का?

iii) उत्पादन किनके लिए हो? वस्तुओं का उत्पादन करने के बाद भी उनके आबंटन का प्रश्न बचा रहता है– अर्थात् उपभोक्ताओं में वस्तुएँ कैसे बाँटी जाएँ– अमीरों को अधिक वस्तु मिले या गरीबों को।

ये ऐसी मूलभूत समस्याएँ है जिनसे सभी अर्थव्यवस्थाओं को जूझना पड़ता है। प्रत्येक अर्थव्यवस्था अपनी संस्थागत रचना के अनुरूप इनके समाधान भी खोज लेती है। अत: कही स्वतंत्र बाजार व्यवस्था, कहीं केंद्रीय आयोजन तो कहीं बाजार एवं आयोजन की मिलीजुली व्यवस्था से आर्थिक समस्याओं का निदान किया जाता है।

इस इकाई के अंत में हमने वास्तविक तथा आदर्श अर्थशास्त्र के भेद पर चर्चा की है। जहाँ वास्तविक अर्थशास्त्र किसी वस्तु की कीमत के निर्धारण जैसी समस्याओं से संबंद्ध है वहीं आदर्श अर्थशास्त्र का वास्ता नैतिकता, वांछनीयता आदि के सवालों से पड़ता है। जैसे अर्थव्यवस्था में मजदूरी की उचित दर क्या हो? प्रत्यक्ष अर्थशास्त्र में मूल्य-मानों के लिए कोई स्थान नहीं होता पर आदर्शी स्वरूप में तो सभी कुछ व्यक्ति मूल्य-मानों पर ही आधारित रहता है। ये मूल्यमान भी अंततः किसी समाज में व्यक्ति की अपनी स्थिति तथा विचारधारा पर ही निर्भर रहते हैं।

1.8 शब्दावली

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अर्थशास्त्र : अंग्रेजी शब्द इक्नॉमिक्स ग्रीक भाषा का है– इसका अर्थ है 'घर' और 'कानून'। अर्थात् गृह प्रबंध का सिद्धांत। क्योंकि संसाधन सीमित हैं और इच्छाएँ अत: अर्थशास्त्र का संबंध साधनों के किफायतपूर्ण उपयोग से है।

आदर्श अर्थशास्त्र : अर्थशास्त्र का यह स्वरूप नैतिक पहलूओं, प्रश्नों और समस्याओं से जुड़ा हुआ है। इसमें 'क्या बेरोज़गारी भत्ता दिया जाना चाहिए? अथवा 'क्या सरकार को कीमत नियंत्रण लागू करना चाहिए'? जैसे प्रश्नों पर विचार किया जाता है।

वास्तविक अर्थशास्त्र : इस स्वरूप में अर्थशास्त्र वैज्ञानिक व्यवहार से जुड़े प्रश्नों का विश्लेषण करता है– अर्थात् किन वस्तुओं का, कैसे उत्पादन किया जाए? यहाँ बिना मूल्य-मानों की चिन्ता किए ही इन प्रश्नों का समाधान किया जाता है।

आवश्यकताएँ : वस्तुओं और सेवाओं को पाने की इच्छा। जब व्यक्ति अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए कुछ खर्च करने का तत्पर हो जाता है तो यही आवश्यकता 'माँग' का रूप धारण कर लेती है।

उत्पादन संभावना/सीमा वक्र : उन सभी उत्पाद संयोजनों का समूह जो एक फर्म या अर्थव्यवस्था कुशलतम तकनीक तथा संसाधनों के कुशलतम बँटवारे के आधार पर उत्पादन कर सकती है।

उद्यम अथवा फर्म : बाज़ार में विक्रय हेतु वस्तुओं तथा सेवाओं आदि का उत्पादन करने वाले संगठन को फर्म या उद्यम का नाम दिया जाता है। यह संगठन संसाधन खरीदकर उनके माध्यम से उत्पादन करता है तथा उत्पादित वस्तुओं आदि की बाज़ार में बिक्री करता है। इस कार्य से जुड़े जौखिमों का वहन भी यही संगठन करता है। संगठन की आंतरिक गतिविधियाँ श्रम के विभाजन तथा पारस्परिक सहयोग पर आधारित होती हैं।

दुर्लभता : मानवीय आवश्यकताओं का उपलब्ध सामग्री से अधिक होना ही दुर्लभता को जन्म देता है। यह आवश्यकताओं तथा साधनों के असंतुलन से होती है। दुर्लभता तुलनात्मक अर्थ में ही होती है।

ध्येय : आर्थिक गतिविधियों में संलग्न व्यक्तियों के लक्ष्य।

पूँजी : इसमें सभी मानव निर्मित उत्पादन साधन आते हैं। यह समाज के उत्पादन का वह हिस्सा होता है जो भविष्य में उत्पादक कार्यों में प्रयोग के लिए अलग रख दिया जाता है। इसमें मशीनें, संयंत्र, भवन आदि सम्मिलित होते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

भूमि : यह एक ऐसा उत्पादन साधन है जिसमें हम सभी प्रकृति से मिले सभी संसाधनों को शामिल करते हैं।

साधन : ध्येय की प्राप्ति में सहायक संसाधन।

श्रम : उत्पादन साधन के रूप में मनुष्य की सभी मानसिक व शारीरिक शक्तियाँ।

वस्तुएँ : मानवीय आवश्यकताओं को पूरा करने के भौतिक साधनों को हम वस्तुएँ कहते है। अर्थशास्त्र में चीज़ों, वस्तुओं, उत्पादों आदि शब्द एक-दूसरे पर्याय के रूप में प्रयोग होते हैं।

1.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Begg, D.R., Dornbusch, S.Fischer(1991), *Macroeconomics* (4th Edition), McGraw-Hill Book Co. New York

Lipsey, Richard (1997), *Introduction to Positive Economics* (8th Edition). Oxford University Press (ELBS Edition), London

Nicholson, W.(1995), *Intermediate Micro Economics* (VIth Edition), Dryden Press, New York.

Roychoudhry, Kalyanjit (1999), *Modern Microeconomics* (II Edition), Book Land, Delhi

Salvatore D.(1996), *Micro Economic Theory* (Schaum series 3rd Edition), McGraw-Hill Book Co., New York.

Salvatore D.(1995), *Micro Economics* (2nd Edition), Harper Collins Publishers, New York

Trearthen Timothy (1996), *Micro Economics,* (1st Edition, 1996) Macmillan, New York.

1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

बोध प्रश्न 1

1) कुछ आवश्यक खाद्य सामग्री, जैसे दूध, अनाज, तेल, दालें, सब्जियाँ, कपड़े तथा रहने को कोई कमरा। एक हजार रुपये की राशि अपेक्षाकृत एक छोटी सी रकम है। इसमें आपको आवश्यक वस्तुएँ प्रचुरता से नहीं मिल पाएगी। किस वस्तु की कितनी मात्रा आप प्रयोग करेंगे यह तो मूलत: आपकी अपनी उपयोग संबंधी आदतों पर निर्भर करेगा।

2) बीज, खाद्य/उर्वरक, निश्चित मात्रा में पानी, कुछ श्रमिक तथा संभवत: कुछ औज़ार।

बोध प्रश्न 2

1) इच्छाएँ असीमित पर संसाधन सीमित है, अत: सभी इच्छाओं को एक साथ पूरा नहीं किया जा सकता। इसीलिए आवश्यकताओं के बीच प्राथमिकता निश्चित करनी ही पड़ती है। हाँ, संसाधनों को कई तरह से प्रयोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिए जिस भूमि पर धान की खेती होती है उसी पर हम चाहे तो कोई व्यवसायिक फसल भी उगा सकते हैं। यदि संसाधन किसी वस्तु विशेष कर ही उत्पादन करने योग्य हों तो फिर चयन करने का कोई अर्थ नहीं रहता।

DIKSHANT IAS

2) आप सार्वजनिक बसों, अपनी साइकिल या मोटर साइकिल तथा यदि पैसा हो तो कार या टैक्सी का प्रयोग कर सकते है। कई नगरों में लोग स्थानीय रेलों, ट्रामों, यहाँ तक कि जलमार्गों का भी प्रयोग करते हैं।

Call us @7428092240

बोध प्रश्न 3

1) एक बेरोज़गार व्यक्ति कुछ भी उत्पादन नहीं करता, किंतु अन्य रोज़गार प्राप्त व्यक्ति कुछ न कुछ तो उत्पादन करता ही है, चाहे यह उसके संभाव्य या अधिकतम उत्पादन से कम हो।

2) यदि संसाधनों में वृद्धि हो तो दोनों ही वस्तुओं का अधिक उत्पादन संभव हो सकता है। उत्पादन संभावना वक्र बाहर की ओर खिसकेगा। हाँ, प्रयुक्त होने वाले तकनीकों, साधन उपलब्धि में सापेक्ष परिवर्तनों एवं उनकी प्रयोग कुशलता के प्रभाव अवश्य पड़ते हैं।

बोध प्रश्न 4

1) भौतिक तथा अन्य प्राकृतिक विज्ञानों की भाँति अर्थशास्त्र एक निश्चित विज्ञान नहीं है। मानवीय व्यवहार में प्रकृति की भाँति पुनरावृति इतनी 'सुनिश्चित' नहीं होती। घटनाक्रम एक होने पर भी विभिन्न परिस्थितियों में, विभिन्न व्यक्तियों के व्यवहार में अंतर हो सकता है। अत: कोई भी शत-प्रतिशत आश्वस्त नहीं हो सकता कि सेब के दाम कम होने पर इनकी माँग में अवश्य ही वृद्धि होगी।

2) विश्लेषण अनुसंधान की वैज्ञानिक प्रणाली के प्रयोग करने के अर्थ में भाग 1.5.2 के रेखाचित्र को एक बार फिर ध्यान से देखें।

बोध प्रश्न 5

1) (क) आदर्शी (ख) वास्तविक (ग) वास्तविक (घ) आदर्शी (ङ) आदर्शी
(च) आदर्शी (छ) वास्तविक (ज) वास्तविक (झ) वास्तविक (ञ) आदर्शी।

इकाई 2 मूलभूत आर्थिक अवधारणाएँ

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र
2.3 अर्थशास्त्र में बाज़ार की अवधारणा
2.4 माँग का अर्थ
2.5 वस्तु का माँग-वक्र
2.6 पूर्ति का अर्थ
2.7 वस्तु का पूर्ति-वक्र
2.8 अर्थशास्त्र में कीमत का अर्थ
2.9 संतुलन एवं असंतुलन से अभिप्राय
2.10 सारांश
2.11 शब्दावली
2.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें
2.13 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

2.0 उद्देश्य

DIKSHANT IAS
Call us @7428002240

इस इकाई में आप इन विषयों पर समुचित जानकारी प्राप्त कर सकेंगे :

- अर्थशास्त्र की समष्टि एवं व्यष्टि अध्ययन शाखाओं में मूलभूत अंतर;
- बाज़ार की अवधारणा एवं इसकी कार्य प्रणाली;
- माँग एवं पूर्ति फलन;
- संतुलन एवं असंतुलन की अवधारणाएँ एवं अर्थशास्त्र में इनका महत्त्व; तथा
- माँग-पूर्ति द्वारा किसी वस्तु की कीमत एवं खरीदी-बेची गई मात्रा का निर्धारण।

2.1 प्रस्तावना

इस इकाई का आरंभ हम व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र के भेद से कर रहे हैं। इस इकाई में केवल व्यष्टि अर्थशास्त्र के बारे में बात करेंगे और क्योंकि व्यष्टिगत अर्थशास्त्र का संबंध केवल व्यक्तिगत बाज़ारों से है, इसलिए हम बाज़ार की अवधारणा के बारे में बात करेंगे। बाज़ार व्यवहार के अध्ययन में किसी वस्तु की माँग एवं पूर्ति दो आधारभूत उपकरण हैं। यदि किसी वस्तु का बाज़ार है तो उसकी कीमत भी अवश्य ही होगी। अतः हमारा अगला कदम कीमत की अवधारणा की व्याख्या करना होगा। बाज़ार में सारा लेन-देन किसी न किसी कीमत पर ही होता है। बाज़ार में कीमत ही वस्तु की माँग एवं पूर्ति के बीच समानता लाकर 'संतुलन' पैदा करती है। अतः इस इकाई में हम संतुलन एवं असंतुलन की अवधारणाओं पर भी विचार करेंगे।

2.2 व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र

व्यष्टि और समष्टि शब्दों के अर्थ हैं छोटे और बड़े या सामूहिक। व्यष्टि अर्थशास्त्र आधारभूत आर्थिक इकाइयों जैसे कि एक उपभोक्ता, एक उत्पादक, एक उद्योग, एक उद्योग, एक बाज़ार या फिर किसी आगत के एक आपूर्तिकर्ता के व्यवहार से जुड़ा है। विश्लेषण की इकाई छोटी ही रहती है। समष्टि अर्थशास्त्र में हम बड़ी (व्यापक) इकाई का अध्ययन करते हैं। वास्तव में ये दोनों विश्लेषण विधियाँ एक अर्थव्यवस्था की कार्य पद्धति के अध्ययन से जुड़ी हैं। दोनों इस अध्ययन का आरंभ अलग-अलग दृष्टिकोणों से करती हैं। अर्थव्यवस्था की कार्यप्रणाली का विश्लेषण दो बातों से प्रारंभ किया जाता है। इसमें प्रथम है व्यष्टि आर्थिक सिद्धांत जो कि व्यक्तिगत बाज़ारों (जैसे अनाज का बाज़ार), उपभोक्ताओं (जैसे गेहूँ के), फर्मों, उद्योगों पर केंद्रित है। व्यष्टि सिद्धांत में अर्थव्यवस्था की आधारभूत घटक इकाइयों पर ध्यान दिया जाता है। इस बात की सूक्ष्मता से जाँच की जाती है कि ये इकाइयाँ कैसे कार्य करती हैं, इनकी निर्णय प्रक्रिया क्या है और इनके परस्पर संबंध किस तरह संचालित होते हैं। दूसरा है समष्टिगत आर्थिक सिद्धांत जिसमें राष्ट्रीय व्यय, समग्र उपभोग, समग्र निवेश व्यय, रोज़गार का स्तर व सामान्य कीमत स्तर जैसे विस्तृत समूहों **(aggregates)** का अध्ययन किया जाता है। इसमें यह विश्लेषण किया जाता है कि इन विस्तृत समूहों के आपसी संबंधों के आधार पर अर्थव्यवस्था कैसे कार्य करती हैं, इन विस्तृत समूहों का व्यवहार क्या है, तथा इनका निर्धारण कैसे होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि व्यष्टि तथा समष्टि सिद्धांतों का अंतर इस बात पर आधारित है कि अर्थव्यवस्था का अध्ययन कितने छोटे या बड़े समूह के आधार पर किया जाता है। व्यष्टि अर्थशास्त्र में सभी चर अपने वैयक्तिक स्वरूप में होते हैं जबकि समष्टि अर्थशास्त्र में उनके सामूहिक स्वरूप का अध्ययन होता है। इस दृष्टि से ये दोनों अर्थशास्त्र एक ही सिक्के के दो पहलू कहे जा सकते हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि अंततः सभी आर्थिक निर्णय वैयक्तिक स्तर पर ही लिए जाते हैं और ऐसे छोटे-छोटे निर्णयों का सामूहिक उपभोग व्यय सभी उपभोक्ताओं के वस्तुओं और सेवाओं पर खर्च का योगमात्र है। इसी तरह से अर्थव्यवस्था के समष्टि व्यवहार का प्रभाव वैयक्तिक स्तर पर निर्णय लेने पर भी पड़ेगा। यदि आयकर की दरें बढ़ा दी जाएँ तो परिवारों की प्रयोज्य आय कम हो जाएगी, फर्मों की बिक्री कम होगी और परिणामस्वरूप उत्पादन में कटौती करना आवश्यक हो जाएगा। इस प्रकार एक समष्टि स्तर की घटना से अर्थव्यवस्था में व्यष्टि स्तर पर भी प्रतिक्रियाएँ अवश्य होती हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

व्यष्टि अर्थशास्त्र में हमारा ध्यान मूलतः वस्तुओं और उत्पादक साधनों की सापेक्ष कीमतों पर केंद्रित रहेगा। इस दृष्टि से इसे कीमत सिद्धांत का नाम देना गलत नहीं होगा। जेम्स क्वर्क **(James Quirk)** का कहना है कि समष्टि अर्थशास्त्र एक ऐसी सैद्धांतिक रूपरेखा प्रदान करता है जिसके अनुसार अर्थशास्त्री फर्म, उपभोक्ता, उद्योग, वस्तु और बाज़ार जैसी मौलिक आर्थिक इकाइयों के व्यवहार और अंतःसंबंधों की व्याख्या कर सकते हैं। इस अर्थशास्त्र का मुख्य उद्देश्य यह बात समझाना है कि उत्पादन, विनिमय, वस्तुओं और सेवाओं के आबंटन आदि किस प्रकार सम्पन्न होते हैं और किसी समाज में ये क्रियाएँ विभिन्न प्रेरणाओं या प्रोत्साहनों के प्रति किस प्रकार व्यवहार करती है।

बोध प्रश्न 1

1) इनमें से कौन से कथन व्यष्टि अर्थशास्त्र से संबंधित हैं?

   क) यदि मुद्रास्फीति बढ़ती है तो भारतीय अर्थव्यवस्था वस्त्रों की कम मात्रा का ही निर्यात कर पाती है।

   ....

   ....

ख) गेहूँ की आपूर्ति बढ़ने पर इसकी कीमत गिर जाती है।

....

....

ग) मदर डेयरी में हड़ताल होने पर दूध की कीमत बढ़ जाती है।

....

....

घ) निवेश में वृद्धि होने से रोज़गार बढ़ता है।

....

....

2.3 अर्थशास्त्र में बाज़ार की अवधारणा

आम बोलचाल की भाषा में बाज़ार का अर्थ है वह स्थान जहाँ वस्तुओं और सेवाओं का क्रय-विक्रय हो– जैसे आज़ादपुर की सब्जी-मंडी, पहाड़गंज या कोटला की लक्कड़-मंडी, खारी बावली की अनाज-मंडी, चाँदनी चौक का कपड़ा बाज़ार, चावड़ी बाज़ार का कागज़ बाज़ार अथवा कीर्ति नगर का फर्नीचर बाज़ार। पर अर्थशास्त्र में बाज़ार का अर्थ इससे कहीं भिन्न और अधिक व्यापक है। एक अर्थशास्त्री की दृष्टि से बाज़ार उन जटिल गतिविधियों का नाम है जिनमें संभावित क्रेता और विक्रेता वस्तुओं और सेवाओं के क्रय-विक्रय करने के लिए एक-दूसरे के सम्पर्क में आते हैं। जहाँ भी और जब कभी दो या उससे अधिक व्यक्ति कुछ क्रय-विक्रय करते हैं तो वहीं पर चाहे स्थान या समय कुछ भी हो बाज़ार बन जाता है। क्रेता और विक्रेता की शारीरिक उपस्थिति **(physical presence)** अर्थशास्त्र की बाज़ार की अवधारणा के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं है। आधुनिक संचार व्यवस्था और कम्प्यूटर तकनीकों के विकास के कारण तो बाज़ार की स्थापना के लिए व्यक्तियों की उपस्थिति की आवश्यकता ही नहीं रह गई है। बस दो ऐसे व्यक्ति या समूह होने चाहिए जो विनिमय करने को उत्सुक हों। बाज़ार की मूलभूत विशेषता संभावित खरीदारों और विक्रेताओं के बीच सौदेबाजी है जिससे ही विनिमय की शर्तों का निर्धारण होता है। यहाँ संभावित शब्द पर बहुत ध्यान देने की आवश्यकता है। बाज़ार में आने वाला हर व्यक्ति प्रचलित कीमतों पर कुछ न कुछ निश्चित मात्रा में खरीदारी करने या बेचने की मंशा से आता है। किंतु यदि प्रचलित कीमत अधिक हो तो कम कीमत पर खरीदारी के इच्छुक बाज़ार से बाहर ही रह जाते हैं। इसी तरह बाज़ार कीमत कम होने की स्थिति में ऊँचे दामों पर बिक्री करने की आशा में आए लोग बाज़ार से बाहर ही रह जाएँगे। बाज़ार की गतिविधियाँ यह निश्चित करेंगी कि कीमत क्या रहेगी, कितनी मात्रा का क्रय-विक्रय होगा और क्रेता-विक्रेता कौन होंगे। एक बाज़ार अर्थव्यवस्था में बाज़ार ही विभिन्न उत्पादों के बीच संसाधनों का आबंटन करता है। बाज़ार का स्वरूप पूर्ण प्रतियोगी, एकाधिकारी, अपूर्ण प्रतियोगी, एकाधिकारी प्रतियोगी या अल्पाधिकारी प्रतियोगी भी हो सकता है। बाज़ार का अस्तित्व संसाधनों के प्रयोग में कुशलता लाती है। बाज़ार से ही कौशलतापूर्ण निर्णय के लिए आवश्यक जानकारी मिलती है। इस जानकारी में वस्तुओं की प्रकृति, प्रचलित कीमत और संभावित क्रेता-विक्रेता आदि सम्मिलित रहते हैं। इनके अतिरिक्त बाज़ार से कोई और जानकारी नहीं मिलती। सामान्यतः बाज़ार की यह जानकारी निःशुल्क उपलब्ध रहती है, यद्यपि कुछ वस्तुओं से जुड़ी बाज़ार 'जानकारी के लिए' कभी-कभी समय, पैसा और प्रयास तीनों की ही आवश्यकता पड़ जाती है। आधुनिक संचार

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

व्यवस्था ने जानकारी के संग्रह, संचय और प्रयोग को काफी सहज बना दिया। इससे निश्चित रूप से निर्णय प्रक्रिया में सुधार हुआ है। अब बाज़ार के अस्तित्व और कुशलता पूर्ण व्यवहार के लिए केवल इतना ही आवश्यक है कि वस्तुओं के स्वामित्व के अधिकारों की परिभाषा सही ढंग से की गई हो, देश के कानून इन्हें संरक्षण देते हों और ये अधिकार हस्तांतरणीय हों। इन स्वामित्व अधिकारों का अर्थ है कि सम्पत्ति का स्वामी उस वस्तु के संबंध में कुछ फैसले स्वयं कर सके। इन फैसलों में सम्मिलित हैं : किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उस वस्तु के प्रयोग पर बंधन और यदि अन्य व्यक्ति इसे प्रयोग करे तो ऐसे प्रयोग के लिए कुछ कीमत वसूल कर सकना; और इन वस्तुओं और सेवाओं का स्वामित्व किसी और को पूरी तरह हस्तांतरित कर सकना। जेम्स क्वर्क कहते हैं 'अर्थव्यवस्था में उत्पादित, क्रय-विक्रय की गई और उपभोग की गई सभी चीज़ें सम्पत्ति अधिकार ही है जिन्हें हम वस्तुएँ कहते हैं। किसी भी समाज में आर्थिक गतिविधियों का स्वरूप सम्पत्ति अधिकारों के ढाँचे से पूरी तरह जुड़ा होता है क्योंकि इन्हीं सम्पत्ति अधिकारों से स्व-हितों **(self-interest)** की अभिव्यक्ति होती है और प्रोत्साहन प्रभावी होते हैं।'

2.4 माँग का अभिप्राय

अर्थशास्त्र में माँग का अर्थ प्रभावी माँग है न कि कुल **(absolute)** माँग। एक उपभोक्ता या परिवार द्वारा वस्तु की माँग का अर्थ है खरीदने की इच्छा के साथ-साथ भुगतान करने की क्षमता भी होना। दूसरे शब्दों में, वे ही मानवीय इच्छाएँ माँग कहलाती हैं जिनको प्राप्त करने के लिए क्रय-शक्ति भी हो। इसका अर्थ यह हुआ कि किसी वस्तु की इच्छा तभी माँग बन सकती है जबकि वह व्यक्ति उस वस्तु की कीमत चुकाने को तैयार हो और कीमत अदा करने की क्षमता भी हो। यदि व्यक्तियों के पास दाम चुकाने की क्षमता हो तो बाज़ार में उनकी माँग प्रभावी माँग बन जाती है। सामान्यतः दाम चुकाने की क्षमता व्यक्ति की आय पर निर्भर करती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

एक उदाहरण : एक भिखारी दूध पीना चाहता है पर उसके पास पैसे नहीं हैं अतः उसकी दूध की इच्छा को प्रभावी माँग नहीं कहा जा सकता। वह बाज़ार की क्रय-विक्रय की गतिविधि में भाग नहीं लग सकता। किंतु यदि वह व्यक्ति कहीं रोज़गार पाने में सफल हो जाए– किसी दुकान में मज़दूर बन जाए और अपने काम की एवज़ में उसे नकद मज़दूरी मिले– तो व्यक्ति अब बाज़ार से दूध खरीदने में समर्थ हो जाएगा। यह बात ध्यान देने योग्य है कि यह व्यक्ति अब भिखारी नहीं रहा। वैसे यदि यह आदमी अपनी भीख में माँगी गई रकम में से दूध पैसे देने को तैयार हो तो भी उसकी माँग प्रभावी माँग बन जाएगी। अतः किसी व्यक्ति के लिए वस्तु बाज़ार में भाग लेने के लिए रोज़गारशुदा होना आवश्यक नहीं है। पहले उस व्यक्ति की दूध की माँग इच्छा मात्र थी पर अब प्रभावी माँग बन जाती है। अब बाज़ार माँग में इस व्यक्ति की माँग जुड़ गई और दुग्ध उत्पादक को इस माँग को ध्यान में रखकर उत्पादन करना होगा। अतः वस्तुओं की माँग के अस्तित्व के लिए दो शर्तों का पूरा होना आवश्यक है:

1) व्यक्ति की उस वस्तु को पाने की इच्छा हो;

2) इस वस्तु को पाने के लिए आय, क्रय शक्ति या भुगतान क्षमता हो।

   साथ ही यह भी आवश्यक है कि व्यक्ति कीमत चुकाना चाहता हो।

बोध प्रश्न 2

1) आपका वेतन तीन हज़ार रुपये मासिक है और आप ऑफिस आने-जाने के लिए टैक्सी का

प्रयोग करना चाहते हैं। क्या आपकी यह इच्छा टैक्सी सेवाओं की माँग कही जा सकती है?

....

....

....

....

....

2) आपको चाय बहुत पसंद है। इस बात का विश्लेषण करें कि आपकी चाय की माँग पर निम्न बातों का क्या प्रभाव पड़ेगा?

क) कॉफी महँगी हो जाए

....

....

ख) आपकी आमदनी बढ़ जाए

....

....

ग) और अचानक आपके घर में कुछ मेहमान आ टिकें।

....

DIKSHANT IAS

....

Call us @7428092240

2.5 वस्तु का माँग-वक्र

भाग 2.4.1 में हमने एक वस्तु की माँग को प्रभावित करने वाले कुछ कारकों के बारे में बातचीत की है। पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि उन कारकों के अतिरिक्त भी कितनी ही बातें वस्तु की माँग को प्रभावित कर सकती हैं। फिर भी जिन चार कारकों के विषय में पहले चर्चा की गई है, वही माँग के प्रमुख निर्धारक माने जाते हैं। यदि हम वस्तु की अपनी कीमत के अलावा शेष तीनों कारकों का मान स्थिर मान लें तो वस्तु की अपनी कीमत और उसकी माँग में संबंध स्पष्ट हो सकता है। इसी को हम माँग-फलन, माँग-सारणी या माँग-वक्र का नाम देते हैं। माँग-सारणी वस्तु कीमतों तथा उनके साथ जुड़ी संभावित उपभोक्ता की माँगी गई मात्रा दिखाती है। उसे एक तालिका के रूप में दिखाया जा सकता है:

माँग तालिका

दूध की कीमत (रुपये प्रति लीटर)	20	15	10	5
माँगी गई मात्रा (लीटर)	1	1.5	3	6

माँग-वक्र किसी वस्तु की अपनी कीमत तथा माँगी गई मात्रा के बीच संबंध दर्शाता है। यह मात्रा तथा कीमत के बीच फलनीय संबंध (functional relationship) दिखाता है। मान लीजिए वस्तु

x है, उसकी माँग Q_x^d और उसकी कीमत P_x है, तो इस वस्तु का माँग-फलन (demand function) का स्वरूप यह होगा:

$$Q_x^d = f(P_x)$$

यह फलन केवल इतना बताता है कि माँगी गई मात्रा वस्तु की कीमत पर निर्भर करती है। यहाँ कीमत 'कारण' (cause) है और माँग 'प्रभाव' (effect)। दूसरे शब्दों में, यह भी कहा जा सकता है कि इस फलन में P_x स्वतंत्र चर (independent variable) है तथा Q_x^d उस पर आश्रित चर (dependent variable) है। इन्हें ही क्रमशः बहिर्जात (exogenous) तथा अंतर्जात (indogenous) नाम भी दिया जा सकता है। इस माँग-फलन की परिभाषा 'शेष सभी बातें पूर्ववत्' रहने की मान्यता के आधार पर की जाती है। इसका अर्थ यह है कि यदि कीमत के अतिरिक्त माँग पर प्रभाव डालने वाले अन्य कारक स्थिर रहें, तो माँग-फलन वस्तु की माँग पर पड़ने वाले प्रभाव की जानकारी देता है। दूसरे शब्दों में, जब किसी वस्तु की व उसकी माँग के संबंधों का विश्लेषण किया जाता है तो माँग पर प्रभाव डालने वाले कारकों को स्थिर माना जाता है। इन अन्य प्रभावी कारकों में संबंधित वस्तुओं की कीमतें, उपभोक्ता की आमदनी तथा उपभोक्ता की पसंद शामिल होती है।

माँग-वक्र का रेखाचित्र द्वि-आयामी होता है। हम क्षैतिज अक्ष (horizontal axix) पर माँगी गई मात्रा शीर्ष अक्ष (vertical axix) पर कीमतें दर्शातें हैं। इसे हम समझने हेतु क्रमशः 'पड़ी रेखा' तथा 'खड़ी रेखा' भी कह सकते हैं। हम जानते हैं कि वस्तु की कीमत तथा माँग के बीच विपरीत संबंध होता है। माँग-वक्र का बाएँ से दाएँ नीचे की ओर जाना इस संबंध को दिखाता है। सुविधा के लिए हम ऐसा वक्र सीधी रेखा वाला माँग-वक्र ले लेते हैं जो कि चित्र 2.1 में दिखाया गया है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 2.1

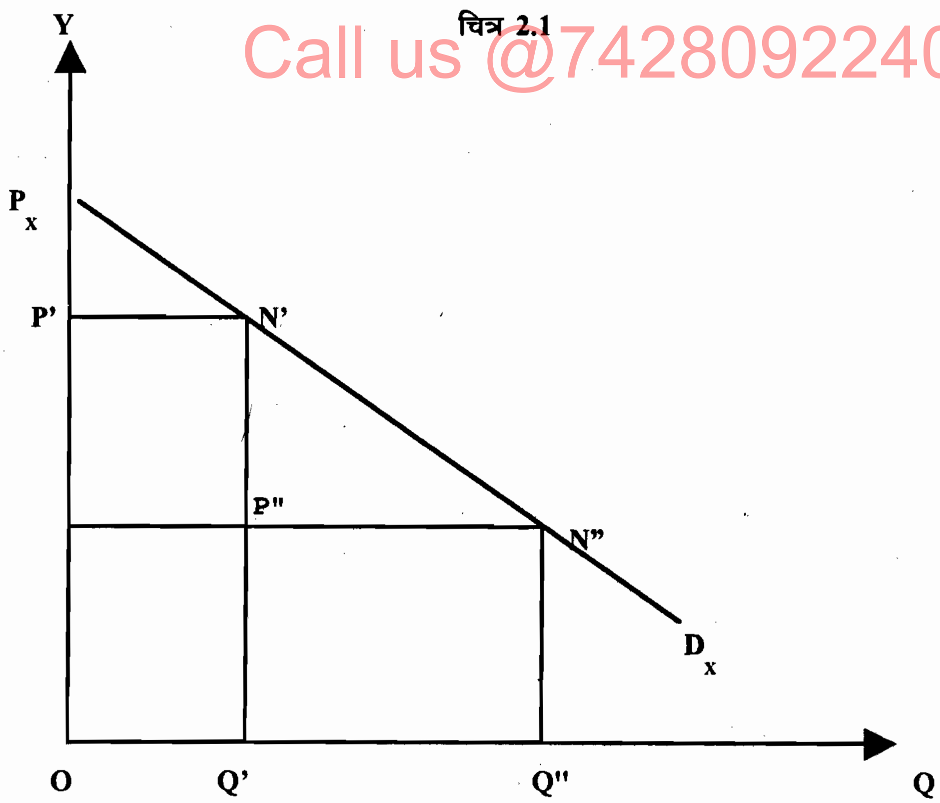

चित्र 2.1 : OP' कीमत पर उपभोक्ता D_x वक्र के बिंदु N' पर वस्तु की OQ' मात्रा की माँग करता है। कीमत गिरकर OP" हो जाने पर उपभोक्ता N" बिंदु पर पहुँच जाता है। अब वह OQ" मात्रा में इस वस्तु का उपयोग करेगा।

वस्तु (दूध) की माँगी गई मात्रा O_x को हमने क्षैतिज अक्ष (X-अक्ष) पर दर्शाया है और कीमत P_x को शीर्ष अक्ष (Y-अक्ष) पर। वस्तु की मात्रा सामान्यतः उस वस्तु की अपनी स्वाभाविक इकाइयों में दर्शाई जाती है– जैसे दूध की इकाई लीटर रहती है। इसी प्रकार हम कीमत रुपयों में– जैसे 8 रुपये प्रति लीटर या 12 रुपये प्रति लीटर आदि में दिखाते हैं। दाहिनी ओर ढलवाँ माँग-वक्र यह स्पष्ट करता है कि वस्तु की कीमत कम होने पर उसकी माँग अधिक हो जाती है। इसके विपरीत कीमत बढ़ने पर माँग कम हो जाती है। यह उपभोक्ता का सामान्य व्यवहार है। माँग-वक्र का ढलान दाहिनी ओर ही क्यों होता है, इस बारे में हम काफी विस्तार से इकाई 4 और 5 में चर्चा करने वाले हैं। एक दाहिनी ओर ढलवाँ माँग-वक्र ही माँग का नियम दर्शाता है। इस नियम के अनुसार अन्य सभी बातें स्थिर रहने पर उपभोक्ता कीमत कम होने पर ज्यादा माँग करता है तथा कीमत बढ़ने पर पहले की अपेक्षा कम माँग करता है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि यदि माँग-वक्र एक सीधी रेखा तो उससे जुड़ा हुआ माँग-फलन एक रेखीय फलन (linear equation) होगा, यथा :

$Q^d_x = a - bP_x$ यह 'a' मात्रा अवरोध (intercept) तथा 'b' ढलान (slope) है। 'b' मूल्य के कारण होने वाली माँग के दर में परिवर्तन को दिखाता है। इस प्रकार, एक और बात पर ध्यान देना आवश्यक है : यद्यपि हम माँग को कीमत पर निर्भर मानते हैं पर जब

$$b = \frac{dQ}{dP}$$

माँग-वक्र का रेखाचित्र बनाते हैं तो सामान्य गणितीय परंपरा से हटकर हम प्रतिलोम (inverse) चित्र का रेखांकन करते हैं। सही मायने में चित्र 2.1 हमारे माँग-फलन के प्रतिलोम स्वरूप अर्थात् $P_x = A - BQ_x$ का चित्र है। यहाँ $A = a/b$ है और यह कीमत अवरोध है, तथा $B = 1/b$ है और यह प्रतिलोम माँग-वक्र का ढलान तथा dP/dQ के समान है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

नोट : अर्थशास्त्र में स्वतंत्र चर को शीर्ष-अक्ष (y-अक्ष) पर तथा आश्रित चर को क्षैतिज-अक्ष (x-अक्ष) दिखाने की परंपरा है। गणित में परंपरा इसके विपरीत है।

अपने सामान्य रूप में माँग-फलन $Qd_x = a - bP_x$ यह बताता है कि विभिन्न कीमतों पर उपभोक्ता अधिकतम कितनी-कितनी मात्रा खरीदने को तैयार होगा।

इसी तरह प्रतिलोम माँग-वक्र $P_x = A - BQ_x$ यह बताता है कि प्रत्येक मात्रा की उपभोक्ता अधिक से अधिक क्या कीमत चुकाने को तत्पर होगा (उसके पास उस कीमत को न चुकाने का केवल एक विकल्प बचता है कि वह उस वस्तु का उपयोग ही नहीं करे)। इस तरह से माँग-वक्र अपने दोनों ही स्वरूपों में उपभोक्ता की अधिकतम सीमा दिखाता है। OQ' मात्रा के लिए कोई उपभोक्ता Op' से अधिक कीमत नहीं देगा। दूसरे शब्दों में, OP' कीमत पर उपभोक्ता अधिक से अधिक OQ' मात्रा ही खरीदेगा।

उपभोक्ता द्वारा चुकाई गई कीमत का ही दूसरा नाम विक्रेता की औसत आय (agerage revenue) है। इसलिए प्रतिलोम माँग-वक्र को हम औसत आगम (AR) वक्र का नाम देते हैं। जहाँ पर यह माँग-वक्र कीमत अक्ष को स्पर्श करता है, वहाँ की मात्रा शून्य हो जाती है। इस तरह से हम कह सकते हैं कि A ऐसा कीमत स्तर है जिस पर उपभोक्ता को यह साहस ही नहीं होता कि वह कुछ खरीदारी कर ले। ऐसी कीमत को निषिद्ध (prohibited) कीमत कहते हैं।

1) माँग-फलन इस प्रकार हैं : $Q = 40 - 0.5\ P$। ज्ञात करें कि कीमत क्रमशः 5,4,3,2 तथा 1 रुपया प्रति इकाई होने पर उपभोक्ता कितनी-कितनी माँग करेगा।

....

....

....

....

....

....

....

2) नीचे दिए गए दो फलनों का आप अर्थ (interpretation) किस प्रकार निकालेंगे?

a) $Q = 100 - 2P$

b) $P = 50 - 0 - 5\ Q$

इनकी व्याख्या करें।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2.6 पूर्ति का अर्थ

अपने तकनीकी ज्ञान और संसाधन मात्रा के अनुसार उत्पादन कर सकने की क्षमता को ही किसी उत्पादक अथवा फर्म की पूर्ति कहते हैं। किसी वस्तु के उत्पादन होने पर ही उसकी पूर्ति संभव होगी। दूसरे शब्दों में, हम कह सकते हैं कि पूर्ति उत्पादन के साथ ही जुड़ी हुई है।

2.7 वस्तु का पूर्ति-वक्र

किसी वस्तु का कितना उत्पादन होगा या उसकी कितनी मात्रा बाज़ार में उपलब्ध कराई जाएगी। यह बात अनेक कारकों पर निर्भर है। इन कारकों में से प्रमुख है वस्तु की अपनी कीमत, उसके उत्पादन में लगे साधनों की कीमतें तथा प्रौद्योगिकी इत्यादि। सामान्यतः हम वस्तु का उसकी अपनी कीमत को ही सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण कारक मानते हैं। इसी के अनुसार उत्पादक अपने पूर्ति संबंधी निर्णय लेता है। अतः किसी वस्तु की पूर्ति फलन का सामान्य स्वरूप इस प्रकार रहता है :

$$Q^s_x = (P_x)$$

यहाँ x वस्तु का द्योतक है। यह फलन एक प्रकार का कारण-प्रभाव संबंध दर्शाता है। इस फलन का अर्थ है कि वस्तु की कीमत तथा पूर्ति में प्रत्यक्ष संबंध है। यदि कीमत में वृद्धि होगी तो उत्पादक पहले की अपेक्षा ज्यादा मात्रा उत्पादित कर बाज़ार में भेजना चाहेगा। इसके विपरीत यदि बाज़ार कीमत में गिरावट आती है तो उत्पादक भी उत्पादन एवं आपूर्ति और कम करने को बाध्य हो जाता है। उत्पादकों का यही सामान्य व्यवहार होता है। पूर्ति फलन द्वारा दर्शाया गया यह संबंध भी माँग-वक्र की ही भाँति 'अन्य सभी बातें पूर्ववत्' रहने की मान्यता पर आश्रित हैं। इन पूर्ववत् रहने वाली बातों में तकनीकी ज्ञान, साधनों की कीमतें तथा अन्य सभी वस्तुओं की कीमतें आदि सम्मिलित हैं।

एक आपूर्ति तालिका में किसी वस्तु x की विभिन्न कीमतों पर किसी उत्पादक द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली मात्राएँ दिखाई जाती हैं। यह तालिका बताती है कि बाज़ार में अलग-अलग कीमतों पर यह उत्पादक कितनी-कितनी मात्रा में यह वस्तु बेचने को तैयार होगा। इस तालिका का स्वरूप कुछ इस तरह हो सकता है:

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

पूर्ति तालिका

वस्तु x कीमत (प्रति इकाई) (रुपये)	वस्तु x की उत्पादित/बाज़ार में भेजी गई मात्रा (इकाइयों में)
9	100
8	80
7	75
6	65
5	45

इसी तालिका को हम द्वि-अक्षीय चित्र में भी दिखा सकते हैं। माँग-वक्र की भाँति यहाँ भी कीमत की शीर्ष-अक्ष पर और पूर्ति की क्षितिजीय अक्ष पर मात्रा दिखाई जाती है। इसे ही पूर्ति-वक्र कहा जाता है। हम चित्र 2.2 में उपरोक्त आँकड़ों पर आधारित पूर्ति-वक्र दिखा रहे हैं:

चित्र 2.2

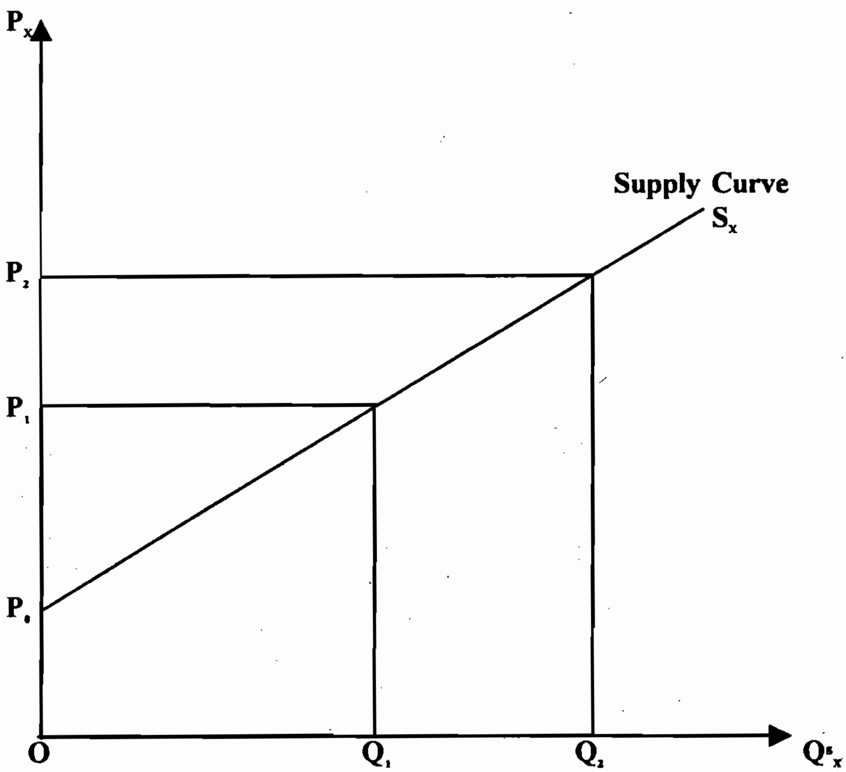

चित्र 2.2: जब मूल्य OP_0 होता है तो उत्पादक कुछ भी पूर्ति नहीं करता। जब मूल्य OP की ओर बढ़ता है पूर्ति OQ_1 होता है। जब मूल्य OP_2 को पहुँचता तब उत्पादक OQ_2 की पूर्ति को इच्छुक रहता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

पूर्ति-वक्र रेखीय भी हो सकता है और वक्रीय भी। हम चित्र 2.3 (क) तथा 2.3 (ख) में ये दोनों दिखा रहे हैं। मुख्य बात यह है कि जैसे वस्तु की कीमत बढ़ती जाती है उत्पादक पहले की अपेक्षा ज्यादा मात्रा बाजार में बेचने को प्रस्तुत होता है। ऊँची कीमत अधिक आपूर्ति को आकृष्ट करती है।

चित्र 2.3 (क) तथा 2.3 (ख)

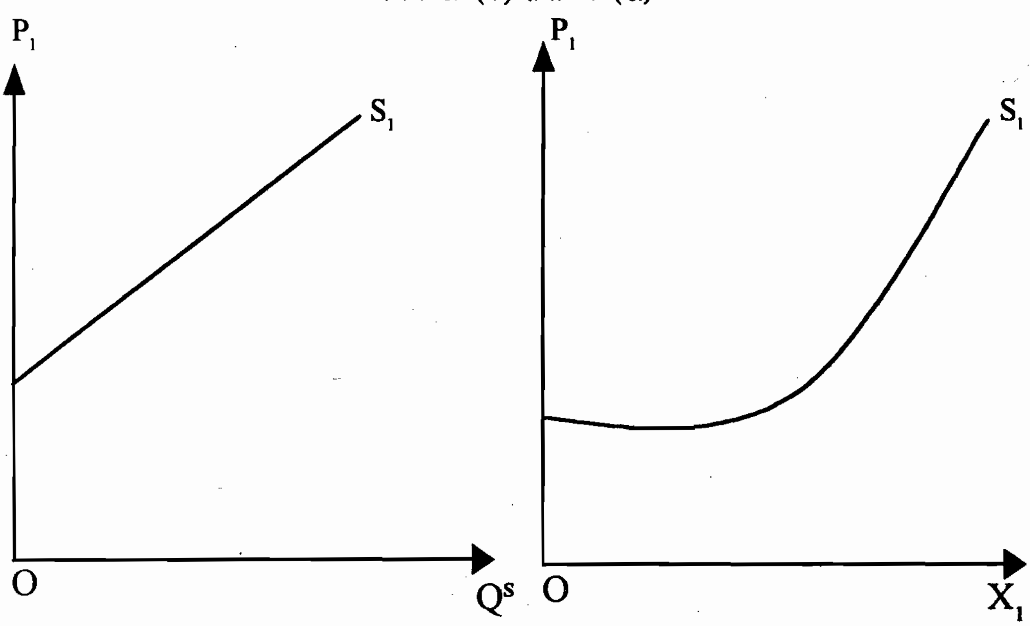

चित्र 2.3 (क) तथा 2.3 (ख) दिखा रहे हैं कि पुर्ति वक्र रेखाएं और वक्रीय हो सकती हैं।

बाज़ार में बेचने को प्रस्तुत होता है। ऊँची कीमत अधिक आपूर्ति को आकृष्ट करती है। बाज़ार आपूर्ति-वक्र अथवा पूर्ति-वक्र किसी बाज़ार में कार्य कर रहे सभी उत्पादकों के पूर्ति-वक्रों का योग होता है क्योंकि यह वक्र पूर्ति फलन का वक्र है, यह भी 'अन्य सभी बातें पूर्ववत्' रहने की मान्यता पर आधारित है और केवल वस्तु की अपनी कीमत तथा उपलब्ध करायी जा रही मात्रा के बीच के संबंध को ही दिखाता है।

माँग तथा पूर्ति की अवधारणाओं की परिभाषाओं में 'संभावित' शब्द पर बहुत बल दिया जाता है। प्रत्येक क्रेता तथा विक्रेता बाज़ार में कुछ पूर्वधारणाओं के साथ ही प्रवेश करता है। यदि क्रेता किसी विशेष कीमत तक ही खरीदारी के इरादे से बाज़ार में आते हैं तो अधिक कीमत वृद्धि उन्हें बिना कुछ खरीदे ही वापिस जाने को मजबूर कर सकती है। इसी प्रकार कीमत बहुत कम रहने पर जो विक्रेता ऊँचे दामों में माल बेचना चाहते थे उन्हें मायूस लौटना पड़ सकता है। अतः प्रत्येक क्रेता तथा विक्रेता बाज़ार के लेन-देन में संभावित भागीदार ही होता है। वास्तव में कौन कितनी मात्रा खरीदता या बेचता है यह सब तो उनकी बाज़ार कीमतों से अपेक्षाओं तथा वास्तविक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। इसीलिए माँग एवं पूर्ति की परिभाषाओं में 'संभावित' पर इतना बल दिया जाता है।

चित्र 2.4

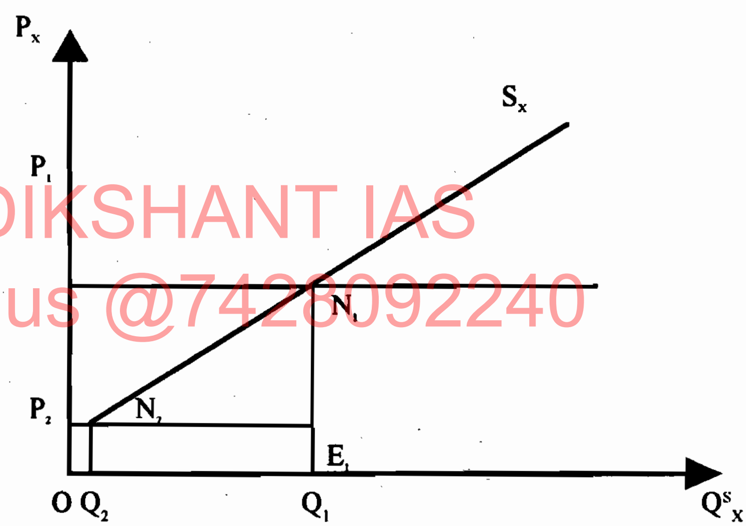

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 2.4 पर गौर कीजिए, यदि बाज़ार में OQ_1 मात्रा आनी ही चाहिए तो ऐसा OP_1 स्तर पर ही संभव होगा। यदि कीमत E_1Q_1 हो जाए तो OQ_1 उत्पादन करना तथा बाज़ार में भेजना सहज नहीं होगा। यदि उत्पादक इस कीमत पर भी OQ_1 का ही उत्पादन करेगा तो वह निश्चित रूप से घाटे में रहेगा।

माँग-वक्र की ही भाँति पूर्ति-वक्र भी विक्रेताओं (उत्पादक-विक्रेताओं) की कितनी मात्रा बेचने की तैयारी है, या योजना है, इसी बात को दर्शाता है। किसी कीमत स्तर पर उत्पादक ज्यादा से ज्यादा कितनी मात्रा बेचना चाहता है, इसी बात को हम पूर्ति-वक्र द्वारा दिखाते हैं। दूसरे शब्दों में, हम यह भी कह सकते हैं कि यदि हम यह सुनिश्चित करना चाहें कि किसी वस्तु की पूर्व निर्धारित मात्रा का उत्पादन अवश्य हो तो हमें उसकी न्यूनतम कितनी कीमत देने को तैयार रहना चाहिए। पूर्ति-वक्र यह बताता है कि वस्तु का उत्पादक अपनी लागतें पूरी करने एवं कुछ सामान्य लाभ अर्जित करने हेतु न्यूनतम कितनी कीमत प्राप्त करना आवश्यक समझता है।

1) एक आपूर्ति-वक्र इस प्रकार है : $Q = -4 + 4P$
यदि कीमत क्रमशः 1, 2, 3, 4, 5 तथा 6 रुपये प्रति इकाई हो तो मात्रा कितनी-कितनी रहेगी?

....

....

....

....

....

2) निम्नांकित दो फलनों पर ध्यान दें :

क) $Q = -2 + 4P$

ख) $P = 5 + 0.25Q$

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2.8 अर्थशास्त्र में कीमत का अर्थ

अर्थशास्त्री जब भी बात करते हैं, वे किसी न किसी तरह की कीमत तक ज़रूर पहुँच ही जाते हैं। उनकी बातचीत में गेहूँ या दूध की अथवा फिर कार या सब्जियाँ या फिर साधन सेवाओं की कीमतों जैसे मज़दूरी या ब्याज-भाड़ा सहज रूप से सम्मिलित रहते हैं। यदि बाज़ार में कोई वस्तु या सेवा है तो उसकी कीमत भी अवश्य ही होती है। कीमत दो प्रकार से व्यक्त की जा सकती है। प्रथमतः, हम कीमत को एक धारक वस्तु के रूप में व्यक्त कर सकते हैं। यदि सोना हमारा सामान्य मूल्यानधारक हो तो फिर हर वस्तु की सुनिश्चित मात्रा का मूल्य मान सोने की पूर्व निश्चित इकाइयों में व्यक्त होगा। जैसे एक ग्राम सोना, प्रति क्विंटल गेहूँ आदि। इस बात पर ध्यान अवश्य दीजिए कि ऐसी व्यवस्था में मूल्यानधारक की अपनी कीमत सदा एक इकाई ही रहती है। सैद्धांतिक दृष्टि से किसी भी वस्तु को मूल्यानधारक के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। पर व्यावहारिक दृष्टि से कुछ निश्चित गुणधर्मों वाली वस्तु ही इस कार्य को सहज भाव से पूरा कर सकती है। ये गुण हैं : इस वस्तु की बहुत छोटी-छोटी इकाइयाँ करना संभव हो, यह बहुत फैलावपूर्ण न हो, इसमें भौतिक क्षय नहीं होता हो तथा इसे एक स्थान से दूसरे, स्थान तक सुगमतापूर्वक ले जाना संभव हो। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि हमारा वस्तु का सामान्य लेन-देन में इस्तेमाल आशय करना नहीं है।

इसे तो केवल लेख की ऐसी इकाई (unit of account) की तरह ही प्रयोग करना चाहते हैं जिसमें सभी अन्य वस्तुओं के मूल्य व्यक्त हो सकें। अतः मूल्यानधारक की इकाइयों में व्यक्त कीमतें विभिन्न वस्तुओं की विनिमय दरें ही बन जाती हैं। सभी कीमतें X_i/X_g तरह के अनुपात हैं जहाँ X वस्तु की '*i*' सहज प्राकृतिक इकाई है तथा X_g सोने की इकाई है।

कीमत को व्यक्त करने का दूसरा तरीका इसे लेखा के एक परम (absolute) इकाई में व्यक्त करना है। इसके साथ कोई भौतिक तत्त्व नहीं जुड़ा होता। यदि किसी वस्तु की एक इकाई बेची जाती है तो क्रेता के खाते में कुछ लेखा इकाइयाँ जुड़ जाती हैं। खरीदार के खाते से उतनी ही लेखा इकाई घटाना इसी लेन-देन का दूसरा पहलू होता है। इस तरह किसी वस्तु की कीमत खाते में जोड़ी गई (या घटाई गई) प्रति इकाई लेखा इकाइयों की संख्या बन जाती हैं। भारत में रुपया ऐसी ही लेखा इकाई है। अतः किसी भी वस्तु की कीमत उसकी एक इकाई के बदले लिए (या दिए) जाने वाले रुपयों की संख्या ही होगी। 'नोट और सिक्कों का अपना कोई निहित मूल्य नहीं होता। ये तो केवल सभी खातों में जमा में दिखाई जाने वाली लेखा इकाइयों का चिह्न मात्र है। उपरोक्त दोनों विचारों की तुलना से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि दूसरी अभिव्यक्ति ही वास्तव में कीमतों का सही व्यावहारिक स्वरूप है।' (Gravelle and Rees)।

बोध प्रश्न 5

1) यदि चार किलोग्राम गेहूँ के बदले एक किलोग्राम चावल का विनिमय हो तो यहाँ कीमत की कौन-सी अवधारणा का प्रयोग होगा?

....

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) एक साइकिल की कीमत एक हजार रुपये है। यह कीमत का कौन-सी अवधारणा का संकेत देता है।

....

....

....

....

....

....

....

2.9 संतुलन तथा असंतुलन का अर्थ

अन्य कई अवधारणाओं की तरह अर्थशास्त्र में संतुलन की अवधारणा भी भौतिकी, विशेष रूप से यांत्रिकी भौतिकी, से ली गई है। यांत्रिकी में संतुलन वह अवस्था है जब विभिन्न परस्पर विरोधी शक्तियों के प्रभाव के अधीन कोई पिण्ड (body) अपनी यथास्थिति में ही बना रहता है। दूसरे शब्दों में विभिन्न शक्तियों के प्रभाव एक-दूसरे को इस प्रकार काट देते हैं कि पिण्ड की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आता। दोनों ओर की शक्तियों में संतुलन हो जाता है। इसी तरह अर्थशास्त्र में भी

बाज़ार में तभी संतुलन होता है जबकि संभावित क्रय और विक्रय शक्तियाँ संतुलन में आती हैं। दूसरे शब्दों में, जब संभावित विक्रेता उतनी ही मात्रा बेचना चाहते हों जितनी कि संभावित क्रेता खरीदने के लिए तत्पर हैं तो बाज़ार में संतुलन आ जाएगा। जिस कीमत पर यह क्रय-विक्रय तय होता है। वहीं संतुलन कीमत होगी तथा जितनी मात्रा का इस कीमत पर विनिमय होता है उसी को संतुलन मात्रा कहा जाता है। संतुलन की यह अवधारणा स्थैतिक (static) है– यह बाज़ार में आराम की स्थिति की सूचक है। जब तक माँग एवं पूर्ति की शक्तियों में कोई बदलाव नहीं आता, बाज़ार में प्रत्येक विनिमय काल में उसी कीमत पर उतना ही लेन-देन होता रहता है। बाज़ार के 'आराम' के रूप में यहाँ संतुलन की परिभाषा की गई है।

संस्थापक (neo-classical) अर्थशास्त्र में संतुलन के विचार को कुछ अलग प्रकार से बताया गया है। यहाँ संतुलन की परिभाषा व्यक्तियों (यानि बाज़ार के भागीदारों) द्वारा चुनी हुई स्थिति के रूप में की जाती है। ग्रेवल एवं रीस (Gravelle and Rees) के अनुसार संतुलन वहीं होता है जहाँ आर्थिक एजेंट अपने आपको उसी स्थिति में पाते हैं, जिसमें वे अपने आपको पाना चाहते हैं। दूसरे शब्दों में, यदि किसी कीमत पर जितना माल सभी उत्पादक बेचना चाहते हों बिक सके तथा जितना क्रेता लोग खरीदना चाहते हों खरीद सकें एवं यह खरीदी-बेची गई मात्रा भी एक समान ही हो तो बाज़ार में संतुलन होगा। इस बात की संभावना रहती है कि संतुलन की दोनों अवधारणाएँ हर परिस्थिति में समान रूप से लागू नहीं। लेकिन पूर्ण प्रतियोगिता की कीमत निर्धारण मॉडल में जहाँ माँग एवं पूर्ति-वक्र एक-दूसरे को काटते हैं, उसी बिंदु पर संतुलन संबंधी दोनों अवधारणाएँ एक समान ठीक बैठती हैं। स्थैतिक व्यष्टि अर्थशास्त्र (static micro theory) में हमारा संबंध बाज़ार की संतुलन स्थिति से ही है।

जब बाज़ार में माँग और पूर्ति की शक्तियों के बीच संतुलन नहीं रहता तो इसे ही असंतुलन का नाम दिया जाता है। जितनी मात्रा उपभोक्ता खरीदना चाहते हैं उस कीमत पर उत्पादक उतनी मात्रा बेचने को तत्पर नहीं होते। ऐसी स्थिति में बाज़ार में या तो माल जमा होने लगता है या फिर वस्तु की कमी हो जाती है। ऐसी स्थिति में कई बार सरकार बाज़ार को संतुलन में लाने के लिए अपने पास सुरक्षित भण्डारों के माध्यम से बाज़ार में सक्रिय हो सकती है। बाज़ार के असंतुलन को सुधारना अनिवार्य हो जाता है। ऐसा आर्थिक विश्लेषण गत्यात्मक (dynamic) कहलाता है। इसमें विभिन्न समय बिंदुओं पर बाज़ार का व्यवहार निहित रहता है। बाज़ार के असंतुलन की स्थिति में आर्थिक निर्णय करने वाले अधिकारियों की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाती है। वास्तव में तो संतुलन की स्थिति कभी भी प्राप्त नहीं हो पाती। अर्थव्यवस्था संतुलन की ओर जैसे ही बढ़ने लगती है, कोई न कोई गत्यात्मक शक्ति संतुलन प्राप्त करने में रुकावट डाले देती है। अतः यह कहा जा सकता है कि गत्यात्मक शक्ति संतुलन प्राप्त करने में रुकावट डाल देती है। अतः यह कहा जा सकता है कि असंतुलन का अध्ययन ही अधिक प्रासंगिक है। लेकिन इसकी अपेक्षा संतुलन का विश्लेषण सरल है और उसे करना आसान भी है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 6

1) तालिका में दी गई माँग एवं पूर्ति जानकारी को ध्यान से देखें और बताइए कि संतुलन स्तर पर कीमत तथा मात्रा क्या होगी?

कीमत	0	10	20	30	40	50	60
माँग	100	90	75	65	40	30	15
पूर्ति	0	0	40	65	80	90	100

2.10 सारांश

हमने इस इकाई का आरंभ समष्टि एवं व्यष्टि अर्थशास्त्र के बीच भेद से किया था। ये दोनों ही स्वरूप एक बाज़ार आश्रित अर्थव्यवस्था की कार्य-प्रणाली का अलग-अलग ढंग से ज्ञान कराते हैं। इनमें केवल समूहन तथा विसमूहन के स्तर का ही अंतर है। व्यष्टि अर्थशास्त्र में हम वि-समूहन **(disaggregation)** को इस स्तर तक ले जाते हैं कि केवल एक ही उपभोक्ता या एक ही उत्पादक-विक्रेता के व्यवहार पर चर्चा केंद्रित हो जाती है। समष्टि अर्थशास्त्र में आर्थिक इकाइयों तथा बाज़ारों को इस प्रकार समूहन **(aggregation)** करते हैं कि हमें उपभोग, निवेश रोज़गार या फिर वस्तु बाज़ार, मुद्रा बाज़ार या साधन बाज़ार जैसी बड़ी-बड़ी श्रेणियों के ही व्यवहार पर चर्चा करते हैं। व्यष्टि अर्थशास्त्र आंशिक संतुलन **(partial equilibium)** विश्लेषण पर आधारित है। इसमें प्रत्येक बाज़ार का अध्ययन शेष अर्थव्यवस्था को अलग रखते हुए किया जाता है। पर समष्टि अर्थशास्त्र व्यापक संतुलन **(general equilibium)** पर आधारित है जिसमें सभी बाज़ार एक दूसरे से संबंधित होते हैं। अर्थशास्त्र, समष्टि हो या व्यष्टि, बाज़ार से जुड़ा हुआ है। इसीलिए हमने बाज़ार की अवधारणा अर्थशास्त्री के दृष्टिकोण से। एक आम आदमी भले ही बाज़ार को ऐसा स्थान मानता हो जहाँ क्रेता-विक्रेता अपने-अपने लाभ की दृष्टि से सौदेबाज़ी करते हों, पर अर्थशास्त्र की दृष्टि से जब भी कोई दो व्यक्ति, स्थान या संदर्भ कुछ भी हो लेन-देन करना चाहते हों, बाज़ार बन जाता है। इस प्रकार किसी तरह की भौतिक सीमाओं का मोहताज़ नहीं रहता। ऐसा परिवहन एवं संचार की आधुनिक तकनीक के विकास के कारण संभव हुआ है।

बाज़ारों में संभावित उपभोक्ता क्रेता तथा उत्पादक विक्रेता लेन-देन करते हैं। अतः क्रेताओं के माँग-फलन एवं विक्रेताओं का पूर्ति फलन ही वे दो शक्तियाँ हैं जो बाज़ार में संतुलन (कीमत) एवं उस कीमत पर खरीदी-बेची गई मात्रा का निर्धारण करती हैं। हमने कीमत को एक लेखा-इकाई के रूप में परिभाषित किया है। यह इकाई अमूर्त **(abstract)** भी हो सकती है तथा वास्तविक भी। भारत में वस्तुओं की कीमतें हम रुपयों में व्यक्त करते हैं। किसी वस्तु की एक इकाई के लिए दिए गए रुपये ही उस वस्तु की कीमत कहे जाते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अर्थशास्त्र में संतुलन कीमत वह कीमत है जिस पर माँगी गई मात्रा पूर्ति के समान होती है। इस कीमत पर बाज़ार में खरीदार उतनी मात्रा लेना चाहते हैं जितनी की विक्रेता बेचने को उत्सुक हैं। अतः विक्रय के लिए आया सारा माल बिक जाता है। माँग-वक्र दाहिनी ओर ढलवाँ होता है तथा पूर्ति-वक्र दाहिनी ओर उठता हुआ होता है। अतः संतुलन कीमत के अतिरिक्त किसी भी अन्य कीमत पर बाज़ार में असंतुलन होगा, अर्थात् या तो माँग पूर्ति से अधिक होगी या कम रह जाएगी। माँग एवं पूर्ति के एक समान न होने का ही दूसरा नाम बाज़ार का असंतुलन है। यह असमानता ऐसी प्रक्रिया को जन्म देती है कि माँग अथवा पूर्ति (अथवा दोनों ही) में इस तरह के उतार-चढ़ाव आते हैं कि बाज़ार पुनः संतुलन की ओर अग्रसर होता है। संतुलन की ओर बाज़ार की यात्रा तभी सफल हो पाती है जबकि माँग एवं पूर्ति-वक्र सामान्य आकार-प्रकार के हों। अन्यथा, यदि संतुलन हो भी तो वह स्थायी नहीं रहता।

2.11 शब्दावली

असंतुलन : विरोधी शक्तियों के बीच संतुलन का अभाव। जब माँग एवं पूर्ति की शक्तियों का सामंजस्य नहीं रहता तो असंतुलन हो जाता है।

माँग चक्र	:	'अन्य बातें पूर्ववत् रहने पर' विभिन्न कीमतों पर उपभोक्ता कितनी मात्रा में वस्तु को खरीदना चाहता है– इसी संबंध को दर्शाने वाला रेखाचित्र।
पूर्ति एवं पूर्ति फलन	:	पूर्वनिर्धारित संसाधन, कीमतों तथा तकनीकी ज्ञान स्तर पर विभिन्न कीमतों पर वस्तु की उत्पादन मात्रा उसकी पूर्ति है। इस कीमत एवं पूर्ति के बीच के संबंध को ही पूर्ति फलन का नाम दिया जाता है।
कीमत	:	किसी वस्तु की इकाई के लिए प्राप्य मूल्यानधारक (व्यवहार में मुद्रा) की इकाइयों की संख्या।
बाज़ार	:	जब भी दो (या अधिक) व्यक्ति कुछ क्रय-विक्रय करने के लिए तैयार हों, बाज़ार का सृजन हो जाता है। यह बाज़ार समय, काल या स्थान की सीमाओं से बँधा हुआ नहीं रहता। आधुनिक संचार व्यवस्था के विकास ने बाज़ार को भौगोलिक सीमाओं से मुक्त कर दिया है।
माँग	:	वे मानवीय इच्छाएँ जिन्हें पूरी करने के लिए कीमत भुगतान करने की इच्छा तथा योग्यता हो। यह प्रभावी माँग है– केवल आकांक्षा मात्र नहीं।
माँग-फलन	:	'अन्य बातें पूर्ववत् रहने पर' वस्तु की अपनी कीमत एवं उसकी माँग की मात्रा के बीच का संबंध।
व्यष्टि	:	विश्लेषण की एक छोटी-सी इकाई।
संतुलन	:	परस्पर शक्तियों के समान होने की स्थिति। बाज़ार में जब माँग तथा पूर्ति बराबर हो जाए तो माँग शक्तियों तथा पूर्ति शक्तियों के बीच सामंजस्य हो जाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Lipsey, Richard (1997), *Introduction to Positive Economics* (8th Edition), Oxford University Press (ELBS Edition), London.

Salvatore, D.(1996), *Micro Economic Theory* (Schaum Series 3rd Edition), McGraw-Hill Book Co., New York.

Begg, D.R., Dornbusch, S.Fischer(1991), *Macroeconomics* (4th Edition), McGraw-Hill Book Co. New York

Salvatore D.(1995), *Micro Economics* (2nd Edition), Harper Collins Publishers, New York.

Nicholson, W.(1995), *Intermediate Micro Economics* (VIth Edition), Dryden Press, New York.

Trearthen Timothy (1996), *Micro Economics*, (1st Edition, 1996) Macmillan, New York.

2.13 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

बोध प्रश्न 1

1) क) व्यष्टि अर्थशास्त्र

   ख) व्यष्टि अर्थशास्त्र

   ग) व्यष्टि अर्थशास्त्र

   घ) समष्टि अर्थशास्त्र

बोध प्रश्न 2

2) तीन हजार रुपये की मासिक आमदनी वाला व्यक्ति टैक्सी से आने-जाने का खर्च नहीं उठा सकता। अतः आपकी टैक्सी की यात्रा की इच्छा केवल एक महत्त्वाकांक्षा रह जाती है प्रभावी माँग नहीं बन पाती।

3) चाय की माँग वक्र दाहिनी ओर खिसक है। अर्थात् पुरानी कीमतों पर आप अपेक्षाकृत अधिक चाय खरीदना चाहते हैं। इसी को माँग से वृद्धि का नाम भी दिया जाता है।

बोध प्रश्न 3

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1)

कीमत (रुपयों में)	माँग (मात्रा) : Q = 40-0.5P (भौतिक इकाइयों में)
5	37.5
4	38.0
3	38.5
2	39.0
1	39.5
0	40.0

2) क) किसी भी दी हुई कीमत पर यह समीकरण माँग की मात्रा दर्शाता है, अतः इसे माँग-फलन कहा जा सकता है।

   ख) यह किसी भी निश्चित मात्रा की यह अधिकतम कीमत दिखाता है जो उपभोक्ता चुकाने को तैयार है। अतः यह समीकरण विलोम माँग-वक्र (inverse demand curve) दिखाता है।

बोध प्रश्न 4

1)

कीमत (रुपयों में)	मॉँग (मात्रा) : $Q = 4 - + 4P$ (भौतिक इकाइयों में)
1	0
2	4
3	8
4	12
5	18
6	20

2) क) यह समीकरण दिखलाता है कि किसी भी दी गई कीमत पर उत्पादक कितनी मात्रा बेचने को तैयार होगा। अतः यह पूर्ति-वक्र है।

ख) यह विलोम पूर्तिवक्र है। यह उस न्यूनतम कीमत को दिखाता है जिसे एक उत्पादक पूर्व निश्चित मात्रा की आपूर्ति के बदले स्वीकार करने को तत्पर हो। इसमें उत्पादन लागत तो पूरी होनी ही चाहिए।

बोध प्रश्न 5

DIKSHANT IAS

1) कीमत एक विनिमय दर के रूप में। यह एक लेखा की इकाई द्वारा व्यक्त की गई है।

2) यह किसी वस्तु की मौद्रिक कीमत है। इसे रुपये नामक आमूर्त इकाई में व्यक्त किया गया है।

Call us @7428092240

बोध प्रश्न 6

1) संतुलन कीमत 30 रुपये तथा संतुलन मात्रा 65 किलोग्राम।

इकाई 3 आर्थिक विश्लेषण की विधियाँ

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 विषय प्रवेश
3.2 आंशिक एवं व्यापक संतुलन में भेद
3.3 स्थैतिक एवं गत्यात्मक विश्लेषण
3.4 आर्थिक सिद्धांतों की रचना एवं सत्यता की जाँच
3.5 आर्थिक सिद्धांत एवं नियम
3.6 स्टाक चर तथा प्रवाह चर
3.7 सारांश
3.8 शब्दावली
3.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें
3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

3.0 उद्देश्य

इस इकाई में आपको निम्न बातों से परिचित कराया जा रहा है:

DIKSHANT IAS

- विश्लेषण की आंशिक एवं व्यापक संतुलन विधियों में भेद;
- आर्थिक सिद्धांतों तथा आर्थिक नियमों में भेद (यदि हो तो);

Call us @7428092240

- स्टाक चर तथा प्रवाह चर में भेद; और
- जाँच की वैज्ञानिक पद्धति द्वारा आर्थिक सिद्धांतों की रचना करना।

3.1 विषय प्रवेश

इस इकाई में हम आर्थिक विश्लेषण की विधियों की चर्चा को और आगे बढ़ा रहे हैं। हम पहले तो आंशिक और व्यापक संतुलन के बारे में बातचीत करेंगे। आंशिक संतुलन विधि में केवल एक बाज़ार के अपने संतुलन पर ही सारा ध्यान केंद्रित रहता है मानो बाकी अर्थव्यवस्था का अस्तित्व ही न हो। दूसरी ओर, व्यापक संतुलन अर्थव्यवस्था के सभी बाज़ारों में एक साथ समन्वित रूप से संतुलन की प्राप्ति की ओर हमारा ध्यान केंद्रित कराता है। अर्थशास्त्रियों को आवश्यकतानुसार दोनों ही विधियों का प्रयोग करना पड़ता है। किसी समस्या को ठीक से समझने के लिए व्यापक संतुलन विधि से विश्लेषण आवश्यक होता है तो किसी प्रश्न पर आंशिक विश्लेषण विधि से आवश्यक प्रकाश डाला जा सकता है। इस बारे में और विस्तार से हम भाग 3.2 में चर्चा करेंगे।

हम विश्लेषण की विधियों के स्वरूप में एक अन्य दृष्टि से भी भेद करते हैं। कुछ विधियाँ एक स्थिति विशेष की जानकारी देती हैं। इन्हें स्थैतिक विधियाँ कहा जाता है। कुछ अन्य विधियाँ स्थितियों में परिवर्तन के अध्ययन में उपयोगी रहती हैं। उन्हें हम गत्यात्मक विश्लेषण विधियों का नाम देते हैं। आंशिक विश्लेषण की भाँति ही स्थैतिक विश्लेषण अपेक्षाकृत आसान रहता है जबकि व्यापक संतुलन तथा गत्यात्मक विश्लेषण में काफी जटिलताओं का सामना करना पड़ता है।

हम विश्लेषण विधियों की चर्चा का समापन आर्थिक सिद्धांतों के निर्माण और उनकी सत्यता की जाँच से करेंगे। आपको याद होगा कि हमने इकाई 1 में अर्थशास्त्र की परिभाषा विज्ञान के रूप में की थी। यहाँ हम आर्थिक सिद्धांतों की रचना तथा उनकी सत्यता की जाँच में जाँच की वैज्ञानिक विधि का प्रयोग करेंगे। साथ ही साथ हम एक सिद्धांत तथा नियम का भेद भी समझाएँगे।

यहाँ पर एक प्रश्न उठता है : क्या अर्थशास्त्र के सिद्धांत में कभी कोई परिवर्तन नहीं आता? यहाँ इस बात पर ध्यान दिलाना आवश्यक हो जाता है कि किसी सिद्धांत की रचना के पीछे दो उद्देश्य होते हैं : वर्तमान घटनाक्रम की व्याख्या करना तथा भविष्य के घटनाक्रम का पूर्वानुमान लगाना।

इस इकाई के अंत में हम स्टाक चर तथा प्रवाह चर के बीच अंतर समझाएँगे। समष्टि एवं व्यष्टि अर्थशास्त्र में हमारा संबंध सामान्यतः प्रवाह चरों से ही पड़ता है। लेकिन बाज़ार दोनों प्रकार के चरों के ही होते हैं।

3.2 आंशिक एवं व्यापक संतुलन विश्लेषण (Partial Vs. General Equilibrium Analysis)

आंशिक संतुलन के विश्लेषण में हम शेष सारी अर्थव्यवस्था को अपरिवर्तनशील मानकर केवल एक बाज़ार पर अपना ध्यान केंद्रित करते हैं। यदि हम गेहूँ के बाज़ार को भली प्रकार से समझना चाहते हैं तो अर्थव्यवस्था के अन्य बाज़ारों के विषय में सोचते तक नहीं। ऐसा विश्लेषण 'अन्य बातें स्थिर रहें की पूर्व धारणा' पर आधारित होता है। दूसरे शब्दों में, हम सारी अर्थव्यवस्था के अन्य सभी भागों का व्यवहार पूर्ववत् मानते हुए केवल गेहूँ के बाज़ार का अध्ययन करते हैं। इसी तरह से यदि वस्त्र बाज़ार का विश्लेषण करेंगे तो स्थिर रहने वाली अन्य सभी चीज़ों में गेहूँ का बाज़ार भी सम्मिलित हो जाएगा। इस प्रकार के अध्ययन में विभिन्न बाज़ारों के बीच अंतर्संबंधों की अनदेखा कर दिया जाता है। दूसरी ओर व्यापक संतुलन विश्लेषण में हम अर्थव्यवस्था के सभी बाज़ारों का एक साथ विश्लेषण करते हैं। यहाँ आधारभूत मान्यता यह है कि प्रत्येक बात हर दूसरी बात पर आधारित है। अर्थव्यवस्था के सभी बाज़ार इस प्रकार से एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं कि एक बाज़ार के उतार-चढ़ाव का प्रभाव सारी अर्थव्यवस्था पर पड़ता है। ऐसी स्थिति में अर्थव्यवस्था की कार्यप्रणाली का अध्ययन व्यापक संतुलन विधि से ही भली प्रकार संभव हो पाएगा। वास्तव में आंशिक और व्यापक विश्लेषण विधियाँ अर्थव्यवस्था की ओर देखने के दो दृष्टिकोण हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जब हमारा उद्देश्य किसी विशेष बाज़ार या क्षेत्र के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त करना हो तो आंशिक विश्लेषण विधि का प्रयोग उचित रहता है। आंशिक संतुलन का प्रयोग उस समय करते हैं जब हम यह मानकर चलें कि बाज़ार अपने आप में सम्पूर्ण है, या इसका अन्य बाज़ारों से कोई संबंध नहीं है, अथवा शेष अर्थव्यवस्था की तुलना में यह बहुत ही छोटा-सा बाज़ार है, या फिर इस बाज़ार का बाकी अर्थव्यवस्था पर प्रभाव न के बराबर होता है। आंशिक विश्लेषण में किसी भी समस्या को समझना बहुत सहज हो जाता है। व्यापक संतुलन विश्लेषण जटिल होता है क्योंकि वास्तविकता जटिल होती है। इसे समझने के लिए कुछ न कुछ सरलीकरण अनिवार्य हो जाते हैं। आंशिक अध्ययन विधि एक ऐसा ही सरलीकरण है जिसमें प्रत्येक बाज़ार को अपने आप में अलग माना जाता है। आंशिक संतुलन विश्लेषण का विचार अल्फ्रेड मार्शल (1890) ने सुझाया था और उन्हीं ने "अन्य बातें पूर्ववत् रहने" की मान्यता पर बल दिया था। इस पूर्वधारणा के कारण बाज़ार और शेष अर्थव्यवस्था के बीच के सभी संबंधों को नज़रअंदाज कर देते हैं। हम प्रत्येक बाज़ार को अन्य बाज़ारों से अलग मानकर यह दिखाते है कि माँग पूर्ति की शक्तियाँ किस प्रकार संतुलन

कीमत और मात्रा निर्धारित करती है। हालाँकि, एक बाज़ार का अन्य बाज़ारों पर प्रभाव अवश्य पड़ता है। जब अन्य बाज़ारों पर पड़ रहे ये प्रभाव महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं, तो आंशिक संतुलन विश्लेषण उपयुक्त नहीं बैठता। अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले अन्य प्रभावों को न लेकर, आंशिक संतुलन विश्लेषण एक बाज़ार में परिवर्तन से होने वाले प्रभावों का सही चित्र प्रस्तुत नहीं कर पाता। बाज़ार प्रणाली के कार्य समझने के लिए आंशिक संतुलन विधि उसी दशा में उपयुक्त रहती है जबकि एक बाज़ार के प्रभाव या तो बहुत मामूली हो या फिर शेष अर्थव्यवस्था से इसका कोई विशेष संबंध न हो। अन्यथा व्यापक संतुलन विधि ही उपयुक्त रहती है।

आंशिक संतुलन विश्लेषण उसी दशा में ठीक रहता है जबकि बाज़ारों की परस्पर निर्भरता या संबंधों की अनदेखी करें या फिर ये हों ही नहीं। लेकिन यदि ये संबंध और निर्भरताएँ विद्यमान हैं और महत्त्वपूर्ण हैं, तो इनकी अनदेखी करना गंभीर होगा क्योंकि इससे भविष्य में होने वाली आर्थिक घटनाओं का अंदाजा ठीक-ठीक नहीं लग पाएगा। ऐसी स्थिति में व्यापक संतुलन विश्लेषण ही ठीक रहता है। जहाँ किसी घटना के व्यापक प्रभावों की पहले से ही आशा हो तो वहाँ निश्चित रूप से व्यापक संतुलन विधि का प्रयोग अनिवार्य हो जाता है।

बोध प्रश्न 1

1) यदि किसी नगर में दूध बाज़ार **की** कार्यप्रणाली का विस्तृत अध्ययन करना हो तो आप किस विश्लेषण विधि का प्रयोग करेंगे?

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) वाहनों के लिए माँग बढ़ने पर इस्पात की माँग बढ़ जाती है जिसके फलस्वरूप अल्यूमीनियम और रबड़ आदि की माँग बढ़ती है। यह आंशिक संतुलन विधि का उदाहरण है या व्यापक संतुलन विधि का?

....

....

3.3 स्थैतिक और गत्यात्मक विश्लेषण (Static and Dynamic Methods of Analysis)

स्थैतिक और गत्यात्मक विधियाँ आर्थिक विश्लेषण की दो विधियाँ हैं। इनके बीच कई प्रकार से भेद किया जा सकता है। एक मत के अनुसार स्थैतिक विधि से संबंधित चर (कारण-प्रभाव) समय से जुड़े नहीं होते। जैसे बाज़ार का माँग-पूर्ति प्रतिमान (model) एक स्थैतिक प्रतिमान है। इस प्रतिमान में तीन संबंध हैं : माँग वस्तु की अपनी कीमत पर निर्भर करती है; पूर्ति वस्तु की अपनी कीमत पर निर्भर करती है; संतुलन पर माँग तथा पूर्ति एक समान होते हैं। इन तीनों में समय का कोई स्थान नहीं है। इसी मत के अनुसार एक गत्यात्मक विश्लेषण वह होता है जिसमें माँग और पूर्ति के संबंध समय पर भी आश्रित हों। यदि हम माँग पूर्ति प्रतिमान को निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत करें तो यह गत्यात्मक विश्लेषण का रूप ले लेता है।

$$D_t = f(P_t)$$
$$S_t = g(P_t)$$
$$D_t = S_t$$

यहाँ 't' समय की इकाई है।

कुछ अन्य अर्थशास्त्रियों का मत है कि केवल समय पर आश्रित होने से ही विश्लेषण गत्यात्मक नहीं हो जाता। समय पर आश्रित होने के साथ-साथ इसमें समय पश्चता **(time lag)** का होना भी आवश्यक है। अतः इस विचार के अनुसार एक गत्यात्मक प्रतिमान का स्वरूप कुछ इस प्रकार होगाः

$$D_t = f(P_t)$$

$$S_t = g(P_{t-1})$$

$$D_t = S_t$$

माँग संबंध में किसी प्रकार की समय पश्चता नहीं है। **'t'** समय की माँग तात्कालिक **'t'** समय की कीमत पर निर्भर करती है किन्तु पूर्ति संबंध में समय पश्चता है। इससे यह प्रतिमान गत्यात्मक बन जाता है। **'t'** अवधि की पूर्ति पिछली अवधि **'t-1'** की कीमत पर निर्भर है। **'t-1'** अवधि में प्रचलित कीमत ने उत्पादकों को पूर्ति बढ़ाने या घटाने के जो संकेत दिए थे, उनका पूरा प्रभाव वर्तमान अवधि **'t'** में ही प्रकट होता है। **'t'** अवधि में बाज़ार के संतुलन के लिए यह आवश्यक है कि **'t'** अवधि की माँग **'t'** अवधि की पूर्ति के समान हो।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि यदि हम किसी एक वस्तु के बाज़ार के संतुलन को ही देखना चाहते हैं तो हमें स्थैतिक विधि का ही प्रयोग करना होगा। संतुलन एक स्थैतिक अवधारणा है। यह बाज़ार की ऐसी स्थिति को दर्शाता है जिसमें कोई उतार-चढ़ाव नहीं होता। इसके विपरीत असंतुलन का विश्लेषण निश्चित रूप से गत्यात्मक विश्लेषण है। यह बाज़ार की उस स्थिति को दिखाता है जिसमें बाज़ार विभिन्न प्रक्रियाओं के द्वारा संतुलन की ओर पुनःस्थापित होता है। इसमें हम इस बात का विश्लेषण करते हैं कि समय के साथ-साथ बाज़ार में समंजन किस प्रकार हो रहा है। एक स्थैतिक स्थिति में हम यह मानकर चलते है कि बाज़ार में समंजन तुरंत हो जाता है और संतुलन या असंतुलन की स्थिति बिना कोई समय खोये प्राप्त हो जाती है। स्थैतिक विश्लेषण में इस बात से कोई मतलब नहीं होता कि असंतुलन की स्थिति में आर्थिक एजेंट किस प्रकार व्यवहार करते हैं। यहीं से गत्यात्मक विश्लेषण की भूमिका शुरू होती हैं। कई बार हम बहिर्जात शक्तियों में परिवर्तन से पहले और बाद के संतुलनों की तुलना करते हैं। इस विधि को तुलनात्मक स्थैतिक **(comparative statics)** विधि कहते हैं। उदाहरण के लिए यदि माँग में वृद्धि का कारों की कीमतों पर प्रभाव जानना हो तो हम दो संतुलन अवस्थाओं– माँग में वृद्धि से पूर्व और इसके पश्चात की तुलना कर सकते हैं। इन दोनों संतुलन व्यवस्थाओं के बीच में क्या कुछ घटित हुआ, इस विषय में स्थैतिक विश्लेषण हमें कोई जानकारी नहीं देता। किंतु गत्यात्मक विश्लेषण की विधि हमें एक संतुलन अवस्था से दूसरी संतुलन अवस्था तक बाज़ार की स्थिति का पूरा ज्ञान कराती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 3

3) यदि

i) $Q^D_x = a-b$;

ii) $P_x Q^S_t = f(P_t)$;

iii) $Q^s_t = f(Pt-1)$

क्या ये प्रतिमान स्थैतिक हैं अथवा गत्यात्मक?

....

....

3.4 आर्थिक सिद्धांत की रचना एवं सत्यता की जाँच

एक आर्थिक सिद्धांत की रचना में निम्नलिखित चरण लिए जाते है :

1) जिस आर्थिक व्यवहार की जाँच हम करना चाहते है, उसके बारे में हम पहले एक परिकल्पना **(hypothesis)** करते हैं। यह परिकल्पना, जो कुछ हम अपने आसपास देखते हैं, उस पर आधारित होती है। उदाहरण के लिए यदि हम चाय की बाज़ार कीमत और उसकी माँग के संबंध की जाँच करना चाहते हैं, तो यह परिकल्पना कर सकते हैं कि कीमत और माँग में विपरीत संबंध होता है।

2) परिकल्पना में निहित संबंधों के बारे में एक आर्थिक मॉडल (यानि सिद्धांत) प्रतिपादित करते है। इसमें कारण-प्रभाव संबंध विकसित करने के लिए निगमन तर्क **(deductive reasoning)** का सहारा लेते हैं। इसमें 'यदि ऐसा हुआ तो ऐसा होगा' में निहित संबंधों की व्याख्या की जाती है। ऐसे सिद्धांत को विकसित करने में हमें कल्पना का सहारा लेना पड़ता है। क्योंकि वास्तविकता तो बहुत ही जटिल होती है। वास्तविक व्यवहार को समझाने के लिए सरलीकरण करना पड़ता है। अनावश्यक बातों को छोड़कर केवल आवश्यक बातों को ही शामिल किया जाता है। ऐसा मॉडल को सीमा में रखने के लिए भी करना पड़ता है। ऐसा एक मॉडल यानि प्रतिमान माँग का गणन-उपयोगिता **(cardinal utility)** सिद्धांत है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3) अगले चरण में प्रतिमान को परिकल्पना पर लागू कर विचाराधीन अध्ययन के विषय में कुछ निष्कर्ष निकालते हैं। उदाहरण के तौर पर गणन में हमें यह पता चलता है कि अगर उपभोक्ता ज्यादा मात्रा में उपभोग करता है तो सीमांत उपयोगिता कम होने लगती है। अतः यदि कीमत कम नहीं की जाएगी तो उपभोक्ता अधिक मात्रा की माँग करेगा ही नहीं। (क्योंकि सिद्धांत में यह निहित है कि कीमत सीमांत उपयोगिता को दिखाती है)। अतः, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कीमत कम होने पर उपभोक्ता वस्तु की ज्यादा मात्रा की माँग करता है। पहले चरण में यही तो हमारी परिकल्पना थी।

4) अंतिम चरण में प्रतिमान से निकाले गए निष्कर्षों को आँकड़ों की कसौटी पर परखा जाता है। दूसरे शब्दों में, इन निष्कर्षों का वास्तविकता से मिलान किया जाता है। आँकड़ों के आधार पर किसी सिद्धांत की परख के लिए हमें सांख्यिकीय अथवा अर्थमिति **(econometric)** की विधियों का प्रयोग कर यह देखना पड़ता है कि क्या आँकड़े हमारे सिद्धांत द्वारा दर्शाए गए संबंधों की पुष्टि करते है। यदि ये आँकड़े पुष्टि करते है तो हम सिद्धांत स्वीकार कर लेते हैं। यदि हमारे निष्कर्ष आँकड़ों की कसौटी पर खरे नहीं उतरते तो हम या तो उस सिद्धांत को पूरी तरह रद्द कर देते हैं या उसमें कुछ परिवर्तन कर दुबारा उसकी सत्यता की जाँच की प्रक्रिया प्रारंभ करते हैं। यह प्रक्रिया तब तक दोहरानी पड़ती है जब तक कि हम किसी ऐसे सिद्धांत पर न पहुँच जाएँ जिसके निष्कर्ष वास्तविक आँकड़ों से मेल खाते हों।

3.5 आर्थिक सिद्धांत और आर्थिक नियम

एक प्रतिमान में विभिन्न आर्थिक चरों के बीच संबंधों का वर्णन किया जाता है। जब एक परिकल्पना की सफलतापूर्वक जाँच हो जाती है तो यह सिद्धांत का रूप ले लेती है। किसी भी सिद्धांत के दो उद्देश्य होते है : व्याख्या करना और पूर्वानुमान लगाने में सहायक होना।

एक ऐसा आर्थिक सिद्धांत जो समान परिस्थितियों में खरा उतरे एक आर्थिक नियम कहलाता है। माँग का नियम ऐसा ही एक उदाहरण है।

बोध प्रश्न 3

1) निम्न वाक्यांशों पर ध्यान दें और बताएँ कि इनमें से कौन-सा वाक्यांश एक सिद्धांत या नियम है?

   i) उपभोग आय पर निर्भर करता है।

   ....

   ....

   ii) जब प्रति व्यक्ति आय बढ़ती है तो जनसंख्यां बढ़ जाती है।

   ....

   ....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3.6 स्टाक चर तथा प्रवाह चर (Stock Variable and Flow Variable)

अर्थशास्त्र में हम दो प्रकार के चरों का प्रयोग करते है : स्टाक चर तथा प्रवाह चर। जिसमें भी परिवर्तन होता है वह एक चर कहलाता है। उदाहरण के रूप में हम कीमत, माँग, पूर्ति, आय, निवेश, निर्यात, आयात, रोज़गार, उत्पादन-लागत, लाभ आदि सभी चर हैं। पर इन चरों में उतार-चढ़ाव का पता तो तभी चलेगा जब इनका संबंध अवधि से जोड़ा जाए। यह अवधि एक दिन, सप्ताह, महीना या वर्ष आदि कुछ भी हो सकती है। स्टाक चर तथा प्रवाह चर दोनों एक निश्चित समय से बंधें है। अंतर केवल इतना है कि प्रवाह चर में समय अवधि तथा समय बिंदु दोनों होते हैं जबकि स्टाक चर का संबंध समय के एक निश्चित बिंदु से होता है।

उदाहरण के लिए पूँजी एक स्टाक चर है क्योंकि इसकी कोई समय अवधि नहीं है बल्कि केवल एक समय बिंदु है जैसे कि एक जनवरी 1996 को पूँजी का स्टाक। दूसरी ओर निवेश एक प्रवाह है क्योंकि इसको समय की एक इकाई में व्यक्त किया जाता है जैसे 10 प्रतिशत प्रति वर्ष। स्टाक और प्रवाहों के बीच गहरा संबंध है। उदाहरण के लिए दो समय बिंदुओं 1.1.96 और 31.12.96 के बीच का अंतर 1.1.96 से लेकर 31.12.96 तक की अवधि का प्रवाह कहलाता है। ये प्रवाह ही स्टाक में वृद्धि लाते हैं या फिर इसे कम करते हैं। उदाहरणतः, 31.12.96 को पूँजी भण्डार 1.1.96 को पूँजी भंडार तथा 1.1.96 से लेकर 31.12.96 तक किए गए निवेश (मूल्यहास घटाकर) का योग होता है।

स्टाक तथा प्रवाह का महत्त्व इसमें भी है कि दोनों ही के लिए बाज़ार होते हैं। व्यष्टि अर्थशास्त्र में हमारा संबंध मुख्यतः प्रवाहों से ही रहता है।

बोध प्रश्न 4

1) इन दोनों वाक्यांशों पर गौर करें और बताए कि इनमें स्टाक चर और प्रवाह चर वाक्यांश कौन-कौन से है?

   i) स्फीति-दर, ब्याज दर, मुद्रा पूर्ति, जनसंख्या।

   ....

   ....

   ....

   ii) गेहूँ की माँग, गेहूँ की आपूर्ति।

   ....

   ....

   ....

3.7 सारांश

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस इकाई में भी हम अर्थशास्त्र की विश्लेषण पद्धति आदि से जुड़ी बातों पर ही चर्चा करते रहे हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि व्यष्टि अर्थशास्त्र में मूलतः आंशिक विश्लेषण विधि का प्रयोग होता है जबकि समष्टि अर्थशास्त्र में अधिकांशतः व्यापक विश्लेषण विधि। का इन दोनों में अंतर भी विस्तार से समझाया गया है। आंशिक विश्लेषण अन्य बाते स्थिर या पूर्ववत् रहने की मान्यता पर आधारित रहता है जबकि व्यापक संतुलन 'हर कुछ बाकी सब कुछ पर निर्भर है' पर आधारित है। स्थैतिक और गत्यात्मक विश्लेषणों में अंतर को भी स्पष्ट किया गया है। मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि स्थैतिक समयहीन स्थिति के बारे में है। संतुलन विश्लेषण स्थैतिक है तो असंतुलन विश्लेषण गत्यात्मक। संतुलन की व्याख्या स्थैतिक है।

इस इकाई में अंत में हमने एक आर्थिक सिद्धांत के रचने और उसकी सत्यता की जाँच पर बातचीत की है। लॉयनेल रॉबिनस की अर्थशास्त्र की परिभाषा पर चर्चा करते समय इकाई 1 में भी इस विषय का जिक्र किया था। आर्थिक सिद्धांतों की रचना में हम निगमन तर्क की सहायता लेते है। आर्थिक सिद्धांतों के निष्कर्षों की सत्यता की परख अर्थमिति की वैज्ञानिक विधि द्वारा करना आवश्यक है। यह आवश्यक नहीं कि इस परख में शत-प्रतिशत सफलता मिले ही।

3.8 शब्दावली

आंशिक संतुलन : अन्य सभी बातों को अनदेखा करते हुए किसी एक बाज़ार के संतुलन का विश्लेषण। इसमें अर्थव्यवस्था के विभिन्न बाज़ारों के बीच अंतर्संबंधों को ध्यान में नहीं रखा जाता।

आर्थिक नियम	:	ऐसे आर्थिक सिद्धांत जो समान परिस्थितियों में सदा सही सिद्ध हों आर्थिक नियम कहलाते हैं।
आर्थिक सिद्धांत	:	आर्थिक इकाइयों के बीच कारण प्रभाव संबंध को बताने वाला प्रतिमान। सत्यता की जाँच की कसौटी पर खरी उतरी परिकल्पना सिद्धांत का रूप धारण कर लेती है।
गत्यात्मक	:	जब चर समय से जुड़े होते हैं। समय के साथ-साथ इनमें परिवर्तन आता है।
प्रवाह	:	प्रति इकाई समय के अनुसार व्यक्त चर। इसमें समय अवधि और समय बिन्दु दोनों होते हैं।
व्यापक संतुलन	:	अर्थव्यवस्था के सभी बाज़ारों का समन्वित संतुलन विश्लेषण। विश्लेषण की इस जटिल पद्धति में सभी बाज़ारों को परस्पर निर्भर और संबंधित माना जाता है।
संचय-या स्टॉक	:	किसी विशेष समय बिंदु पर एक चर का मान। इसमें केवल समय बिंदु होता है।
स्थैतिक	:	एक समयहीन स्थिति का अध्ययन। यहाँ सभी चर समयहीन होते हैं।

3.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

रिचर्ड लिप्से : *इन्ट्रोडक्शन टु पॉजिटिव इक्नॉमिक्स* (नवीनतम संस्करण)

डोमिनिक साल्वाटोर : *माइक्रोइकनॉमिक थ्यौरी*, शॉम सिरीज़ (तृतीय संस्करण)

डी.बेग, आर.डॉर्नविश्, एस.फिशर : *इक्नॉमिक्स* (चतुर्थ संस्करण)

डी.साल्वाटोर : *माइक्रोइक्नॉमिक्स*, द्वितीय संस्करण, हार्पर कोलिन्स

डब्ल्यु. निकल्सन : *इन्टरमीडिएट माइक्रोइक्नॉमिक्स*, छठा संस्करण

टिमोथी ट्रीअर्थन : *माइक्रोइक्नॉमिक्स*, प्रथम संस्करण, 1996

3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

बोध प्रश्न 1

1) आंशिक संतुलन,

2) व्यापक संतुलन विश्लेषण

बोध प्रश्न 2

1) i) स्थैतिक

ii) स्थैतिक

iii) गत्यात्मक

बोध प्रश्न 3

1) i) एक सिद्धांत

ii) एक नियम के अधिक निकट है।

बोध प्रश्न 4

1) i) प्रवाह, प्रवाह, स्टाक, स्टाक

ii) प्रवाह एवं स्टाक दोनों ही।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 4 माँग-फलन एवं लोच

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 विषय प्रवेश
4.2 प्रभावी माँग
4.3 माँग-तालिका, माँग-फलन एवं माँग-वक्र
4.4 माँग की लोच
4.5 चाप लोच तथा बिंदु लोच में भेद
4.6 लोच की रेखाचित्र के माध्यम से अभिव्यक्ति
4.7 कीमत लोच तथा व्यय विधि
4.8 माँग की तिरछी लोच
4.9 माँग की आय लोच
4.9.1 आय की लोच के आधार पर वस्तुओं का वर्गीकरण
4.10 लोच किन कारकों पर निर्भर करती हैं ?
4.11 माँग की लोच की अवधारणा का महत्त्व
4.12 सारांश
4.13 शब्दावली
4.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें
4.15 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप समझ सकेंगे:

- किसी वस्तु की माँग के निर्धारक कारकों की व्याख्या करना;
- किसी वस्तु के लिए उपभोक्ता की माँग-फलन का निर्धारण;
- माँग-वक्र पर चलन (movement along a demand curve) (जो कीमत परिवर्तन के कारण होती है) और माँग-वक्र का खिसकना (shift of demand curve) (जो माँग को प्रभावित करने वाले अन्य कारकों के कारण होती है) में अंतर की व्याख्या करना;
- माँग की लोच की व्याख्या एवं इसकी रेखाचित्र, विचार रूप एवं गणितीय अभिव्यक्ति;
- लोच की माप की बिंदु एवं चाप विधियों में भेद;
- माँग की तिरछी लोच की अवधारणा;
- माँग की आय लोच का विचार;
- माँग की लोच के निर्धारक कारक; तथा
- एक व्यवसायिक फर्म अथवा नीति-निर्धारक के लिए माँग की लोच की अवधारणा का महत्त्व।

4.1 विषय प्रवेश

इस इकाई में हमारा ध्यान किसी वस्तु के लिए, उपभोक्ता की, माँग-फलन पर केंद्रित रहेगा। हमारा उद्देश्य यही है कि उपभोक्ता की माँग से प्रारंभ कर अन्ततः हम किसी वस्तु की बाज़ार-माँग का

निर्धारण कर सकें। हम माँग एवं पूर्ति के दायरे में रहकर ही किसी बाज़ार विशेष का अध्ययन करेंगे। हम माँग-फलन से अपना विश्लेषण आरंभ करेंगे। इसमें उपभोक्ता की माँग को प्रभावित करने वाले स्वयं वस्तु की कीमत के साथ-साथ अन्य कारक भी समाविष्ट रहते हैं। इनमें संबंधित वस्तुओं की कीमतें, उपभोक्ता की आय तथा कई अन्य महत्त्वपूर्ण कारकों को सम्मिलित किया जा सकता है। हम विशेष रूप से वस्तु की अपनी कीमत एवं उसकी माँगी गयी मात्रा का संबंध समझने का प्रयास करेंगे। इसी संबंध से हम, अन्य बाते पूर्ववत् रहने की मान्यता के आधार पर किसी वस्तु के लिए उपभोक्ता की माँग-फलन का निर्धारण करते हैं। उपभोक्ता की माँग के दाहिनी और ढलवाँ होने के कारणों की व्याख्या तो अगली इकाई–(इकाई 5) में की जाएगी, पर इस इकाई में इस माँग-फलन से जुड़े हुए अत्यंत महत्त्वपूर्ण विचार– माँग की लोच पर अवश्य ध्यान देंगे। हम लोच की विभिन्न अवधारणाओं से आपका परिचय कराएँगे। इनमें से प्रमुख हैं कीमत लोच तथा आय लोच। हम लोच की अवधारणाओं के अर्थ, मापन, उपयोग एवं महत्त्व आदि पर भी ध्यान देंगे। इसी प्रक्रिया में हम माँग की लोच को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों पर भी चर्चा करेंगे।

4.2 प्रभावी माँग

अर्थशास्त्र में माँग से हमारा अभिप्राय प्रभावी माँग से ही होता है, परम माँग (absolute demand) से नहीं। किसी उपभोक्ता (या परिवार) की किसी वस्तु की माँग से अभिप्राय उस वस्तु के लिए इच्छा और साथ-साथ उसे पाने के लिए भुगतान करने की क्षमता से है। किसी वस्तु की इच्छा के साथ-साथ उसे पाने के लिए क्रय शक्ति का होना भी आवश्यक है। किसी वस्तु को पाने की इच्छा तभी माँग बन पाती है जबकि वह व्यक्ति उस वस्तु की कीमत चुकाने को तैयार हो। यदि उस व्यक्ति के पास कीमत चुकाने की क्षमता हो तभी बाज़ार में प्रभावी हो पाएगी। व्यक्ति की कीमत चुकाने की क्षमता या क्रय शक्ति आय से मापी जाती है। (इस संदर्भ में विस्तृत विवरण के लिए इकाई 2 का भाग 2.4 एवं 2.5 देखिए।)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

आइए, अब माँग को प्रभावित करने वाले कारकों पर भी विचार करें। बाज़ार में किसी वस्तु की माँग कई बातों पर निर्भर करती है। इनमें से प्रमुख कारक इस प्रकार हैं :

क) **वस्तु की अपनी कीमत :** कितना दूध खरीदा जाएगा, यह काफी हद तक दूध की कीमत पर निर्भर करता है। अतः दूध की कीमत उसकी माँग पर प्रभाव डालने वाला सर्वप्रमुख कारक है। सामान्यतः हमें किसी वस्तु की कीमत तथा उसकी माँगी गई मत्रा में विपरीत या विलोम संबंध दिखाई पड़ता है। यदि कीमत बढ़ती है तो माँग कम हो जाती है। कीमत कम होने पर माँग में वृद्धि की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। उदाहरण के लिए यदि दूध 20 रु. लीटर हो जाए तो शायद एक व्यक्ति आधा लीटर से ही काम चलाने की कोशिश करेगा जबकि कीमत घटकर 10 रु. प्रति लीटर हो जाने पर वह बड़े आराम से एक लीटर अथवा उससे भी अधिक मात्रा में खरीदारी कर सकता है। सामान्यतः, बाज़ार में उपभोक्ता या गृहस्थ इसी प्रकार से व्यवहार करते हैं।

ख) **प्रतिस्थापक और प्रतिपूरक वस्तुएँ :** वस्तु की माँग पर दूसरा महत्त्वपूर्ण प्रभाव उससे संबद्ध वस्तुओं की कीमतों का पड़ता है। यह वस्तु प्रतिस्थापक या फिर एक प्रतिपूरक वस्तु हो सकती है। उदाहरण के लिए ताजा दूध के प्रतिस्थापक दूध के साथ प्रयोग किए जाने वाले प्रतिपूरकों में हम कार्नफ्लेक या भुने हुए जौ (Oats) की चर्चा कर सकते हैं। यदि किसी वस्तु के प्रतिस्थापकों की कीमत में वृद्धि हो जाए तो उस वस्तु की माँग भी बढ़ जाती है अर्थात् प्रतिस्थापक की कीमत के साथ माँग का प्रत्यक्ष संबंध रहता है। दूसरी ओर प्रतिपूरक की कीमत के साथ माँग का विलोम संबंध ही रहता है। उदाहरण के लिए, दुग्ध पाउडर महँगा होने पर

ताजे दूध की माँग बढ़ सकती है। पर कार्नफ्लेक महँगे होने पर न केवल उनकी अपनी बल्कि दूध की माँग भी कम हो जाएगी।

ग) **आय का स्तर :** उपभोक्ता की आय का स्तर भी वस्तु की माँग को प्रभावित करता है। सामान्यतः, सम्पन्नता बढ़ने पर व्यक्ति सभी वस्तुओं का उपभोग पहले से अधिक करता है। स्वभाविक है कि जैसे-जैसे हमारे उपभोक्ता की आय बढ़ती है वह पहले की अपेक्षा अधिक दूध की माँग करने लगेगा। अतः हमें परिवार की आय एवं उसकी किसी वस्तु की माँग में प्रत्यक्ष संबंध ही दिखाई देगा।

यहाँ पर यह ध्यान देना भी उपयोगी रहेगा कि अगर आय बढ़ने से किसी वस्तु की माँग कम होती हो तो उस वस्तु को हम घटिया (inferior) वस्तु कहते हैं। पर किसी वस्तु का घटिया होना व्यक्ति की अपने परिस्थितियों पर निर्भर करता है। यदि कोई व्यक्ति अमीर होने पर दूध का प्रयोग कम कर देता है तो उस व्यक्ति की दृष्टि से दूध एक घटिया वस्तु हो जाएगा।

घ) **पसंद :** किसी वस्तु के लिए माँग उपभोक्ताओं की पसंद पर भी निर्भर करती है। यदि किसी को कोई वस्तु पसंद हो तो उस वस्तु की अधिक मात्रा की माँग करेगा।

4.3 माँग तालिका, माँग फलन और माँग वक्र

भाग 4.2 में हमने किसी वस्तु की माँग को प्रभावित करने वाले कई कारकों के बारे में बातचीत की है। इनके अतिरिक्त भी अनेक ऐसे कारक है जिनका माँग पर काफी प्रभाव पड़ सकता है पर जिनके विषय में हमने कोई चर्चा नहीं की है। किंतु यह बात ध्यान देने योग्य है कि भाग 4.2 में उल्लिखित चार कारक– अर्थात् वस्तु की अपनी कीमत, संबद्ध वस्तुओं अर्थात् प्रतिपूरकों एवं प्रतिस्थापकों की कीमतें, उपभोक्ता की आय तथा उसकी सभी कारकों के स्तर को स्थिर मान लिया जाए तो हम एक माँग तालिका, माँग फलन एवं माँग वक्र का निर्माण कर सकते हैं। एक माँग तालिका में उपभोक्ता द्वारा किसी समय किसी बाज़ार में विभिन्न कीमत स्तरों पर वस्तु की खरीदी गई मात्राओं को सूचीबद्ध रूप में दिखाया जाता है। इस तालिका का स्वरूप कुछ इस प्रकार होगा :

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

तालिका 4.1 : दूध के लिए माँग तालिका

दूध की कीमत (प्रति लीटर) रुपयों में	20	15	10	5
दूध की माँग (लीटरों में)	1	1.5	3	6

एक माँग फलन किसी वस्तु की माँगी गई मात्रा तथा उसकी कीमत का संबंध दिखाता है। यदि वस्तु को X (दूध) द्वारा दिखाया जाए। इसकी कीमत को P द्वारा तो माँग फलन का स्वरूप कुछ ऐसा होगा :

$$Q_x = f(P_x)$$

यह फलन मात्र इतना ही बताता है कि माँगी गई मात्रा कीमत पर निर्भर है। कीमत का कारण चर (cause variable) एवं मात्रा को प्रभाव चर (effect variable) भी कहा जा सकता है। दूसरे शब्दों में, यहाँ कीमत स्वतंत्र चर (independent variable) है तथा माँगी गई मात्रा इस पर निर्भर या आश्रित चर (dependent variable) है। तकनीकी दृष्टि से स्वतंत्र चरों को बाह्यजनित (exogenous) एवं आश्रित चरों को अन्तःजनित (endogenous) चर भी कहा जाता है। माँग एवं कीमत का संबंध दिखाने वाला यह माँग फलन "अन्य बातें फेरबदल करते हैं तो उस समय अन्य

सभी प्रभावकारी कारक अपने पूर्ववत् स्तर पर ही बने रहते हैं। दूसरे शब्दों में, वस्तु की अपनी कीमत के प्रभाव का अध्ययन करते समय हम उसकी माँग पर पड़ने वाले अन्य सभी प्रभावों को अनदेखा कर देते हैं। इन अन्य प्रभावों में प्रतिस्थापकों एवं प्रतिपूरकों की कीमतें, उपभोक्ता आय और अभिरुचियाँ आदि सभी शामिल रहती हैं।

माँग वक्र तो माँग तालिका का ही रेखाचित्र होता है। माँग का रेखाचित्र द्विआयामी चित्र में अंकित किया जाता है। क्षितीजीय अक्ष (horizontal axis) पर माँगी गई मात्रा तथा ऊर्ध्व अक्ष (vertical axis) पर वस्तु की कीमत दर्शायी जाती है। उपभोक्ता का माँग और वस्तु की अपनी कीमत में सामान्यतः विपरीत संबंध होता है।

सामान्यतः इसीलिए माँग वक्र दाहिनी ओर ढलवाँ बनाया जाता है। सुविधा की दृष्टि में हम माँग वक्र को एक ढलवाँ सरल रेखा द्वारा भी दिखा सकते हैं (चित्र 4.1)।

X वस्तु की माँगी गई मात्रा को हम X-अक्ष तथा उसकी कीमत को Y-अक्ष पर दर्शाते हैं। मात्रा अपनी स्वभाविक भौतिक इकाइयों में ही दिखाई जाती है तथा कीमत रुपये प्रति इकाई में।

उदाहरण : दूध की कीमत होगी 8 रुपये प्रतिलीटर या 12 लीटर आदि। दाहिनी ओर ढलवाँ माँग वक्र का अभिप्राय होगा कि जैसे-जैसे वस्तु की कीमत कम होती है, उसकी माँग बढ़ती जाती है अथवा उसकी अधिक मात्रा खरीदी जाती है। इसके विपरीत कीमत बढ़ने से माँग की मात्रा घट जाएगी। चित्र 4.1 में OP_1 कीमत पर उपभोक्ता N_1 बिंदु पर होता है– अर्थात् यह OQ_1 मात्रा में X की माँग करता है। यदि कीमत कम होकर OP_2 हो जाए तो उपभोक्ता भी इसी माँग वक्र के N_2 बिंदु पर चला जाएगा और OQ_2 मात्रा की माँग करेगा। कीमत के कम होने के फलस्वरूप इस वस्तु की अधिक मात्रा की माँग होती है। आम उपभोक्ता का सामान्य व्यवहार कुछ इसी तरह का रहता है। माँग वक्र के इस प्रकार ढलवाँ होने के कारणों का विवेचन हम इकाई 5 में करेंगे। इस दाहिनी ओर ढलवाँ वक्र में ही माँग का नियम निहित है। इस नियम के अनुसार, अन्य बातें पूर्ववत् रहने पर, उपभोक्ता कीमत कम होने पर अधिक और कीमत बढ़ने पर कम मात्रा में वस्तु की खरीदारी करता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 4.1

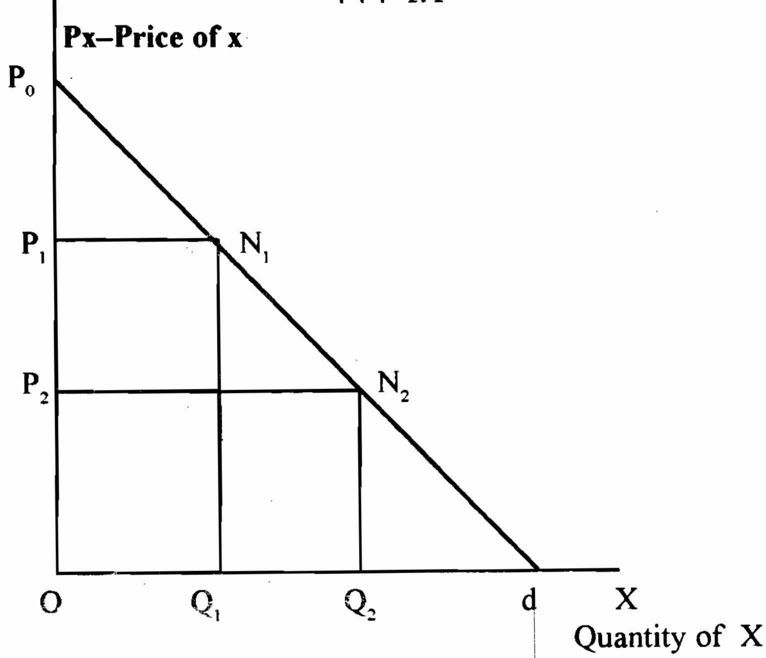

यहाँ यह बताना भी उपयुक्त होगा कि यदि माँग वक्र एक सरल रेखा हो तो उससे जुड़ा हुआ माँग फलन भी एक रेखीय समीकरण (linear equation) की भाँति ही होगा :

$$Qx = a\text{-}b\ Px$$

यहाँ 'a' अन्तःखंड (intercept) तथा 'b' ढाल (slope), गुणांक (coefficient) 'b' उस दर को दिखाता है जिसके अनुसार कीमत परिवर्तन के कारण माँग की मात्रा में परिवर्तन आता है। अर्थात्:

$$b = \partial Q/\partial P$$

(यहाँ हम सुविधा के लिए पादांक (subscript) x को प्रयोग नहीं कर रहे हैं।)

एक और बात भी याद रखनी चाहिए : सामान्यतः स्वतंत्र चर को X-अक्ष तथा आश्रित चर को Y-अक्ष पर दर्शाया जाता है। पर माँग वक्र में तो हम इसके बिल्कुल ही विपरीत व्यवहार कर रहे हैं। वस्तुतः, अर्थशास्त्र में हमने कुछ ऐसा नियम बना रखा है कि कीमत या लागत दरों को हम Y-अक्ष या ऊर्ध्व अक्ष पर दिखाते हैं और सभी मात्राओं को X-अक्ष या क्षैतिज अक्ष पर दर्शाते हैं। इस प्रकार, सही अर्थों में $Px = \propto - \beta Qx$ द्वारा हम विलोम माँग वक्र (inverse demand curve) का ही चित्रांकन करते हैं। इसमें $\propto = a/b$ कीमत अन्तःखंड तथा $\beta = 1/b$ इस विलोम माँग वक्र का ढाल है तथा यह $\partial P/\partial Q$ के समान या बराबर होता है। अपने सामान्य स्वरूप में माँग वक्र $Q_x = a - bP_x$ यह बताती है कि किसी कीमत पर उपभोक्ता अधिकतम कितनी मात्रा खरीदता है। विलोम माँग वक्र $P_x = \propto - \beta Q_x$ बताता है किसी दी हुई मात्रा के लिए उपभोक्ता अधिकतम क्या कीमत (प्रति इकाई) चुकाने को तत्पर होगा। अतः माँग वक्र अपने दोनों ही स्वरूपों में उपभोक्ता की दृष्टि से एक बाह्य सीमा को ही दिखाता है। कोई उपभोक्ता OQ_1 मात्रा के लिए OP_1 से ऊँची कीमत नहीं देगा। ($OP_1 = N_1Q_1$) (चित्र 4.1)। उपभोक्ता द्वारा चुकाई गई कीमत ही विक्रेता को मिली औसत अग्रिम (AR) होती है। इसी कारण हम विलोम माँग वक्र को औसत आगम वक्र का नाम भी देते हैं। इस विषय में इकाई 8 में ज्यादा विस्तार से चर्चा होगी। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि जहाँ माँग वक्र कीमत अक्ष को छूती है वहाँ माँग शून्य हो जाती है। ऐसे कीमत स्तर को हम प्रतिषेधात्मक कीमत (prohibitive price) कहते हैं। (चित्र 4.1 में OP_0 कीमत)।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 4.2

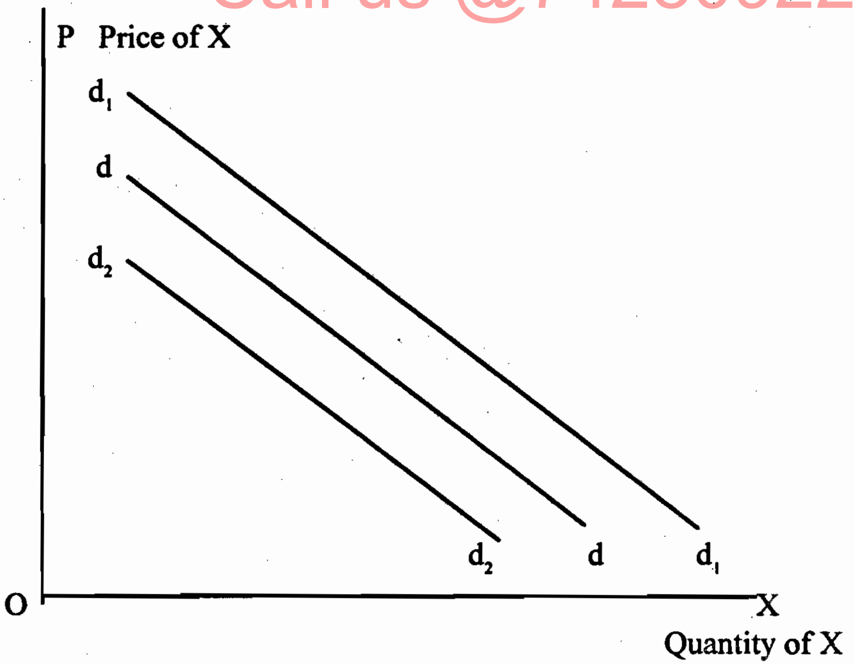

चित्र 4.2 : जब उपभोक्ता की आय या अभिरुचियों जैसी अन्य बातों में परिवर्तन आता है तो क्या होगा? इसी को हमने इस चित्र में दिखाया है। आय आदि में वृद्धि के कारण उपभोक्ता प्रत्येक कीमत पर पहले से ज़्यादा मात्रा की खरीदारी करने लगता है। पूरी माँग-वक्र ही खिसक कर d_1d_1 पर पहुँच जाता है। यदि आय गिरती है तो माँग-वक्र बाईं ओर खिसककर d_2d_2 पर चला जाता है।

अभी तक हमने यही देखा है कि वस्तु की कीमत माँग को प्रभावित करती है। पर अन्य अनेक कारक भी माँग की मात्रा पर अपना प्रभाव डालते हैं। उदाहरण के लिए यदि वस्तुओं और सेवाओं की कीमतें स्थिर रहते हुए उपभोक्ता की आय में वृद्धि हो जाए तो यह सामान्यतः अपने उपभोग के स्तर को बढ़ा देगा, अर्थात् वह वस्तुओं की अधिक मात्राएँ खरीदने लगेगा। कुछ इसी तरह का प्रभाव उपभोक्ता की अभिरुचियों के परिवर्तन का रहता है। मैं पहले मांसाहारी था पर अब स्वास्थ्य संबंधी कारणों से डाक्टर का कहना है कि मुझे मांसाहार नहीं करना चाहिए। स्वाभाविक है, अब मेरी मांस की माँग-वक्र तो लुप्त हो गई हैं अगर मांस की कीमत कम होती है तो भी मेरी इस वस्तु की माँग शून्य ही रहेगी।

इस बात को आप खासतौर पर ध्यान में रखें कि ऊपर जो उदाहरण हमने दिए हैं, उनमें प्रत्येक कीमत स्तर पर माँग-वक्र को खिसकन द्वारा दर्शाते हैं। यदि यह खिसकन ऊपर या बाहर की (दाहिनी) ओर हो तो इसे माँग में वृद्धि (increase in demand) का नाम दिया जाता है। इसके विपरीत माँग-वक्र नीचे/भीतर या बाईं ओर खिसकन को हम माँग में कमी या गिरावट (decrease in demand) का नाम देते है। इन्हीं दो प्रकार के माँग-वक्र के खिसकने की अवस्थाएँ हमनें चित्र 4.1 में दिखाई है। d_1d_1 ऊपर की ओर या माँग की वृद्धि दिखा रहा है तो d_2d_2 द्वारा माँग में गिरावट दिखाई गई है।

अतः जब वस्तु की कीमत में परिवर्तन होता है तो उपभोक्ता माँग-वक्र पर ही एक बिंदु से किसी अन्य बिंदु पर चला जाता है किंतु अन्य बातों के परिवर्तन से पूरी माँग-वक्र ही ऊपर या नीचे खिसक जाता है।

बोध प्रश्न 1

1) उपभोक्ता की आय बढ़ने का माँग-वक्र पर क्या प्रभाव पड़ता है?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

....

2) एक उपभोक्ता की माँग-तालिका इस प्रकार है :

कीमत (रुपयों में)	वस्तु की माँगी गई मात्रा (किलोग्राम में)
11	100
10	150
9	180
8	205
7	215
6	225
5	230
4	235

यदि कीमत 9 रुपये से कम होकर 8 रुपये तथा 5 रुपये से बढ़कर 6 रुपये हो तो क्या होगा?

4.4 माँग की लोच

यह तो हम देख ही चुके हैं कि किसी वस्तु की माँग-फलन उसकी अपनी कीमत तथा माँगी गई मात्रा का, अन्य सभी बाते पूर्ववत् रहने पर, संबंध दर्शाता है। इसका स्वरूप होता है : $X_1 = f(P_1)$, अन्य बाते पूर्ववत् रहने पर। वस्तु की कीमत के किसी भी स्तर पर यह फलन उसकी अधिकतम माँग दिखाता है। इसी फलन का विलोम रूप : $P_1 = f(X_1)$ माँग की प्रत्येक मात्रा के लिए वह अधिकतम कीमत स्तर दिखाता है जो कि उपभोक्ता चुकाने के लिए तैयार हो सकता है (कीमत न चुकाने की सूरत में उसे वस्तुओं से वंचित रहना पड़ता है)। ऐसी माँग-वक्र का ढाल $\partial X_1/\partial P_1$ माँग की मात्रा में कीमत परिवर्तन के कारण होने वाले परिवर्तन की दर को अभिव्यक्त करता है। यह दर वस्तु की प्राकृतिक इकाइयों में निश्चित होती है। हम माँग की लोच के विचार के माध्यम से वस्तुओं की इकाइयों की समस्या (जैसे किलोग्राम, लीटर, टन, गांठर आदि) से छुटकारा पा सकते है। माँग की लोच द्वारा हम वस्तु की माँग की कीमतों के प्रति संवेदनशीलता ज्ञात कर सकेंगे। औपचारिक रूप से हम माँग की लोच को वस्तु की **माँगी गई** मात्रा की वस्तु की कीमत, उपभोक्ता की आय, प्रतिस्थापक या प्रतिपूरक वस्तुओं की कीमत आदि के प्रति संवेदनशीलता के रूप में परिभाषित करते हैं। इन्हीं के साथ क्रमशः (i) वस्तु की अपनी कीमत के प्रति लोच, (ii) तिरछी लोच, तथा (iii) आय लोच का यह विचार आता है। यह ध्यान रहे कि लोच की संकल्पना भौतिकी से ली गई है जहाँ यह व्यक्त किया जाता है कि कोई निर्भर चर (dependent variable) किसी स्वतंत्र चर में परिवर्तन होने पर कितनी तीव्रता से प्रभावित होता है।

माँग की कीमत लोच

मान लीजिए कि किसी वस्तु की माँग-वक्र $Q_1 = f(P_1)$ है। कीमत लोच को हम वस्तु की मात्रा (Q_1) के रूप में वस्तु की कीमत (P_1) के प्रति संवेदनशीलता के कम या अधिक के रूप में परिभाषित कर सकते हैं। यह कीमत में परिवर्तत के कारण माँग में परिवर्तन के स्तर की द्योतक है। यह बताती है कि कीमत बदलने पर माँग किस प्रकार व्यवहार करती है। इसे दो राशियों के अनुपात के रूप में व्यक्त किया जा सकता है : ये राशियाँ हैं माँग की मात्रा में सापेक्ष परिवर्तन तथा कीमत में सापेक्ष परिवर्तन।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

$$\epsilon_{11} = \frac{(\Delta Q_1/Q_1)}{(\Delta P_1/P_1)}$$

यहाँ ϵ_{11} = वस्तु की (अपनी कीमत के प्रति) माँग की लोच

ΔQ_1 = वस्तु X_1 की माँग में परिवर्तन

Q_1 = वस्तु की प्रारंभिक माँग

ΔP_1 = वस्तु की अपंनी कीमत में परिवर्तन

P_1 = वस्तु की प्रारंभिक कीमत

अतः हम कह सकते हैं कि ϵ_{11} वस्तु की माँग में सापेक्ष परिवर्तन और उसकी कीमत में सापेक्ष परिवर्तन का फल हैं। दूसरे शब्दों में, इसे अनुपातिक परिवर्तन तथा कीमत में अनुपातिक परिवर्तन के अनुपात का नाम भी दिया जा सकता हैं यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि यदि अंश (numerator) और हर (denominator) दोनों को ही 100 से गुणा कर दिया जाए तो (यद्यपि परिणाम में अंतर नहीं आता) ϵ_{11} को हम माँग में प्रतिशत परिवर्तन और कीमत में प्रतिशत परिवर्तन के रूप में भी व्यक्त किया जा सकता है।

माँग का सामान्य नियम कीमत एवं मात्रा में विलोम संबंध बताता है। इसी कारण $\in_{11}$ का मान भी ऋणात्मक (nagative) चिह्न के साथ दिखाया जाता है। दूसरे शब्दों में, $\Delta P_1 > 0 => \Delta Q_1 < 0$ और हम स्पष्टतः देख सकते हैं कि $\Delta P_1 < 0 => \Delta Q_1 > 0$ तथा $\Delta Q_1/Q_1$ एक दूसरे की विपरीत दिशा में ही चलते है। यद्यपि गणितीय दृष्टि से अपनी कीमत के प्रति माँग की लोच का चिह्न ऋणात्मक होता है, पर इसकी व्याख्या करते समय हम चिह्न पर ध्यान नहीं देते। हम $\in_{11}$ को $(\in_{11})$ (modulus of $\in_{11}$) के रूप में देखते हैं।

$\in_{11}$ की व्याख्या

i) मान लीजिए कि $\in_{11} > -1$ अर्थात् $(\in_{11}) > 1$

इसका अर्थ होगा कि कीमत में एक प्रतिशत कमी (वृद्धि) के कारण माँग में एक प्रतिशत से अधिक वृद्धि आएगी। अथात् माँग कीमत परिवर्तन के प्रति संवेदनशील है। $\in_{11}$ का परिमाण एक से जितना अधिक होगा यह संवेदनशील भी उतनी ही अधिक सशक्त होगी। अतः जब भी $\in_{11}$ का परिमाण एक से अधिक हो तो हम कह सकते हैं कि माँग संवेदनशील है अथवा लोच एक से अधिक है। हम पाते हैं कि $\Delta Q_1/Q_1$ की राशि $\Delta P_1/P_1$ से अधिक है (यह आधिक्य विपरीत दिशा में अवश्य होता है)। ऐसी माँग को लोचशील (elastic) माँग कहा जाता है।

ii) मान लीजिए $\in_{11} < -1$ या $(\in_{11}) < 1$

इसका अर्थ होगा कीमत में एक प्रतिशत परिवर्तन से माँग में एक प्रतिशत से कम परिवर्तन आता है। दूसरे शब्दों में, कीमत के प्रति माँग अधिक संवेदनशील नहीं है। यद्यपि कीमत गिरने (बढ़ने) पर माँग बढ़ती (गिरती) है पर माँग का यह परिवर्तन अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है। अतः चिह्न को दृष्टिगत न कर, यदि है तो माँग को असंवेदनशील कहा जाएगा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

iii) मान लीजिए $\in_{11} = -1$ या $(\in_{11}) = 1$

यहाँ कीमत में एक प्रतिशत कमी (वृद्धि) के कारण माँग में भी एक प्रतिशत ही वृद्धि (कमी) आती है। ऐसी माँग न संवेदनशील होती है और न ही असंवेदनशील। इसे एकिक (unitary) लोचशीलता कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, $\Delta X_1/X_1 = \Delta P_1/P_1$ (विपरीत दिशा में)। यदि कीमत 10 प्रतिशत बढ़ी तो माँग 10 प्रतिशत कम हो जाएगी। माँग की यह संवेदनशीलता "मध्यमार्गी" कही जा सकती है यही लोचदार तथा बेलोच के बीच की "महान् विभाजन" रेखा है।

बोध प्रश्न 2

1) [illegible] रुपये तथा माँग 100 इकाई हैं वस्तु की माँग की लोच 1.5 है कीमत में [illegible] गिरावट का माँग का क्या प्रभाव होगा?

....

....

....

....

....

2) [illegible] विभिन्न स्तर दिखा रही है। कीमत 7 रुपये से [illegible] रुपये होने पर [illegible] की कीमत लोच ज्ञात करें।

कीमत (रुपये)	मात्रा (किलोग्राम)
10	50
9	60
8	65
7	68
6	69
5	70

4.5 चाप लोच तथा बिन्दु लोच में भेद

चित्र 4.4 की माँग-वक्र dd पर विचार करें। हम ग़ैर-रेखीय (non-linear) माँग-वक्र dd में, N_1N_2 चाप पर माँग की संवेदनशीलता जानना चाहते हैं। यहाँ कीमत OP_2 से OP_1 तक परिवर्तित होती है हम चाहते हैं कि चाहे हम N_1 से N_2 तक जाएँ या N_2 से N_1 तक यह संवेदनशीलता एक समान ही रहे। किन्तु माँग की लोच की परिभाषा का अनुसरण करने पर तो प्रारंभिक कीमत OP_1 होने पर जो परिणाम मिलता है वह OP_2 को प्रारंभिक कीमत मानने से प्राप्त परिणाम से मेल नहीं खाता। कीमत घट कर OP_1 से OP_2 होने पर:

$$\in_{11} = \frac{(Q_1Q_2/QQ_1)}{(P_1P_2/OP_1)} \quad \text{या}$$

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

$$\in_{11} = \frac{(Q_1Q_2/P_1P_2)}{(OP_1/QQ_1)} \qquad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots(i)$$

दूसरी ओर, कीमत OP_2 से बढ़कर OP_1 होने पर:

$$\in_{11} = \frac{(Q_1Q_2/QQ_2)}{(P_1P_2/OP_2)} \quad \text{या}$$

$$\in_{11} = \frac{(Q_1Q_2/P_1P_2)}{(OP_2/QQ_2)} \qquad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots(ii)$$

यहाँ (i) तथा (ii) की तुलना से हम देखते है कि दोनों में पहली राशि Q_1Q_2/P_1P_2 तो समान रहती है पर OP_1/OQ_1 तो OP_2/OQ_2 के बराबर नहीं है। अतः प्रारंभिक बिंदु (N_1 या N_2) के चयन में पैदा हुई इस समस्या के निदान के लिए हम चाप लोच का विचार प्रयोग में लाते हैं।

चाप विधि के अनुसार X_1 वस्तु की माँग की लोच इस प्रकार होगी:

$$\in^A_{11} = \{(Q_{11} - Q^0_1)/(Q^0_1 + Q_{11})/P_{11} - P^0_1)\}$$

$$= \{\Delta Q_1/Q^0_1 + Q_{11})/\{\Delta P_1/P_{11} + P^0_1)\}$$

यहाँ ΔQ_1 = X_1 की माँग की मात्रा में परिवर्तन

ΔP_1 = X_1 की कीमत में परिवर्तन

Q^0_1 = कीमत OP_1 (यानि P^0_1) पर माँग

Q_{11} = कीमत OP_2 (यानि P_{11}) पर माँग

P^0_1 = चित्र 4.2 में कीमत OP_1

P^1_1 = चित्र 4.2 में कीमत OP_2

चित्र 4.3

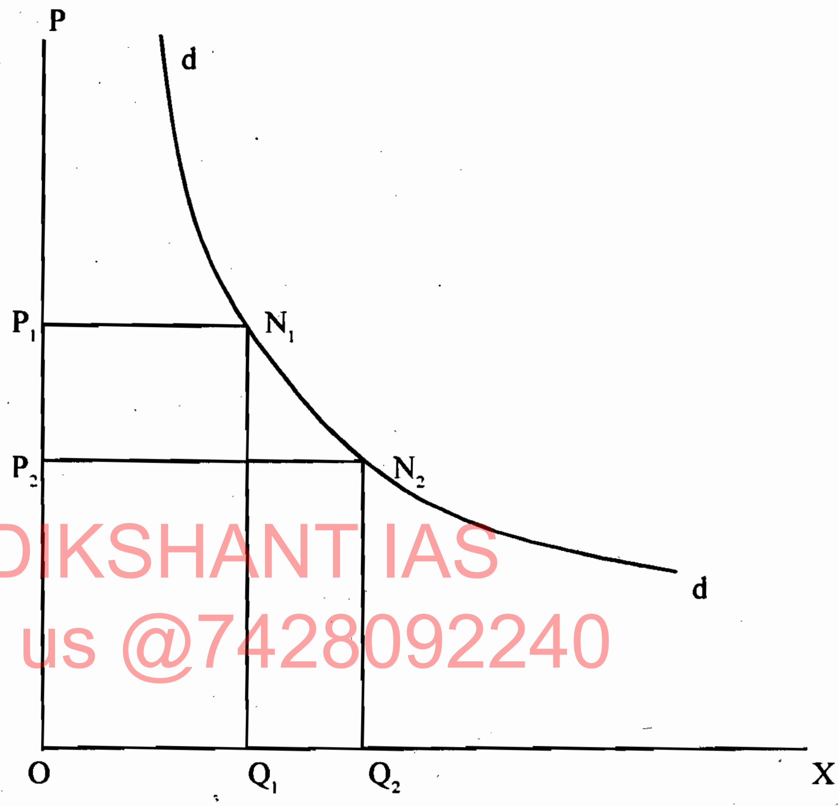

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 4.3: इसमें हमने एक ग़ैर-रेखीय (non-linear) माँग-वक्र दिखाई है । कीमत OP_1 से बदल कर OP_2 होने पर माँग की मात्रा भी OQ_1 से OQ_2 हो जाती है । अतः कीमत में परिवर्तन $\Delta P = P_1P_2$ तथा मात्रा में परिवर्तन $\Delta Q = Q_1Q_2$.

अब हमारी चाप लोच की परिभाषा के अनुसार चाप N_1N_2 पर हम चाहे ऊपर से नीचे जाएँ या नीचे से ऊपर, माँग की लोच समान ही रहती है ।

यदि चाप लोच के इस सूत्र में हम ΔP_1 को शून्य की ओर ले जाएँ तो हमें बिंदु लोच का सूत्र मिल जाता है । दूसरे शब्दों में, ΔP_1 के अतिसूक्ष्म होने पर चाप लोच की सीमा ही बिंदु लोच बन जाती है ।

$$\lim_{\Delta P_1 \to 0} \in_{11} = \frac{(\partial Q_1/\partial P_1)}{(P_1/Q_1)} = \in^P_{11}$$

अवधारणा की दृष्टि से बिंदु लोच कीमत में अतिसूक्ष्म परिवर्तन के प्रति माँग की संवेदनशीलता को अभिव्यक्त करती है । दूसरी ओर, चाप लोच कीमत में अपेक्षाकृत बड़े परिवर्तनों के प्रति संवेदनशीलता की परिचायक है । जो पाठक लघुगणक (logarithm) से परिचित है, वे सहज ही समझ सकते हैं कि:

$$\frac{\partial Q_1}{Q_1} = \partial \log Q_1 \text{ तथा } \frac{\partial P_1}{P_1} = \partial \log P_1$$

अतः $\in_{11} = \dfrac{\partial \log Q_1}{\partial \log P_1}$

उदाहरणः

1) निम्न माँग-तालिका पर विचार करें। Q_1 वस्तु की माँग की मात्रा तथा P_1 उसकी कीमत है। मात्रा किलोग्राम एवं कीमत रुपयों में है।

Q_1	100	150	220	250	280
P_1	5	4	3	2	1

यदि कीमत 4 रुपये से घटकर 3 रुपये रह जाए तो माँग लोच क्या होगी?

यहाँ कीमत की गिरावट निश्चित मात्रा में एक रुपया कम हुई है। अतः चाप विधि का प्रयोग व्यवहार्य होगा। इसलिए

$$\in^A_{11} = \{\Delta Q_1/Q^0_1 + Q^1_1)\}/ \{\Delta P_1/P^1_1 + P^0_1)\}$$

$$= \{70/(150+220)\}/\{-1/(3+4)\} = -490/370 = 1.3$$

2) माँग-फलन है के $Q_1 = 50\text{-}0.8\ P_1$ संदर्भ में बिंदु $P_1 = 10$ पर कीमत लोच ज्ञात करें।

DIKSHANT IAS

यहाँ, चूँकि $P_1 = 10$ बिंदु पर लोच की जानकारी प्राप्त करना है, हम बिंदु विधि का प्रयोग करेंगे।

$$\in^P_{11} = (\partial Q_1 / \partial P_1)\ (P_1/Q_1)$$

Call us @7428092240

माँग-फलन हेतु $Q_1 = 50\text{-}0.8P_1$

बिंदु $P = 10$ पर $Q_1 = 50\text{-}0.8\ (10) = 42$

अतः $\in^P_{11} = 0.8(10/42) = -\ 0.2$

हमने यह बात पहले भी बताई है कि माँग की लोच की व्याख्या करते समय हम इसके चिह्न पर नहीं बल्कि परिमाण पर ही ध्यान देते हैं। $\in_{11}$ का परम् माप ही महत्त्वपूर्ण होता हैं यदि $\in_{11} > 1$ माँग लोचदार है तथा $\in_{11} < 1$ का अर्थ है माँग का बेलोचदार होना। इसलिए उदाहरण (1) में माँग लोचदार होगी तथा उदाहरण (2) की माँग बेलोच है।

ध्यान दें कि माँग-वक्र के ढाल के विपरीत, लोच का मान Q_1 और P_1 मापने की इकाइयों से मुक्त विशुद्ध अंक (pure number) है। ऐसे मान को हम सभी वस्तुओं उन्हें चाहे जिस प्रकार की इकाइयों में मापा गया हो, की तुलना के लिए प्रयोग कर सकते है। उदाहरण के लिए हम यह तो कह सकते हैं कि 1.7 की तुलना में 1.8 बड़ी राशि है पर 1.7 लीटर तथा 1.8 किलोग्राम के विषय में यही बात कह पाना ठीक नहीं होगा।

बोध प्रश्न 3

1) ऊपर दिए गए उदाहरण 2 में कीमत 9 रुपये से घटकर 8 रुपये हो जाने पर (*a*) चाप विधि द्वारा (*b*) बिंदु विधि द्वारा कीमत लोच का मान ज्ञात करें।

....

4.6 रेखाचित्र द्वारा लोच का प्रदर्शन

चित्र 4.4 में माँग-वक्र AB पर विचार करें। इस माँग-वक्र के बिंदु N पर लोच ज्ञात करें।

चित्र 4.4

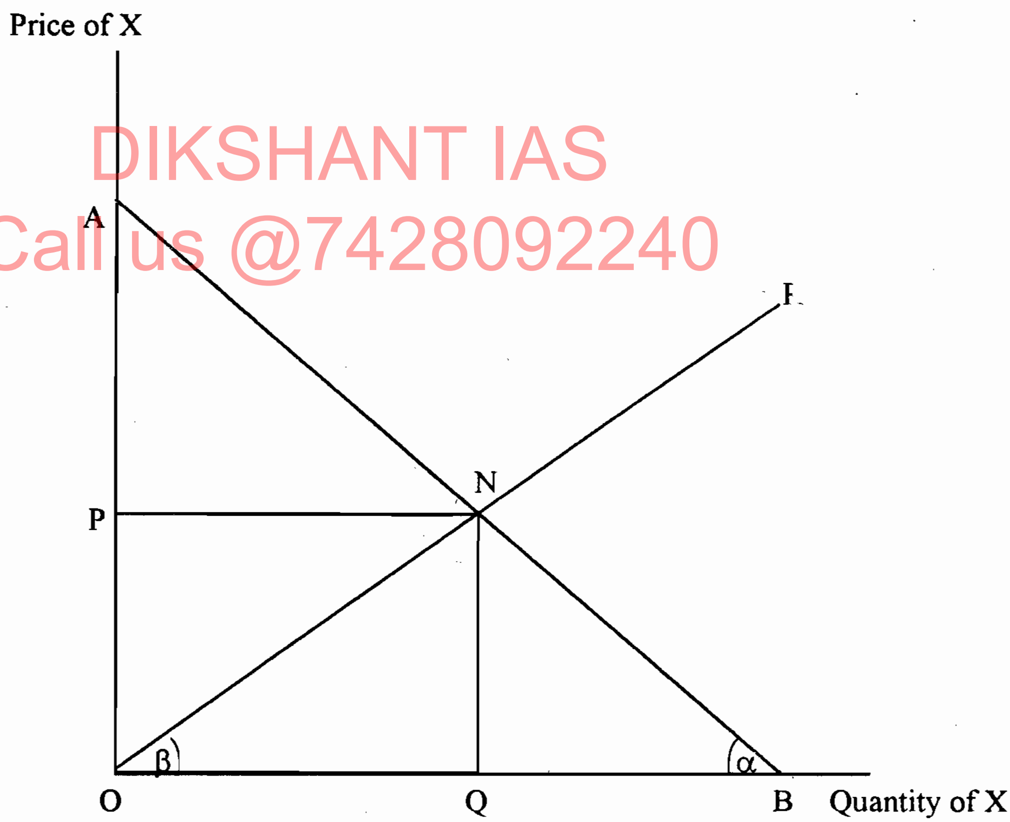

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 4.4: इसमें AB माँग-वक्र है। यह ON अक्ष के साथ कोण α बनाती है। मूल बिंदु से N को जोड़ती है। अत: $\tan\beta = NQ/OQ = P_1Q_1$ इसी तरह से tan से $\tan\alpha = NQ/QB = DQ/DP$ अगर कीमत घटकर शून्य हो जाए। अत: N पर लोच = $\epsilon_N = \tan\beta/\tan\alpha$

बिंदु विधि द्वारा लोच की परिभाषा :

$$\epsilon^{P}_{11} = (\partial Q_1/\partial P_1)/(P_1Q_1) = (P_1/Q_1)/(\partial P_1/\partial Q_1) = \text{औसत फलन/सीमाँत फलन}$$

माँग-वक्र AB के बिंदु N पर $P_1/Q_1 = \tan\beta$ तथा $\partial P_1/\partial Q_1 = \tan\alpha$ अतः N पर लोच $\epsilon_N = \tan\beta/\tan\alpha$, यदि $\tan\beta > 0$ तथा $\tan\alpha < 0$, $\epsilon N < 0A$ हम रेखा AB पर N बिंदु की स्थिति को बदल कर यह देख सकते हैं कि अलग-अलग बिंदुओं पर लोच का मान कैसे बदलता रहता है। आइए, कुछ विशेष स्थितियों पर विचार करें:

स्थिति I : रेखा AB का मध्य बिंदु N मान लेते है। इसका अभिप्राय है $\beta=\alpha$ या जंद $\tan\beta = \tan\alpha$ इसलिए $\varepsilon_N = 1$

स्थिति II : बिंदु N रेखा AB के मध्य बिंदु से ऊपर है। इसलिए $\tan\beta > \tan\alpha$ अतः $\varepsilon_N < 1$

स्थिति III : बिंदु N रेखा AB के मध्य बिंदु से नीचे है अतः $\tan\beta < \tan\alpha$ अतः $\varepsilon_N < 1$

स्थिति IV: बिंदु N को हम AB के उच्चतम बिंदु पर पहुँचा देने पर $\beta = 90°$। अतः $\tan\beta = 0$। इस दशा में $\epsilon_N = 0$ (अनन्त)।

स्थिति V: N बिंदु कोने वाले बिंदु B पर मिलता है जिसका अर्थ है अतः $\epsilon_N = 0$ (शून्य)

इस विश्लेषण से हमें ज्ञात होता है कि हम जैसे-जैसे माँग-वक्र पर नीचे की तरफ बढ़ते हैं, माँग की लोच लगातार कम होती रहती है। A बिन्दु पर इसका अधिकतम मान अनन्त होता है तो बिंदु B पर यह घटकर शून्य रह जाता है। इन सब स्थितियों को हमने चित्र 4.5 में समाहित किया है।

चित्र 4.5

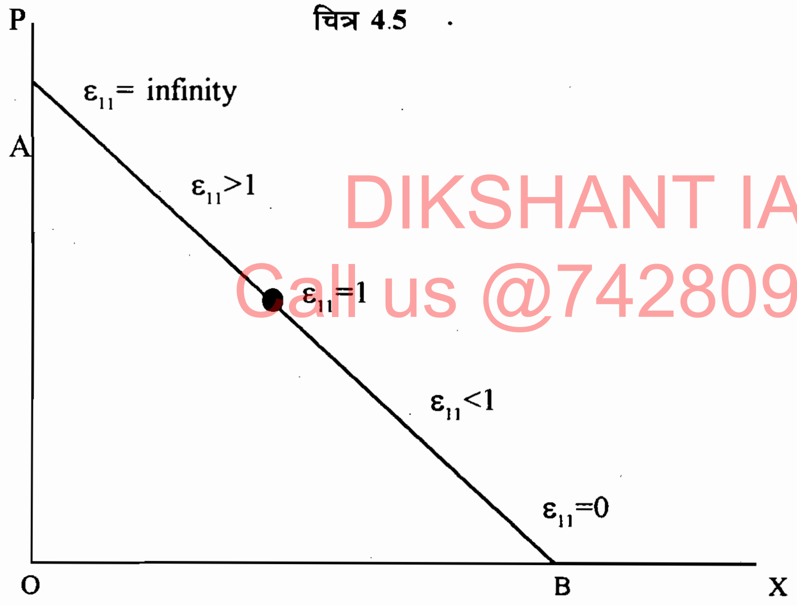

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 4.5: माँग-वक्र AB है। इसके किसी भी बिंदु पर लोच का मान निचले हिस्से तथा ऊपर वाले हिस्से के अनुपात से ज्ञात होता है। अतः मध्य बिंदु पर यह मान इकाई के बराबर होगा। जैसे-जैसे हम नीचे की ओर जाते है, लोच कम होती रहती है। अतः हम कह सकते हैं कि कीमत जितनी कम होगी लोच भी उतनी कम होगी।

इसी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए हम समरूप त्रिभुजों की विशेषताओं का प्रयोग भी कर सकते हैं। हम जानते हैं कि लोच $= (P_1/Q_1)/(\partial P_1/\partial Q_1)$। अतः चित्र 4.5 में बिंदु N पर $P_1/Q_1 = NQ/OQ$ तथा $\partial P_1/\partial Q_1 = NQ/QB$। अतः

$$\epsilon_N = \frac{(NQ/OQ)}{(NQ/QB)}$$

$$= \frac{(NQ/QB)}{(QB/NQ)}$$

$= \frac{QB}{OQ}$ (NQ अंश एवं हर में दोनों के होने कारण निरस्त हो जाता है।)

हम ऋणात्मक चिह्न पर ध्यान नहीं देते। चित्र 4.6 में ΔAGN तथा ΔNQB समरूप त्रिभुज है। अतः

$$\frac{AN}{GN} = \frac{NB}{QB}$$

चित्र 4.6

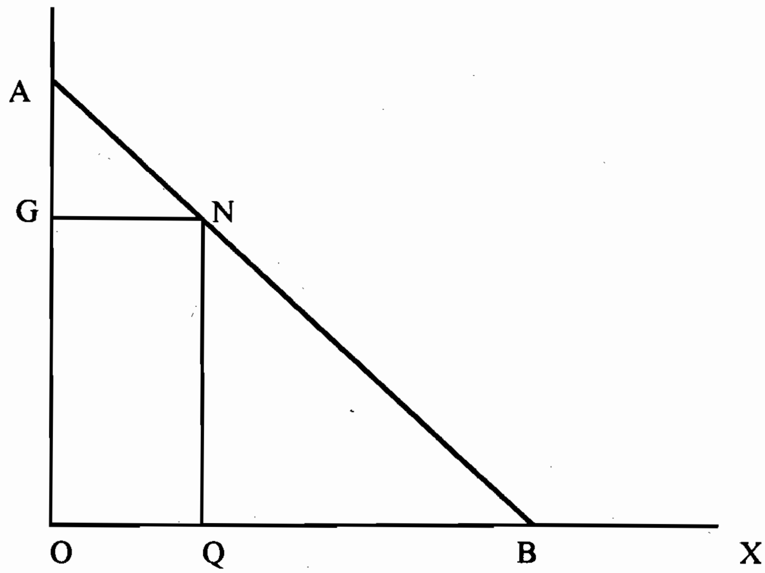

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 4.6: में समरूप त्रिभुजों की विशेषताओं द्वारा माँग की लोच का मान ज्ञात किया गया है। यहाँ भी अंततः BN/AN के ही समान होती है। इसे QB/OQ तथा OG/AG के समान भी सिद्ध किया जा सकता है।

पुनः GN = OQ और AN/OQ = NB/QB

अतः QB/OQ = NB/AN

बिंदु N पर लोच QB/OBA अतः ε_N = NB/AN यह वक्र के निचले एवं ऊपर वाले भागों का अनुपात ही है। हम इसी प्रकार के विश्लेषण द्वारा यह भी दिखा सकते है कि N बिंदु पर लोच का मान OG/GA के समान होगा।

अतः बिंदु N पर लोच = QB/OQ = NB/NA = OG/GA। लोच को NB/NA के बराबर मानकर हम इन निष्कर्षों पर पहुँचते हैं:

स्थिति I : बिंदु N माँग-वक्र AB का मध्य बिंदु है। NB=NA । अतः लोच $\varepsilon_N = 1$

स्थिति II : बिंदु N मध्य बिंदु AB से ऊपर है। इस स्थिति में NB, NA से अधिक हैं। अतः NB > NA $\varepsilon_N > 1$अर्थात माँग लोचदार है।

स्थिति III : बिंदु N माँग-वक्र के ऊपरी कोने के । बिंदु पर है। अतः NA = 0। अतः ε_N=kNB/0=k∞ अथवा माँग की लोचशीलता अनन्त है।

स्थिति IV : बिंदु N माँग-वक्र के मध्य बिंदु से नीचे है। अतः NB<NA। अतः $\varepsilon_N < 1$ माँग-वक्र कम लोचशील है।

स्थिति V : बिंदु N अब निचले कोने के बिंदु B पर है। यहाँ NB =k 0। अतः $\varepsilon_N = 0$

हमारे यह परिणाम चित्र 4.4 के आधार पर प्राप्त परिणामों के समतुल्य ही है। अतः, हम कह सकते हैं कि एक सरल रेखीय विलोम माँग-वक्र पर हम जैसे-जैसे नीचे की ओर जाते है, माँग की लोच कम होने लगती है।

आइए, अब हम दो समानांतर माँग-वक्रों पर (i) किसी एक क़ीमत पर तथा (ii) किसी एक मात्रा पर लोच की तुलना करें। चित्र 4.7 के 4.7(क) और 4.7(ख) को ध्यान से देखे।

चित्र 4.7 (क) में हम दो समानांतर माँग-वक्रों पर लोच पर विचार कर रहे हैं। यदि हम ε_N तथा ε_{N1} की तुलना करें कि दोनों में अंश OP* तो एक समान है पर हर P*A का मान P^*A_1 से कम है। अतः OP^*/P^*A का मान OP^*/P^*A_1 से अधिक होगा। अर्थात $\varepsilon_N > \varepsilon_N{}^1$ दूसरे शब्दों में, ऊँचे माँग-वक्र की लोच निचले माँग-वक्र की अपेक्षा कम होगी।

दूसरी स्थिति (ii) को हमने चित्र 4.7 (ख) में दिखाया है।

पूर्व निर्धारित मात्रा OQ* पर :

$\varepsilon_N = Q^*B/OQ^* = NB/NA$ और

$\varepsilon_N{}^1 = Q^*B_1/OQ^* = N_1B_1/N_1A_1$

इस बार हम (denominator) का मान दोनों ही दशाओं में OQ* रहता है। किन्तु Q^*B_1 का मान Q*B की अपेक्षा अधिक है। अतः दी हुई मात्रा की स्थिति में उच्च माँग-वक्र की लोच निम्न माँग-वक्र की तुलना में अधिक रहती है।

चित्र 4.7(क) 4.7 (ख)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

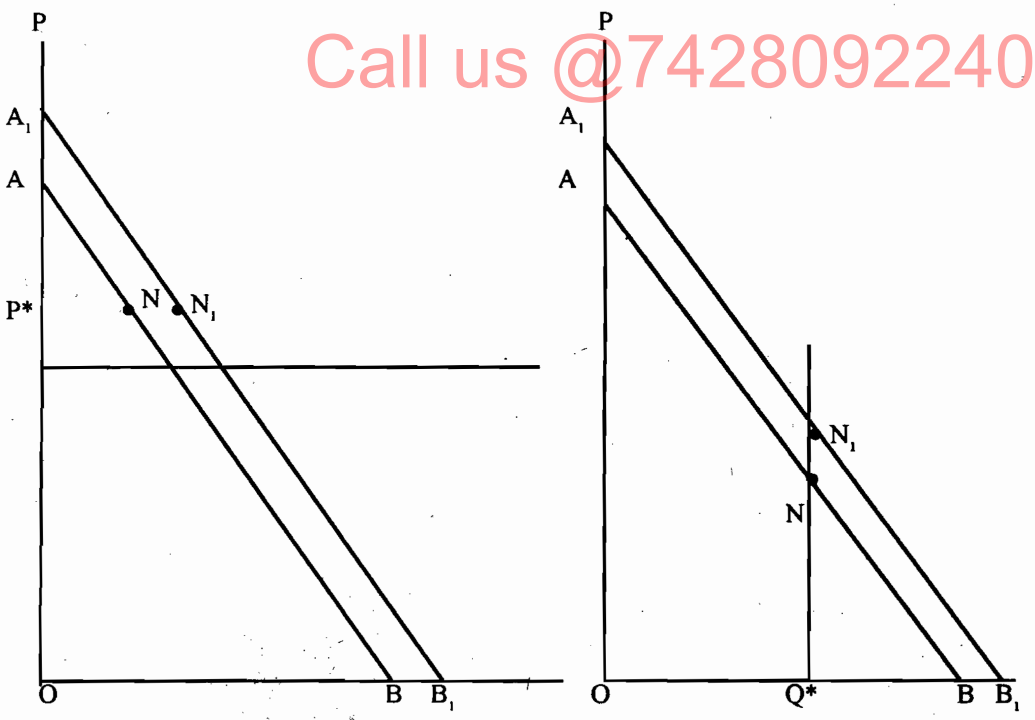

चित्र 4.7(क) दिखाती है। कि समानान्तर माँग-वक्रों में एक ही कीमत पर लोच एक समान नहीं होती क्योंकि निचला अंश (माँग-वक्र का) तो एक समान रहता पर ऊपर के अंश अलग-अलग आकार के होते है।

चित्र 4.7(ख) दिखाता है कि समानान्तर माँग-वक्रों में एक ही मात्रा पर भी लोच का मान समान नहीं रहता। क्योंकि अब माँग-वक्र का ऊपरी माँग तो बराबर है किंतु निचले भाग भिन्न होने के कारण लोच भिन्न हो जाती है।

आइए, अब चित्र 4.8 की ओर चलें। यहाँ तो माँग-वक्र AB तथा A_1B_1 समानान्तर भी नहीं है। अतः बिंदु N पर किस वक्र पर माँग अधिक लोचशील होगी? AB अथवा A_1B_1 पर? AB पर लोच = OG/GA तथा A_1B_1 पर लोच = OG/GA। चूँकि GA>GA_1 अतः A_1B_1 पर लोच AB की तुलना में अधिक है।

चित्र 4.8

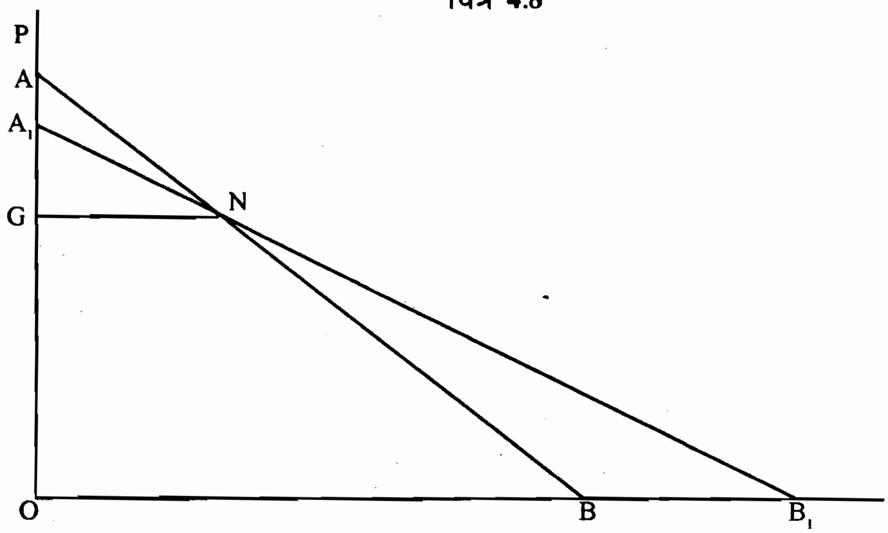

चित्र 4.8 : यहाँ दो माँग-वक्र N बिदु पर काट रहें है। यहाँ भी हम चित्र 4.6 में विकसित संबंध εN = OG/AG का प्रयोग कर इनकी लोच की तुलना कर सकते हैं।

आइए, अब ऐसी माँग-वक्र की ओर ध्यान दें जो सरल रेखा नहीं हो। चित्र 4.9 के भाग (क) में ऐसी ही एक माँग-वक्र दिखाई गई है। हम बिंदु N पर वक्र की एक स्पर्श रेखा AB खींच देते है। यहाँ N बिंदु पर लोच के मान का अनुमान इस बिंदु पर रेखीय अनुमान AB द्वारा लगाया जा सकता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 4.9 (क)

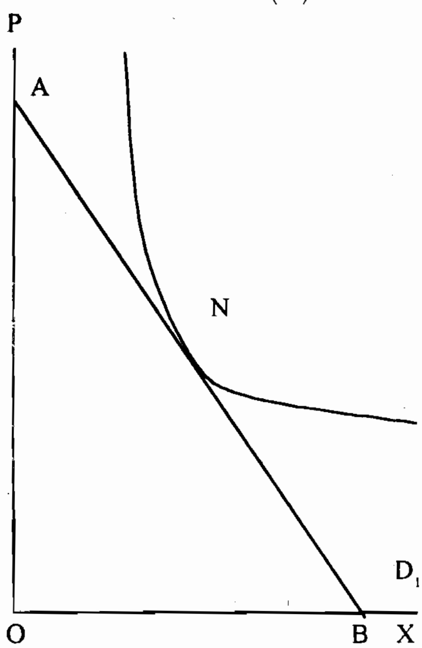

चित्र 4.9 (ख)

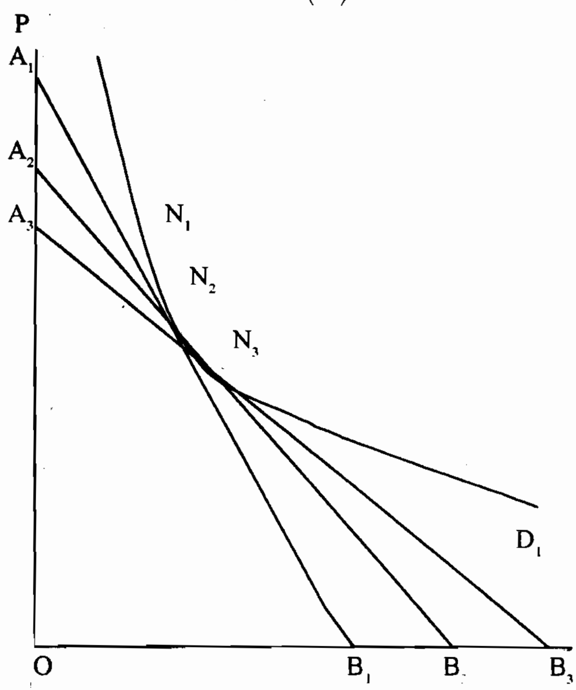

चित्र 4.9 यह बताता है कि वक्रीय माँग-वक्रों के मामले में हम चर्चागत बिंदु N पर स्पर्श रेखा को माँग-वक्र रेखीय अनुमान मानकर इस स्पर्श रेखा का प्रयोग कर अपने पुराने तरीके से लोच का अनुमान लगा सकते हैं।

अब हम N बिंदु पर लोच को NB/NA द्वारा अभिव्यक्त कर सकते हैं। चित्र का माँग-वक्र (ख) यह दिखाता है कि हम जैसे-जैसे माँग-वक्र D_1 पर ऊपर या नीचे की ओर जाते हैं, प्रत्येक बिंदु N_1, N_2, N_3 आदि स्पर्श रेखा भी बदल जाती है।

अतः बिंदु N_1 पर लोच $= N_1B_1/N_1A_1$

बिंदु N पर लोच $= N_2B_2/N_2A_2$

बिंदु N_1पर लोच $= N_3B_3/N_3A_3$ आदि।

माँग-वक्र D_1 के किसी भी बिंदु पर इसी तरह से हम लोच के मान अनुमान लगा सकते हैं।

बोध प्रश्न 4

1) निम्न चित्र पर विचार करें। बिंदुओं तथा पर लोच का मान क्या होगा?

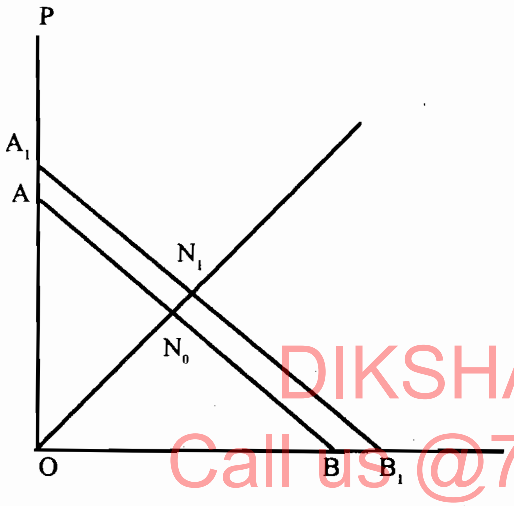

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

4.7 कीमत लोच : व्यय विधि

माँग कीमत का फलन होने के कारण जैसे-जैसे किसी माँग-वक्र पर कीमत बदलती है, माँग की मात्रा में भी परिवर्तन आ जाता है। इस प्रकार कीमत तथा मात्रा में परिवर्तन के कारण वस्तु पर हुआ व्यय भी बदल जाता है। अतः इस कीमत (और मात्रा) के परिवर्तन से व्यय में हुए परिवर्तनों की तुलना द्वारा भी हम यह जान सकते है कि माँग लोचशील है, कम लोचशील है अथवा इसकी लोच एकिक है। हम कुल व्यय को ही कुल खर्च या कुल आगम का नाम देते है यह कीमत तथा मात्रा का गुणन फलन है। अतः

$$R_1 = P_1X_1$$

आइए, अब कीमत में कमी पर विचार करें। कुल व्यय विधि के अनुसार :

i) अगर कीमत कम होने पर कुल वस्तु पर कुल व्यय बढ़ जाता है तो माँग की लोच $|\varepsilon_{11}|>1$

ii) अगर कीमत गिरने से वस्तु पर कुल व्यय भी गिर जाता है तो $|\varepsilon_{11}|<1$, तथा

iii) अगर कीमत गिरने पर वस्तु पर होने वाला कुल व्यय अप्रभावित रहता है तो $|\varepsilon_{11}|=1$

इस तरह से कीमत वृद्धि की स्थिति को भी यह विधि तीन ही दशाओं में बाँट देती है :

i) यदि कीमत वृद्धि से वस्तु पर कुल व्यय कम होता है तो $|\varepsilon_{11}|>1$

ii) यदि कीमत वृद्धि से वस्तु पर कुल व्यय बढ़ जाता है तो $|\varepsilon_{11}|<1$ तथा

iii) यदि कीमत वृद्धि से वस्तु पर कुल व्यय अप्रभावित रहता है तो $|\varepsilon_{11}|=1$

यहाँ पहली स्थिति में योग लोचशील, दूसरी में कम लोचशील तथा तीसरी में एकिक लोचशील होती है।

यह ध्यान में रखने योग्य बात है कि इस विधि से लोच का ठीक-ठीक मान ज्ञात करना संभव नहीं होता। यह विधि केवल यह जानकारी ही प्रदान करता है कि लोच इकाई से कम है या ज्यादा।

बोध प्रश्न 5

1) निम्न तालिका में दी गई जानकारी का प्रयोग कर कीमत के 10 रुपये से 9 रुपये, 9 रुपये से 8 रुपये, 8 रुपये से 7 रुपये, 7 रुपये से 6 रुपये होने पर माँग की लोच की दिशा ज्ञात करें:

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

कीमत (रुपये)	10	9	8	7	6
मात्रा (किलोग्राम)	60	75	80	84	88

....

....

....

....

....

....

4.8 माँग की तिरछी लोच (CROSS ELASTICITY OF DEMAND)

आइए, अब हम किसी संबद्ध वस्तु, (यह प्रतिस्थापक हो या प्रतिपूरक) की कीमत में परिवर्तन के प्रति माँग-वक्र की संवेदनशीलता पर विचार करें। अब वस्तु X_1 की माँग-वक्र के लिए हम उसकी अपनी कीमत P_1 को स्थिर रखते है पर किसी संबद्ध वस्तु की कीमत P_2 में परिवर्तन होने देते है। अतः 'अन्य बातें स्थिर या पूर्ववत्' रहने की शर्त के अनुसार सामान्यतः वस्तु X_1 की माँग में कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य आएगा।

इस परिवर्तन का आँकलन तिरछी लोच की अवधारणा के अनुसार हो सकता है। वस्तु X_1 की किसी अन्य वस्तु की कीमत P_2 के प्रति संवेदनशीलता या लोच को हम ε_{12} द्वारा दिखाते है। इसे वस्तु X_1 की माँग की वस्तु X_2 की कीमत में परिवर्तन (P_2) के प्रति संवेदनशीलता कहा जाता है। यह बताती है कि P_2 में परिवर्तन होने पर X_1 की माँग किस प्रकार व्यवहार करती है। अतः

$$\varepsilon_{12} = \frac{(\Delta Q_1/Q_1)}{(\Delta P_2/P_2)}$$

अंश (numerator) में हमने वस्तु X_1 की माँग में सापेक्ष या अनुपातिक परिवर्तन रखा है और हर (denominator) में P_2 में आए अनुपातिक परिवर्तन को रखा गया है यहाँ भी अंश तथा हर को (अंलग-अलग) 100 से गुणा कर प्रतिशत परिवर्तन का अनुपात दिखाया जा सकता है।

$$\varepsilon_{12} = \frac{\{\Delta Q_1/(Q^0_1+Q^1_1)\}}{\{\Delta P_2/(P^0_2+P^1_2)\}}$$

यदि हम चाप विधि का प्रयोग करें तो :

बिंदु विधि के अनुसार :

$$\varepsilon_{12} = \frac{(\partial Q_1/Q_1)}{(\partial P_2/\partial P_2)} = \left(\frac{\partial Q_1}{\partial P_2}\right)(P_2/Q_1)$$

तिरछी लोच का चिह्न वस्तु तथा के संबंध का परिचायक है। यदि ε_{12} धनात्मक हो तो वस्तु X_1 तथा X_2 एक दूसरे की प्रतिस्थापक होती है। इसके विपरीत यदि यह चिह्न ऋणात्मक हो तो दोनों वस्तुएँ परस्पर प्रतिपूरक होगी। ε_{12} के शून्य होने का अर्थ है दोनों वस्तुओं की स्वतंत्रता या उनके बीच प्रत्यक्ष संबंध का अभाव (यहाँ अप्रत्यक्ष संबंध की संभावना से इंकार नहीं किया जा रहा)। यह ध्यान में रहे कि यद्यपि कीमत लोच का सामान्य चिह्न ऋणात्मक होता है पर तिरछी लोच धनात्मक भी हो सकती है। प्रतिस्थापक वस्तुओं के लिए इसका मान धनात्मक तथा प्रतिपूरकों के लिए ऋणात्मक होता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ε_{12} का मान X_1 तथा X_2 के बीच संबंध की गहनता को दर्शाता है चाहे यह संबंध प्रतिस्थापना का हो या प्रतिपूरकों का।

बोध प्रश्न 6

1) यदि वस्तु X की माँग की Y कीमत के प्रति तिरछी लोच 2.5 है तो बताइए कि X वस्तु Y की प्रतिस्थापक है या प्रतिपूरक?

....

....

....

....

....

2) निम्न तालिका की जानकारी का प्रयोग कर Y की कीमत 5 रुपये से घटकर 4 रुपये होने पर वस्तु X की माँग की तिरछी लोच का आकलन करें और वस्तु के स्वरूप (पारस्परिक संबंध) पर भी टिप्पणी करें।

Y की कीमत रुपयों में	8	7	6	5	4	3
X की माँग	40	56	62	67	70	72

....

....

....

....

....

4.9 माँग की आय लोच

अभी तक हमने दो प्रकार की अवस्थाओं पर चर्चा की हैं :

1) संबद्ध वस्तुओं की कीमत तथा आय स्थिर रहने पर किसी वस्तु की अपनी कीमत में बदलाव आए, तथा

2) तिरछी लोच जब किसी संबद्ध वस्तु की कीमत में परिवर्तन हो और अन्य सभी बातें स्थिर रहें। आइए, अब आय में परिवर्तन का किसी वस्तु की माँग की मात्रा पर प्रभाव समझने का प्रयास करें। हमारी माँग-फलन है :

DIKSHANT IAS

$$X_1 = f(P_1, P_2, M)$$

Call us @7428092240

यहाँ P_1 वस्तु X_1 कीमत है, P_2 किसी संबद्ध वस्तु की कीमत है, तथा M उपभोक्ता की आय है।

P_1 तथा P_2 को स्थिर रखते हुए केवल M में परिवर्तन से हमें वस्तु X_1 तथा आय के बीच जो संबंध ज्ञात होता है उसे एंजल वक्र **(Engel Curve)** का नाम दिया जाता है। यह नामकरण जर्मन सांख्यिकि विद् एर्नस्ट एंजल (1821-1896) के सम्मान में हुआ है जिन्होंने 1857 में बहुत से परिवारों के बजट के अध्ययन पर आधारित एंजल नियम भी हमें प्रदान किया था। माँग की आय लोच ε_{1M} आय के परिवर्तन के प्रति माँग की संवेदनशीलता अभिव्यक्त करती है। यह बताती है कि उपभोक्ता की आय में परिवर्तन होने पर वस्तु X_1 की माँग किस प्रकार का व्यवहार प्रदर्शित करेगी। यह X_1 की माँगी गई मात्रा की आय के प्रति संवेदनशीलता का स्तर है। इससे हमें यह ज्ञात होता है कि आय में परिवर्तन किस हद तक वस्तु X_1 की माँग को प्रभावित करता है। इसे औपचारिक रूप से माँग की मात्रा के प्रतिशत परिवर्तन एवं आय के प्रतिशत परिवर्तन के अनुपात द्वारा परिभाषित किया जाता है। अतः

$$\varepsilon_{1M} = \frac{(\Delta Q_1/Q_1)}{(\Delta M/M)}$$

यहाँ $\Delta Q_1/Q_1 = X_1$ वस्तु की माँग में सापेक्ष परिवर्तन

और $\Delta M/M =$ आय में सापेक्ष परिवर्तन को दर्शाता है।

माँग की आय लोच का अभिप्राय और व्याख्या

1) यदि आय में एक प्रतिशत परिवर्तन के फलस्वरूप वस्तु X_1 की माँगी गई मात्रा में एक प्रतिशत से अधिक परिवर्तन हो तो वस्तु X_1 की माँग को आय-लोचदार कहा जाएगा।

2) यदि आय में एक प्रतिशत परिवर्तन के कारण वस्तु X_1 की माँग में एक प्रतिशत से कम परिवर्तत आता है, तो माँग आय बेलोच कही जाती है। दूसरे शब्दों में, आय का वस्तु की माँग पर कोई विशेष प्रभाव नहीं होता।

3) यदि आय का एक प्रतिशत परिवर्तन माँग में भी एक प्रतिशत का ही अंतर लाता है तो यह ऐकिक लोच की स्थिति होती है। यह लोचहीनता एवं लोचशीलता के बीच की अवस्था है।

यदि आय में परिमित (finite) परिवर्तन हो तो चाप लोच विधि ही प्रयोग में लायी जानी चाहिए। अतः $\varepsilon^A_{1M} = \{\Delta Q_1/Q^0_1 + Q'_1\} / \{\Delta M/M^0_1 + M'_1\}$ यहाँ M^0 तथा M^1 प्रारंभिक तथा अंतिम आय स्तर है तथा Q^0 और Q_1 उनसे जुड़े वस्तु X_1 के माँग के स्तर है।

दूसरी ओर आय में सूक्ष्म-सा परिवर्तन (infinitesimal) होने पर बिंदु विधि का अनुसरण उपयुक्त रहता है। अतः

$$\varepsilon^P_{1M} = (\partial Q_1/\partial M_1)/(M_1/Q_1)$$

फिर, जिन्हें लोग्रिथमिक अवकलन आता है, वे इस रूप में भी समझ सकते है :

$$\varepsilon_{1M} = \partial \log Q_1/\partial \log M$$

4.9.1 आय की लोच के आधार पर वस्तुओं का वर्गीकरण

सामान्यतः, आय लोच धनात्मक (positive) होती है। आय बढ़ने पर उपयोगिता अधिकतम करने वाला व्यक्ति सभी वस्तुओं का उपभोग बढ़ाने का प्रयास करता है। पर कभी-कभी आय में वृद्धि किसी वस्तु के उपभोग को कम भी कर सकती है।

1) जिन वस्तुओं की आय लोच धनात्मक पर एक से कम हो उन्हें सामान्य वस्तुएँ (normal goods) कहा जाता है।

DIKSHANT IAS

2) एक से अधिक एवं धनात्मक आय लोच वाली वस्तुएँ श्रेष्ठ या विलासिता की वस्तुएँ कही जाती हैं।

Call us @7428092240

3) आय लोच का ऋणात्मक होना वस्तु को घटिया या निकृष्ट वस्तुओं की श्रेणी में ले जाता है।

चित्र 4.10 में इन तीनों प्रकार की वस्तुओं की एंजल वक्र दिखाई गई है

चित्र 4.10

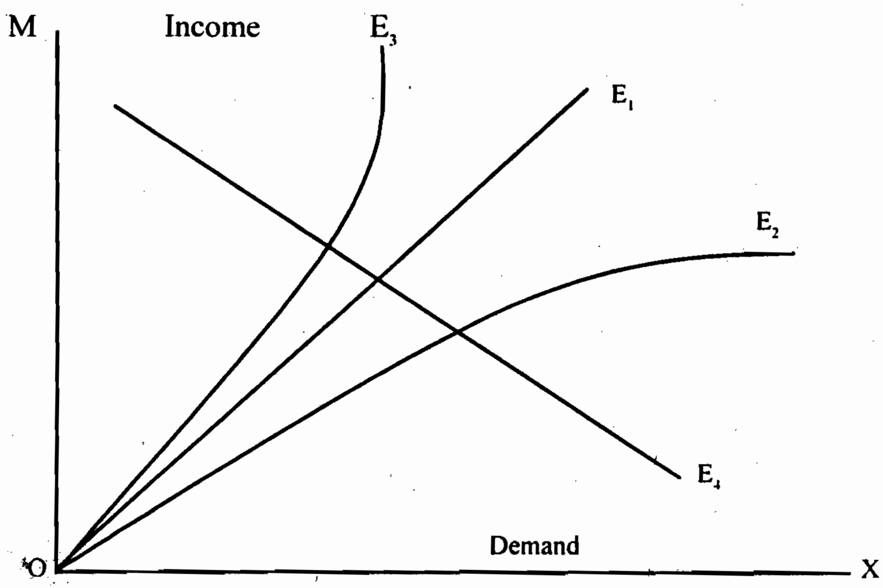

चित्र 4.10: वस्तु X_1 की एंजल वक्र आय तथा उसकी माँग का संबंध दिखाती है। हम Y अक्ष पर आय तथा X अक्ष पर वस्तु की मात्रा दिखा रहे हैं।

सामान्य तथा श्रेष्ठ या विलासिता पदार्थों की एंजल वक्र ऊपर की ओर उठती हुई बनती है। चित्र 4.10 में E_1 वक्र आय लोच का स्तर 'एक' (unity) दर्शाती है। E_2 वक्र एक से ज्यादा स्तर की आय लोच का परिचायक है (विलासिता एवं श्रेष्ठ वस्तुएँ) पर E_3 वक्र पर आय लोच एक से कम ही रहती है ऐसा प्रायः 'सामान्य वस्तु' पर लागू होता है। केवल E_4 वक्र की आय लोच ऋणात्मक है जिसका अर्थ है कि वस्तु घटिया है। जब आय लोच धनात्मक हो तो किसी वस्तु पर आय के कितने अंश का व्यय होता है इसी के आधार पर हम बता सकते है कि आय लोच एक है या उससे अधिक या कम।

चित्र 4.11

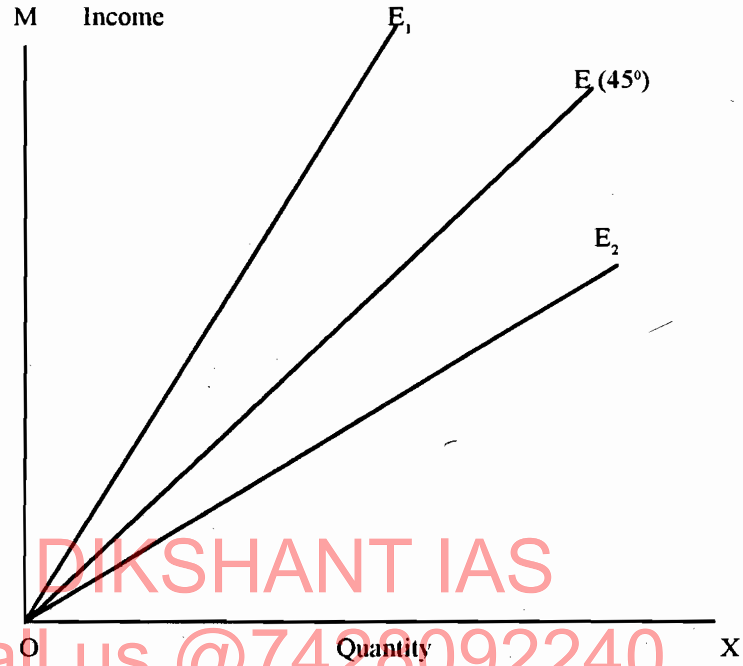

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

यदि किसी वस्तु पर खर्च और आय का अनुपात (P_1X_1/M) स्थिर रहता है तो $\varepsilon_{1M} = 1$ क्योंकि X_1 की मात्रा तथा M एक समान अनुपात में बढ़ते हैं। अतः ऐसी स्थिति में, एंजल वक्र एक सरल रेखा होगी। यह ध्यान रहे कि इस रेखा का ढाल एक, उससे कम या अधिक होना उस वस्तु पर खर्च के अनुपात पर निर्भर है।

चित्र 4.11 की एंजल वक्र E का ढाल 1 है। E_1 का ढाल 1 से ज़्यादा है अतः P_1X_1/M एक से कम रह जाता है। इन सभी पर वस्तु X_1 पर होने वाला खर्च आय को अनुपात में स्थिर रहता है। E_2 पर ढाल 1 से कम है।

चित्र 4.12

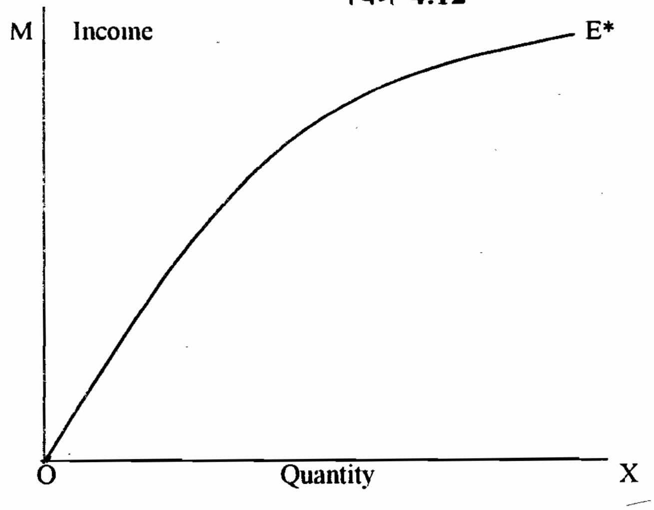

आय बढ़ने पर यदि किसी वस्तु पर खर्च का अनुपात बढ़ता है तो उसकी ε_{1M} एक से ज़्यादा होती है। यहाँ व्यय आय की अपेक्षा अधिक तेजी से बढ़ता है। यह बात चित्र 4.12 में एन्जल वक्र E* द्वारा दिखाई गई है।

इसके विपरीत यदि आय वृद्धि के साथ-साथ किसी वस्तु पर खर्च किया गया आय का अनुपात कम होने पर ε_{1M} भी एक से कम रह जाती है। अतः वस्तु X_1 की माँग आय की अपेक्षा धीमी गति से बढ़ती है। यह बात चित्र 4.13 की एंजल वक्र E_1 द्वारा दिखाई गई है।

चित्र 4.13

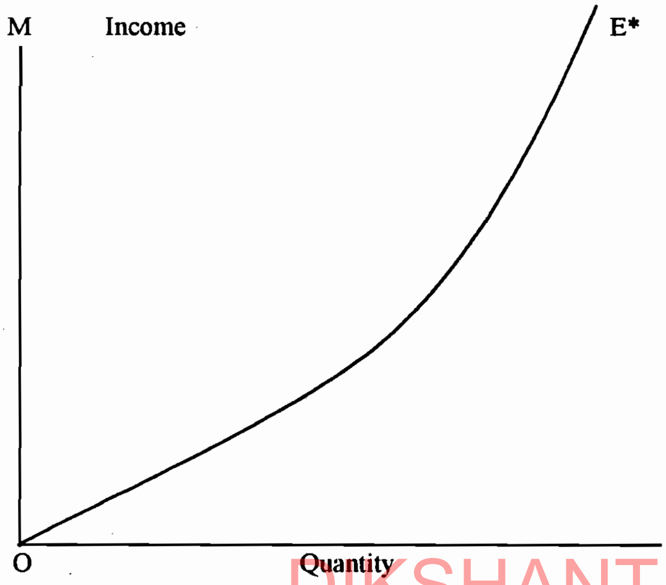

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 7

1) निम्न माँग-तालिका पर विचार करें। आय का स्तर 500 रुपये से बढ़कर 600 रुपये हो जाता है। आय लोच का आकलन करें।

आय (रुपये)	400	500	600	700	800
माँग (किलोग्राम)	10	25	45	55	60

संकेत : चाप विधि का प्रयोग करें।

....

....

....

....

....

4.10 लोच किन कारकों पर निर्भर करती है

आइए, अब उन कारकों पर विचार करें जो किसी वस्तु की माँग की लोचशीलता को प्रभावित करते हैं। इन्हें हम दो समूहों में बाँट सकते हैं। एक समूह के कारकों को कीमत परिवर्तन के माध्यम से

तो दूसरे आय परिवर्तन के माध्यम से प्रभावोत्पादक सिद्ध होते हैं। कुल मिलाकर ये कारक इस प्रकार हैं :

1) **प्रतिस्थापकों की उपलब्ध संख्या :** जिस वस्तु के प्रतिस्थापक जितने अधिक होंगे उतनी ही अधिक उसकी माँग की कीमत लोच होगी। इन के मामले में प्रतिस्थापन प्रभाव बहुत सशक्त होता है। उदाहरण स्वरूप, इलेक्ट्रोनिक वस्तुओं की माँग बहुत लोचशील है। दूसरी ओर, प्रतिस्थापक जितने कम होगी उतनी ही कम लोचशीलता रहेगी। कुछ स्थितियों में प्रतिस्थापक प्रभाव शून्य प्रायः होगा, उदाहरणस्वरूप, नमक की माँग।

2) **वस्तु की प्रकृति :** कई बार इस बात का भी लोचशीलता पर प्रभाव पड़ता है कि वस्तु एक आवश्यक वस्तु है या विलासतापूर्ण। आवश्यक और मूलभूत वस्तुओं की कीमत कुछ भी हो, किसी न किसी मात्रा में उपभोग करनी ही पड़ती है। उदाहरणस्वरूप, अनाज, तेल, चीनी, नमक, आलू, प्याज, दूध, कपड़े, परिवहन आदि। इनके मामले में प्रतिस्थापन प्रभाव काफी क्षीण रहता है।

   दूसरी और ग़ैर-मूलभूत उपभोग पदार्थों एवं विलासिता वस्तुओं की माँग अधिक लोचशील होती है। इनके प्रतिस्थापन एवं आय प्रभाव दोनों ही बहुत सशक्त होते है। उदाहरणस्वरूप, मनोरंजन, विद्युत उपकरण, निजी स्कूलों में पढ़ाई, बाहर जाकर खाना तथा बढ़िया किस्म के कपड़े आदि।

3) **किसी वस्तु पर खर्च आय का अनुपात :** यह उपभोक्ता के बजट में वस्तु के महत्त्व का ही दूसरा नाम है। जितना ज़्यादा अनुपात किसी वस्तु पर खर्च होता है। उसका आय प्रभाव भी उतना ही अधिक होता है। अतः इन वस्तुओं की माँग भी कीमत के प्रति बहुत संवेदनशील हो जाती है। अतः माँग लोचशील होती है। उदाहरणस्वरूप, दीर्घोपयोगी उपभोक्ता पदार्थ जैसे फ्रिज, टेलीविजन, पानी गर्म करने, कपड़े धोने की मशीनें, वाहन आदि। दूसरी ओर ज़िन वस्तुओं पर आय का बहुत ही छोटा सा भाग खर्च होता हो उनका आय प्रभाव भी क्षीण ही रहता है। ऐसी चीजों की माँग कीमतों के प्रति कम लोचशीलता दिखाती हैं। उदाहरणस्वरूप, नमक, चीनी, माचिस, कुछ सब्जियाँ, सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था आदि। वस्तु पर खर्च-आय का अंश न केवल वस्तु की कीमत लोच को प्रभावित करता है, वरन आय लोच के मान (degree) का भी निर्धारण करता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

4) **किसी वस्तु की कीमत का स्तर :** यदि किसी वस्तु की कीमत बहुत ऊँची हो तो इसमें छोटा-सा परिवर्तन भी महत्त्वपूर्ण आय प्रभाव को जन्म दे सकता है। इसके कारण माँग की कीमत के प्रति लोचशीलता बहुत बढ़ जाएगी। उदाहरणस्वरूप, घरेलू इलेक्ट्रोनिक साज सामान। यदि कीमत का स्तर पहले ही बहुत नीचा हो तो आय प्रभाव भी बहुत कमजोर-सा ही होगा अतः माँग की लोच कम रहेगी। उदाहरणस्वरूप, नमक, माचिस, पालक या फिर ढाबे का चाय का एक कप आदि।

5) **समय अवधि :** वह समय अवधि जिसमें उपभोक्ता अपनी माँग को नई कीमत आदि के अनुरूप ढाल सके भी माँग की लोच पर गहरा प्रभाव डालती है। यदि अवधि जितनी लंबी होगी लोचशीलता भी उतनी ही अधिक हो जाएगी। उपभोक्ता की रुचियाँ आदि बहुत धीरे-धीरे बदलती है तथा नई चीजों के प्रति लगाव भी एकदम से पैदा नहीं हो जाता। अतः, माँग दीर्घकाल में अल्पकाल की अपेक्षा अधिक लोचशीलता का प्रदर्शन करती है। यह बात किसी हद तक उपभोक्ता की जानकारी व जागरूकता के स्तर और मानसिकता पर भी निर्भर करती है।

4.11 माँग की लोच की अवधारणा का महत्त्व

प्रत्येक व्यक्ति जो किसी तरह से निर्णय प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है, उसके लिए माँग की लोच (कीमत और तिरछी आय) महत्त्वपूर्ण होती है। चाहे वह निर्णयकर्ता व्यापारिक फर्म से जुड़ा हो या सरकार से, आर्थिक आयोजन से या अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संस्थान से।

जब तक व्यापारिक फर्म को अपनी वस्तु की कीमत लोच तथा तिरछी लोच की जानकारी नहीं होगी वह उसकी कीमत नियत नहीं कर सकती। अल्प प्रतियोगी बाज़ारों में तो फर्मों की निर्णय प्रक्रिया परस्पर निर्भर रहती है। अतः वहाँ तो तिरछी लोच का विचार प्रत्यक्ष कीमत लोच से भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है। अल्पाधिकारी बाज़ार में तिरछी लोच पर ध्यान नहीं देना घातक सिद्ध हो सकता है।

इसी प्रकार, एक सरकारी अधिकारी कीमत लोच व आय लोच की जानकारी के अभाव में कर संरचना संबंधी फैसले नहीं कर पायेगा। कर राजस्व अधिकतम करने के लिए कम कीमत एवं आय लोच वाली चीजों पर कर लगाना आवश्यक होता है। इसी तरह से करों की दरों, फीस, कीमत आदि जैसे बिजली की दरों, रेल भाड़ा, दूध आदि की कीमतें, अनाज की कीमतें, टैक्सी भाड़े व सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था में किराए आदि के निर्णय भी माँग की लोचशीलता को ध्यान में रखकर ही किए जाते हैं।

दूसरी ओर विभिन्न वस्तुओं की आय लोचशीलता की जानकारी के आधार पर ही आयोजक भविष्य में उनके उत्पादन के लक्ष्य निर्धारित करते हैं। इसी तरह विश्व व्यापार तथा विनिमय दरों से संबंधित अंतर्राष्ट्रीय संस्थान विभिन्न वस्तुओं की माँग एवं आपूर्ति की लोचशीलता की जानकारी पर ही व्यापार एवं भुगतान शेष आदि में हस्तक्षेप की नीतियाँ निर्धारित करते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

4.12 सारांश

इस इकाई में हमने किसी वस्तु के माँग-फलन पर बहुत विस्तार से विचार किया है। हमनें देखा कि माँग के निर्धारक चरों में से किसी में भी परिवर्तन का माँग पर क्या प्रभाव पड़ता है। यह प्रतिक्रिया (i) वस्तु की अपनी कीमत में परिवर्तन या (ii) किसी प्रतिस्थापक या प्रतिपूरक की कीमत में परिवर्तन या फिर (iii) उपभोक्ता की आय अथवा प्रयोज्य आय में परिवर्तन के फलस्वरूप जन्म ले सकती है। इसी आधार पर हमने कीमत लोच, तिरछी लोच और आय लोच के विचारों को निबद्ध किया है। इस लोच के प्रति दो दृष्टिकोणों से मापने की दो विधियाँ जन्म लेती हैं– चाप विधि और बिंदु विधि।

कीमत में निश्चित परिवर्तन होने पर हम चाप विधि का प्रयोग करते हैं। जैसे कि कीमत का 10 रुपये से घटकर 9 रुपये होना एक निश्चित परिवर्तन दिखाता है। यदि कीमत परिवर्तन बहुत ही सूक्ष्म हो तो फिर बिंदु विधि ही उपयुक्त रहती है। जैसे 6 रुपये कीमत पर माँग की लोच हो तो माँग-वक्र का एक बिंदु ही होगा। निहित मान्यता है कि कीमत में अतिसूक्ष्म परिवर्तन हुआ है और माँग-वक्र के दोनों बिंदु इतने निकट हैं, कि हम सरलता से उनका अंतर नहीं देख पाते। हमने ज्यामितिक विधियों द्वारा भी लोच का माप सीखा है। तिरछी लोच द्वारा वस्तुओं के प्रतिस्थापक या प्रतिपूरक स्वरूप का निर्धारण करने पर भी इस इकाई में प्रकाश डाला गया है। प्रतिस्थापकों की तिरछी लोच का चिह्न धनात्मक रहता है जबकि प्रतिपूरकों की तिरछी लोच ऋणात्मक होती है। अंत में, हमने नीति निर्धारकों व्यापारी फर्मों तथा आर्थिक आयोजकों के लिए माँग की लोच की अवधारणा की उपयोगिता की चर्चा के साथ इस विषय का उपसंहार किया है।

4.13 शब्दावली

आय लोच : आय परिवर्तन के प्रति माँग संवेदना का स्तर।

ऐकिक लोचशील माँग : माँग की संवेदनशीलता का कीमत परितर्वन के समान (पर विपरीत दिशा में) होना। यहाँ कीमत में एक प्रतिशत परिवर्तन से माँग में भी एक प्रतिशत परिवर्तन होता है।

कीमत लोच : वस्तु की अपनी कीमत में परिवर्तन के प्रति माँग की संवेदना का स्तर।

चाप लोच : माँग-वक्र के एक निश्चित खंड में माँग की संवेदनशीलता, यहाँ कीमत परिवर्तन अ-सतत् रहता है।

माँग-फलन : किसी वस्तु की माँग मात्रा तथा उसकी अपनी कीमत के बीच कारण प्रभाव संबंध की अभिव्यक्ति।

माँग का प्रसार : किसी माँग-वक्र पर नीचे की ओर बढ़ना। यहाँ कीमत कम होने पर माँग की मात्रा बढ़ती है।

माँग का संकुचन : माँग-वक्र पर ऊपर की ओर चलना– यह कीमत वृद्धि के कारण माँग की मात्रा की कमी को दिखाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

माँग में कमी या गिरावट : माँग-वक्र का बायीं ओर खिसकना। कीमत को छोड़ अन्य कारकों में परिवर्तन के कारण ऐसा होता है।

माँग में वृद्धि : पूरे माँग-वक्र का बाहर, ऊपर, दाहिनी ओर खिसकना। सामान्यत: कीमत को छोड़ अन्य कारकों में बदलाव का माँग पर प्रभाव इसी तरह दिखाते हैं।

बिंदु लोच : किसी वस्तु की कीमत में अतिसूक्ष्म परिवर्तन के प्रति माँग की संवेदनशीलता का माप।

लोचशील माँग : माँग की संवेदनशीलता का कीमत परिवर्तन से विपरीत दिशा में अधिक सशक्त होना।

लोचहीन माँग : माँग की संवेदनशीलता का कीमत परिवर्तन की तुलना में बहुत क्षीण होना।

4.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

रिचर्ड लिप्से : *इन्ट्रोडक्शन टु पॉजिटिव इक्नॉमिक्स* (नवीनतम संस्करण)
डोमिनिक साल्वाटोर : *माइक्रोइकनॉमिक थ्यौरी*, शॉम सिरीज़ (तृतीय संस्करण)
डी.बेग, आर.डॉर्नविश्, एस.फिशर : *इक्नॉमिक्स* (चतुर्थ संस्करण)
डी.साल्वाटोर : *माइक्रोइक्नॉमिक्स*, द्वितीय संस्करण, हार्पर कोलिन्स
डब्ल्यु. निकल्सन : *इन्टरमीडिएट माइक्रोइक्नॉमिक्स*, छठा संस्करण
टिमोथी ट्रीअर्थन : *माइक्रोइक्नॉमिक्स*, प्रथम संस्करण, 1996

4.15 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

बोध प्रश्न 1

1) दाहिनी ओर खिसकन

2) माँग में प्रसार, माँग में संकुचन

बोध प्रश्न 2

1) कीमत 10 प्रतिशत गिरती है तो माँग 15 प्रतिशत बढ़ती है। माँग लोचशील है। लोच इकाई से अधिक है।

2) ε_{11} = 0.338, कीमत लोच इकाई से कम है। अतः माँग बेलोच है।

बोध प्रश्न 3

1) चाप विधि से माँग बेलोच है।

2) बिंदु विधि से यहाँ लोच इकाई से कम है।

बोध प्रश्न 4

1) N_0 तथा N_1 दोनों पर लोच का मान एक समान है।

बोध प्रश्न 5

कीमत	मात्रा	व्यय	दिशा
10	60	600	-
9	75	675	$\varepsilon>1$
8	80	640	$\varepsilon<1$
7	84	582	$\varepsilon<1$
6	97	582	$\varepsilon=1$

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 6

1) चिह्न धनात्मक है। अतः यह एक प्रतिस्थापक वस्तु है।

2) तिरछी लोच = {3/(67+70)}/ {-1/(5+4)} = -27/137 = -0.197। वस्तु प्रतिपूरक है।

बोध प्रश्न 7

1) आय लोच = {20/(25+45)} / {100/(500+600)} = 3.14 अतः आय लोच इकाई से अधिक है, माँग को आय लोचदार कहा जाएगा।

इकाई 5 उपभोक्ता का संतुलन

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 उपभोक्ता का व्यवहार : गणनसूचक उपयोगिता दृष्टिकोण
5.3 अंततः ह्रासमान उपयोगिता का नियम
5.4 उपभोक्ता का संतुलन
5.5 गणनसूचक दृष्टिकोण में माँग में नियम का आधार
5.6 उपभोक्ता बचत
5.7 क्रमसूचक उपयोगिता एवं उपभोक्ता का व्यवहार-अनधिमान-वक्र विश्लेषण
5.8 उपभोक्ता का बजट संरोध
5.9 क्रमसूचक उपयोगिता दृष्टिकोण में उपभोक्ता का संतुलन
5.10 कुछ विशेष अवस्थाएँ
5.11 कीमत-उपभोग वक्र
5.12 आय-उपभोग वक्र
5.13 कीमत-प्रभाव, प्रतिस्थापन-प्रभाव, आय प्रभाव
5.14 किसी वस्तु की माँग-वक्र की व्युत्पत्ति
5.15 घटिया वस्तुएँ एवं गिफ़ेन वस्तुएँ
5.16 सारांश
5.17 शब्दावली
5.18 कुछ उपयोगी पुस्तकें
5.19 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- उपभोक्ता की संतुलन प्राप्ति की प्रक्रिया की व्याख्या कर सकेंगे;
- उपभोक्ता व्यवहार को समझाने के लिए गणनसूचक उपयोगिता सिद्धांत का प्रयोग कर सकेंगे;
- सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम की व्याख्या कर सकेंगे;
- मार्शल के सम-सीमांत उपयोगिता नियम के आधार पर उपभोक्ता के संतुलन की व्याख्या कर पाएँगे। इसी नियम के आधार पर माँग का नियम निर्धारित कर पाएँगे;
- उपभोक्ता बचत की संकल्पना समझा पाएँगे;
- क्रमसूचक उपयोगिता सिद्धांत के आधार पर उपभोक्ता का व्यवहार समझा सकेंगे, (हिक्स एवं एलेन विधि)
- क्रमसूचक उपयोगिता सिद्धांत की सहायता से उपभोक्ता संतुलन समझा सकेंगे;
- कीमत प्रभाव का प्रतिस्थापन एवं आय प्रभावों के माध्यम से विश्लेषण कर पाएँगे;

- एक वस्तु का कीमत-उपभोग वक्र, आय-उपभोग वक्र एवं किसी वस्तु की माँग-वक्र प्राप्त कर पाएँगे;
- सामान्य, घटिया एवं गिफ़िन वस्तुओं के भेद समझा सकेंगे; तथा
- उपर्युक्त दोनों सिद्धांतों की तुलनात्मक विवेचना कर पाएँगे।

5.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमने आपका परिचय माँग-फलन, इसके निर्धारक तत्त्वों और लोचशीलता से कराया था। यहाँ हम उपभोक्ता के व्यवहार के विश्लेषण द्वारा माँग के नियम की व्याख्या करेंगे। माँग का नियम यह है : "अन्य बातें पूर्ववत् रहने पर यदि किसी वस्तु की कीमत में वृद्धि होती है तो उसकी कम मात्रा की माँग होती है। यदि कीमत कम हो जाए तो माँगी गई मात्रा में वृद्धि हो जाती है।" दूसरे शब्दों में, हम कीमत एवं माँग की मात्रा के बीच विपरीत संबंध की व्याख्या करना चाहते हैं। इस इकाई में हम इस विषय से जुड़ी दो अवधारणाओं से आपको परिचित कराएँगे। प्रथम है अल्फ्रेड मार्शल (Alfred Marshall) की गणनसूचक उपयोगिता अवधारणा। दूसरी अवधारणा जे.आर. हिक्स (J.R. Hicks) एवं आर.जी.डी. एलेन (R.G.D. Allen) की अनधिमान-वक्र अवधारणा या क्रमसूचक उपयोगिता अवधारणा है।

हिक्स एलेन के अनुसार मार्शल दृष्टिकोण की कुछ प्रतिबंधात्मक पूर्वधारणाएँ रही हैं, जैसे कि उपयोगिता गणनसूचक अवधारणा है और मुद्रा की सीमांत उपयोगिता स्थिर है। मार्शल का सिद्धांत घटती सीमांत उपयोगिता के नियम एवं अंतर्वैयक्तिक उपयोगिता (inter-personal utility) की तुलना पर आधारित है। हिक्स ऐलन दृष्टिकोण में इनकी आवश्यकता नहीं पड़ती। इस दृष्टिकोण में अनधिमान-वक्रों का प्रयोग होता है। अतः, पहले हम इन वक्रों की विशेषताएँ समझाएँगे। फिर उपभोक्ता की आय, बाज़ार कीमतों (उपभोक्ता बजट) के सहारे अनधिमान (=समभाव) वक्रों द्वारा एक विवेकशील उपभोक्ता के संतुलन की प्राप्ति को दर्शाएँगे। उपभोक्ता की आय एवं वस्तु की कीमत का उसकी माँग पर भी प्रभाव पड़ता है। अतः इनमें परिवर्तन आने पर उपभोक्ता के संतुलन बिंदु में भी बदलाव आएगा। हम कीमत-उपभोग वक्र एवं आय-उपभोग वक्र की अवधारणाएँ भी समझाएँगे। कीमत-उपभोग वक्र के आधार पर हम वस्तु का माँग-वक्र प्राप्त करेंगे। अंततः सामान्य, घटिया एवं गिफेन वस्तुओं के भेद स्पष्ट किए जाएँगे। केवल गिफेन पदार्थ ही सामान्य माँग के नियम का उल्लंघन करते हैं, उनकी माँग-वक्र दाहिनी ओर ऊपर की तरफ उठती है। घटिया वस्तु में माँग-वक्र ऊपर की ओर ढलवा हो यह आवश्यक नहीं है। यह प्रतिस्थापन एवं आय प्रभावों के परस्पर संयोग पर निर्भर करता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

5.2 गणनसूचक उपयोगिता दृष्टिकोण

अर्थशास्त्र की नव-क्लासिकी (Neo-classical) चिंतन धारा के एक महत्त्वपूर्ण सदस्य अल्फ्रेड मार्शल (1842-1924) ने अपनी पुस्तक अर्थशास्त्र के सिद्धांत (1890) में हमें उपभोक्ता के व्यवहार की गणनसूचक उपयोगिता अवधारणा प्रदान की थी। नीतिशास्त्र की उपयोगितावादी प्रशाखा (Utilitarian School of Ethics) के प्रवर्तक जेरेमी बेन्थम (Jeremy Benthan, 1778-1832) का अनुसरण करते हुए उपयोगिता को एक भाववाची अनुभूति– प्रसन्नता, संतुष्टि, इच्छापूर्ति अभाव मुक्ति– आदि माना गया है। ये अनुभूति किसी वस्तु के उपभोग से जुड़ी रहती है– इसी के लिए व्यक्ति उपभोग करता है। मार्शल की मान्यता थी कि वस्तु की इच्छापूर्ति क्षमता उपयोगिता को वज़न या ऊँचाई की तरह ही मापा जा सकता है। दूसरे शब्दों में, उपयोगिता मापन का परिमाणात्मक

पैमाना विद्यमान होता है– यह 'मान्यता' वास्तव में बहुत ही प्रतिबंधित मान्यता थी। यह कहा जा सकता है कि *मिली* को चाय के एक कप से 2 इकाई उपयोगिता मिलती है। पर यदि उपयोगिता मापन योग्य है तो इसके मापने की इकाई भी होनी चाहिए। बैन्थम ने तो मनोवैज्ञानिक इकाई 'युटिल' (util) की कल्पना की थी। पर 'युटिल' का प्रयोग यहाँ संभव नहीं है, क्योंकि मनोवैज्ञानिक इकाई होने के नाते इसका आकार तो एक व्यक्ति के लिए कुछ होगा, दूसरे के लिए कुछ और। अत: मार्शल ने रुपये से 'उपयोगिता' का माप करना चाहा। यह इकाई समाज के सभी सदस्यों को लिए समान रूप से मान्य हो सकती है। हमारे उपर्युक्त उदाहरण में हम कह सकते हैं कि *मिली* को एक कप चाय से दो रुपये के बराबर 'उपयोगिता' प्राप्त होती है। पर यहाँ एक अन्य मान्यता भी आवश्यक हो जाती है कि रुपये की उपयोगिता प्रत्येक उपभोक्ता के लिए एक समान भी होनी चाहिए। आखिर मापन के मानदण्ड का आकार तो स्थिर ही रहना चाहिए।

उपभोक्ता के इस गणनसूचक स्वरूप का एक निहित अर्थ यह रहा कि वस्तु की विभिन्न इकाइयों से प्राप्त उपयोगिता को जोड़ा जा सकता है। यही नहीं, विभिन्न उपभोक्ताओं को प्राप्त हुई उपयोगिताओं की तुलना भी हो सकती है। इस प्रकार 'कुल उपयोगिता' एवं 'सीमांत उपयोगिता' की बात भी की जा सकती है। सीमांत उपयोगिता (MU) को वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से कुल उपयोगिता में हुई वृद्धि के रूप में परिभाषित किया गया। यह अतिरिक्त उपयोगिता अतिरिक्त उपयुक्त इकाई का अनुपात होगी। एक उदाहरण:

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

वस्तु की मात्रा	कुल उपयोगिता	सीमांत उपयोगिता
(X)	(TU)	(MU)
1	2	-
2	5	3
3	9	4
4	14	5
5	17	3
6	19	2
7	20	1

वस्तु X की पहली इकाई के लिए तो सीमांत उपयोगिता का आकलन नहीं हो पाता। दूसरी इकाई के उपभोग पर कुल उपयोगिता 5 हो जाती है। अत: सीमांत उपयोगिता होगी : (5-2)/(2-1) = 3/1 = 3 क्योंकि मात्रा में परिवर्तन = 1 अथवा $\Delta X = 1$। दूसरे शब्दों में,

$$MU = \frac{TU_2 - TU_1}{\Delta X = 1}$$

यहाँ TU_1 वस्तु X की एक इकाई के उपभोग से प्राप्त उपयोगिता है। इसी प्रकार, TU_2 उसकी दो इकाइयों के उपभोग से प्राप्त कुल उपयोगिता है। सामान्य स्वरूप में हम कह सकते हैं कि :

$$MU = \frac{TU_n - TU_{n-1}}{X_n - X_{n-1}}$$

जहाँ n, (n-1) वस्तु की उपभोग की गई इकाइयों की संख्या है।

मार्शल की एक अन्य महत्त्वपूर्ण मान्यता थी उपयोगिताओं की पारस्परिक 'स्वतंत्रता'। उनका कहना था कि समोसे से प्राप्त उपयोगिता सेण्डविच से प्राप्त उपयोगिता पर आश्रित नहीं होगी।

इन सभी मान्यताओं का सम्मिलित प्रभाव यह होगा कि उपयोगिता-फलन (जो कि उपभोक्ता की अभिरुचियों को अभिव्यक्त करता है) का स्वरूप:

$U = f(X_1, X_2, \ldots X_n)$ होगा एवं इसकी दो विशेषताएँ होंगी योज्यता (additivity) एवं विभाज्यता (separability) अर्थात्,

$$U = U(X_1) + U(X_2) + \ldots + U(X_n)$$

जहाँ $U(X_1) = f_1(X_1)$

$U(X_2) = f_2(X_2)$

....

....

$U(X_n) = f_n(X_n)$

इसका अर्थ है कि किसी वस्तु से प्राप्त उपयोगिता केवल उस वस्तु की उपयुक्त मात्रा पर निर्भर होगी। समग्र उपयोगिता विभिन्न वस्तुओं से प्राप्त हुई उपयोगिता का योगफल ही होगी।

अब उपभोग का उद्देश्य समग्र उपयोगिता को उच्चतम स्तर पर ले जाना होता है।

नोट : जब उपयोगिता-फलन द्वारा उपभोक्ता की अभिरुचियों को अभिव्यक्त किया जाता है, अर्थात् $U = f(X_1)$ आदि तो पहली वस्तु की सीमांत उपयोगिता U-फलन के प्रथम कोटि के X के अनुसार आंशिक आकलन (partial dertivative) के समान होगी। अर्थात्,

DIKSHANT IAS

यह सीमांत विश्लेषण अवकलन (differential calculus) पर आधारित है। अवकलन के सटीक प्रयोग के लिए यह आवश्यक होता है कि वस्तु की इकाइयों का अतिसूक्ष्म विभाजन किया जा सके।

Call us @7428092240

$$Mu = \frac{\partial u}{\partial x_1}$$

अर्थात् वस्तु के उपभोग को बहुत ही सूक्ष्म मात्राओं में परिवर्तित किया जा सकता है। इस तरह से उपयोगिता-फलन एक 'अविछिन्न' (continuous) फलन बन जाता है और इसका दो बार अवकलन संभव हो पाता है।

मार्शल की उपभोक्ता व्यवहार अवधारणा की एक अन्य मान्यता थी कि उपभोक्ता कभी किसी वस्तु से 'संतृप्त' नहीं होगा। संतृप्त हो जाने का अर्थ होगा कि उस वस्तु की सीमांत उपयोगिता शून्य रह जाएगी। इस मान्यता के आधार पर ही हम कहते हैं कि उपभोक्ता सदैव ही किसी वस्तु की कम मात्रा की अपेक्षा अधिक मात्रा को ही प्राप्त करना चाहेगा।

बोध प्रश्न 1

1) निम्न तालिका में दूध की विभिन्न उपयुक्त मात्राओं से प्राप्त कुल उपयोगिता दर्शाई गई है। इससे सीमांत उपयोगिता का आकलन करें :

दूध-लीटरों में	1	3	5	8	12
कुल उपयोगिता	10	15	28	40	56

5.3 अंततः ह्रासमान उपयोगिता का नियम

अंततः ह्रासमान उपयोगिता का नियम वास्तव में मार्शल के माँग के नियम का आधार-स्तंभ ही है। इसका अभिप्राय है कि वस्तु की पर्याप्त मात्रा के उपभोग के पश्चात् उपभोक्ता को अतिरिक्त इकाइयों से प्राप्त सीमांत उपयोगिता उत्तरोत्तर कम होती जाती है। अर्थात्, इस उपभोग स्तर से आगे प्रत्येक अतिरिक्त इकाई की सीमांत उपयोगिता पूववर्ती इकाई से कम रह जाती है। यह नियम आत्मालोचन पर आधारित है। इसका तार्किक आधार कुछ इस प्रकार है : जब किसी वस्तु की थोड़ी-सी ही मात्रा उपलब्ध है तो व्यक्ति अपनी सबसे गहन आवश्यकताओं की पूर्ति द्वारा ही अपनी समग्र उपयोगिता को अधिकतम करने का प्रयास करेगा। पर जैसे-जैसे वस्तु की मात्रा बढ़ती जाती है, उसका प्रयोग अपेक्षाकृत कम 'गहन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी होने लगता है। इसी कारण अतिरिक्त इकाइयों से अपेक्षाकृत कम उपयोगिता मिल पाती है।

उदाहरणस्वरूप, मान लीजिए कि आपके क्षेत्र में पानी की भयंकर कमी हो गई है और आपको केवल एक जग पानी मिल पाता है। आप इसका प्रयोग कैसे करेंगे? स्वाभाविक है आप इसे पीना ही चाहेंगे। हो सका तो खाना बनाने में भी प्रयोग कर लेंगे। यदि अगले दिन से आपको एक-दो जग अधिक मिल जाएँ तो आप मुँह धोने या फिर नहाने का भी विचार कर सकते हैं। जैसे-जैसे यानि पानी की अपेक्षाकृत अधिक मात्रा सुलभ होती है, आप उसका प्रयोग कम जरूरी कामों में करने लगते हैं। जैसे कार की धुलाई, बगीचे में पानी देना आदि। यदि और अधिक पानी मिल जाए तो फिर आप पानी से खेलना भी शुरू कर सकते हैं। पर 'इस प्रकार का प्रयोग पानी को मानव जीवन की मूलभूत आवश्यकता' कहने वाले विचार के साथ भी खिलवाड़ हो जाएगा। (जे. क्वर्क)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 5.1

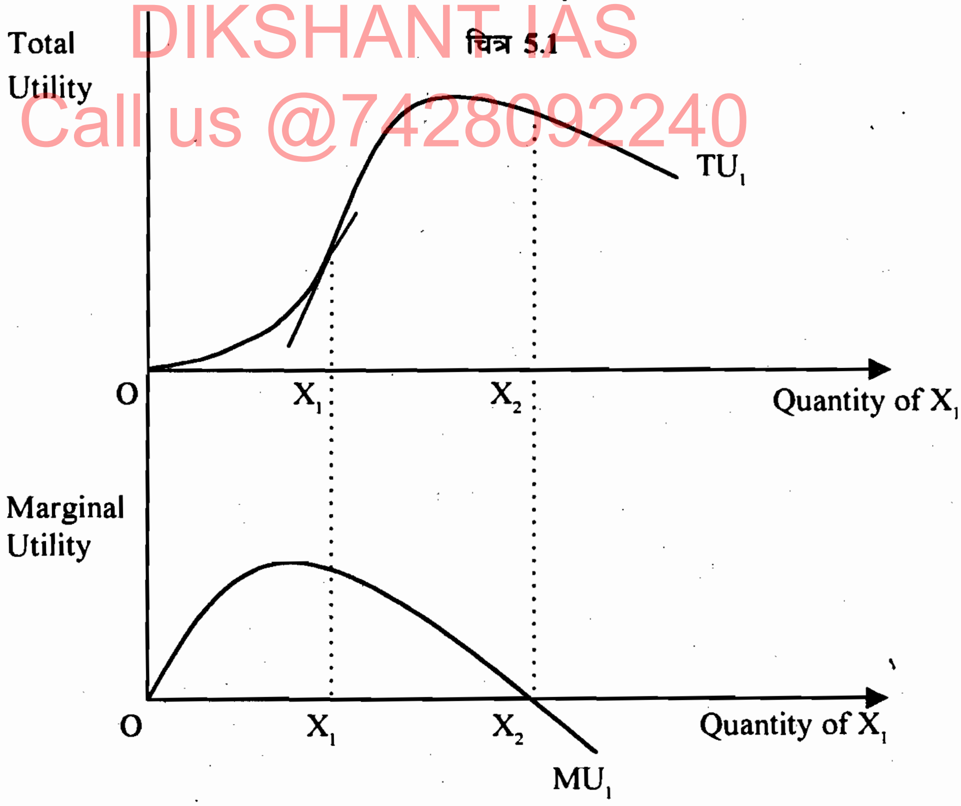

चित्र 5.1 के ऊपरी भाग में TU तथा निचले भाग में MU_1 दिखाई गई है। ध्यान दें कि जब OX_1 मात्रा का प्रयोग होता है, MU_1 अपने अधिकतम स्तर पर रहती है। वहीं पर TU_1 की वृद्धि दर अधिकतम होतीहै। इससे आगे भी TU_1 में वृद्धि तो होती है पर निरंतर गिरती हुई दर पर। जब TU_1 अधिकतम स्तर पर पहुँचती है तो MU_1 गिरकर शून्य हो जाती है। ऐसा उपभोग स्तर OX_2 पर होता है।

शुरू में अतिन्यून स्तर से उपयोग बढ़ने पर उपयोगिता में वृद्धिमान दर से वृद्धि होती है अर्थात् सीमांत उपयोगिता बढ़ती जाती है। यह स्थिति X_1 बिंदु तक ही रह पाती है। जैसे ही उपभोग का स्तर OX_1 से आगे बढ़ता है, कुल उपयोगिता में वृद्धि धीमी होने लगती है। इसका अभिप्राय है कि सीमांत उपयोगिता में गिरावट शुरू हो जाती है। अतः, अंततः बिंदु OX_1 से ह्रासमान उपयोगिता का नियम लागू हो जाता है।

आइए, एक उदाहरण द्वारा ह्रासमान सीमांत उपयोगिता नियम के एक अन्य पहलू पर ध्यान दें:

मान लीजिए, आप बहुत प्यासे हैं। पहला गिलास पानी बहुत अधिक उपयोगिता देता है। दूसरे गिलास से प्राप्त उपयोगिता संभवतः और अधिक रहे। पर यदि आप एक के बाद एक गिलास पानी पीते रहें तो निश्चित रूप से ऐसी स्थिति शीघ्र ही आएगी जब आपको लगेगा कि और पानी पीना संभव नहीं है। इसे हम संतुष्टि **(satiation)** की अवस्था कहते हैं। हमारे चित्र में यही अवस्था बिंदु OX_1 द्वारा दर्शाई गई है। यहाँ आपकी कुल उपयोगिता अधिकतम स्तर पर होती है एवं सीमांत उपयोगिता गिरकर शून्य रह जाती है। इस बिंदु से आगे तो कुल उपयोगिता में कमी आने लगती है अर्थात् हमारी सीमांत उपयोगिता ऋणात्मक हो जाती है। कोई भी उपयोगिता को अधिकतम करने का इच्छुक बिंदु OX_1 से आगे नहीं जाएगा। हम अपने आगे के विश्लेषण में दर्शाएँगे कि विवेकशील उपभोक्ता का संतुलन तो OX_1 एवं OX_1 के बीच ही कहीं निर्धारित हो जाएगा। क्योंकि सीमांत उपयोगिता धनात्मक **(positive)** है, किंतु वह घटते हुए दर से है। इसी अंतराल में ह्रासमान सीमांत उपयोगिता एवं असंतुष्टि **(non-satiation)** की मान्यताएँ लागू होती हैं।

5.4 उपभोक्ता का संतुलन

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

हम मान लेते हैं कि हमारा उपभोक्ता केवल दो वस्तुओं, X_1 एवं X_2 का उपभोग करता है। इनसे प्राप्त उपयोगिता को हम उपयोगिता-फलन $U = f(X_1, X_2)$ द्वारा दिखा सकते हैं। इस फलन पर अंततः ह्रासमान सीमांत उपयोगिता नियम लागू रहता है। उपभोक्ता के पास इन दो वस्तुओं पर खर्च करने के लिए M रुपये आय है। उपभोक्ता के व्यहार का वस्तुओं के बाज़ार दामों, P_1, P_2 (क्रमशः) पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि यह तो अनेक उपभोक्ताओं में से एक है। अर्थात्, इस उपभोक्ता का बाज़ार पर कोई अधिकार नहीं होता। वह अपनी सारी आय **(M)** इन्हीं दो वस्तुओं पर खर्च कर डालती है। अतः उसका बजट होगा :

$$M = P_1 X_1 + P_2 X_2$$

क्योंकि उपभोक्ता उपयोगिता को अधिकतम स्तर तक ले जाना चाहता है। अतः उसकी उपभोग समस्या को हम इस प्रकार निरूपित कर सकते हैं :
अधिकतम करें :

$$U = f(X_1, X_2)$$

बजट संरोध

$$M = P_1 X_1 + P_2 X_2$$

ध्यान दें कि यह प्रतिबंधित इष्टतम की समस्या ही है। मार्शल के सम-सीमांत उपयोगिता नियम {जो कि लॅगरांजे गुणक विधि **(Langrange Multiplier Technique)** पर आधारित है} का प्रयोग कर हमें संतुलन की यह शर्त प्राप्त होती है :

$$MU_1/P_1 = MU_2/P_2 = \lambda$$

यही संतुलन प्राप्ति की प्रथम कोटि की शर्त या आवश्यक (necessary) शर्त कही जाती है। द्वितीय कोटि की शर्त, जिसे पर्याप्त (sufficient) शर्त कहा जाता है, हमें अंततः ह्रासमान उपयोगिता नियम से ही प्राप्त होती है। जब तक दोनों वस्तुओं के सीमांत उपयोगिता-वक्र MU_1 एवं MU_2 नीचे की ओर ढलवाँ रहते हैं, यह पर्याप्त शर्त सदैव पूरी होती रहती है। जहाँ उपभोक्ता को अधिकतम उपयोगिता प्राप्त होती है उसी बिंदु या स्तर को हम उसका संतुलन मानते हैं।

इस संतुलन की शर्त का अभिप्राय यही है कि उपभोक्ता प्रत्येक वस्तु की सीमांत उपयोगिता को उसकी कीमत के समान स्तर तक पहुँचाकर ही अपनी कुल उपयोगिता-फलन $U = f(X_1, X_2)$ के अधिकतम स्तर तक पहुँच सकता है। दूसरे शब्दों में, उपभोक्ता प्रत्येक वस्तु पर इस प्रकार व्यय करता है कि उन पर खर्च हुए अंतिम रुपयों (अलग-अलग) से प्राप्त उपयोगिता के स्तर एक समान हो जाएँ। उपभोक्ता का संतुलन तभी होता है जब X_1 एवं X_2 के उपभोग से प्राप्त उपयोगिता अधिकतम हो। इस संतुलन शर्त को हम कुछ दूसरे रूप में भी प्रस्तुत कर सकते हैं:

$$MU_1/MU_2 = P_1/P_2 \text{ .... } (1)$$

अर्थात् दोनों वस्तुओं X_1 एवं X_2 से प्राप्त सीमांत उपयोगिताओं का अनुपात उनकी कीमतों P_1 एवं P_2 के अनुपात के समान होना चाहिए। यही अनुपात मुद्रा की स्थिर सीमांत उपयोगिता के समान भी रहता है। इसी शर्त को हम **मार्शल का समसीमांत उपयोगिता का नियम** भी कहते हैं। यह बात जाँची जा सकती है कि यदि दो वस्तुओं की सीमांत उपयोगिताओं का अनुपात उनकी कीमतों के अनुपात के समान नहीं हो तो हम उपलब्ध मौद्रिक आय M का उन वस्तुओं के बीच पुनः आबंटन कर कुल उपयोगिता को बढ़ा सकते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उदाहरणस्वरूप, एक उपभोक्ता की X_1 एवं X_2 से प्राप्त सीमांत उपयोगिता को निम्न तालिका में दिखा रहे हैं। दोनों वस्तुओं की कीमतें 2 रुपये प्रति इकाई है और 20 रुपये है। वह अपनी सारी आय को व्यय कर देती है तो इन वस्तुओं की कितनी-कितनी मात्रा खरीदने पर हमारी उपभोक्ता का संतुलन हो पाएगा:

वस्तु की मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11
MU_1	16	14	11	10	9	8	7	6	5	3	1
MU_2	15	13	12	8	6	5	4	3	2	1	0

उपभोक्ता की संतुलन शर्त है $MU_1/P_1 = MU_2/P_2$ और बजट प्रतिबंधता पूरी तरह संतुष्ट होना चाहिए।

उपयुक्त जानकारी के आधार पर ये आकलन कर सकते हैं:

वस्तु की मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11
MU_1/P_1	8	7	5.5	5	4.5	4	3.5	3	2.5	1.5	0.5
MU_2/P_2	7.5	6.5	6	4	3	2.5	2	1.5	1	0.5	0

यदि $X_1 = 6$ तो $MU_1/P_1 = 4$

और $X_2 = 4$ तो $MU_2/P_2 = 4$

अतः $MU_1/P_1 = MU_2/P_2 = 4$

खर्च की गई कुल राशि होगी $P_1 X_1 + P_2 X_2 = 2x6 = 2x6 + 2x4 = 12 + 8 = 20$ रुपये। उपभोक्ता की आय भी 20 रुपये ही है। अतः बजट प्रतिबंधता का पूरी तरह से पालन हो जाता है। उपभोक्ता अपने संतुलन में है और वह $X_1 = 6$ तथा $X_1 = 4$ इकाइयाँ खरीदता है।

द्वितीय कोटि की शर्त भी पूरी हो रही है। दोनों ही वस्तुओं पर अंततः ह्रासमान सीमांत उपयोगिता का नियम लागू हो रहा है। वस्तु की मात्रा 1 से 11 पहुँचते-पहुँचते MU_1 16 से घटकर 1 रह जाती है। इसी तरह MU_2 भी 15 से घटकर 0 हो जाती है।

यदि एक से अधिक वस्तु संयोजन सम सीमांत उपयोगिता नियम को पूरा कर रहे हों तो बजट प्रतिबंधता का सहारा लेकर ही संतुलन संयोजन ज्ञात कर सकते हैं। केवल बजट प्रतिबंध को संतुष्ट करने वाला संयोजन ही चुना जाएगा, अन्य कोई नहीं।

यह ध्यान रहे कि यदि उपभोक्ता '**n**' वस्तुओं का उपभोग करता हो तो हम सम-सीमांत उपयोगिता नियम इस प्रकार दिखा सकते हैं :

$MU_1/P_1 = MU_2/P_2 = MU_3/P_3$ .... (MU_n/P_n = (λ = मुद्रा की सीमांत उपयोगिता)। यहाँ भी प्रत्येक वस्तु पर ह्रासमान सीमांत उपयोगिता नियम का लागू होना जरूरी है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

यहाँ एक प्रश्न यह है कि वस्तु $X_1 = 6$ तथा $X_2 = 4$ उपभोग करने से उपभोक्ता को कुल उपयोगिता कितनी प्राप्त होगी? आप जानते हैं कि कुल उपयोगिता तो सीमांत उपयोगिता का योगफल ही है। अतः X_1 से प्राप्त उपयोगिता = 16+14+11+10+9+8 = 68 इकाइयाँ एवं X_2 से प्राप्त उपयोगिता +15+13+12+8 = 48 इकाइयाँ। दोनों वस्तुओं से प्राप्त समग्र उपयोगिता होगी = 68+48 = 116 इकाइयाँ। हमारी पूर्व-निर्धारित क़ीमतों (P_1=2, P_2=2) एवं आय स्तर (M=20) के आधार पर हम देख सकते हैं कि इन वस्तुओं का कोई भी अन्य संयोजन 116 इकाइयों से अधिक समग्र उपयोगिता प्रदान नहीं कर सकता।

बोध प्रश्न 2

1) निम्न तालिका में किसी व्यक्ति के लिए दो वस्तुओं, रुमाली रोटियों एवं चिकन-करी के कुल उपयोगिता एवं सीमांत उपयोगिता स्तर दिखाए गए हैं।

रुमाली रोटी			चिकन-रोटी		
मात्रा	TU	MU	मात्रा 100 ग्राम इकाइयाँ	TU	MU
0	0	-	0	0	-
1	25	-	1	10	-
2	40	-	2	-	6
3	50	-	3	21	-
4	-	-	4	24	-
5	59	3	5	-	-
6	-	1	6	27	1

a) तालिका में रिक्त स्थानों की पूर्ति करें।

b) मान लें कि उपभोक्ता की आय 12 रुपये है। रुमाली रोटी एवं चिकन-करी दोनों ही 2 रुपये प्रति इकाई मिलती है। उपभोक्ता का अधिकतम उपयोगिता संयोजन ज्ञात करें।

....

....

....

....

....

5.5 गणना सूचक दृष्टिकोण में माँग के नियम का आधार

वस्तु की माँग-वक्र एवं उपभोक्ता की उपयोगिता-फलन में कोई भ्रम नहीं होना चाहिए। उपयोगिता-फलन तो वस्तु की उपयुक्त मात्रा एवं उसके कारण प्राप्त हुई मनोवैज्ञानिक 'संतुष्टि' के बीच का संबंध है। हमने उपयोगिता की परिभाषा भी इसी स्वरूप में की थी। उपयोगिता फलन में तो वस्तुओं की मात्राएँ निर्धारक तत्त्वों के रूप में सम्मिलित होती हैं। यह उपभोक्ता की अभिरुचियों एवं वरीयताक्रम की परिचायक है। आय तथा बाज़ार में वस्तुओं की कीमतों की इसमें कोई चर्चा नहीं होती।

दूसरी ओर, माँग-वक्र किसी वस्तु की माँग की गई मात्रा एवं अन्य बातें पूर्ववत् रहने पर उसे वस्तु की अपनी कीमत के बीच का संबंध होती है। प्रत्येक कीमत पर किसी व्यक्ति द्वारा माँगी गई अधिकतम मात्रा या फिर किसी मात्रा के लिए जो अधिकतम कीमत चुकाने को उपभोक्ता तैयार हो सकता है वही माँग-वक्र द्वारा प्रदर्शित होती है। यह माँग-वक्र उपभोक्ता के किसी न किसी 'अधिकतम करण' प्रयास का फल होती है। यह कीमत-मात्रा अक्ष पर वस्तु की माँग-फलन का रेखांकन होती है। यह वक्र उपभोक्ता के मंतव्य की झलक होती है और उसकी अधिकतम सीमाओं को भी अभिव्यक्त करती है। यह दिखाती है कि वस्तु की विभिन्न कीमतों पर उपभोक्ता अधिकतम कितनी-कितनी मात्रा खरीदकर उपभोग करने को उत्सुक होगा। अतः, इसे हम उपभोक्ता की आयोजना-वक्र **(planning curve)** का नाम भी दे सकते हैं। प्रत्येक कीमत पर यह उपभोक्ता की उपयोगिता को अधिकतम करने वाले चयन को दर्शाता है। माँग-फलन एवं उसका चित्रांकन-माँग-वक्र की व्युत्पत्ति इष्टतम अथवा अधिकतम करण प्रक्रिया **(optimum satiation process)** द्वारा उपयोगिता फलन से ही की जाती है। ऐसा वक्र (इसका विलोम भी) दाहिनी ओर ढलवाँ ही होता है। अर्थात् माँगी गई मात्रा एवं कीमत के बीच विलोम संबंध रहता है। यदि कीमत बढ़ती है तो मात्रा कम हो जाती है और कीमत गिरने पर मात्रा में वृद्धि हो जाती है। इसी विपरीत संबंध को माँग का नियम कहते हैं। दूसरे शब्दों में, अन्य बातें पूर्ववत् रहने पर किसी वस्तु की कीमत कम होने पर उसकी अधिक मात्रा माँगी जाएगी जबकि कीमत बढ़ जाने पर उसकी कम मात्रा की माँग होगी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

मार्शल का माँग का नियम ह्रासमान उपयोगिता के नियम पर ही आधारित है। दो वस्तुओं X_1 तथा X_2 का उदाहरण ही लें। उपभोक्ता को इनकी कीमतें ज्ञात हैं, उसकी आय का स्तर भी पूर्वनिर्धारित है। ऐसी अवस्था में हम उसके व्यवहार का अध्ययन कर रहे हैं। उसकी उपयोगिता फलन है :

$U = U(X_1, X_2)$, जहाँ कि

$U_1 = U_1(X_1)\ U_2 = U_2(X_2)$

तथा $U = U_1 + U_2$

$$MU_1 = \frac{\partial[U(X_1, X_2)]}{\partial X_1} \quad \text{और} \quad MU_2 = \frac{\partial[U(X_1, X_2)]}{\partial X_2}$$

आरंभ में वस्तुओं की कीमतें हैं P_1^0 व P_2^0 और उपभोक्ता की आय M^0

अतः उसकी बजट रेखा होगी :

$$M^0 = P_1^0 X_1^0 + P_2^0 X_2^0 \quad ....(i)$$

उपभोक्ता की संतुलन शर्त है:

$MU_1/P_1 = MU_2/P_2 \ (=\lambda)$, λ = मुद्रा की सीमांत उपयोगिता

$MU_1^0/P_1^0 = MU_2^0/P_2^0$ .... (ii)

अब (i) तथा (ii) का हल करके हमें ज्ञात होता है कि संतुलन में उपभोक्ता X_1 तथा X_2 की X_1^0 तथा X_2^0 मात्राओं का प्रयोग करता है। चित्र 5.2 में हम दिखा सकते हैं कि इससे वस्तु X_1 की माँग का बिंदु N^0 प्राप्त होता है। मान लो कि X_1 की कीमत गिरकर P_1^1 हो जाती है तथा उपभोक्ता की आय तथा X_2 की कीमत अपरिवर्तित रहती है। P_1 के परिवर्तन से उपभोक्ता का संतुलन कुछ गड़बड़ा जाएगा। MU_1/P_1 अनुपात बनाए रखने के लिए MU_1 का घटाना पड़ेगा, वह तभी हो पाएगा जब कि X_1 की अधिक मात्रा का प्रयोग हो। यही ह्रासमान उपयोगिता नियम का अभिप्राय भी है। अतः X_1 की नई कीमत P'_1 पर हमारा उपभोक्ता X'_1 मात्रा खरीदेगा ताकि $MU_1^1/P_1^1 = MU_1^0/P_2^0 (=\lambda)$ बनी रह सके। इससे जुड़ा बिंदु N होगा। अतः N^0 तथा N'_0 दोनों ही वस्तु X_1 की माँग-वक्र पर अवस्थित बिंदु होंगे। हम वस्तु X_1 के प्रत्येक कीमत स्तर के लिए उपर्युक्त विधि से उपयुक्त N बिंदुओं का निर्धारण कर सकते हैं। उपभोक्ता के इन्हीं संतुलन उपभोग बिंदुओं के पथ को हम X_1 वस्तु के लिए उसकी माँग-वक्र का नाम देंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

Price चित्र 5.2

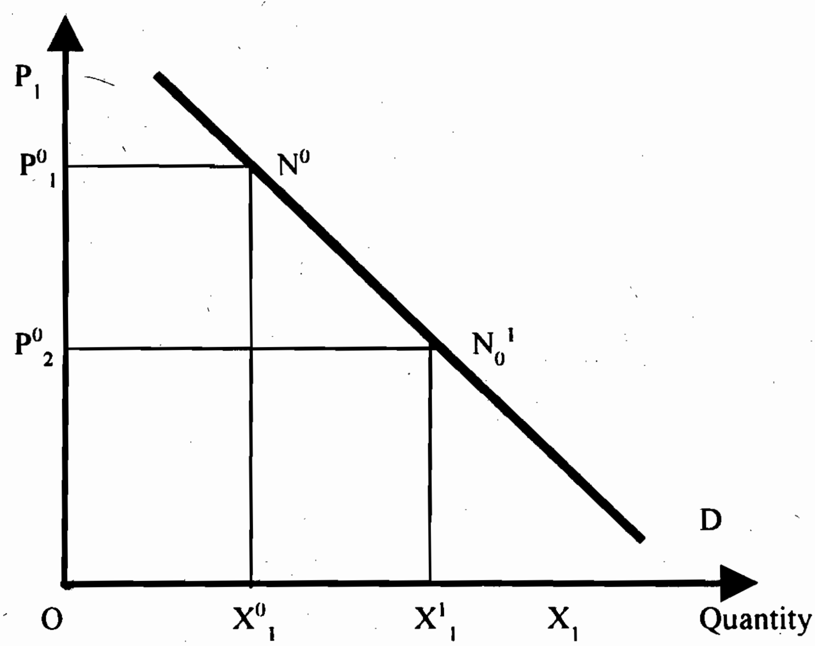

चित्र 5.2 वस्तु X_1 के लिए उपभोक्ता की माँग-वक्र दिखाता है। इस माँग-वक्र को विभिन्न कीमत स्तरों के अनुरूप उपभोक्ता के संतुलन उपभोग बिंदुओं के पथ द्वारा निरूपित किया गया है।

सीमांत उपयोगिता-वक्र दाहिनी और ढलवाँ होता है। इसी कारण माँग-वक्र भी दाहिनी ओर ढलवा होता है। यहाँ ध्यान रखना आवश्यक है कि यदि मुद्रा की सीमांत उपयोगिता 'इकाई' (equat to unity) नहीं हो तो माँग-वक्र को सीमांत उपयोगिता-वक्र से समीकृत करना संभव नहीं होता।

बोध प्रश्न 3

1) एक उपभोक्ता की सीमांत उपयोगिता फलन इस प्रकार है : $MU_x = 40\text{-}0.5\ Q_x$ | यदि मुद्रा की सीमांत उपयोगिता इकाई के बराबर हो और स्थिर (constant) हो तो उसका माँग तालिका ज्ञात करें।

....

....

....

....

5.6 उपभोक्ता की बचत

मार्शल ने स्वयं तो उपभोक्ता बचत की अवधारणा की रचना नहीं की पर उनके विश्लेषण ने कल्याण-अर्थशास्त्र की अनेक संकल्पनाओं के लिए आवश्यक सैद्धांतिक संरचना अवश्य तैयार कर दी थी। किसी उपभोक्ता को वस्तु के उपभोग से प्राप्त हित लाभों का मौद्रिक स्वरूप निर्धारित करने में तो उनकी विश्लेषण विधि का बहुत ही सटीक प्रयोग हुआ है। उनके अनुसार *उपभोक्ता बचत वस्तु की उस कीमत, जिसे उपभोक्ता चुकाने को तत्पर हो तथा वह कीमत जो उसे वस्तुतः चुकानी पड़ी हो, का अंतर ही है।* अर्थात् एक प्रकार से कुल मूल्य चुकाने की तत्परता एवं वास्तविक अदायगी के बीच का अंतर ही उपभोक्ता का आधिक्य है। इसे हम चित्र द्वारा इस प्रकार दिखा सकते हैं :

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 5.3

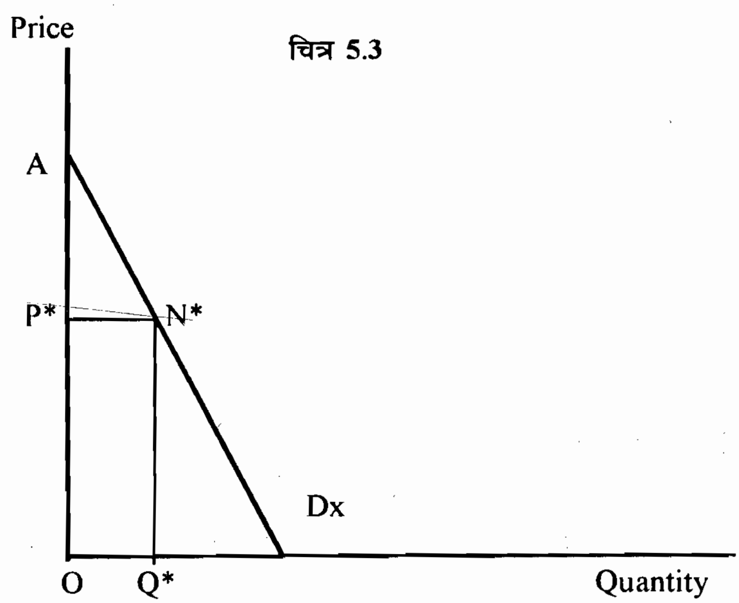

चित्र 5.3 में उपभोक्ता बचत दिखाई गई है। उपभोक्ता की माँग-वक्र उन अधिकतम कीमतों को दर्शाती है जिन्हें उपभोक्ता चुकाने को तत्पर है। अतः माँग-वक्र के नीचे बिंदु का सारा क्षेत्रफल उसकी कुल कीमत चुकाने की तत्परता दिखाता है (=OAN*Q*) किंतु बाज़ार में कीमत OP* ही है। अतः उसे कुल मिलाकर OP*N*Q* राशि ही चुकानी पड़ती है। दोनों का अंतर =Δ AP*N* ही उपभोक्ता बचत है।

किसी वस्तु की माँग-वक्र D_x है। OP* कीमत पर उपभोक्ता OQ* मात्रा खरीदता है। अतः OQ* के लिए वह जो अधिकतम राशि चुकाने को तत्पर रहेगा उसका मान माँग-वक्र के नीचे आरंभ से लेकर Q* बिंदु तक का क्षेत्रफल होगा। यह OAN*Q* के समान है। किंतु उपभोक्ता द्वारा वास्तव में खर्च की गई राशि तो OP*N*Q* ही है। उपभोक्ता का अतिरेक अर्थात् उपभोक्ता का बचत उसकी कुल भुगतान तत्परता एवं वास्तविक भुगतान का अंतर OAN*Q*–OP*N*Q*=AP*N* ही होगा। यही वस्तु X की OQ* मात्रा के उपभोग से उपभोक्ता की बचत है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि मार्शल का उपभोक्ता की बचत की माप उसके माँग सिद्धांत की प्रत्येक मान्यता का अनुपालन करता है। इनमें मुद्रा की उपयोगिता स्थिर रहना भी शामिल है। इस मान्यता का अर्थ यह भी है कि मार्शल ने कीमत परिवर्तन के 'आय प्रभाव' को अनदेखा कर दिया था। अर्थात् मार्शल की माँग-वक्र वस्तु की कीमत में परिवर्तन के केवल प्रतिस्थापन प्रभाव पर ही आधारित है। अतः उपभोक्ता के आधिक्य अर्थात् बचत का सही मूल्यांकन तो तभी हो पाएगा जब हम इसका आकलन आय-प्रतिपूरित (Income Compensated) माँग-वक्र के आधार पर करें। किसी प्रत्यक्षतः दीख रही माँग-वक्र के अनुसार आकलन का अर्थ तो यही है कि हम यह मान रहे हैं कि आय में एक प्रतिशत वृद्धि से प्रत्येक वस्तु की माँग भी एक प्रतिशत ही बढ़ जाएगी। यह मान्यता तो उपभोक्ता बचत को बहुत 'सीमित' कर डालती है। वैसे उपभोक्ता के आधिक्य के विचार का मार्शल, उनके शिष्य ए.सी. पीगू (A.C.Pigou) एवं अनेक अन्य नव-क्लासिकसी अर्थशास्त्रियों ने अनेक कल्याण-संबंधी प्रस्तावों एवं नीतिगत निर्देशों के निर्धारण के लिए किया है।

बोध प्रश्न 4

1) क) MU शून्य होने पर TU का स्तर क्या होता है?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

ख) जब कुल उपयोगिता बढ़ रही हो तो सीमांत उपयोगिता का व्यवहार कैसा होता है?

....

....

....

ग) यदि सीमांत उपयोगिता में वृद्धि हो रही हो तो कुल उपयोगिता में कैसे परिवर्तन आते हैं?

....

....

....

घ) यदि कुल उपयोगिता स्थिर रहे, न घटे, तो सीमांत उपयोगिता का व्यवहार कैसा होगा?

....

....

....

2) निम्न सीमांत उपयोगिता पर ध्यान दें। यदि वस्तु X की कीमत 10 रुपये हो तथा मुद्रा की सीमांत उपयोगिता इकाई के बराबर हो तो उपभोक्ता की माँग क्या होगी?

वस्तु की मात्रा X	10	12	14	16	18	20	22
वस्तु की सीमांत उपयोगिता MU_x (रुपयों में)	25	20	18	6	6	5	4

....

....

....

....

....

....

5.7 उपभोक्ता व्यवहार का क्रमसूचक उपयोगिता दृष्टिकोण: अनधिमान-वक्र विश्लेषण

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1930 के दशक के आरंभ में ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के जे.आर. हिक्स एवं लंदन स्कूल ऑफ इक्नॉमिक्स के आर.जी.डी. एलेन ने उपभोक्ता के व्यवहार का एक वैकल्पिक सिद्धांत प्रतिपादित किया। इसे ही बाद में उपभोक्ता व्यवहार का वरीयता दृष्टिकोण (preference approach) कहा गया है। इसे वरीयता-अधिमान वक्र विश्लेषण भी कहते हैं। उन्हें इसके विकास की प्रेरणा मार्शल की प्रतिबंधित मान्यताओं से मिली जिनमें वे संतुष्ट नहीं थे। अब तो नवक्लासिकी अर्थशास्त्री गणनासूचक उपयोगिता व मुद्रा की स्थिर सीमांत उपयोगिता जैसी पूर्वधारणाओं पर प्रश्न क्षमता बहुत कम हो जाती है और इसके आधार पर पूर्वानुमान करना तो बहुत कठिन हो जाता है। उन्हें यह भी प्रतीत होने लगा था कि इन प्रतिबंधित पूर्वधारणाओं की माँग के नियम एवं माँग सिद्धांत की अन्य प्रस्थापनाओं की व्युत्पत्ति के लिए आवश्यकता भी नहीं है।

वरीयता सिद्धांत की आधारभूत मान्यता यही है कि उपभोक्ता वस्तुओं के विभिन्न संयोजनों के विषय में अपनी वरीयता बता सकता है। सिद्धांतबद्ध स्वरूप की व्याख्या करने से पूर्व वरीयता फलन की कुछ विशेषताओं पर ध्यान देना होगा। किन्तु, उससे पूर्व कुछ प्रारंभिक बातों पर विचार-विमर्श जरूरी है।

हम ≥ चिह्न का प्रयोग 'वरीयता अनधिमान' संबंध की अभिव्यक्ति के लिए करेंगे। आइए, वस्तुओं के दो संयोजनों X_0 एवं X_1 के विषय में बात करें। इन दोनों में ही X_1 एवं X_2 (दूध एवं गेहूँ) की निश्चित मात्राएँ हैं। $X_1>X_0$ का अर्थ है X_1 को X_0 से बेहतर माना जाता है। अतः उपभोक्ता X_0 पर X_1 वरीयता प्रदान करता है। $X_1=X_0$ का अर्थ होगा कि दोनों संयोजनों में उपभोक्ता कोई विशेष फर्क नहीं मानता अतः वह उन दोनों के प्रति समान भाव रखता है। अतः $X_1 \geq X_0$ का

अभिप्राय है कि उपभोक्ता या तो X_1 को X_0 से बेहतर मानता है अथवा दोनों को एक जैसा ही समझता है। दूसरे शब्दों में, वह या तो X_1 को X_0 पर वरीयता देगा अथवा दोनों के बीच तटस्थ या उदासीन रहेगा।

एक अनधिमान-वक्र दो वस्तुओं X_1 एवं X_2 के उन संयोजनों का समुच्चय (या बिंदु पथ) है जिन्हें उपभोक्ता एक जैसा या 'सम' भाव देता है। इसका एक अर्थ यह भी है कि उन सभी संयोजनों से उपभोक्ता को एक समान उपयोगिता या संतुष्टि प्राप्त होती है।

अनधिमान-वक्रों की विशेषताएँ

उपभोक्ता की वरीयता फलन को अभिव्यक्त करने के लिए अनधिमान-वक्रों में कुछ विशेषताएँ होनी चाहिए। ये हैं :

i) अनधिमान-वक्र दाहिनी ओर ढलवाँ होती हैं। यह वस्तुतः असंतृप्ति (**non-satiation**) की विशेषता ही है। उपभोक्ता तभी दो संयोजनों में अनधिमान रख पाएगा जबकि यदि पहले की अपेक्षा दूसरे संयोजन में एक वस्तु की मात्रा में कमी को दूसरी वस्तु की मात्रा बढ़ाकर पूरा किया गया हो। किसी भी समभाव वक्र पर उपयोगिता का स्तर स्थिर रहता है। अतः यदि एक वस्तु की मात्रा कुछ कम की जाती है तो उसके कारण उपयोगिता में आने वाली कमी की पूर्ति दूसरी वस्तु की मात्रा बढ़ाकर ही हो सकती है।

यहाँ एक महत्त्वपूर्ण बात पर भी ध्यान देना आवश्यक है : अनधिमान-वक्र किसी भी अक्ष को स्पर्श नहीं कर सकती। अक्ष स्पर्श का अर्थ होगा कि एक वस्तु का उपभोग शून्य हो जाएगा। इस प्रकार तो अनधिमान-वक्र विश्लेषण की मुख्य विशेषता, कि उपभोक्ता को वस्तुओं के संयोजनों से उपयोगिता प्राप्त होती है, का ही उल्लंघन हो जाएगा। वस्तुतः जिन संयोजनों में दोनों वस्तु हों, उन्हें किसी एक वस्तु से बेहतर ही माना जाएगा। इसी दृष्टि से अनधिमान-वक्रों पर हम यह शर्त लगा सकते हैं कि $U(0,X_2) = U(X_1,0) = 0$ तो अनधिमान-वक्र अक्षों को नहीं छू पाएँगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ii) उपभोक्ता वरीयताओं को अभिव्यक्त करने वाली अनधिमान-वक्र एक-दूसरे को काटेंगी नहीं। यदि यह शर्त नहीं लगाई गई तो हम ऊँची वक्र द्वारा अधिक उपयोगिता को नहीं दर्शा पाएँगे। फिर तो उच्चतर वक्र पर अवस्थित संयोजन को भी किसी निम्न स्तरीय अनधिमान-वक्र से बेहतर नहीं कहा जा सकेगा। वस्तुतः उत्तरोत्तरता, असंतृप्ति, स्वसमता और संपूर्णता (**transitivity, non-satiety, reflexivity and completeness**) इस बात को सुनिश्चित कर देंगी कि अनधिमान-वक्र परस्पर काटेंगी नहीं। इस प्रकार उत्तर-पूर्व की दिशा में बढ़ने का अर्थ होगा अधिक 'उच्च' वरीयता।

iii) अनधिमान मूलबिंदु के प्रति उन्नतोदर (**convex to the origine**) रहते हैं। इस विशेषता का संबंध वरीयता से है। यहाँ ह्रासमान सीमांत प्रतिस्थापन दर का नियम ही इस विशेषता के लिए उत्तरदाई होता है। इस नियम से अभिप्राय है कि उपभोक्ता वस्तु X_2 के स्थान पर वस्तु X_1 का प्रयोग तो कर सकता है किन्तु उसे प्रत्येक अतिरिक्त इकाई का स्थान लेने के लिए X_2 की अपेक्षतया अधिकतर इकाइयों का उपभोग करना होगा। हम उपभोक्ता की वरीयताओं की अभिव्यक्ति एक अनधिमान-वक्र नहीं बल्कि इनके पूरे समुच्चय द्वारा ही कर पाते हैं। इसे हम 'अनधिमान मानचित्र' (**indifference map**) का नाम देते हैं। इसका चित्रांकन कुछ इस प्रकार होगा :

चित्र 5.4

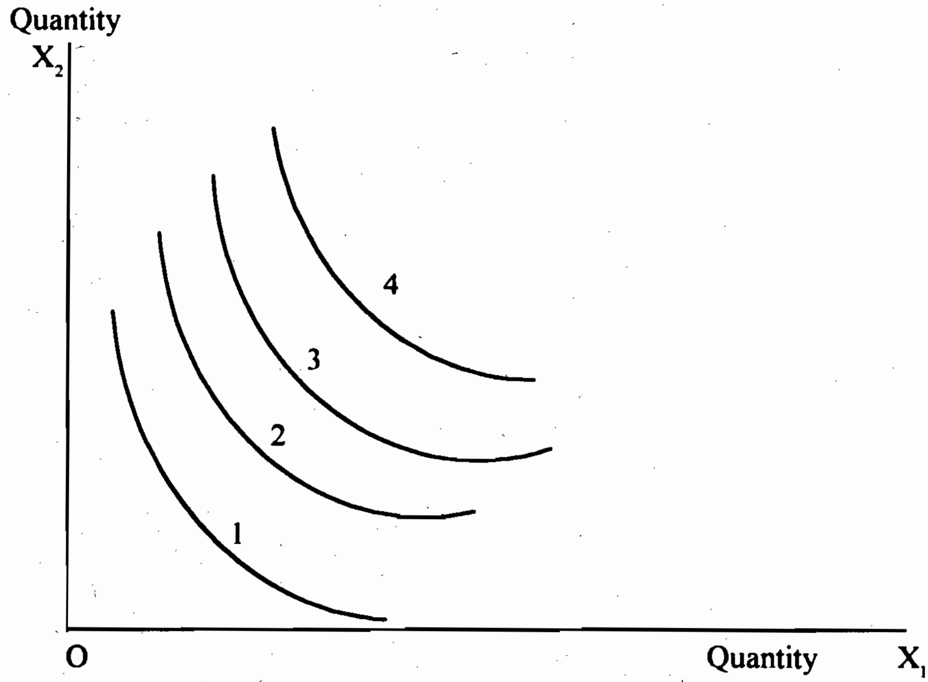

चित्र 5.4 उपभोक्ता के वरीयता समुच्चय को दर्शाता है। प्रत्येक वक्र संतुष्टि का एक सुनिश्चित स्तर दिखाता है। यदि कोई वक्र किसी अन्य की अपेक्षा उत्तर-पूर्व दिशा में है तो यह उच्चतर संतुष्टि का परिचायक होगा। ये वक्र न तो परस्पर स्पर्श या छेदन करते हैं और न ही दोनों अक्षों से।

हमने चित्र 5.4 में केवल पाँच अनधिमान-वक्र ही दर्शाएँ हैं। वस्तुतः वस्तु वितान (commodity) के प्रत्येक बिंदु से एक अनधिमान-वक्र गुजर सकता है। इसका आधार हमारी इस मान्यता में निहित है कि सभी उपभोग्य वस्तुएँ बहुत सूक्ष्म इकाइयों में विभक्त हो सकती हैं। अतः यह वस्तु वितान सामान्य विशेषतायुक्त अनधिमान-वक्रों से पूरी तरह भर जाएगा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

5.8 उपभोक्ता का बजट प्रतिबंध

हमारा उपभोक्ता अन्य लाखों उपभोक्ताओं में से एक ही है अतः उसके पास अपने निजी क्रियाकलापों द्वारा बाज़ार में कीमतों पर प्रभाव डालने की शक्ति नहीं होती। हमारी विश्लेषण अवधि में उपभोक्ता की मौद्रिक आय भी स्थिर ही रहती है। यह स्थिर मौद्रिक आय बाज़ार द्वारा निर्धारित हो चुकी वस्तु कीमतों के साथ मिलकर उपभोक्ता के बजट समुच्चय (budget set), व्यवहार्य उपभोग चयन (feasible consumption choice set) समुच्चय या फिर उपभोग संभावना रेखा (Consumption possibality curve) का निर्माण करती है। यदि आय M_0 तथा X_1 एवं X_2 की कीमतें P_1 एवं P_2 हों तो बजट समीकरण होगा :

$$M_0 = P_1X_1 + P_2X_2$$

इसका यह भी अर्थ है कि सारी आय इन दो वस्तुओं पर ही खर्च हो जाती है। आय-व्यय के समान होती है या खरीदारी में सारी राशि खर्च होनी ही चाहिए। हमारे उपभोक्ता को बचत या अपबचत (dissaving) आदि से कोई उपयोगिता या अप-उपयोगिता (disutility) नहीं मिलती। उपभोक्ता चयन का सिद्धांत स्थैतिक आंशिक संतुलन (static partial equilibrium) सिद्धांत है। अभी हम अंतर्कालिक निर्णय प्रक्रिया (inter-temporal decisions) की बात नहीं कर रहे हैं।

बजट का रेखांकन कुछ इस प्रकार होगा :

चित्र 5.5

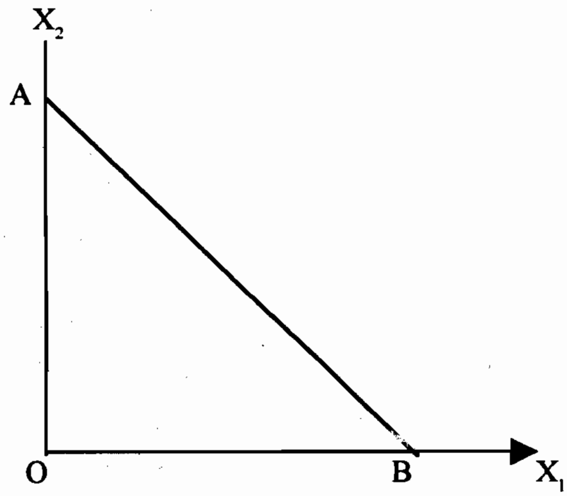

चित्र 5.5 उपभोक्ता की बजट रेखा दर्शाता है। यदि वह अपनी सारी मौद्रिक आय M_0 को दो वस्तुओं X_1 एवं X_2 की दी हुई कीमतों P_1 एवं P_2 पर खरीदने में खर्च करें तो AB रेखा द्वारा निर्दिष्ट संयोजनों में से कोई भी एक खरीद सकता है।

चित्र में AB ही बजट समीकरण का रेखाचित्र है। यदि शुरू में बाज़ार कीमतें क्रमशः P_1^0 एवं P_2^0 हों और उपभोक्ता अपनी सारी आय X_2 पर खर्च करके उसकी OA मात्रा प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार यदि वह सारी आय को केवल X_1 खरीदने पर लगाए तो OB मात्रा पा सकता है। कोई भी अन्य आबंटन AB रेखा के अन्य बिंदुओं द्वारा निर्दिष्ट हो सकते हैं। इस रेखा AB को ही बजट रेखा, वास्तविक आय रेखा, व्यय रेखा या कीमत रेखा कहा जाता है। कीमतें स्थिर मान लेने के कारण ही वह एक सरल रेखा होती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

एक प्रश्न : एक मौद्रिक आय तथा दोनों वस्तुओं की कीमतें दुगुनी हो जाएँ तो बजट रेखा पर क्या प्रभाव होगा? अर्थात् $M_1 = 2M_0$; $P_1^1 = 2P_1^0$; और $P_2^1 = 2P_2^0$

अब A का निर्देशांक (coordinate)$=M_1/P_2^1$ होगा। यह $2M_0/2P_2^0$ व M_0/P_2^0 के समान है। और B का निर्देशांक $=M_1/P_1^1$ होगा। यह $2M_0/2P_1^0$ व M_0/P_1^0 के समान है।

अतः इस अवस्था में A एवं B के निर्देशांक अपरिवर्तित रहते हैं। रेखा AB भी अपरिवर्तित रहती है।

बोध प्रश्न 5

1) यदि उपभोक्ता की आय = 100 रुपये है जिसमें पहली वस्तु की कीमत 5 रुपये तथा दूसरी की कीमत 10 रुपये हो तो उसकी बजट रेखा बनाएँ।

....

....

....

....

....

2) यदि दोनों वस्तुओं की कीमतें एवं मौद्रिक आय दोगुनी हो जाएँ तो बजट रेखा पर क्या प्रभाव होगा?

....

....

....

....

....

5.9 क्रमसूचक उपयोगिता दृष्टिकोण में उपभोक्ता का संतुलन

उपभोक्ता का संतुलन वहीं होता है जहाँ उसकी उपयोगिता का स्तर उच्चतम हो। हमारी वरीयता विधि के अनुसार यह उच्चतम वरीयता प्राप्त संयोजन के चयन से जुड़ा होगा। पर इस उच्चतम वरीयता संयोजन का चुनाव करते समय हमारा उपभोक्ता बजट रेखा द्वारा निर्धारित सीमा का अतिक्रमण नहीं कर सकता। अतः उपभोक्ता की अभिरुचियों पर आधारित वरीयता-अनुक्रमण को प्रतिबिम्बित करने वाले अनधिमान-वक्र समूह और बजट रेखा को एक साथ लाना आवश्यक है। हम चित्र 5.4 एवं 5.5 को एक साथ बनाकर यह कार्य कर सकते हैं। यहाँ हमारा लक्ष्य उस उच्चतम अनधिमान-वक्र की पहचान करना ही होगा जो उपभोक्ता की बजट रेखा के आधार पर उसे सुलभ हो सके। हम चित्र 5.6 में यही दिखा रहे हैं। बजट रेखा पाँच बिंदुओं, N_1, N_2, N^*, N_3 एवं N_4 पर तीन अनधिमान-वक्रों IC_0, IC_1, IC_2 से संपर्क में आती है। इन्हीं बिंदुओं को संभावित संतुलन बिंदु माना जा सकता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 5.6

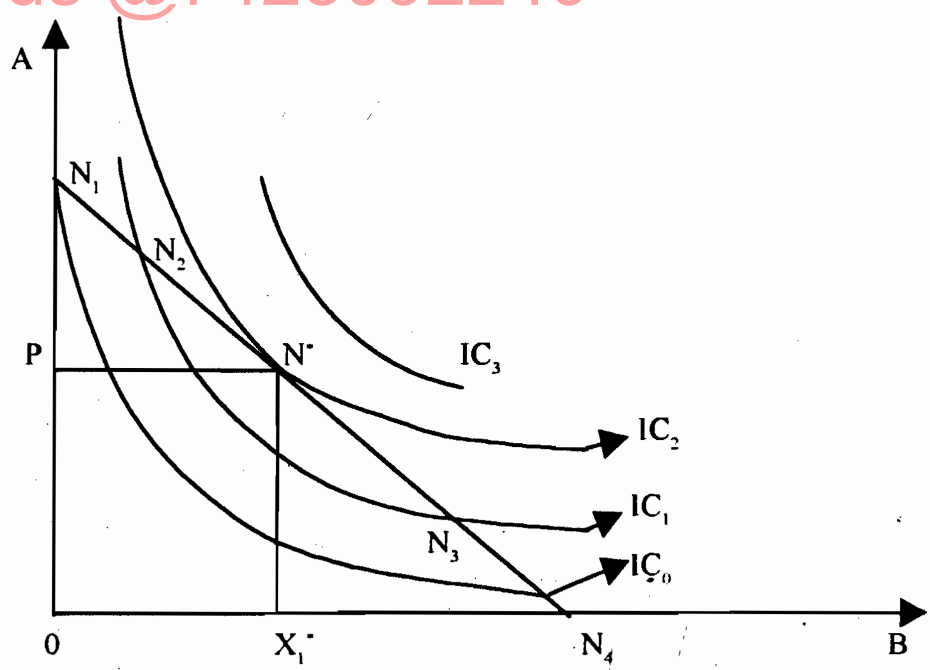

चित्र 5.6 एक उपभोक्ता के अनधिमान मानचित्र एवं बजट रेखा को दर्शाता है। बजट रेखा का तीन निर्दिष्ट अनधिमान-वक्रों, IC_0, IC_1, एवं IC_2 से पाँच बिंदुओं N_1, N_2, N_3, N_4 एवं N^* पर संपर्क आता है। पर बिंदु N^* पर यह बजट रेखा IC_2 को स्पर्श मात्रा कर रही है। अतः IC_2 ही वह उच्चतम अनधिमान-वक्र है जो उपभोक्ता को प्राप्त हो सकती है।

बिंदु N_1 पर पूरी बजट राशि खर्च हो जाती है एवं उपयोगिता स्तर IC_0 द्वारा निर्दिष्ट होता है। N_2 पर भी पूरी बजट राशि का व्यय हो जाता है पर उपयोगिता स्तर IC_1 द्वारा निर्दिष्ट होता है। N_3 पर भी सारी आय खर्च हो जाती है और यहाँ भी उपयोगिता स्तर IC_1 ही रहता है। N_4 पर तो हम पुनः निम्न IC_0 स्तर पर पहुँच जाती है। लेकिन **N*** पर पूरी राशि खर्च कर हमारा उपभोक्ता IC_2 स्तर की संतुष्टि पा सकता है। यही वह उच्चतर अनधिमान-वक्र है जहाँ तक हमारा उपभोक्ता पहुँच सकता है। हमारे पाँचों बिंदु बजट प्रतिबंधों का उल्लंघन नहीं करते हैं और यदि हम उपयोगिता स्तर अनुसार इनका अनुक्रम बनाएँ तो उसका स्वरूप इस प्रकार होगा:

$$N^*>N_2>N_1$$

या $$N^*>N_3>N_4$$

या $$N^*>[N_2 N_3]>[N_1\ N_4]$$

अतः उपभोक्ता की **उपयोगिता** N^* पर ही अधिकतम होगी। वर्तमान आय एवं कीमतों के रहते हुए तो उपभोक्ता IC_3 द्वारा निर्दिष्ट उपयोगिता स्तर तक नहीं पहुँच सकता। उसे उपलब्ध सभी संयोजनों के समूह में से N^* ही ऐसा संयोजन है। जिसका वरीयतानुक्रम सर्वोच्च है। अतः N^* ही उपभोक्ता के संतुलन को दर्शाता है। इस संतुलन बिंदु की विशेषता यही है कि इस पर बजट रेखा IC_2 को स्पर्श मात्र करती है। बिंदु N^* पर बजट रेखा का ढाल अनधिमान-वक्र IC_2 के ढाल के समान भी होता है। बजट रेखा का ढाल P_1/P_2 ही है जबकि IC_2 का ढाल dX_2/dX_1 होगा। दोनों ही ढाल ऋणात्मक हैं। अतः हम कह सकते हैं कि बिंदु N^* $-P_1/P_2 = dX_2/dX_1$ (जहाँ dX_2/dX_1 ऋणात्मक है)। दोनों पक्षों -1 से गुणा करने पर हमें प्राप्त होता है कि $P_1/P_2 = (-)dX_2/dX_1$

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

यहाँ यह ध्यान रहे कि $-dX_2/dX_1$ ही N^* बिंदु पर उपभोक्ता की X_2 एवं X_1 के बीच सीमांत प्रतिस्थापन दर को व्यक्त करता है ($MRS\ x_1\ x_2$)। अतः कीमत अनुपात $P_1/P_2 = MRS\ x_1\ x_2$। यही संतुलन की प्रथम कोटि की शर्त है। द्वितीय कोटि की शर्त भी $MRS\ x_1\ x_2$ की ह्रासमान होने की विशेषता से जुड़ी है। इसका अर्थ होगा कि अनधिमान-वक्र की निश्चित उन्नतोदरता **(strict convexity)** ही दूसरी कोटि की संतुलन शर्त को पूरा करने के लिए पर्याप्त रहेगी। इसके परिणामस्वरूप वह संतुलन अपने आप में 'अनुपम' (unique) भी होगा।

यह ध्यान रहे कि $MRS\ x_1\ x_2$ है। अतः हम संतुलन शर्त को इस प्रकार भी रख सकते हैं :

$P_1/P_2 = MRS\ x_1\ x_2 = MU_1/MU_2$ या फिर $MU_1/P_1 = MU_2/P_2$। यह हमारा पूर्व परिचित मार्शल का सम-सीमांत सिद्धांत ही है। (जहाँ हम सम-सीमांत उपयोगिता के नियम का अनुपालन करते थे)। किंतु यहाँ हमने अपने विश्लेषण को उपयोगिता के मापन एवं मुद्रा की स्थिर सीमांत उपयोगिता की मान्यताओं के बंधनकारी प्रभाव या स्वरूप से मुक्त ही रखा है।

5.10 कुछ विशेष अवस्थाएँ

आइए, अब अनधिमान-वक्र विश्लेषण की मान्यताओं में कुछ ढील देकर देखें। मान लो कि ये वक्र निश्चित रूप से उन्नतोदर नहीं, सामान्य उन्नतोदर हैं। ये सीधी रेखाएँ हैं जिन पर सीमांत प्रतिस्थापन दर स्थिर है। इस स्थिति में तीन संभावनाएँ प्रकट होती हैं। इन्हें हम चित्र 5.7 में दिखा रहे हैं। आइए, क्रमशः इन पर विचार करें।

अवस्था-I

यदि $P_1/P_2>MRS\ x_1\ x_2$ तो संतुलन A बिंदु पर होगा। इसका अर्थ है कि $P_1/P_2>MRS\ x_1, x_2 = MU_1/MU_2$ या $MU_2/P_2>MU_1/P_1$। अर्थात् खर्च किए गए प्रत्येक रुपये से उपभोक्ता को वस्तु

X_2 से अधिक उपयोगिता मिलती है। अतः वह X_2 पर व्यय बढ़ाता जाएगा। जब तक कि सारी आय ही X_2 पर न खर्च हो जाए। अर्थात् वह X_2 की OA मात्रा खरीदेगा तथा X_1 की शून्य। यह भी ध्यान देने की बात है कि IC_2 वह उच्चतम अनधिमान-वक्र है जो बजट रेखा को A पर स्पर्श करती है। पर, यहाँ संतुलन शर्त $P_1/P_2 = MRS\ x_1\ x_2$ पूरी नहीं होती। द्वितीय कोटि की शर्त भी पूरी नहीं होती।

चित्र 5.7(a)

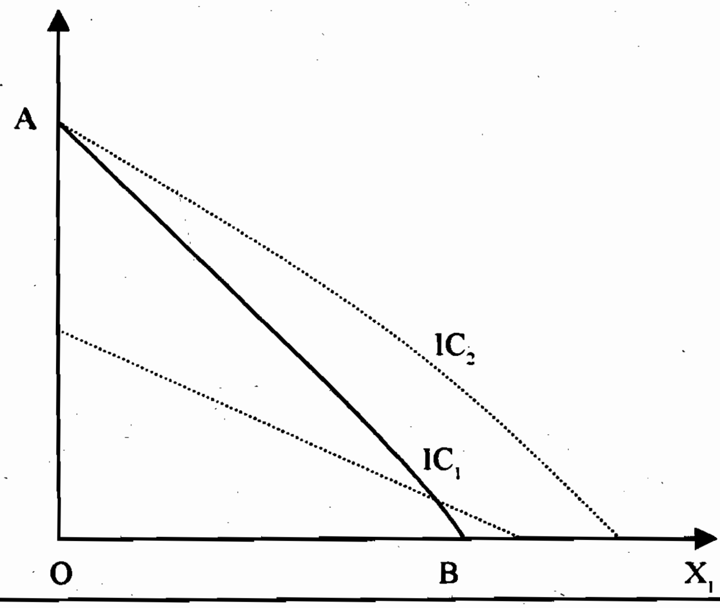

चित्र 5.7(a) दिखाता है कि उपभोक्ता सारी आय X_2 पर खर्च करता है और A उनका संतुलन बिन्दु है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अवस्था-II

इसमें हम $P_1/P_2 = MRS\ x_1\ x_2$ लेते हैं। इसमें भी कोना हल (corner solution) आता है। यहाँ संतुलन बिंदु B होगा। यह बात चित्र 5.7 (b) में दिखा रहे हैं। यहाँ $MU_1/P_1 > MU_2/P_2$ अर्थात् उपभोक्ता को X_1 पर खर्च प्रत्येक रुपये से X_2 पर खर्च रुपये से कहीं अधिक उपयोगिता मिलती है। अब तो वह X_1 का उपभोग बढ़ाता जाएगा। IC_2 वह उच्चतम अनधिमान-वक्र होगी जिसे उपभोक्ता अपनी बजट रेखा की सीमा में रहते हुए पा सकता है। पर बिंदु B पर ही ऐसा संभव हो पाता है। अतः उपभोक्ता केवल X_1 की OB मात्रा का उपभोग करेगा; X_2 का प्रयोग बिल्कुल नहीं होगा। हमारा संतुलन अभी भी सुस्पष्ट होगा।

चित्र 5.7(b)

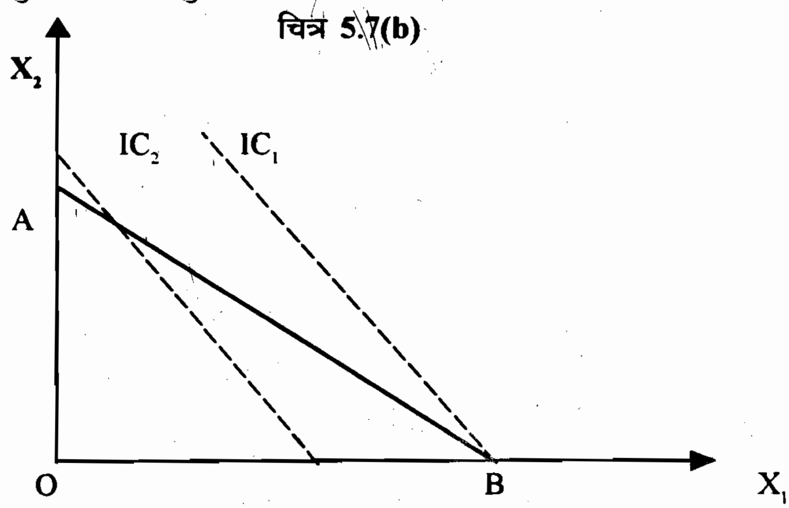

चित्र 5.7(b) कोना हल बिन्दु B दिखाता है अर्थात् उपभोक्ता X_1 पर प्रत्येक रुपये खर्च करता है।

अवस्था-III

यह अवस्था और भी विचित्र है। यहाँ तो बजट रेखा और अनधिमान-वक्र कुछ इस प्रकार बनते हैं कि उनके ढाल समान हो जाते हैं। चित्र 5.7 (c) में IC_2 बजट रेखा को ढक लेती है। अर्थात् बजट रेखा के प्रत्येक बिंदु पर $P_1/P_2 = MRS\ x_1\ x_2$। अतः रेखा AB का प्रत्येक बिंदु संतुलन बिंदु होगा। यहाँ संतुलन शर्त $P_1/P_2 = MRS\ x_1\ x_2$ की पूर्ति कुछ इस प्रकार होती है कि संतुलन का एक विशिष्ट बिंदु प्राप्त होने की संभावना समाप्त हो जाती है।

चित्र 5.7(c)

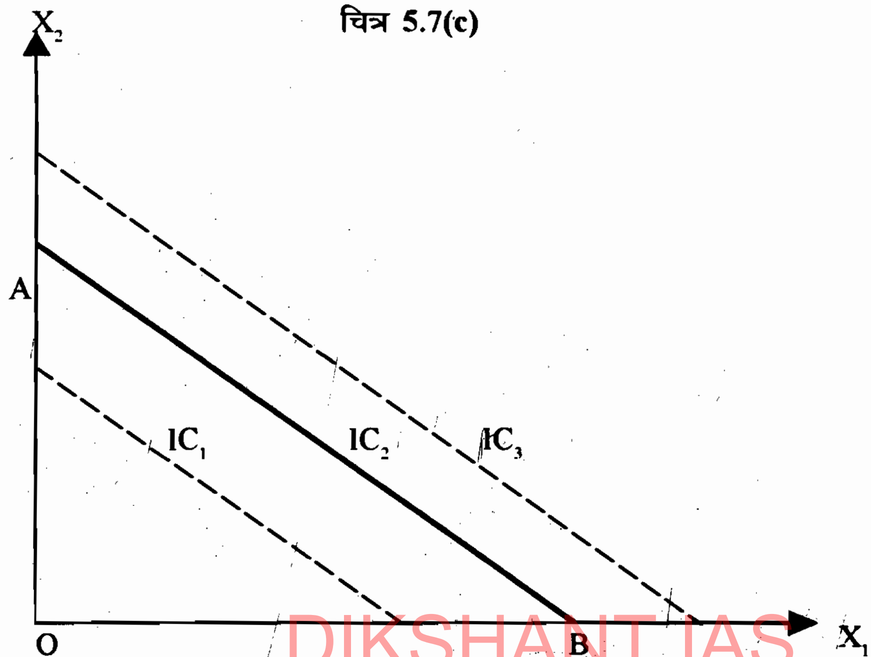

DIKSHANT IAS

चित्र 5.7(c) में रेखा AB का प्रत्येक बिन्दु संतुलन बिन्दु है।

Call us @7428092240

आइए, अब उस विशेष अवस्था पर विचार करें जब अनधिमान-वक्र मूलबिन्दु के प्रति अवनतोदर (concave) हो इस अवस्था में $MRS\ x_1\ x_2$ वृद्धि माम रहता है। ऐसी दशा में बजट रेखा AB एवं अनधिमान-वक्र {चित्र 5.8 (a) तथा (b)} का स्पर्श बिंदु e उपयोगिता के अधिकतम स्तर को इंगित नहीं कर पाता बल्कि न्यूनतम का परिचायक होता है। आप स्पष्टतः देख सकते हैं कि इन चित्रों में अधिकतम सुलभ हो सकने वाला उपयोगिता स्तर तो IC_3 द्वारा निर्दिष्ट है। अतः उपभोक्ता A या B में से किसी एक बिंदु पर पहुँच ही जाता है। इस प्रकार किसी कोने पर संतुलन का अर्थ है कि उपभोक्ता एक वस्तु का ही उपभोग करेगा।

चित्र 5.8(a) **चित्र 5.8(b)**

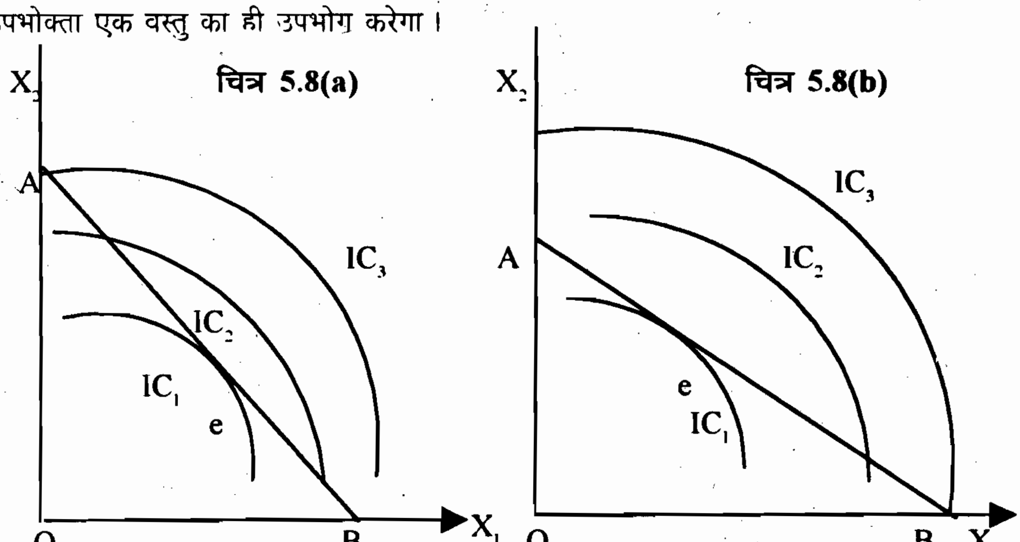

चित्र 5.8 में अनधिमान-वक्र मूल बिन्दु के प्रति अवनतोदर है। उपभोक्ता A या B किसी कोने पर संतुलन बिन्दु प्राप्त करता है।

सावधान : केवल निश्चित उन्नतोदरता (strict convexity) की शर्त ही एक वस्तु से बचने के लिए पर्याप्त नहीं होती। जब तक कि हम $U(O, X_2) = 0$ एवं $U(X_1, O) = 0$ के उपयोग के रूप में अतिरिक्त शर्तों को न लगाएँ। इन अतिरिक्त शर्तों के सहारे ही उपभोक्ता द्वारा दोनों वस्तुओं का उपभोग संभव होता है। यदि ये शर्तें नहीं लगाई जाएँ तो अनधिमान-वक्र X या X-अक्ष को छूने लगेंगे। और संतुलन बिंदु अक्ष पर ही होंगे। देखिए चित्र 9 (a) और 9 (b)।

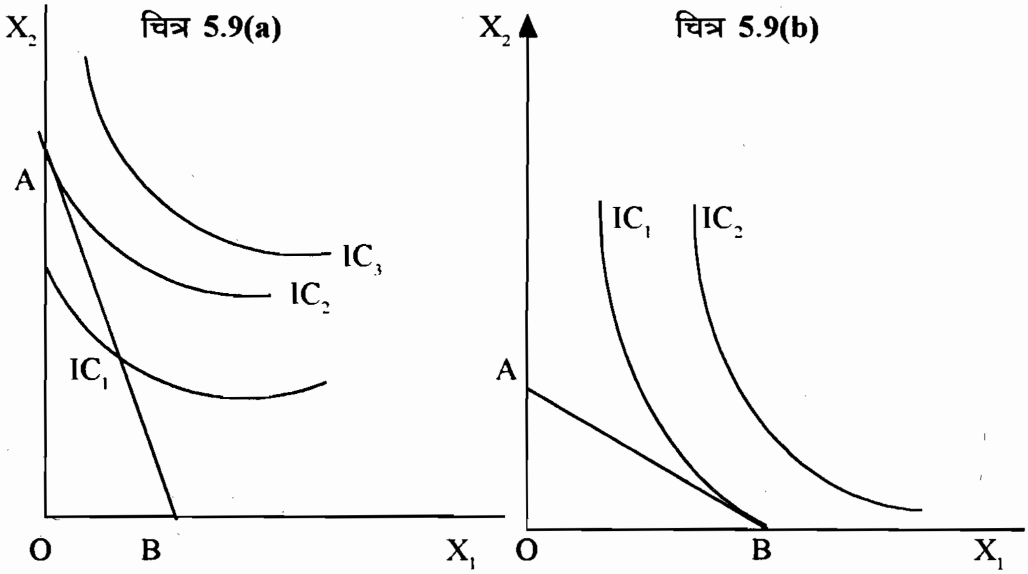

चित्र 5.9 उन्नतोदरता वक्र होते हुए उपभोक्ता का संतुलन एक कोना हल पर दिखाता है।

यहाँ एक प्रश्न यह उठता है कि यदि X_1 तथा X_2 की प्रकृति कुछ इस प्रकार की है कि उनका एक निश्चित अनुपात में ही उपभोग संभव हो यानि उपभोग में वह पूर्णतया पूरक (perfect-complements) हो तो अनधिमान-वक्र का रूप क्या होगा? ऐसी स्थिति में उपभोक्ता का संतुलन कहाँ होगा? हम चित्र 5.10 (a) तथा चित्र 5.10 (b) में यही दिखा रहे हैं। पहले चित्र में दोनों वस्तुओं का प्रयोग एक-एक इकाई मिलाकर ही होता है। पर दूसरे में किसी अन्य अनुपात में उनका प्रयोग हो पाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

यहाँ हम निश्चित अनुपात के रूप में सहज ही 1:1 का उदाहरण दे सकते हैं। हमें बाएँ पैर के जूते उतने ही चाहिए दाहिने पाँव के। इनका 1:1 के अतिरिक्त कोई अन्य संयोजन सामान्यतः उपयोगी नहीं रहता। उपभोक्ता सहज ही 5.10 (a) में IC_1, IC_2 एवं IC_3 पर a, b, c बिंदुओं पर ही रह सकता है। अनधिमान-वक्र के क्षैतिज एवं शीर्षक अंशों पर उसकी उपयोगिता का स्तर वही रहता है जो कि a, b या c द्वारा इंगित L-अक्षर के कोने पर रहता है।

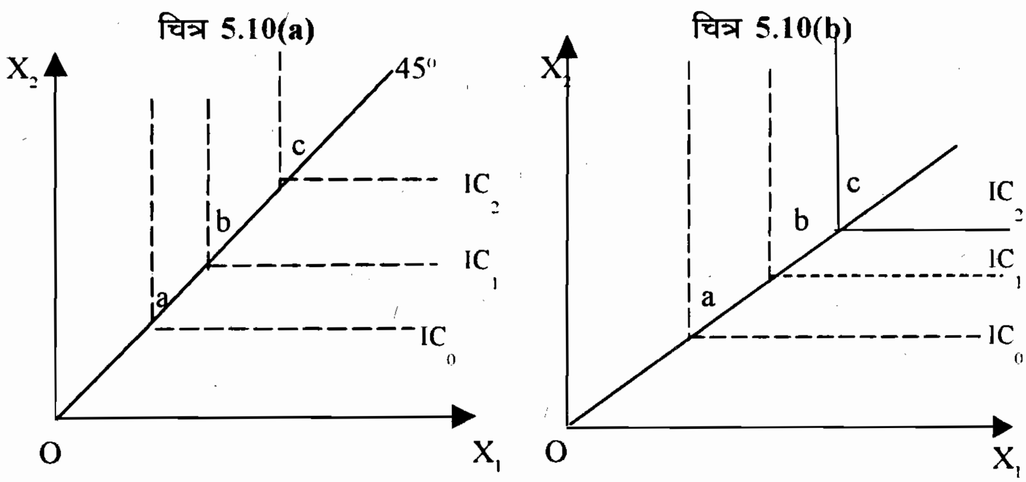

दूसरा उदाहरण ऑक्सीजन एवं हाइड्रोजन गैसों को मिलाकर पानी बनाने से संबंधित हो सकता है। यहाँ तो हाइड्रोजन के 2 तथा ऑक्सीजन के एक भाग को मिलाना ही ज़रूरी होगा। यहाँ भी L-आकार के अनधिमान-वक्र के कोने पर उपभोक्ता को रहना होगा।

चित्र 5.10(c)

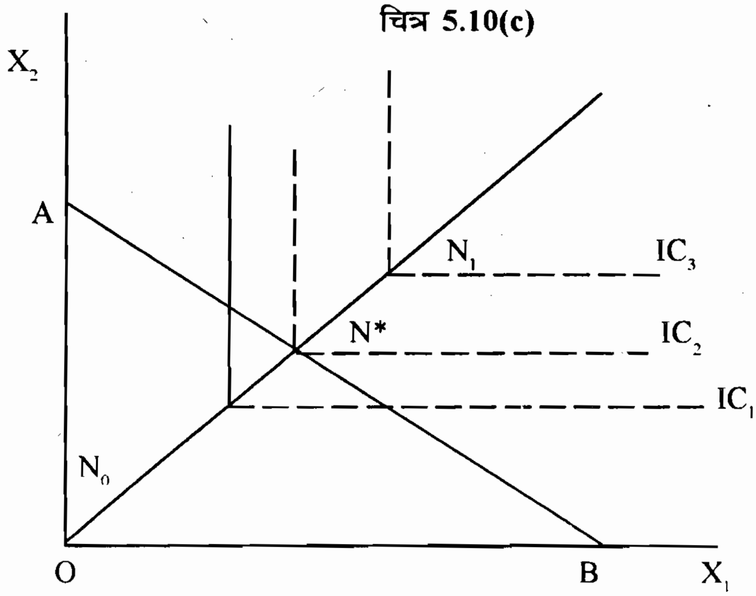

चित्र 5.10 : L- आकार के अनाद्धिमान वक्रों में उपभोक्ता संतुलन बिन्दु N होता है।

L-आकार के अनधिमान-वक्रों के आधार पर उपभोक्ता का संतुलन : चित्र 5.10 (c) पर ध्यान दें। इससे IC_2 मूलबिंदु से सबसे अधिक दूर ऐसी अनधिमान-वक्र है जो बजट रेखा AB को छू रही है। अतः N उपभोक्ता का संतुलन बिंदु होगा। पर N* द्वारा इंगित कोने पर अनधिमान-वक्र के ढाल की व्याख्या नहीं हो सकती। अतः हम MRS x_1 x_2 का आकलन नहीं कर पाते। इसी कारण संतुलन की शर्त P_1/P_2 = MRS x_1 x_2 भी पूरी नहीं हो पाती।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 6

1) निम्न तालिका में किसी अनधिमान-वक्र पर वस्तुओं X or Y के संयोजन दिखाए गए हैं:

X	0	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
Y	30	23	17	12	8	5	3	2	1.2	0.5	0.5

a) अनधिमान-वक्र के प्रत्येक बिंदु पर सीमांत प्रतिस्थापन दर का आकलन करें।

....

....

....

b) X की कीमत 3.00 रुपये तथा Y की कीमत 1.00 रुपये होने पर इस वक्र पर उपयोगिता अधिकतम रहती है। उपयोगिता अधिकतम किस संयोजन पर होगी? व्याख्या करें।

....

....

....

5.11 कीमत-उपभोग वक्र

आइए, अब अन्य बातें पूर्ववत् रहते हुए एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन का प्रभाव देखें। हम मानते हैं कि प्रारंभ में उपभोक्ता संतुलन में ही था। उसकी आय, अभिरुचियाँ तथा अन्य वस्तुओं की कीमतें अपरिवर्तित रहती हैं। हम इस स्थिति की व्याख्या चित्र 5.11 की सहायता से कर रहे हैं। प्रारंभ में दोनों वस्तुओं P_1^0 तथा P_2^0 थीं, आय का स्तर M_0 था। उपभोक्ता N_1 बिंदु पर संतुलन पर था। संतुलन की प्रथम एवं द्वितीय कोटि शर्तें पूरी हो रही थीं। दोनों वस्तुओं की उपयोगिता को अधिकतम करने वाली मात्राएँ OX_1^0 तथा OX_2^0 थीं। आइए, अब X_1 की कीमत को घटाना शुरू करें। यह P_1^0 से P_1^1 हो जाती है। मौद्रिक आय पूर्ववत् M_0 ही रहती है। अतः बिंदु A अपरिवर्तित रहता है। किंतु बिंदु B अब B_1, B_2 होते हुए अंततः B_3 तक पहुँच जाता है। यहाँ P_1^1, $OB_2 = M0/P_1^2$ तथा $OB_3 = M_0/P_1^3$।

चित्र 5.11

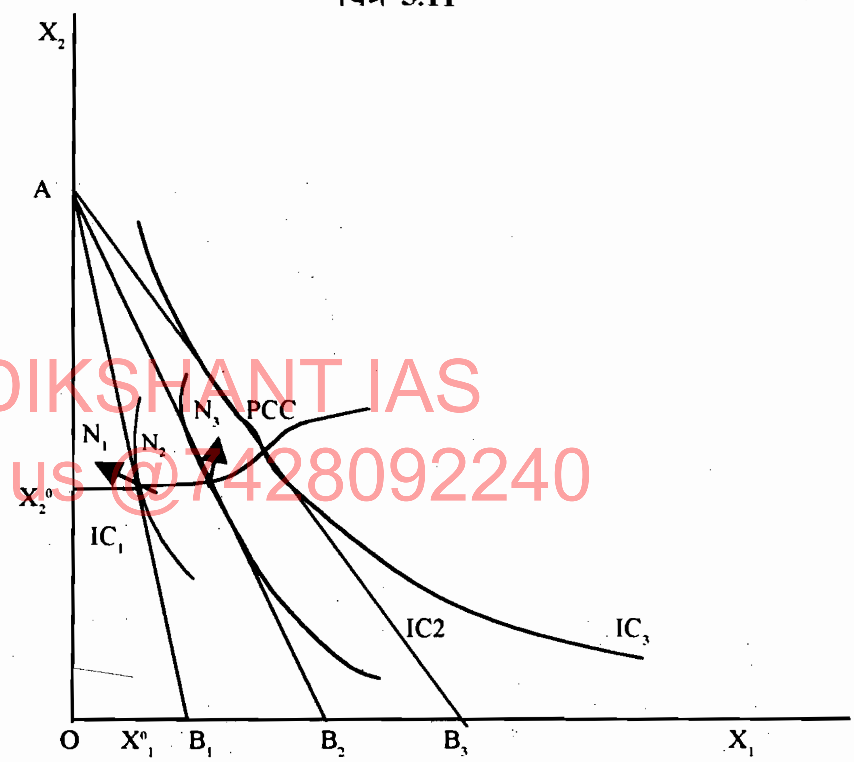

चित्र 5.11 : कीमत उपभोक्ता वक्र दिखाता है। प्रारंभ में वस्तुओं X_1, X_2 के कीमत थे P_1^0, P_2^0। उपभोक्ता N_1 बिन्दु पर संतुलन पर था। जब केवेल X_1 की कीमत घटा, उपभोक्ता N_2 बिन्दु पर संतुलन पर आया N_1 और N_2 को जोड़ कर PCC प्राप्त हुआ।

उपभोक्ता की X_2 वस्तु की क्रयशक्ति तो स्थिर रहती है। अतः X_1 की कीमत कम होने पर उसके बजट वक्र का ढाल कम होने लगता है। अर्थात् P_1/P_2' कम होने लगता है। उसके लिए अनधिमान-वक्र एवं बजट रेखा स्पर्श बिंदु क्रमशः N_2, N_3, N_4 हो जाते हैं। उसका उपयोगिता स्तर बढ़कर क्रमशः I_2, I_3 और I_4 तक पहुँच जाता है। इन नई कीमतों पर वह X_1 की OX_1^1, OX_1^2 तथा OX_1^3 मात्राओं का क्रमशः उपभोग करेगा। इन बिंदुओं N_1, N_2, N_3, N_4 को जोड़ने वाली रेखा को हम कीमत-उपभोग वक्र PCC का नाम देते हैं। इस PCC का स्वरूप कैसा भी हो सकता है, यह क्षितिज के समांतर, नीचे की ओर ढलवाँ या फिर ऊपर की ओर उठती हुई भी हो सकती है। यह आकार वस्तु X_1 कीमत कम होने पर उसपर खर्च की गई राशि पर निर्भर होगा। यदि राशि में वृद्धि हो तो PCC दाहिनी ओर ढलवाँ, कम हो तो ऊपर की ओर उठती हुई तथा स्थिर हो तो क्षितिज के

समांतर रहती है। पर वस्तु X_1 पर खर्च राशि का निर्धारण कैसे होगा? P_1^0 तथा X_2^0 कीमतों पर दोनों वस्तुओं की X_1^0 तथा X_2^0 मात्राएँ खरीदी गई थीं। अतः वस्तु X_1 पर खर्च राशि $P_1^0 X_1^0$। कीमत गिरकर P_1^1 होने पर कुल खर्च राशि होगी $P_1^1 X_1^1$। यदि $P_1^1 X_1^1 > P_1^0 X_1^0$ तो हम कुल व्यय विधि द्वारा सहज ही समझ सकते हैं कि उपभोक्ता की माँग लोचशील होगी (e>1)। यहाँ PCC भी दाहिनी ओर ढलवाँ होगी। दूसरी ओर $P_1^1 X_1^1 = P_1^0 X_1^0$ का अर्थ होगा माँग लोच एक से कम होगी (e<1) और PCC भी दाहिनी और ऊपर उठती हुई होगी।

बोध प्रश्न 7

1) वस्तु X_1 की PCC अर्थात् कीमत-उपभोग वक्र बनाएँ। यदि आप तथा X_2 की कीमत स्थिर रहे और केवल P_1 में वृद्धि हो रही हो।

....

....

....

....

5.12 आय-उपभोग वक्र

हम मान लेते हैं कि उपभोक्ता शुरू में संतुलन में ही है। आइए, अब उसकी आय में परिवर्तन का प्रभाव देखें। यहाँ वस्तुओं की कीमतें स्थिर मानी जा रही हैं। ऐसी दशा में आय की वृद्धि से पूरी बजट रेखा बाहर की ओर खिसक जाती है। चित्र 5.12 में यह बजट रेखा AB_1 से खिसककर A_1 तथा फिर A_2B_2 हो जाती है। किंतु बजट रेखा का ढाल पूर्ववत् ही रहता है। इसके विपरीत, आय कम होने पर बजट रेखा मूलबिंदु की ओर खिसक जाएगी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 5.12

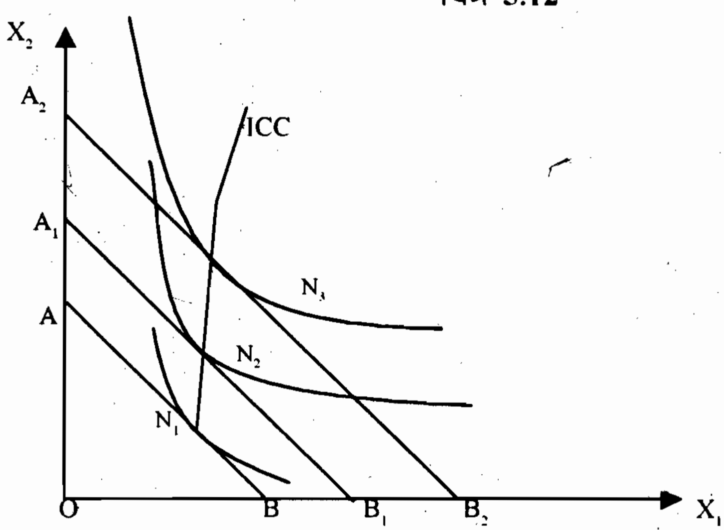

चित्र 5.12 : आय-उपभोक्ता वक्र का निर्माण दर्शाता है।

प्रत्येक नई बजट रेखा किसी न किसी अनधिमान-वक्र के स्पर्शी होती है। इन सभी संतुलन बिंदुओं को मिलाकर हम X_1 तथा X_2 की आय उपभोग वक्र का निर्माण करते हैं। इन सभी बिंदुओं (N_1, N_2, N_3) पर P_1 और P_2 का अनुपात समान रहता है। अतः वहाँ पर सीमांत प्रतिस्थापन दर MRS $x_1 x_2$ भी स्थिर होती है।

5.13 कीमत प्रभाव, प्रतिस्थापन प्रभाव एवं आय प्रभाव

आइए, एक बार फिर मौद्रिक आय M_0, वस्तुओं की कीमतें P_1^0 तथा P_2^0 पर पहली वस्तु की OX_1^0 और दूसरी वस्तु की OX_2^0 मात्रा का उपभोग दर्शाने वाले संतुलन बिंदु N_0 से आगे विचार करें। मान लो कि वस्तु X_1 की कीमत गिर जाती है पर X_2 की कीमत एवं आय M_0 में कोई परिवर्तन नहीं आता। अब उपभोक्ता के संतुलन पर क्या प्रभाव पड़ेगा? इसका विश्लेषण करने के लिए हम चित्र 5.13 का सहारा लेते हैं।

प्रारंभिक अवस्था में उपभोक्ता की बजट रेखा AB पर M_0 बिंदु पर I_0 अनधिमान-वक्र स्पर्श करती हैं। यही बिंदु उसका साम्य दर्शाता है। वस्तु X_1 की कीमत P_1^0 से गिरकर P_1' हो जाती है। उपभोक्ता की रुचियाँ एवं अन्य सब बातें पूर्ववत् ही रहती हैं। अब उसकी नई बजट रेखा AB_1 हो जाएगी, जो AB की अपेक्षा कम ढलवाँ है। दूसरी वस्तु की कीमत P_2 स्थिर रहने के कारण बजट रेखा A बिंदु से ही प्रारंभ होती है। P_1 में गिरावट के कारण ही वस्तु X_1 की इकाइयों में क्रय-शक्ति बढ़ जाती है। उपभोक्ता OB के स्थान पर OB_1 खरीदने में समर्थ हो जाता है। बिंदु N_0 पर $P_1/P_2 = MRS\ x_1\ x_2$। पर P_1 में गिरावट से यह समानता भंग हो जाती है। अब P_1/P_2 का अनुपात $MRS\ x_1\ x_2$ से कम रह जाता है। साम्य की पुनःप्राप्ति के लिए उपभोक्ता वस्तुओं की मात्राएँ बदलने को बाध्य हो जाता है। अब उसका नया साम्य बिंदु I_1 अनधिमान-वक्र पर N_2 होता है। अब वस्तु X_1 की मात्रा OX_1^0 से बढ़कर OX_1^2 हो जाती है। दूसरे शब्दों में, P_1 में गिरावट आने पर X_1 की खरीदारी X_1^0 से X_1^2 बढ़ जाती है। इस परिवर्तन को हम वस्तु X_1 की माँग पर कीमत परिवर्तन का प्रभाव, अथवा कीमत प्रभाव का नाम देते हैं। केवल एक वस्तु की कीमत के परिवर्तन से इस वस्तु की सापेक्ष कीमत भी बदल जाती है। अतः दूसरी वस्तु की कीमत स्थिर रहने पर भी अब वस्तु X_1 अपेक्षाकृत सस्ती प्रतीत होती है। इस प्रकार कीमत अनुपात (P_1/P_2) का परिवर्तन दो प्रकार के प्रभावों को जन्म देता है। इन्हें हम प्रतिस्थापन प्रभाव एवं आय प्रभाव का नाम देते हैं। उपभोक्ता का विवेक उसे अपेक्षाकृत महँगी वस्तु X_2 के स्थान पर अपेक्षाकृत सस्ती X_1 का अधिक प्रयोग करने को प्रोत्साहित करता है। इसी के कारण प्रतिस्थापन प्रभाव का जन्म होता है। दूसरे, P_1 में कमी आने के कारण उसकी आय की क्रय शक्ति बढ़ती है। अब उसका बजट समुच्चय पहले की अपेक्षा BAB_1 अधिक विस्तारयुक्त हो गया है। बजट समुच्चय का यह 'संवर्धन' एक प्रकार से समृद्धि की अनुभूति प्रदान करता है। मानो उपभोक्ता की आय में वृद्धि हो गई हो। इसके कारण दोनों वस्तुओं की माँग पर प्रभाव को ही आय प्रभाव का नाम देते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

पर इन प्रभावों का पृथक्कीकरण कैसे होगा इस बारे में हमें दो विधियाँ उपलब्ध हैं। पहली विधि को हिक्स की विधि कहा जाता है। दूसरी विधि एक रूसी अर्थशास्त्री ई. स्लट्स्की (E. Slutsky) की देन है। दोनों प्रभावों का अलग-अलग आकलन करने के लिए हम उनमें से एक का पृथक निरूपण कर लेते हैं फिर शेष को दूसरे प्रभाव का मान कहा जा सकता है। दोनों ही विधियों में आय प्रभाव का अलग मान ज्ञात किया जाता है। हमने आय प्रभाव को आय की क्रय-शक्ति या वास्तविक आय में आए परिवर्तन का प्रभाव माना है। अतः यदि कीमत परिवर्तन के बाद भी उपभोक्ता की वास्तविक आय का स्तर पूर्ववत् ही कर दिया जाए तो कीमत प्रभाव में से आय का प्रभाव निकल जाएगा। शेष केवल प्रतिस्थापन प्रभाव ही बचेगा।

हम वास्तविक आय (real income) को मौद्रिक आय (money income) एवं वस्तु कीमत के अनुपात द्वारा दर्शा सकते हैं : $RI = M_1/P = M_0/P_1^0$

i) कीमत P_1^0 के कम होकर P_1^1 रह जाने पर वास्तविक आय में वृद्धि हो जाती है। अतः ऐसी स्थिति में यदि मौद्रिक आय में कुछ कमी कर दी जाए उसे पुनः पुरानी वास्तविक आय स्तर के अनुरूप बनाया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, यदि $P_1^1 < P_1^0$ और $M_1 < M_0$ तो $RI = M_1/P_1^1 = M_0/P_1^0$

ii) यदि P_1 में वृद्धि होती ($P_1^1 > P_1^0$) तो वास्तविक आय की कमी को पूरा करने के लिए मौद्रिक आय की वृद्धि आवश्यक हो जाती है। नई आय $M_1 > M_0$ और वास्तविक आय M_0/P_1^0 अब M_1/P_1^1 बन जाती है।

हम कीमत परिवर्तन के कारण वास्तविक आय में हुए परिवर्तन को समाप्त करने के लिए मौद्रिक आय में परिवर्तन कर सकते हैं। इस समंजन के साथ ही किसी एक वस्तु की कीमत में आए परिवर्तन का आय प्रभाव भी विलुप्त हो जाता है। वास्तविक आय के अपरिवर्तित रहने पर एक वस्तु की कीमत के परिवर्तन के कारण उसकी माँग में आय परिवर्तन केवल प्रतिस्थापन प्रभाव का ही परिणाम होगा। अब, मौद्रिक आय को पुनः पुराने स्तर पर ले जाने से माँग पर पड़े प्रभाव को आय प्रभाव कहा जा सकता है।

चित्र 5.13

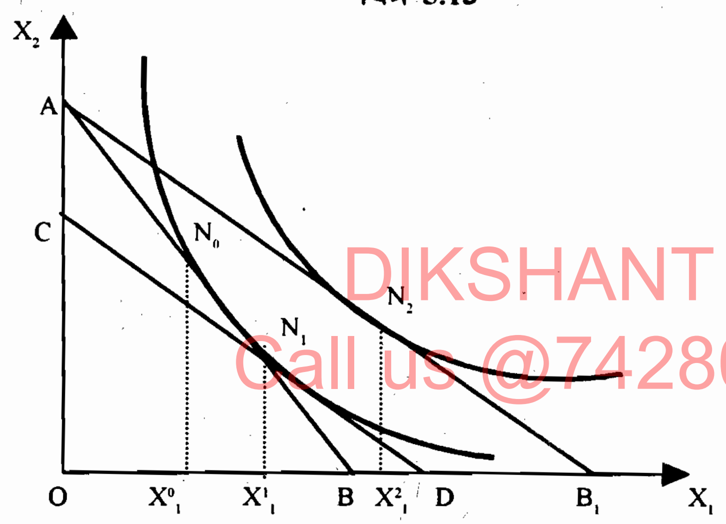

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 5.13 : दर्शाता है (i) सामान X_1 की कीमत गिरने के कारण कीमत प्रभाव कम कीमत से X_1 की मांग वृद्धि हुई है, (ii) N_0 से N_1 तक संचलन द्वारा प्रभावित प्रतिस्थापन और OX_1^0 से OX_1^1 तक वांछित मात्रा में वृद्धि; (iii) N_1 से N_2 तक उपभोक्ता संतुलन का आय प्रभाव संचलन। आय प्रभाव के कारण वांछित मात्रा बढ़कर OX_1^1 से OX_1^2 हो जाती है।

हिक्स एवं स्लट्स्की की विधियों के अंतर वस्तुतः वास्तविक आय के आकलन के अंतर ही हैं। हिक्स का विचार है कि यदि उपभोक्ता कीमत परिवर्तन के बाद भी अपने पुराने उपयोगिता स्तर का भोग कर सके तो उसकी वास्तविक आय स्थिर मानी जानी चाहिए। दूसरी ओर स्लट्स्की का मत है कि वास्तविक आय की स्थिरता का अर्थ यह होना चाहिए कि उपभोक्ता अभी भी पुराना संयोजन (X_1, X_2) खरीद पाए। यहाँ हम हिक्स के विचारों पर ही ज्यादा ध्यान दे रहे हैं।

प्रतिस्थापना एवं आय प्रभावों को पृथक् करने की हिक्स की विधि

एक बार फिर चित्र 5.13 में दिखाए गए उपभोक्ता संतुलन पर गौर करें। संतुलन बिंदु N_0 है, यहाँ M_0 आय स्तर एवं P_1^0/P_2^0 कीमत अनुपात दर्शाने वाली बजट रेखा AB एक अनधिमान-वक्र के साथ स्पर्श करती है अतः $P_1^0/P_2^0 = MRS_{x_1 x_2}$।

वस्तु X_1 की OX_1^0 मात्रा खरीदी जाती है। वस्तु X_1 की कीमत गिरकर P_1^1 हो जाती है, पर M_0 तथा P_2^0 पूर्ववत् रहते हैं। नई बजट रेखा AB_1 है। संतुलन बिंदु N_2 हो जाता है। X_1 की नई मात्रा OX_1^2 हो जाती है।

वस्तु की माँगी गई मात्रा में कुल परिवर्तन X_1^0, X_1^2 ही कीमत प्रभाव है। कीमत प्रभाव (PE) वास्तव में प्रतिस्थापन प्रभाव (SE) एवं आय प्रभाव (IE) का योगफल ही है :

$$PE = SE + IE$$

ध्यान दें कि P_1 में कमी से उपभोक्ता एक उच्चतर अनधिमान-वक्र I_1 पर पहुँच गया है। हिक्स का विचार है कि उपभोक्ता की आय में कुछ कटौती कर उसे पुनः I_0 अनधिमान स्तर पर लाया जा सकता है। यदि X_2 के रूप में उसकी आय AC तथा X_1 के रूप में DB_1 कम कर दी जाए तो वह नई कीमतों के साथ भी पुनः I_0 पर अपना संतुलन पा सकेगा। परिवर्तित बजट रेखा CD अब I_0 से N_1 बिंदु पर स्पर्श करती है। हिक्स के अनुसार N_0 से N_1 तक उपभोक्ता केवल प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण ही जाता है, अतः OX_1^0 से OX_1^1 को हम प्रतिस्थापन प्रभाव का मान कह सकते हैं।

आइए, अब उपभोक्ता को पुनः बजट रेखा AB_1 द्वारा दर्शाए आय स्तर तक जाने दें। अब वह N_1 से N_2 बिंदु पर पहुँच जाता है। वस्तु की मात्रा भी OX_1^1 से बढ़कर OX_1^2 हो जाती है। यही आय प्रभाव है।

अतः $PE = X_1^0 X_1^2$

$SE = X_1^0 X_1^1$

$IE = X_1^1 X_1^2$

$PE = SE + IE$

$X_1^0 X_1^2 = X_1^0 X_1^1 + X_1^1 X_1^2$

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

गतिणतीय दृष्टि से प्रतिस्थापन प्रभाव का चिह्न सदा ऋणात्मक होता है क्योंकि इसके कारण आय परिवर्तन कीमत परिवर्तन के विपरीत दिशा में ही होता है। इसी प्रकार सामान्यतः आय प्रभाव की दिशा भी कीमत परिवर्तन के विपरीत ही रहती है क्योंकि कीमत गिरने का अर्थ है वास्तविक आय में वृद्धि जिसके कारण माँग में वृद्धि होती है। घटिया वस्तुओं के लिए आय प्रभाव कीमत परिवर्तन की दिशा का ही अनुसरण करता है। अतः सामान्य वस्तुओं के लिए तो SE एवं IE दोनों ही ऋणात्मक होने के कारण PE भी ऋणात्मक रहेगा। कीमत एवं माँगी गई मात्रा में यह विपरीत संबंध माँग-वक्र के दाहिनी ओर ढलवा स्वरूप के लिए उत्तरदायी रहता है। PE का गणितीय चिह्न ऋणात्मक होता है।

किसी घटिया उत्पादन के बारे में यह बात इतनी स्पष्ट नहीं रहती। इस प्रकार के पदार्थों की तो विशेषता ही यह है कि आय बढ़ने पर उनकी माँग कम हो जाती है। आइए, वस्तु की कीमत गिरने पर वास्तविक आय की वृद्धि से आए इस प्रभाव और प्रतिस्थापन प्रभाव का समंजन करें।

PE = SE + IE

पर SE = ऋणात्मक, IE = धनात्मक

PE = (ऋणात्मक) + (धनात्मक)

अतः SE एवं IE के मान के आधार पर ही यह तय हो पाएगा कि PE >, + < O।

सामान्य वस्तुओं में तो प्रतिस्थापन एवं आय प्रभाव एक दिशा में हैं। पर घटिया पदार्थों के विषय में ये विपरीत रहते हैं। अतः कीमत प्रभाव की दिशा इस बात पर निर्भर होगी कि SE तथा IE में से कौन-सा प्रभाव अधिक प्रबल है।

i) यदि SE>IE तो PE<O। घटिया वस्तु के लिए माँग-वक्र अभी भी दाहिनी और ढलवाँ ही रहेगी। माँग का नियम यहाँ भी मान्य रहता है।

ii) यदि IE>SE तो फिर PE>O। यहाँ माँग का नियम मान्य नहीं रहता, वस्तु की माँग-वक्र ऊपर उठती हुई बन जाती है। इसे ही गिफेन का विरोधाभास **(Giffen's Paradox)** कहा जाता है। इस प्रकार की माँग-वक्र वाली वस्तुएँ गिफेन वस्तुएँ कही जाती हैं।

iii) यदि SE=IE तो PE=0। वस्तु की कीमत में परिवर्तन का माँगी गई मात्रा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उसकी माँग-वक्र तो कीमत अक्ष के समांतर सरल रेखा हो जाती है।

5.14 वस्तु की माँग-वक्र की व्युत्पत्ति

सामान्य वस्तुओं के लिए

चित्र 5.14 का ऊपरी भाग तो हमारा चित्र 5.13 ही है। X_1 एक सामान्य वस्तु है। इसकी कीमत गिरने पर इसकी माँग में $X_1^0 X_1^2$ की वृद्धि हो जाती है। माँग-वक्र तो वस्तु की कीमत एवं माँगी गई मात्रा का संबंध है। अतः निचले भाग में हम बजट रेखा के ढाल द्वारा निर्दिष्ट कीमतों एवं उनपर माँगी गई मात्राएँ दिखाकर माँग-वक्र की रचना कर रहे हैं। प्रारंभिक कीमत P_1^1= OA/OB तथा P_1^1= OA/OB_1, $P_1^1 < P_1^0$ क्योंकि कीमत में कमी आई है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 5.14

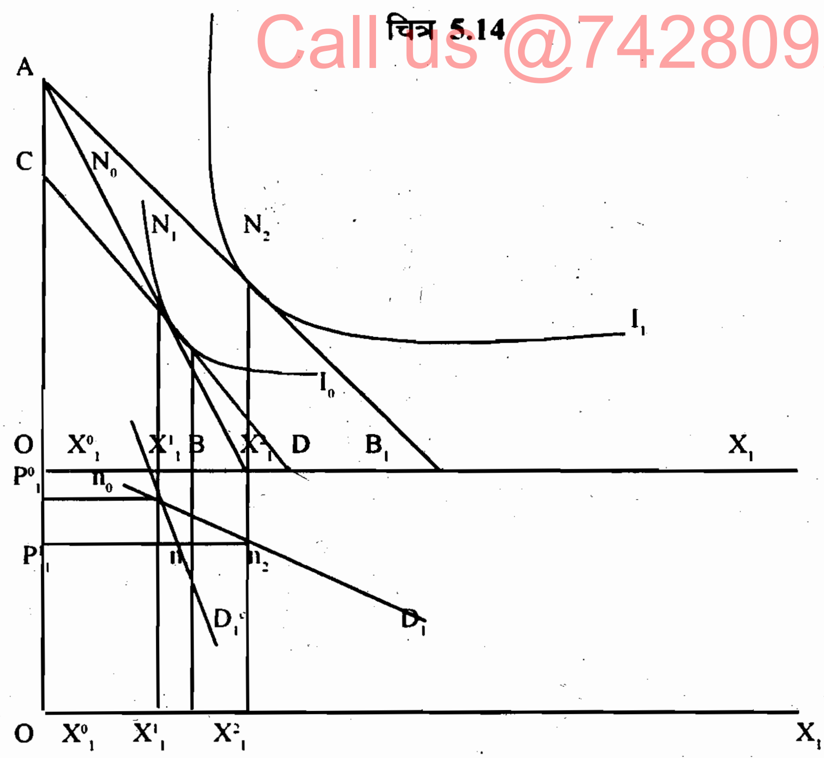

चित्र 5.14 इन कीमतों पर उपभोक्ता क्रमशः OX_1^0 तथा OX_1^2 मात्राओं की माँग करता है। इन्हें हम n_0 तथा n_1 द्वारा दिखा सकते हैं। इन बिंदुओं को मिलाकर ही माँग-वक्र बनती है। सामान्य वस्तु X_1 की माँग-वक्र दाहिनी ओर ढलवाँ रहती है।

यह माँग-वक्र D_1 वस्तुतः आय एवं प्रतिस्थापन प्रभावों का मिला-जुला रूप है। हम इसी चित्र में आय प्रतिपूरित माँग-वक्र D_1^c (Income Compensated Demand Curve) भी बना सकते हैं। केवल प्रतिस्थापन प्रभाव को दिखाने वाली यह D_1^c वक्र N_0 तथा N_1 बिंदुओं को मिलाने से ही बनती है। यह प्रतिपूरित माँग-वक्र सदैव ही दाहिनी ओर ढलवाँ रहती है क्योंकि प्रतिस्थापन प्रभाव का गणितीय चिह्न तो ऋणात्मक ही रहता है। वस्तु चाहे सामान्य हो अथवा घटिया।

5.15 घटिया वस्तु एवं गिफेन का विरोधाभास

वास्तविक आय में वृद्धि से जिनका उपभोग कम होता हो उन्हीं पदार्थों को घटिया वस्तु कहा जाता है। दूसरी ओर, जिनकी माँग कीमत गिरने के कारण कम हो जाती हो उन्हें हम गिफेन वस्तु कहते हैं। इन्हीं की व्याख्या हम इस भाग में कर रहे हैं।

चित्र 5.15

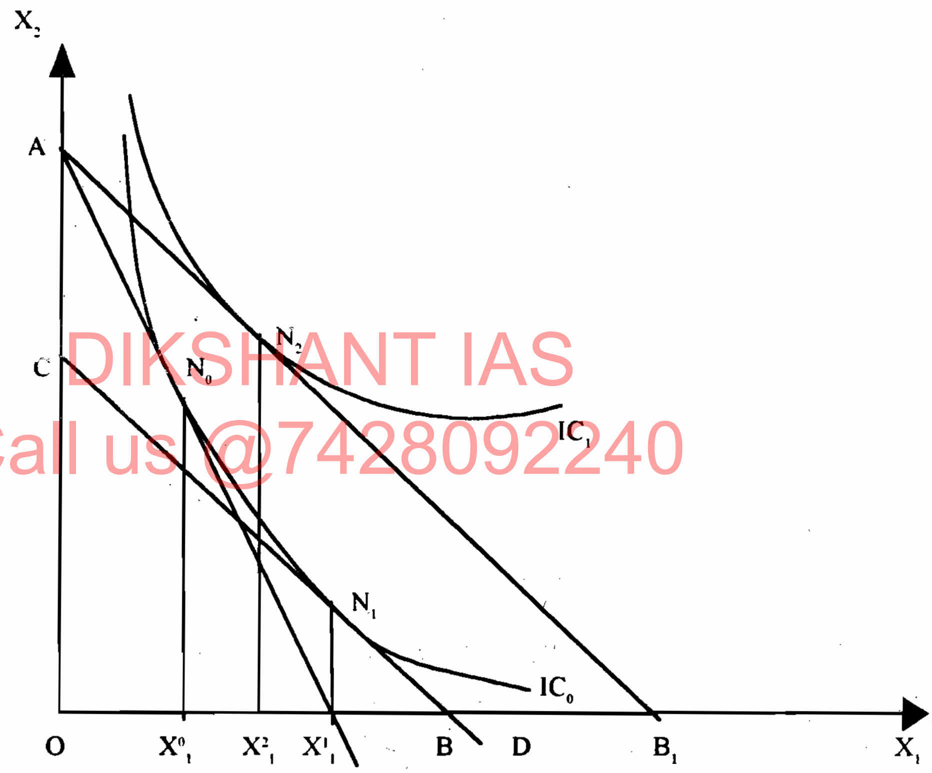

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 5.15 से पता चलता है कि प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण OX_1^0 तथा OX_2^0 तक मांग में वृद्धि आय प्रभाव पर असर डालती है जिससे अधोमुखी प्रवण मांग वक्र उत्पन्न करता है।

घटिया वस्तु

चित्र 5.15 पर गौर करें। प्रारंभिक संतुलन तो N_0 पर ही होता है (आय $=M_0$ कीमतें $= P_1^0$ तथा P_2^0 और X_1 की माँगी गई मात्रा OX_1^0)। अब P_1 में कमी आने पर उपभोक्ता का नया संतुलन बिंदु नई बजट रेखा AB_1 एवं नए अनधिमान-वक्र I_1 के स्पर्श बिंदु N_2 पर होता है। अब वह OX_1^2 मात्रा क्रय करता है। ध्यान दें कि $OX_1^2 > OX_1^0$। हिक्सीय प्रतिस्थापन प्रभाव अभी भी N_0-N_1 ही होगा। इसके कारण माँगी गई मात्रा OX_1^0 से बढ़कर OX_1^1 हो जानी चाहिए। किंतु आय प्रभाव के कारण तो माँगी गई मात्रा OX_1^1 से कम होकर OX_1^2 रह जाती है। परंतु हमारा प्रतिस्थापन प्रभाव अभी भी आय प्रभाव से प्रबल है। इसी कारण वस्तु की माँग में कुछ शुद्ध वृद्धि ($X_1^0 X_1^2$) हो जाती है। अभी भी इस वस्तु की माँग-वक्र सामान्य वस्तु की तरह ही दाहिनी ओर ढलवाँ रहती है।

चित्र 5.15a

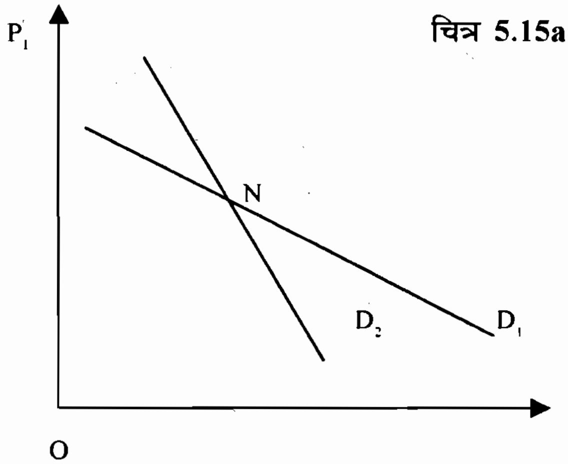

चित्र 5.15a में हम D_1 तथा D_2 द्वारा माँग-वक्र एवं आय प्रतिपूरित माँग-वक्र दिखा रहे हैं। D_1 सामान्य वस्तु का माँग-वक्र है तथा D_2 घटिया वस्तु का माँग-वक्र है।

गिफ़ेन पदार्थ

यह अवस्था हम चित्र 5.16 में दिखा रहे हैं। X_1 अभी भी घटिया वस्तु ही है। P_1 में गिरावट आने पर प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण माँग की मात्रा (OX_1^0 से बढ़कर OX_1^1 हो जाती है। किंतु आय प्रभाव के फलस्वरूप माँग में गिरावट आती है। वह OX_1^1 से कम होकर OX_1^1 रह जाती है। यह गिरावट $X_1^1 X_1^2$ के समान है।

आप सहज ही देख सकते हैं कि यहाँ आय प्रभाव प्रतिस्थापन प्रभाव से अधिक प्रबल है। इसी कारण वस्तु की कीमत कम होने पर उसकी माँग में $X_1^1 X_1^2$ जितनी गिरावट आती है। यहाँ माँग के नियम की अवमानना होती है। माँग-वक्र अब ऊपर की ओर उठने लगता है। यही गिफेन का विरोधाभास है। 19वीं सदी के एक ब्रिटिश सांख्यिकीविद् राबर्ट गिफेन ने पारिवारिक व्यय के आँकड़ों के आधार पर यह बताया था कि ब्राउन मांस (brown meat) जैसे कुछ पदार्थों की माँग में कीमत बढ़ने पर वृद्धि एवं घटने पर कमी दिखाई पड़ती है। उन्हीं पदार्थों के साथ इस 'विचित्रता' की ओर इशारा करने वाले गिफेन का नाम इससे जोड़ दिया गया है। गिफेन के विरोधाभास की उपस्थिति के लिए इन शर्तों का पूरा होना आवश्यक रहता है :

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

i) आय प्रभाव का गणितीय चिह्न धनात्मक हो अर्थात् आय वृद्धि से उपभोग में कमी और आय कम होने से उपभोग में वृद्धि होनी चाहिए। अर्थात् वह वस्तु एक घटिया वस्तु होनी चाहिए

ii) यह धनात्मक आय प्रभाव ऋणात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव से अधिक प्रबल होना चाहिए। तभी वस्तु की माँग एवं कीमत में धनात्मक सह संबंध बन पाएगा।

चित्र 5.16

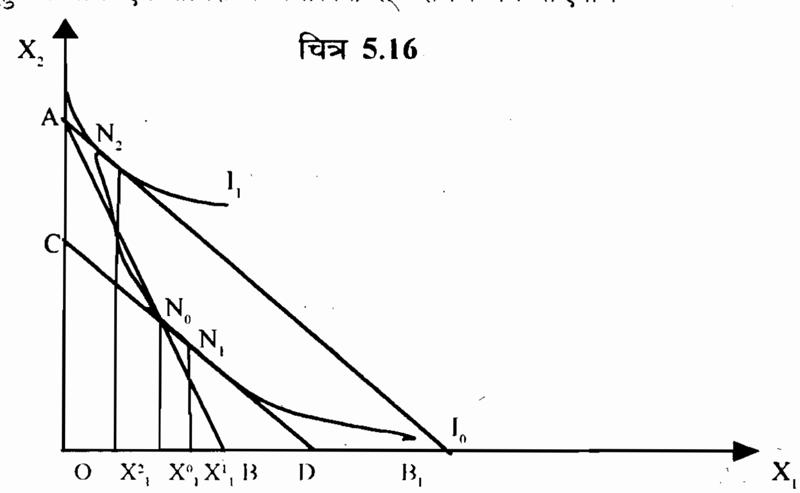

चित्र 5.16 दर्शाता है कि X_1 का उपभोग कीमत गिरने के कारण गिर जाता है और वांछित मात्रा X^0_1'X^2_1 द्वारा गिर गई है। यह गिफन वस्तु का मामला है।

बोध प्रश्न 8

1) क्या दो प्रतिपूरक वस्तुएँ हो सकती हैं?

....

....

....

....

....

....

5.16 सारांश

इस इकाई का क्षेत्र बहुत विस्तृत रहा है। हमने मार्शल के उपभोक्ता व्यवहार विश्लेषण से प्रारंभ कर अनधिमान-वक्र विश्लेषण पर आधारित घटिया एवं गिफेन वस्तुओं की विवेचना पर इसका समापन किया है। मार्शल के माँग के नियम का आधार अंततः ह्रासमान सीमांत उपयोगिता बनी तो सम-सीमांत उपयोगिता के नियम द्वारा उपभोक्ता का संतुलन निर्धारित हुआ। गिफेन के विरोधाभास से परिचित होते हुए भी मार्शल प्रतिस्थापन एवं आय प्रभाव के बीच भेद नहीं कर पाने के कारण उसकी व्याख्या नहीं कर सके। इसका कारण यही रहा कि वे मुद्रा की सीमांत उपयोगिता स्थिर मानते थे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

हमने अनधिमान-वक्र विश्लेषण भी बहुत विस्तार से किया है। उपभोक्ता की अभिरुचियों एवं वरीयताओं की अभिव्यक्ति को आधार बनाकर उसका साम्य ज्ञात किया है। यहाँ किन्हीं भी दो वस्तुओं के बीच सीमांत प्रतिस्थापन दर (जिसका निर्धारण उपभोक्ता की अपनी वरीयताओं द्वारा ही होता है) की अवधारणा बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह मनोवैज्ञानिक विनिमय दर कही जा सकती है। यही **MRS**, उपभोक्ता की आय तथा वस्तुओं की बाज़ार कीमतें मिलकर उपभोक्ता के साम्य का निर्धारण करती हैं। मार्शल के सिद्धांत में द्वितीय कोटि (पर्याप्त) की शर्त अंततः ह्रासमान उपयोगिता नियम प्रदान करता है। तो हिक्स-एलेन के अनधिमान विश्लेषण में ह्रासमान प्रतिस्थापन दर यही कार्य सम्पन्न करती है। यहाँ यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि अवधारणा की दृष्टि से ह्रासमान यही कार्य सम्पन्न करती है। यहाँ यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि अवधारणा की दृष्टि से ह्रासमान उपयोगिता नियम एवं ह्रासमान प्रतिस्थापन दर नियम में कोई अंतर्संबंध नहीं होता।

हमने यह भी देखा है कि वस्तुओं की कीमतों, आय आदि के परिवर्तन का अनधिमान विश्लेषण में वस्तुओं के उपभोग पर क्या प्रभाव पड़ता है। कीमतों के प्रभाव से हमें कीमत-उपभोग एवं आय के प्रभाव से आय उपभोग वक्र प्राप्त होती हैं। कीमत उपभोग वक्र से ही हम वस्तु की माँग-वक्र का निर्धारण करते हैं। कीमत उपभोग वक्र का आकार इस बात पर निर्भर है कि वस्तु सामान्य, घटिया अथवा गिफेन वस्तु है। इसी प्रकार आय उपभोग वक्र का स्वरूप भी उसके सामान्य या घटिया होने पर निर्भर रहता है। अतंतः हमने घटिया एवं गिफेन पदार्थों के बीच सूक्ष्म तकनीकी भेद की भी चर्चा की है।

5.17 शब्दावली

अनधिमान-वक्र : दो वस्तुओं के वे संयोजन जिन्हें उपभोक्ता एक समान संतुष्टिदायक मानता है।

आय-उपभोग वक्र : वस्तुओं की कीमतें एवं उपभोक्ता की वरीयताएँ स्थिर रहने पर आय के परिवर्तनों से उपभोग में आय परिवर्तन दिखाने वाली वक्र।

आय प्रभाव : सापेक्ष कीमत स्थिर होने पर उपभोक्ता की वास्तविक आय में परिवर्तन का उसकी एक वस्तु की माँग पर प्रभाव। सामान्य पदार्थों के संदर्भ में इसकी दिशा कीमत परिवर्तन के विपरीत तथा घटिया पदार्थों के लिए कीमत परिवर्तन की ही दिशा में रहती है।

उपभोक्ता का बजट : बाज़ार कीमतों एवं उपभोक्ता की आय के आधार पर हम उन संयोजनों का निर्धारण कर सकते हैं, जिन्हें उपभोक्ता अपनी सारी आय खर्च करके पाने में समर्थ हो सकता है। यह आय के आधार पर संभव व्यावहारिक चयन दर्शाता है।

उपभोक्ता की बचत : उपभोक्ता जो कीमत चुकाने को तत्पर हो तथा जो कीमत उसे चुकानी पड़े, उनका अंतर। यह एक प्रकार से उपभोक्ता के लिए वस्तु के कुल मूल्यमान एवं उनकी लागत का अंतर है। मार्शल एवं उनके शिष्य पीगू ने इस अवधारणा के आधार पर अनेक कल्याण संबंधी प्रस्तावों की रचना की है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उपभोक्ता संतुलन : जहाँ प्रत्येक वस्तु पर खर्च प्रति रुपया सीमांत उपयोगिता समान हो। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक वस्तु का सीमांत उपयोगिता एवं वस्तु-कीमत अनुपात एक समान होना चाहिए। यही रुपये की स्थिर सीमांत उपयोगिता के भी समान होगा। इसी को सम-सीमांत उपयोगिता नियम भी कहा जाता है।

उपयोगिता : वस्तु का आवश्यकता-पूर्ति गुण। यह वस्तु के उपभोग से प्राप्त मनोवैज्ञानिक अनुभूति है। इसके पारिभाषिक मापक को 'यूटिल' नाम दिया गया है।

कीमत-उपभोग वक्र : अन्य बातें स्थिर रहने पर वस्तु की कीमत एवं उसके उपभोग में संबंध दर्शाने वाली वक्र।

कीमत प्रभाव : अन्य बातें पूर्ववत् रहने पर किसी वस्तु की कीमत परिवर्तन से उसके उपभोग पर प्रभाव।

कुल उपयोगिता : उपभोग से प्राप्त कुल उपयोगिता– यह सीमांत उपयोगिता का योग होती है।

क्रमसूचक : यहाँ प्रयुक्त अंक पहला, दूसरा तीसरा आदि स्तर या क्रम ही दर्शाती है।

गणनसूचक : यदि 1, 2, 3.... आदि अंकों से किसी चीज़ के परिमाण का मापन संभव हो तो उसे गणनसूचक कहा जाता है।

गिफेन वस्तु : वह वस्तु जिनका उपभोग कीमत परिवर्तन की दिशा में ही परिवर्तित होता है। इनकी माँग-वक्र ऊपर की ओर उठती हुई बनती है।

घटिया पदार्थ : जिनका उपभोग कीमत परिवर्तन से विपरीत दिशा में परिवर्तित हो। अतः आय वृद्धि से उपभोग कम होता है और आय घटने से उसमें वृद्धि आती है।

प्रतिस्थापन प्रभाव : वास्तविक आय स्थिर रखने के लिए मौद्रिक आय में ऐसा समायोजन कि वस्तु की सापेक्ष कीमत परिवर्तन का उसके उपभोग पर प्रभाव। यहाँ या तो उपयोगिता स्थिर रहती है या क्रय-शक्ति। इसका गणितीय चिह्न सदैव ऋणात्मक रहता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सामान्य पदार्थ : जिनका उपभोग भी आय के परिवर्तन की दिशा में ही परिवर्तित हो।

सीमांत उपयोगिता : अतिरिक्त इकाई के कारण मिली अतिरिक्त उपयोगिता अथवा एक अतिरिक्त इकाई के उपभोग से कुल उपयोगिता में आया परिवर्तन।

सीमांत प्रतिस्थापन दर (MRS) : दो वस्तुओं X_1 तथा X_2 के बीच वह दर जिनके बीच मनोवैज्ञानिक प्रतिस्थापन दर होती है। यह दर किसी दी हुई अनधिमान-वक्र पर ही व्यवहार्य रहती है। दूसरे शब्दों में, MRS द्वारा हम यह जान पाते हैं कि यदि उपभोक्ता को उसी अनधिमान-वक्र पर रहना हो तो वह X_2 के स्थान पर X_1 का प्रयोग किस दर पर कर सकता है।

5.18 कुछ उपयोगी पुस्तकें

इस इकाई के लिए भी वही पुस्तकें उपयोगी हैं जिनका उद्धरण खंड-1 (इकाई 1, 2 एवं 3) में दिया गया है।

5.19 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

बोध प्रश्न 1

1)

X	1	3	5	8	12
MUx		5/2	13/2	12/3	16/4

बोध प्रश्न 2

1) संतुलन में $MU_x / P_x = MU_y / P_y$
अतः X की 4 तथा Y की 3 इकाइयाँ प्रयोग होंगी, यहाँ X रुमाली रोटी तथा Y चिकनकरी है।

बोध प्रश्न 3

1) $MU_x = P_x$ यदि = 1 (अर्थात् $MU_m = 1$)
क्योंकि $MU_x = 40 - 0.5\ Q_x$
$MU_x = P_x = 40 - 0.5\ Q_x$
अतः माँग-वक्र : $P_x = 40 - 0.5\ Q_x$
माँग तालिका सीमांत उपयोगिता तालिका के समरूप ही होगी।

बोध प्रश्न 4

1) क) TU स्थिर है
ख) MU धनात्मक है
ग) TU वृद्धिमान दर से बढ़ रही है
घ) MU = 0

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) संतुलन में $P_x = MU_x$
अतः X की 16 इकाइयाँ खरीदी जाएँगी।

बोध प्रश्न 5

1) भाग 5.8 पढ़ें एवं उत्तर लिखें।
2) बजट रेखा अपरिवर्तित रहती है।

बोध प्रश्न 6

1) MRS = –dy/dx
7/1, 6/1, 5/1, 4/1, 3/1, 2/1, 1/1, 0.8/1, 0.7/1, 0.5/1

2) $P_x/P_y = 3.0/1.0 = 3.0$

साम्य की दशा में $P_x/P_y = MRS$
और MRS = 3 जबकि X = 5 और Y = 5

बोध प्रश्न 7

1) 5.11 पढ़ें एवं उत्तर लिखें।

बोध प्रश्न 8

1) नहीं। प्रतिपूरक वस्तुओं का उपभोग तो साथ-साथ होता है। आय बढ़ने पर उनका उपभोग एक साथ बढ़ेगा और आय कम होने पर एक साथ कम होगा।

इकाई 6 उत्पादन सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
  6.1.1 आगत क्या है?
6.2 उत्पाद-फलन की अवधारणा
  6.2.1 उत्पाद वक्र
  6.2.2 ह्रासमान सीमांत उत्पाद नियम
  6.2.3 उत्पादन में स्थिर तथा परिवर्तनशील अनुपात
  6.2.4 उत्पादन के तीन चरण
  6.2.5 ह्रासमान प्रतिफलों का नियम क्यों व्यवहार्य हो जाता है?
  6.2.6 सम-उत्पाद वक्र
  6.2.7 उत्पादन के आर्थिक योग
  6.2.8 कुछ विशेष स्वरूप वाले उत्पादन-फलन
6.3 आदान कीमतें तथा सम-लागत रेखा
  6.3.1 सम-लागत रेखा
  6.3.2 पैमाने के प्रतिफल: रेखा चित्र द्वारा स्पष्टीकरण
6.4 सारांश
6.5 शब्दावली
6.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें
6.7 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के भलीभाँति अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगे कि:

- उत्पादन फलन है तथा आदानों और उत्पादन के बीच किस प्रकार के संबंध हैं; तथा
- जब उत्पादन की तकनीकें इस प्रकार की हों कि पैमाने के प्रतिफल स्थिर न रहें तो उत्पादन के पैमाने का चित्रांकन किस प्रकार हो सकता है।

6.1 प्रस्तावना

परम्परागत उत्पादन की परिभाषा उपयोगिता सृजन के रूप में की जाती है। दूसरे शब्दों में, हम उन वस्तुओं का उत्पादन करते हैं जिनके उपभोग से हमारी इच्छाएँ पूर्ण होती हैं। इस दृष्टि से उत्पादन की प्रक्रिया में अनेक प्रकार की गतिविधियाँ शामिल हो जाती हैं, जैसे किसी भौतिक वस्तु का विनिर्माण, अर्थशास्त्र के छात्रों या किसी भी विषय छात्रों के लिए एक पुस्तक लिखना, फिल्म निर्माण, सौंदर्य-प्रसाधन सेवाएँ, आदि।

''उत्पादन'' में वस्तुओं और सेवाओं दोनों का उत्पादन शामिल होता है। लेकिन उत्पादन की अवधारणा हम किसी वस्तु के उत्पादन के उदाहरण से अच्छा समझ सकते हैं। मान लीजिए कि आप एक साइकिल निर्माता हैं।

जनवरी 1997 में आपने 100 साइकिलों का निर्माण किया। आपने मशीनों-औजारों, इस्पात तथा श्रम आदि पर कुछ कार्य खर्च किया। इस सभी को हम दो श्रेणियों में बाँट सकते हैं। एक उत्पादन है, अर्थात् बनाई गई साइकिलों की संख्या। दूसरी श्रेणी है आगतें अर्थात् जो कुछ उत्पादन के लिए आवश्यक पदार्थ और सेवाएँ।

हम आगतों को एक विशेष प्रकार से संयोजित करते हैं। इसी संयोजन से हमें विशिष्ट वस्तु का उत्पादन मिलता है। उत्पादन सिद्धांत हमें बताता है कि एक उत्पादक किसी वस्तु का उत्पादन करने के लिए विभिन्न आगतों को किस प्रकार संयोजित करता है। हम यह मानकर चलते हैं कि इस प्रक्रिया में प्रौद्योगिकी में कोई परिवर्तन नहीं आता। आगतों तथा उत्पादन का यही संबंध उत्पाद-फलन कहलाता है।

6.1.1 आगत क्या है?

किसी उत्पादन में काम आने वाली वस्तुएँ तथा सेवाएँ ही आगतें कहलाती हैं। सामान्यतः किसी वस्तु का उत्पादन करने के लिए उत्पादक कई आगतों का प्रयोग करता है। इनमें से कुछ आगतें उसे अन्य फर्मों से प्राप्त करनी पड़ती है। जैसे, एक कार निर्माता आगत के रूप में इस्पात का प्रयोग करता है। पर इस्पात इस्पात उत्पादक का उत्पाद है। दूसरी और श्रम जैसी आगतें होती है जिनका उत्पादन नहीं होता।

उत्पादन में काम आने वाली आगतों का एक अन्य दृष्टि से भी वर्गीकरण हो सकता है : स्थिर तथा परिवर्तनशील। स्थिर आगत वह आगत है जिसका प्रयोग उत्पादन की मात्रा के साथ-साथ घटता-बढ़ता नहीं है। उदाहरण के तौर पर फर्म के मैनेजर को लीजिए। उत्पादन चाहे एक इकाई का हो या सौ का, आवश्यकता एक ही मैनेजर की रहती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इसके विपरीत परिवर्तनशील आगतों का प्रयोग उत्पादन के स्तर के साथ-साथ बदलता रहता है। उदाहरण के रूप में, यदि कार निर्माता एक ही कार बनाता है तो उसे इस्पात की कुछ मात्रा चाहिए। पर एक सौ कारें बनाने के लिए उसे पहले से सौ गुणा के लगभग इस्पात की जरूरत होगी।

एक अन्य बात पर भी ध्यान देना आवश्यक है। आगतों का स्थिर रहना अथवा परिवर्तनशील होना। समय से जुड़ा है। जो आगत किसी एक अवधि में स्थिर रहती है। उससे बड़ी अवधि में यह परिवर्तनशील भी हो सकती है। अल्पावधि में मशीनों की संख स्थिर रहती है क्योंकि उत्पादन का पैमाना स्थिर रहता है। लेकिन दीर्घावधि में जब पैमाने में वृद्धि लाने की आवश्यकता होती है तो मशीनों की संख्या में वृद्धि आवश्यक होती है।

6.2 उत्पाद-फलन की अवधारणा

आपने कई बार तरह-तरह की चीजें बनते हुए देखी होंगी। शायद इस बात पर भी आपने गौर किया हो कि आंमतौर पर प्रत्येक मशीन पर काम करने वाले श्रमिकों की संख्या भी निश्चित ही रहती है। यदि आप एक आरे का प्रयोग होते देखेंगे, तो दो व्यक्ति उसे चलाते हुए मिलेंगे। पर यदि कुल्हाड़े द्वारा वृक्ष काटा जा रहा हो, उस कार्य में एक ही मज़दूर काफी रहता है। अतः, जैसे ही मशीन का चयन किया जाता है, तो यह भी तय हो जाता है कि उस मशीन पर कितने श्रमिकों को उत्पादन कार्य में लगाया जा सकता है। हम कह सकते हैं कि प्रौद्योगिकी का ज्ञान होते ही हमें यह भी पता चल जाता है कि श्रम, पूँजी तथा कच्चे माल आदि की कितनी मात्रा में आवश्यकता पड़ेगी। इसी तरह से, इससे कितना उत्पादन मिलेगा यह बात भी तय हो जाती है।

हम यहाँ यह बताने का प्रयत्न कर रहे हैं कि किसी प्रौद्योगिकी में आगतों और उत्पादन के बीच क्या संबंध है? मान लीजिए इसी बात को हम कुछ भिन्न रूप भी दे सकते हैं : आइए, एक वस्तु का Q मात्रा में उत्पादन करने के लिए X_1 व X_2 और एक (या अधिक भी) आगत की आवश्यकता है। उत्पादन फलन हमें बोध कराता है कि X_1 व X_2 के विभिन्न संयोजनों से वस्तु की किस अधिकतम मात्रा का उत्पादन संभव हो सकता है। अतः एक उत्पादन-फलन आगतों एवं उत्पादन के बीच एक तकनीकी संबंध बताता है।

अर्थशास्त्री इस अवधारणा का प्रयोग आगतों और उत्पादन के बीच संबंध बताने वाले उत्पादन नियमों के विश्लेषण के लिए करते हैं।

6.2.1 उत्पाद-वक्र

एक उत्पादन-फलन आगतों एवं उत्पादन का संबंध दर्शाता है। लेकिन अब हम यह जानना चाहेंगे कि यदि हम केवल एक आगत की मात्रा बढ़ाएँ और अन्यों को स्थिर रखें तो उत्पादन में परिवर्तन का क्या स्वरूप होगा इसके लिए हम एक उदाहरण का सहारा लेते हैं।

मान लीजिए कि भूमि की मात्रा (अर्थात् खेत का आकार) स्थिर है। हम यह जानना चाहते हैं कि यदि भूमि पर श्रमिकों की संख्या बढ़ाते चले जाएँ, तो उत्पादन पर क्या प्रभाव पड़ेगा। हमारे पास एक-एक एकड़ के आठ भूखण्ड हैं और ये एक जैसे उपजाऊ हैं। एक जैसे 'कुशल एवं सक्षम' श्रमिकों के एक समूह में से पहले भू-खण्ड पर एक, दूसरे पर दो, तीसरे पर तीन और इसी तरह से आठवें पर आठ श्रमिकों को काम पर लगाया गया। इन भू-खण्डों से प्राप्त उत्पादन आदि का लेखा ही तालिका 6.1 में लिखा गया है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

तालिका 6.1 : श्रम का प्रयोग तथा धान का उत्पादन

भू-खण्ड संख्या	श्रमिकों की संख्या	धान का उत्पादन (क्विंटल में)
1	1	10
2	2	24
3	3	34
4	4	52
5	5	61
6	6	66
7	7	66
8	8	64

आप देख सकते हैं कि छठे श्रमिक तक उत्पादन बढ़ रहा है। पर सातवाँ श्रमिक लगाने पर उत्पादन में कोई परिवर्तन नहीं आता। हम कह सकते हैं कि छठे से सातवाँ श्रमिक बढ़ने पर भी उपज नहीं बढ़ती। आठवाँ श्रमिक लगाने पर तो उपज घट जाती है।

इस तालिका 6.1 के आधार पर रेखाचित्र 6.1 बनाया गया है। उत्पादन परिवर्ती आगत श्रम पर निर्भर है। इस चित्र में स्वतंत्र पर श्रम को क्षैतिज-अक्ष पर तथा आश्रित चर उत्पादन को शीर्ष-अक्ष पर दिखाया गया है। तालिका 6.1 के आगत व उत्पादन बिन्दुओं यानि श्रम तथा धान के संयोजन बिंदुओं को मिलाने से हमें कुल उत्पाद-वक्र प्राप्त होता है। इस वक्र पर शुरू में उत्पादन में वृद्धि बढ़ती दर से होती है, फिर एक सीमा के पश्चात् यह वृद्धि घटती दर से होती है। इस वृद्धि की अपनी एक सीमा होती है। इसी सीमा के पश्चात् कुल उत्पाद बढ़ने की बजाय घटने लगता है। उस समय यह वक्र ऊपर की ओर उठते रहने की बजाय नीचे की ओर गिरना प्रारम्भ कर देता है।

चित्र 6.1

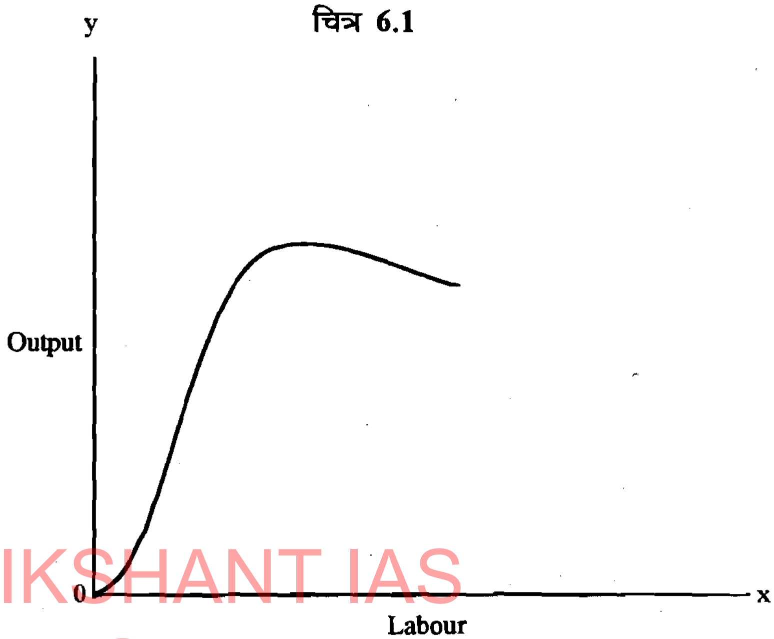

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 6.1 परिवर्तनशील आगत श्रम तथा कुल उत्पादन-धान का संबंध दिखाता है। जैसे-जैसे श्रम का प्रयोग बढ़ता है, उत्पादन भी बढ़ने लगता है। कुछ समय बाद यह वृद्धि धीमी पड़ती जाती है। और अंततः गिरावट भी शुरू हो जाती है।

इस व्यवहार को समझने में हम औसत उत्पाद तथा सीमांत उत्पाद की अवधारणाओं का प्रयोग करते हैं। कुल उत्पाद को श्रमिकों की संख्या से भाग देने पर श्रम का औसत उत्पाद (AP) ज्ञात होता है:

श्रम की एक इकाई में वृद्धि से जो वृद्धि कुल उत्पाद में होती है उसे श्रम का सीमांत उत्पाद (MP) कहते हैं तालिका 6.2 में औसत एवं सीमांत उत्पाद का आकलन किया गया है। चित्र 6.2 में हमने

$$AP = \frac{Q}{X}$$

औसत एवं सीमांत उत्पादों (AP तथा MP) का रेखांकन किया है। इस चित्र से हमें इन दोनों (AP तथा MP) के बीच के संबंध की भी जानकारी मिलती है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि औसत उत्पाद अक्ष केंद्र (origin of axis) तथा कुल उत्पाद वक्र के विभिन्न बिंदुओं को मिलाने वाली रेखाओं का ढाल (slope) है। इसी तरह से सीमांत उत्पाद कुल उत्पाद वक्र के विभिन्न बिंदुओं पर स्पर्शी रेखा (tangent) के ढाल के समान होता है। AP तथा MP वक्र दोनों ही अक्ष केंद्र से शुरू होते हैं पर MP वक्र अपेक्षाकृत अधिक तेजी से बढ़ता है लेकिन यह AP वक्र से पहले ही गिरना शुरू हो जाता है तथा यह AP वक्र के अधिकतम बिंदु पर इसे काटता हुआ नीचे की ओर गिरता जाता है—यहाँ तक कि यह ऋणात्मक (negative) भी हो सकता है। इसके विपरीत, अपेक्षाकृत धीमी गति से उठता हुआ AP वक्र अपना अधिकतम स्तर प्राप्त करने के पश्चात् धीरे-धीरे गिरना शुरू होता है, पर यह कभी भी शून्य नहीं होता। अतः इसके ऋणात्मक होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

चित्र 6.2

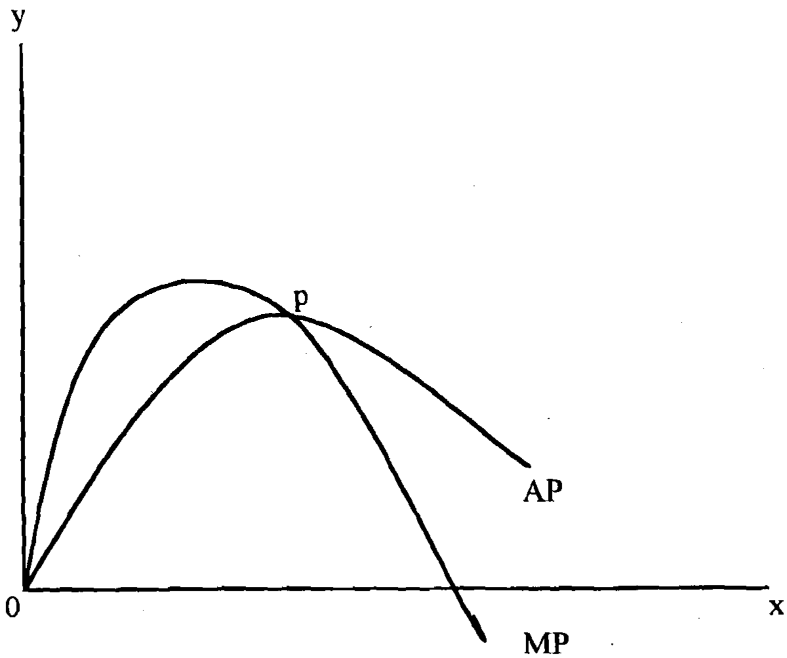

चित्र 6.2 AP तथा MP वक्रों का आकार व व्यवहार दिखाता है। ध्यान दें कि MP वक्र ज्यादा तेज़ी से बढ़ता है तथा AP वक्र की अपेक्षा पहले ही अपना अधिकतम स्तर प्राप्त कर गिरना शुरू हो जाता है। इसकी गिरावट की दर भी अधिक तीव्र रहती है तथा यह AP वक्र को उसके उच्चतम बिंदु पर काटता हुआ AP वक्र से नीचे रहने लगता है। MP ऋणात्मक भी हो सकता है। AP सदैवा धनात्मक ही रहता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

6.2.2 ह्रासमान सीमांत उत्पाद का नियम

इस नियम के अनुसार 'अन्य साधनों का प्रयोग स्थिर रखते हुए यदि किसी एक साधन का प्रयोग बढ़ाया जाता है तो अंततः इस (परिवर्तनशील) साधन की सीमांत उत्पादिता कम होने लगती है। यह संभव है कि शुरू-शुरू में सीमांत उत्पादिता उत्पादिता में कुछ बढ़ोतरी भी दिखाई पड़े।

उदाहरण के लिए धान उत्पादन में भूमि और श्रम के प्रयोग के तालिका 6.1 के आँकड़ों पर एक बार फिर गौर करें। श्रम का प्रयोग बढ़ने पर आरंभ में सीमांत उत्पादिता 10 से 14 और 14 से 15 इकाई को जाती है। पर यह बढ़ोतरी तीन श्रमिकों के लगाने तक ही सीमित रहती है। चौथे श्रमिक की सीमांत उत्पादिता घटकर 13 इकाई ही रह जाती है। उसके बाद तो यह बड़ी तेजी से कम होने लगती है। इसी प्रवृत्ति को ह्रासमान सीमांत उत्पाद का नियम कहा जाता है। यह नियम तभी प्रभावी होता है जब हम केवल एक आगत का प्रयोग बढ़ाएँ। सभी आगतों का प्रयोग एक साथ बढ़ाने पर यह नियम लागू नहीं होगा। हम उपर्युक्त जानकारी के आधार पर परिवर्तनशील आगत (x) की उत्पादन (q) माप सकते हैं। उत्पादन में प्रतिशत परिवर्तन को आगत में प्रतिशत परिवर्तन से भाग देने पर यह प्राप्त होती है। अतः

यहाँ Σ_{01} = आगत x_1 की उत्पाद लोच

Δq = उत्पादन में परिवर्तन

Δx_1 = आगत x_1 में परिवर्तन

$$\Sigma_{01} = \frac{\Delta q}{q} \div \frac{\Delta x_1}{x_1} = \frac{\Delta q x_1}{q \Delta x_1} = \frac{\Delta q}{x_1} \div \frac{q}{x_1} = \frac{MP}{AP}$$

6.2.3 उत्पादन में स्थिर तथा परिवर्ती अनुपात

ह्रासमान सीमांत उत्पादन नियम की व्याख्या से यह बात तो स्पष्ट ही है कि अन्य साधन स्थिर रहने पर, यदि एक ही आगत के प्रयोग को घटाया-बढ़ाया जाए तो भी उत्पादन पर प्रभाव पड़ता है। इस प्रक्रिया में आगतों के बीच अनुपात भी परिवर्तित होते हैं। इसे ही परिवर्ती अनुपात व्यवस्था में उत्पादन का नाम दिया जाता है। इसे हम एक फैक्टरी के उदाहरण द्वारा आसानी से समझ सकते हैं। फैक्टरी की मशीनों तथा भवन आदि तो उसी आकार प्रकार में बहुत समय तक स्थिर रहते हैं पर श्रमिकों की संख्या में तो रोज़-रोज़ परिवर्तन हो सकते हैं। इसका अर्थ है कि पूँजी-श्रम अनुपात में परिवर्तन आते हैं।

इसकी तुलना हम स्थिर अनुपात उत्पादन से कर सकते हैं। इसमें उत्पादन करने के लिए आगतों के एक निश्चित अनुपात की ही आवश्यकता होती हैं। उत्पादन बढ़ाने के लिए सभी आगतों को एक समान अनुपात में बढ़ाना आवश्यक होता है।

6.2.4 उत्पादन के तीन चरण

एक समान स्थिर रख दूसरे के प्रयोग को परिवर्तित करने पर उत्पादन पर पड़े प्रभाव को हमने चित्र 6.3 में दर्शाया है। यह चित्र तीन स्पष्ट स्थितियों की ओर हमारा ध्यान खींचता है। हमने परिवर्ती आदान को **X**-अक्ष पर तथा उत्पादन की मात्रा को **Y**-अक्ष पर रखा है।

प्रथम स्थिति

पहली स्थिति परिवर्ती आदान के बिंदु 5 तक के प्रयोग से जुड़ी है। कुल उत्पादन आरंभ में बढ़ती हुई दर पर बढ़ता है। यहाँ **MP** में वृद्धि होती रहती है। पर एक बिंदु के पश्चात् कुल उत्पाद वक्र का ढाल कम होने लगता है (देखिए बिंदु-1) अर्थात् उत्पादन वृद्धि की दर कम होने लगती है। परिणामतः सीमांत उत्पादन गिरने लगता है, पर वह धनात्मक ही बना रहता है। बिंदु-5 पर औसत उत्पादन अपना उच्चतम स्तर प्राप्त कर लेता है। सीमांत उत्पादन पहले बढ़ता है पर फिर गिरने लगता है किंतु औसत से अधिक ही रहता है। औसत उत्पादन निरंतर बढ़ता रहता है। इस स्थिति को हम वृद्धिमान प्रतिफल की स्थिति कहते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

द्वितीय स्थिति

यह स्थिति बिंदु 5 तथा 6 के बीच देखी जा सकती है। कुल उत्पादन घटती हुई दर पर बढ़ता है। इसका समापन बिंदु-3 है जहाँ पर कुल उत्पादन अपने अधिकतम स्तर को पा लेता है। **AP** तथा **MP** दोनों ही घट रहे होते हैं पर धनात्मक रहते हैं। बिंदु-6 पर पहुँचते-पहुँचते सीमांत उत्पादन शून्य हो जाता है। इस स्थिति को ह्रासमान प्रतिफल की स्थिति कहते हैं।

तृतीय स्थिति

यदि परिवर्ती साधन का प्रयोग द्वितीय स्थिति से आगे भी जारी रहे तो हम तीसरी स्थिति में पहुँच जाएँगे। यहाँ तो **MP** ऋणात्मक हो जाता है तथा कुल उत्पादन भी गिरने लगता है। इसे ऋणात्मक प्रतिफल कहा जा सकता है। कोई भी समझदार उत्पादक इस स्थिति में प्रवेश नहीं करना चाहेगा। वस्तुतः सीमांत उत्पादन का ऋणात्मक होना ही इस बात का सूचक है कि परिवर्ती साधन का प्रयोग घटाकर उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है।

चित्र 6.3

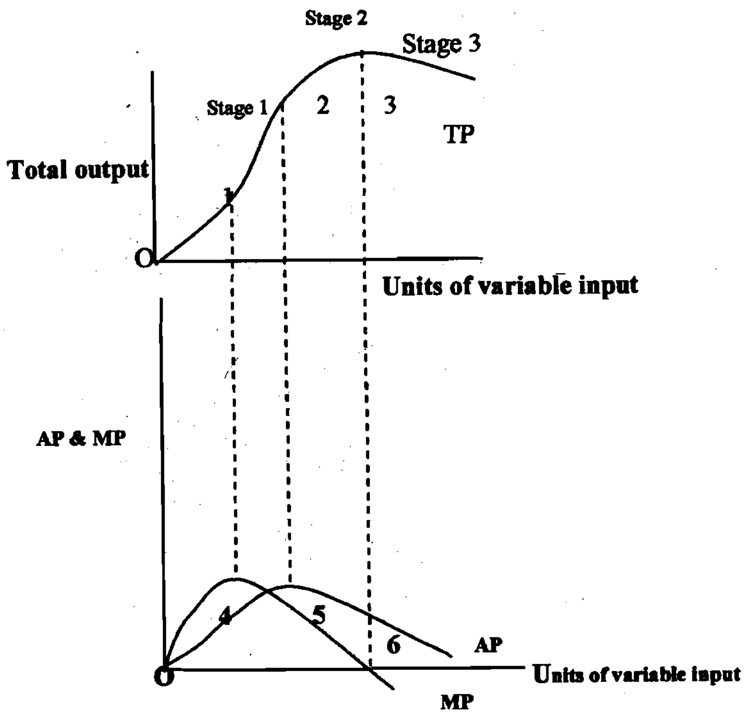

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 6.3 कुल, औसत तथा सीमांत उत्पाद वक्रों के आकार को दिखाता है इसके दोनों भाग इन उत्पाद (TP, AP, MP) वक्रों के आपसी संबंधों पर प्रकाश डालते हैं। ऊपरी भाग में कुल उत्पादन वक्र है तथा नीचे के भाग में तत्संबंधी (परिवर्ती साधन प्रयोग से जुड़े) औसत एवं सीमांत उत्पादन-वक्र दिखाए गए हैं। इन्हीं TP, AP तथा MP वक्रों के द्वारा तीन उत्पादन चरणों का विवेचन किया गया है।

6.2.5 ह्रासमान प्रतिफलों का नियम क्यों व्यवहार्य हो जाता है?

उत्पादन चरणों के अध्ययन से पता चलता है कि एक बिंदु के बाद सीमांत एवं औसत उत्पाद कम होने लगते हैं। ह्रासमान प्रतिफल नियम के अनुसार, अन्य साधनों का प्रयोग स्थिर रहने पर, केवल एक आगत की मात्रा में वृद्धि करने से उस आगत की सीमांत उत्पादिता कम होने लगती है। हमारे धान उत्पादन के उदाहरण में यदि भूमि एवं ट्रैक्टर की मात्रा स्थिर रहे, तो श्रमिकों की संख्या बढ़ाने पर एक ऐसा बिंदु आएगा कि धान के उत्पादन में वृद्धि की दर गिरने लगेगी। तालिका 6.2 में हमने तालिका 6.1 के ही उदाहरण को कुछ और विकसित किया है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि धान उत्पादन के लिए हमें तीनों आदान चाहिए। इन्हीं आदानों के विभिन्न संयोजन हमें तालिका 6.2 में दर्शाए गए उत्पादन स्तर सुलभ कराते हैं। प्रत्येक उत्पादन स्तर के लिए कोई न कोई 'उत्पादन' साधन संयोजन आवश्यक होता है। दस बोरे धान का उत्पादन कुछ भूमि थोड़े बहुत औजार तथा एक श्रमिक की मेहनत से हो सकता है।

यदि हम उत्पादन बढ़ाकर 52 बोरे करना चाहें तो और भूमि, तथा ट्रैक्टर आदि के प्रयोग की आवश्यकता पड़ सकती है। यदि इन सबको बढ़ाएँ तो हो सकता है श्रमिकों की संख्या कम करनी पड़ जाए। पर भूमि की मात्रा तो स्थिर है और ट्रैक्टर के भी टुकड़े-टुकड़े करके उसका प्रयोग नहीं हो सकता, हम श्रम के प्रयोग में बदलाव द्वारा उत्पादन को प्रभावित करना सहज पाते हैं। शुरू में

100 एकड़ ज़मीन पर एक श्रमिक (एक ट्रैक्टर द्वारा) कार्य कर रहा था। एक और श्रमिक के आ जाने से प्रति श्रमिक भूमि 50 एकड़ तथा ट्रैक्टर 1/2 ही रह गया। अतः श्रम के उत्पादन में बदलाव आवश्यक है। यही परिवर्तन हम तालिका 6.2 में दिखा रहे हैं। एक श्रमिक ने 10 क्विंटल उत्पादन दिया था। जब श्रमिकों की संख्या 8 हो गई तो उत्पादन बढ़कर 64 क्विंटल तक पहुँच गया।

यदि हम औसत उत्पादन देखें तो पाते हैं कि एक श्रमिक के कार्य करने पर औसत उत्पादन 10 क्विंटल था। चार श्रमिक होने पर यह बढ़कर 13 हो गया। अर्थात् श्रम प्रयोग बढ़ने पर उत्पादिता भी बढ़ गई। पर पाँचवें मज़दूर के आते ही यह औसत घटकर 12.2 क्विंटल ही रह जाती है और ज्यादा मज़दूरों को काम पर लगाने से यह औसत और कम होती जाती है। इसी तरह से सीमांत उत्पादन भी शुरू में बढ़ने व बाद में कम होने की प्रवृत्ति दर्शाता है। तीन श्रमिक हमें अधिकतम सीमांत उत्पाद (15 क्विंटल) प्रदान करते हैं पर इससे आगे यह गिरना शुरू हो जाता है। आठ श्रमिकों को काम पर लगाने पर तो सीमांत उत्पादन घटकर ऋणात्मक (−2) ही हो जाता है।

तालिका 6.2 : ह्रासमान औसत एवं सीमांत उत्पाद

श्रमिकों की संख्या	कुल उत्पादन (TP)	औसत उत्पादन(AP)	सीमांत उत्पादन (MP)
1	10	10	-
2	24	12	14
3	39	13	15
4	52	13	13
5	61	12.2	9
6	66	11.0	5
7	66	9.4	0
8	64	8	(-)2

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

6.2.6 सम-उत्पाद वक्र

मान लीजिए एक उत्पादन स्तर Y है। एक फलन संबंध हमें बता सकता है कि श्रम व पूँजी के वे कौन-कौन से जोड़े हैं जिससे Y उत्पादन स्तर प्राप्त किया जा सकता है। हमने तालिका 6.3 में ऐसे ही चार जोड़े लिए हैं। चित्र 6.4 में ये जोड़े वक्र ABCD के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। प्रत्येक संयोजन (जोड़ा) A, B, C तथा D श्रम एवं पूँजी के वह संयोजन हैं जिनसे हमें 100 इकाई उत्पादन प्राप्त हो सकता है। यदि हम A से B की ओर बढ़ें तो 10 श्रमिक 30 इकाई पूँजी का स्थान ले सकते हैं। पर बिन्दु c पर 10 और श्रमिक केवल 20 इकाई पूँजी का और D पर 10 और श्रमिक केवल 10 इकाई पूँजी का स्थान लेते हैं।

तालिका 6.3 : पूँजी के लिए श्रम की सीमांत तकनीकी प्रतिस्थापन दर (MRTS)

श्रम-पूँजी	उत्पादन	पूँजी	पूँजी में परिवर्तन	श्रम	श्रम में परिवर्तन	MRTS = ΔK/ΔL
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)
A	100	90	-	10	-	-
B	100	60	-30	20	10	-3:1
C	100	40	-20	30	10	-2:1
D	100	30	-10	40	10	-1:1

चित्र 6.4

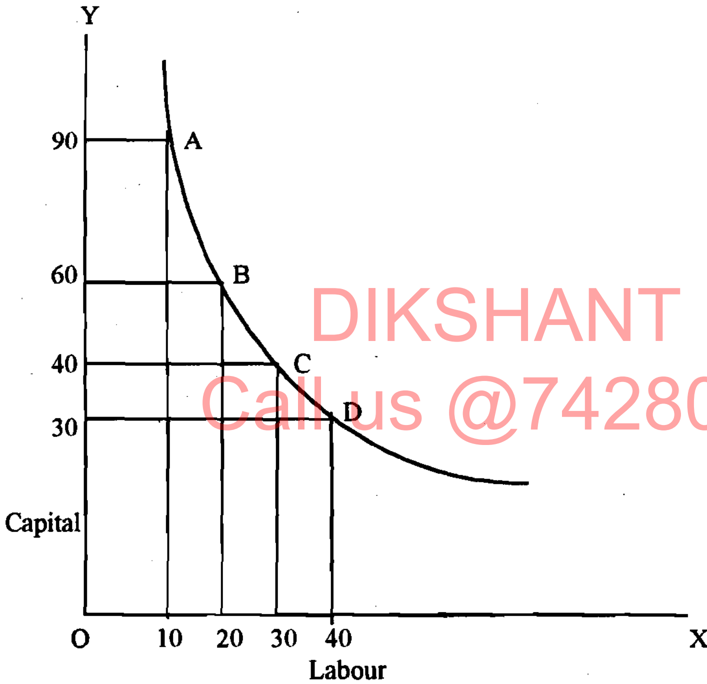

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 6.4 दिखाता है कि बिंदु A, B, C तथा D पर उत्पादन का स्तर तो स्थिर रहता है पर उसके निमित साधनों के अलग-अलग संयोजन इस्तेमाल किए जाते हैं। ये संयोजन तालिका 6.3 में दर्ज हैं।

इस उदाहरण से यह स्पष्ट है कि उत्पादन स्थिर रहते हुए श्रम का प्रयोग कुछ इस प्रकार ही बढ़ाया जा सकता है कि प्रत्येक अतिरिक्त श्रम इकाई पहले की अपेक्षा कम पूँजी का ही स्थान ले पाती है। इसका कारण है दोनों ही साधनों पर ह्रासमान प्रतिफलों के नियम का लागू होना। पूँजी घटाकर श्रम बढ़ाने से दो प्रकार के परिवर्तन आते हैं : पूँजी की कमी से पूँजी की सीमांत उत्पादिता बढ़ जाती है। दूसरे, अब ज्यादा श्रमिकों को अपेक्षाकृत कम पूँजी से काम करना पड़ता है अतः श्रम का सीमांत उत्पाद कम हो जाता है। इसका कारण यही है कि कोई भी दो आगत या साधन एक-दूसरे के पूर्ण प्रतिस्थापक (Prefect substitutes) नहीं। अतः बढ़ती हुई सीमांत उत्पादिता वाली पूँजी इकाइयों का स्थान घटती हुई सीमांत उत्पादिता वाली श्रम इकाइयाँ तभी ले सकती हैं जबकि श्रम की प्रत्येक इकाई श्रम पहले से कम पूँजी के स्थान ले। उत्पादन स्थिर रहते हुए, जिस दर से श्रम पूँजी का स्थान लेता है उसे सीमांत तकनीकि प्रतिस्थापन दर (MRTS) कहते हैं। जैसे-जैसे पूँजी घटती है तथा श्रम

बढ़ता है, श्रम का पूँजी के लिए MRTS कम होता जाता है। यही बात सम उत्पादन वक्र के दाहिनी और ढलवाँ होने तथा अक्ष केंद्र की ओर उत्तल (Convex) होने से स्पष्ट होती हैं। इसकी सभी विशेषताएँ सम अधिमान-वक्र जैसी ही हैं। इसे सम उत्पाद वक्र तो कहा ही जाता है। यह एक सतत (continuous) वक्र है और इस पूर्वधारणा पर आधारित है कि दोनों आगतों को छोटी से छोटी मात्राओं में विभाजित किया जा सकता है और एक-दूसरे के स्थान पर काम में लाया जा सकता है। इस वक्र के ढाल का माप $\Delta K/\Delta L$ है जोकि ऋणात्मक रहता है।

वक्र के प्रत्येक बिंदु पर उत्पादन स्थिर रहता है। अतः पूँजी में कमी के कारण उत्पादन में आई कमी ($=MP_K \times \Delta K$) श्रम वृद्धि से उत्पादन में हुई वृद्धि ($= MP_L \times \Delta L$) के समान होगी। इसीलिए

$$\Delta Y = MP_K \times \Delta K + MP_L \times \Delta L = 0$$

अतः

$$\frac{MP_L}{MP_K} = (-)\frac{\Delta K}{\Delta L},$$

अर्थात् श्रम का पूँजी के लिए सीमांत तकनीकी प्रतिस्थापन दर

जहाँ MP_L = श्रम की सीमांत उत्पाद

MP_K = पूँजी का सीमांत उत्पाद

$$MRTS_{LK} = \frac{\Delta K}{\Delta L}$$

उनकी सीमांत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उत्पादिताओं के अनुपात का प्रतिलोम होता है

MRTS तथा श्रम-पूँजी अनुपात का संबंध तालिका 6.3 से भी ज्ञात किया जा सकता है। इसी संबंध के आधार पर श्रम-पूँजी के बीच प्रतिस्थापन लोच इस प्रकार ज्ञात की जा सकती है :

$$ES_{LK} = \frac{MRTS_{LK} \text{ में प्रतिशत परिवर्तन}}{L/K \text{ में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

यह लोच एक से कम, एक के समान या एक से ज्यादा हो सकती है। ऐसा दोनों अनुपातों के सापेक्ष

$$\frac{\Delta MRTS_{LK}}{\Delta MRTS_{LK}} \div \frac{(L/K)}{L/K} \div \frac{\Delta MRTS_{LK}}{\Delta(L/K)} \times \frac{L/K}{MRTS}$$

परिवर्तन पर निर्भर करता है।

6.2.7 उत्पादन के आर्थिक योग (Economic Regions of Production)

उत्पादन विश्लेषण में प्रायः सम-उत्पाद वक्रों का आकार उत्तल (Convex) दिखाया जाता है। उत्तल वक्रों का ढाल (slope) ऋणात्मक (negative) होता है। इनका उत्तल होना इनको आर्थिक कुशल बनाता है। एक उत्तल वक्र निरंतर बाएँ से दाएँ नीचे की ओर ढलवाँ होता है इसका अर्थ यह नहीं है कि उत्पादन-फलन सम-उत्पाद वक्र को हमेशा उत्तल आकार देता है। वास्तव में उत्पादन-फलन

में सम-उत्पाद वक्र को हमेशा उत्तल आकार देता है। वास्तव में उत्पादन फलन में सम-उत्पाद वक्रों को ऊपर की ओर ढलवाँ भी हो सकते हैं और उनका ढाल धनात्मक (positive) हो सकता है। लेकिन सम-उत्पाद वक्र का ऐसा होना इसे आर्थिक नहीं बनाता। सम-उत्पाद वक्र का वही भाग आर्थिक कुशल कहलाता है जो उत्तल हो। इस उद्देश्य से अक्ष केन्द्र से दो ऐसी वक्र बना सकते हैं जो सम-उत्पाद के उत्तल भागों को अन्य भागों से अलग कर दे। चित्र 6.5 से OC तथा OL दो ऐसी रेखाएँ है। सम-उत्पाद वक्र के उत्तल भाग को अलग करती हैं। इन्हीं रेखाओं (OC तथा OL) के बीच के सम-उत्पाद वक्रों के भाग आर्थिक कुशलता की शर्त पूरी करते हैं। ये रेखाएँ उत्पादन के आर्थिक क्षेत्र की सीमाएँ है। उदाहरण के लिए चित्र 6.5 में समुत्पाद वक्र I_4 पर ध्यान दें। उत्पादन स्तर I_4 के लिए न्यूनतम पूँजी की मात्रा OC_4 है। इसके साथ यदि OL_4 श्रम इकाइयों का प्रयोग हो तो यह उत्पादन संभव होगा। पर यदि हम श्रम की मात्रा और बढ़ाएँ तथा पूँजी की मात्रा OC_4 स्तर पर ही रहने दें, तो उत्पादन स्तर I_4 से नीचे गिर जाएगा। इसका अर्थ यह भी हैं कि I_4 उत्पादन स्तर OC_4 से नीचे गिर जाएगा। इसका अर्थ यह भी हैं कि I_4 उत्पादन स्तर बनाए रखने के लिए पूँजी की OC_4 से अधिक मात्रा की आवश्यकता होगी। यदि उत्पादक ऐसा करता है तो यह साधनों का अकुशल प्रयोग होगा।

चित्र 6.5

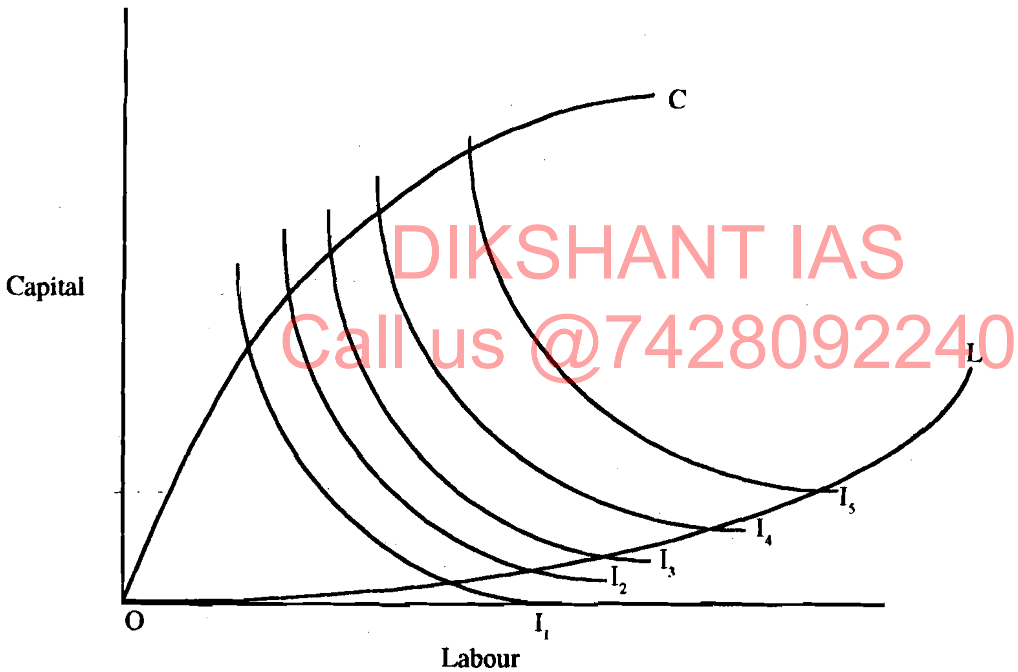

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 6.5 में सीमा रेखाएँ (Ridgetines) OC तथा OL आर्थिक दक्षतापूर्ण उत्पादन क्षेत्र की रेखाएँ निर्धारित करती हैं।

6.2.8 कुछ विशेष स्वरूप वाले उत्पादन-फलन

इस भाग में हम उत्पादन फलन के कुछ ऐसे स्वरूपों को शामिल कर रहे हैं जिनमें आगतों के बीच प्रतिस्थापन की संभावनाएँ अलग-अलग हैं।

क) उत्पादन का एक निश्चित तकनीक तथा समुत्पादक वक्र

यदि उत्पादन का एकमात्र तकनीक तो आगतों के बीच में प्रतिस्थापन संभव नहीं होता। पूँजी और श्रम एक निश्चित अनुपात में ही लगाया जा सकता है। इस अनुपात में अधिक श्रम या पूँजी का प्रयोग व्यर्थ होता है क्योंकि उनकी सीमांत उत्पादिता शून्य हो जाती है। ऐसी स्थिति हमने चित्र 6.6 में दिखाई है। ऐसे समुत्पाद वक्र L-आकार कहे जाते हैं।

चित्र 6.6

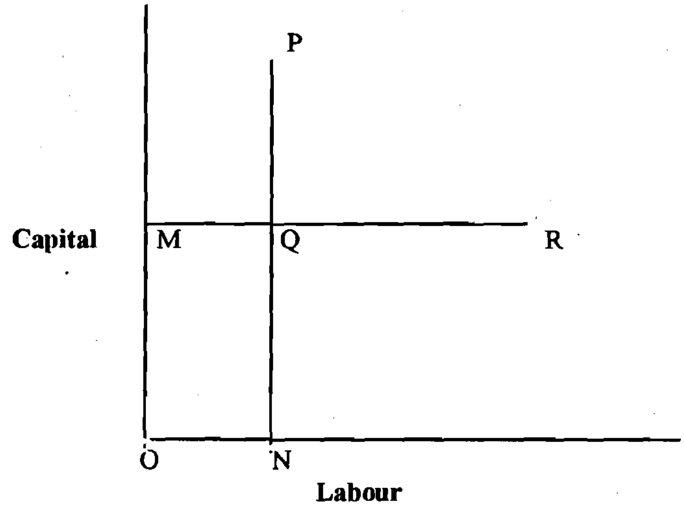

चित्र 6.6 इस मान्यता के आधार पर बनाया गया है कि श्रम तथा पूँजी दूसरे के प्रतिस्थापक नहीं हो सकते। इनका तो एक नियत अनुपात में ही प्रयोग करना होगा। अतः जब उत्पादन को केवल एकमात्र तकनीक हो तो समुत्पाद का आकार PQR जैसा होगा। इस वक्र का PQ ऊर्ध्व-अक्ष के समानांतर है तो QR भाग क्षैतिज-अक्ष के समानांतर रहता है। इसी को L-आकार समुत्पाद वक्र कहते हैं।

ख) समघात उत्पाद फलन : प्रथम कोटि (Homogenous Production Function: First Degree)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जब हम आगतों के बीच परस्पर प्रतिस्थापन की संभावना को स्वीकार करते हैं तो उत्पादन फलन उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन केवल वर्तमान तकनीक का प्रयोग करते हुए यानि सभी आगतों को समअनुपात में परिवर्तन करके ही किया जा सकता है। इस प्रकार उत्पादन परिवर्तन को पैमाने के प्रतिफल का नाम भी दिया जाता है, क्योंकि समअनुपात में आगतों के प्रयोग के परिवर्तन को ही पैमाने का परिवर्तन कहा जाता है।

प्रथम कोटि की समघात उत्पाद फलन को हम रेखीय (linear) समघात फलन या पैमाने के स्थिर प्रतिफल वाला उत्पाद फलन भी कहते हैं। इसका अर्थ है कि यदि सभी आगतों का प्रयोग एक समान अनुपात में बढ़ाया जाता है तो उत्पादन भी उसी अनुपात में बढ़ जाता है। इस बात को ओर स्पष्ट करने के लिए हम एक उदाहरण लेते हैं। इस उत्पाद फलन पर गौर करें:

$q = f(x, y) = Ax^{d} y^{1-\alpha}$

यहाँ x, y = दो आगते हैं– (श्रम तथा पूँजी) और $O \leq x \leq 1$

यदि x तथा y दोनों का प्रयोग λ गुणा बढ़ा दिया जाए तो उत्पादन फलन कुछ इस प्रकार लिखा जाएगा:

$$f(\lambda x, \lambda y) = A(\lambda x)^{\alpha} (\lambda y)^{1-\alpha} = A\lambda^{\alpha} x^{\alpha} \lambda^{1-\alpha} y^{1-\alpha}$$

$$= \lambda x\, \lambda^{1-x} [Ax^{x} y^{1-x}] = \lambda A x^{x} y^{1-x} = \lambda f(x, y) = \lambda q$$

$$\therefore \lambda^{x} \lambda^{1-x}, = \lambda^{x+1-x} = \lambda$$

अतः दोनों आदानों को λ गुणा बढ़ाने पर उत्पादन भी λ गुणा ही बढ़ जाता है। इसी को पैमाने के स्थिर प्रतिफल का नाम दिया जाता है। इसी विचार को चित्र संख्या 6.7 में दिखाया गया है।

चित्र 6.7

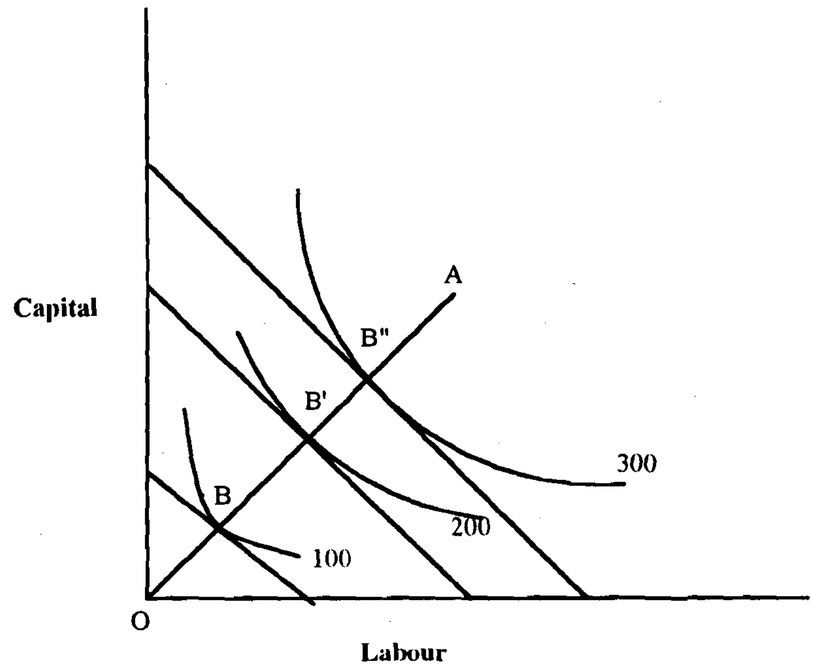

चित्र 6.7 में बनाई गई सम-उत्पाद वक्र एक-दूसरे के समानांतर है। दोनों आदानों की अधिक मात्रा को दिखाने वाला उच्च वक्र उत्पादन के भी ऊँचे स्तर को दिखाता है। अक्षकेंद्र से गुजरने वाली सरल रेखा OA सम-उत्पाद वक्रों को क्रमशः B, B' तथा B" बिंदुओं पर काटती है। इसे उत्पादन की पैमाना रेखा (scale line) या प्रसार पथ (expansion path) का नाम दिया जाता है।

समानांतर सम-उत्पाद वक्र यह दिखाते हैं कि अधिक उत्पादन के लिए श्रम और पूँजी की अधिक मात्राओं का प्रयोग करना पड़ता है। प्रसार-पथ पर उच्च स्तर का बिंदु उत्पादन के ऊँचे स्तर को दिखाता है क्योंकि वह एक ऊँचे सम-उत्पाद वक्र से जुड़ा रहता है। यही नहीं, प्रसार पथ पर सभी सम-उत्पाद वक्रों का ढाल भी समान होता है। इसका अर्थ है कि B, B' आदि बिंदुओं पर श्रम और पूँजी के बीच सीमांत प्रतिस्थापन दर समान रहती है। ये सम-उत्पाद वक्र संभाव वक्रों की भाँति ही समानांतर उत्तल वक्रों का एक समूह हैं। आगतों का एक अनुपात में बढ़ाने से उत्पादन भी उसी अनुपात में बढ़ जाता है तथा प्रसार-पथ एक निश्चित ढाल वाली सरल रेखा होता है। जब चित्र 6.7 की तरह एक रेखीय समघात फलन का प्रयोग होता है तो उत्पादन और आगतों के एक ही अनुपात में परिवर्तन का अर्थ होता है : OB = BB' = B'B"। यदि प्रयास-पथ सरल रेखीय हो तो उत्पादन आदानों से अधिक या कम अनुपात में भी परिवर्तित हो सकता है। ऐसी स्थिति में उत्पाद फलन समघातिक तो रहती है पर रेखीय नहीं रहती।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ग) विषमघाती उत्पाद फलन और प्रसार-पथ (Non-Homogeneous Production Function and Scal Line)

विषमघाती उत्पाद फलन में उत्पादन की वृद्धि, किसी तकनीक विशेष का प्रयोग करते हुए, आगतों के सम अनुपात में नहीं होती। चित्र 6.8 में OA ऊपर की तरफ उठती हुई वक्र है तथा उत्पादन के साथ-साथ इसका ढलान में बढ़ जाता है। इसका अर्थ है कि उत्पादन तकनीक में उत्पादन के साथ-साथ पूँजी सघनता में भी वृद्धि होती है।

दूसरे शब्दों में पूँजी और श्रम का अनुपात बढ़ जाता है। हम इसके बिल्कुल विपरीत स्थिति दर्शाने वाले प्रसार-पथ का चित्र भी बना सकते हैं जिसमें पूँजी सघनता में उत्पादन के स्तर के साथ-साथ गिरावट आती है।

चित्र 6.8

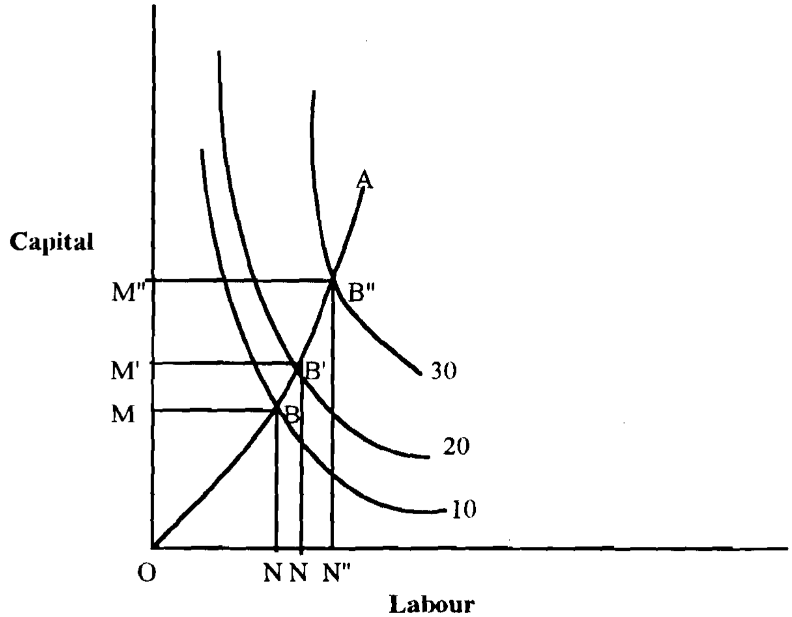

चित्र 6.8 दिखाता है कि प्रसार-पथ OA के बिंदुओं B, B' तथा B" सम उत्पाद वक्रों के ढाल एक समान नहीं हैं। जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ता है, उत्पादन तकनीक अधिक पूँजी सघन हो जाती है।

बोध प्रश्न 1

1) इन वाक्यांशों में से सत्य (T) अथवा असत्य (F) बताएँ।

   i) ह्रासमान सीमांत उत्पादन का नियम हमें यह बताता है कि यदि अन्य आदानों को प्रयोग स्थिर रखते हुए केवल एक आदान के अधिक प्रयोग से उत्पादन कम हो जाता है। ( )

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

   ii) परिवर्तनशील अनुपातों के अंतर्गत उत्पादन में सभी आगतों के अनुपात बदलते रहते हैं। ( )

   iii) जैसे-जैसे पूँजी की मात्रा कम होती है और श्रम की मात्रा बढ़ती पूँजी के बदले श्रम की सीमांत प्रतिस्थापन दर बढ़ती चली जाती है। ( )

   iv) एक आदान की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से उत्पादन में एक इकाई की वृद्धि सीमांत उत्पादन कहलाती है। ( )

   v) समघात उत्पादन फलन में आगतों को एक अनुपात में बढ़ाने से उत्पादन भी उसी अनुपात में बढ़ जाता है। ( )

2) उत्पादन के तीन चरणों की व्याख्या करें। यह भी समझाएँ कि ह्रासमान प्रतिफलों का नियम क्यों लागू होता है।

....

....

....

....

....

3) आर्थिक उत्पादन क्षेत्रों पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।

....

....

....

....

....

6.3 आगतों की कीमतें तथा सम-लागत रेखा

अभी तक हमने ऐसी प्रौद्योगिकी के बारे में बात की है जिसमें एक वस्तु का उत्पादन करने में विभिन्न उत्पादन विधियों (यानि आगतों के विभिन्न जोड़ों) अपना सकते हैं। लेकिन इनमें इनमें से हम किस विधि का चुनाव करेंगे यह आगतों की कीमतों पर निर्भर करेगा। फर्म उस विधि का चुनाव करेगी जिससे अधिकतम उत्पादन हो और न्यूनतम लागत हो।

कुल निवेश व्यय तथा आगतों की कीमतों के आधार पर हम एक श्रम लागत रेखा बना सकते हैं। यह लागत रेखा जिस ऊँचे से ऊँचे सम-उत्पाद वक्र को स्पर्श करेगी, उसी उत्पादन विधि (यानि आगतों के उसी सम्मिश्रण) को चुना जाएगा।

6.3.1 सम-लागत रेखा

मान लीजिए कि पूँजी की कीमत r तथा श्रम की कीमत w प्रति इकाई है। तो फर्म का कुल व्यय होगा: rK+wL स्वभाविक है कि श्रम तथा पूँजी के बीच विनिमय दर होगी w/r। जैसे हमने उपभोक्ता के संतुलन के संदर्भ में देखा था, यदि उत्पादक अपनी सारी बजट राशि पूँजी पर खर्च करके तो उसे OW इकाइयाँ पूँजी प्राप्त हो सकती हैं। इसी प्रकार सारी राशि केवल श्रम पर खर्च कर वह OT श्रमिकों की सेवाएँ प्राप्त कर सकता है। अतः रेखा WT पूँजी एवं श्रम के उन संयोजनों (जोड़ों) को दर्शाती है जिनका कि वह उत्पादक प्रयोग कर सकता है। इनमें से प्रत्येक संयोजन की लागत उत्पादक को बजट के समान है। अतः इस रेखा को हम सम लागत रेखा कह सकते हैं। चित्र 6.9 इसी बात को दर्शाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 6.9

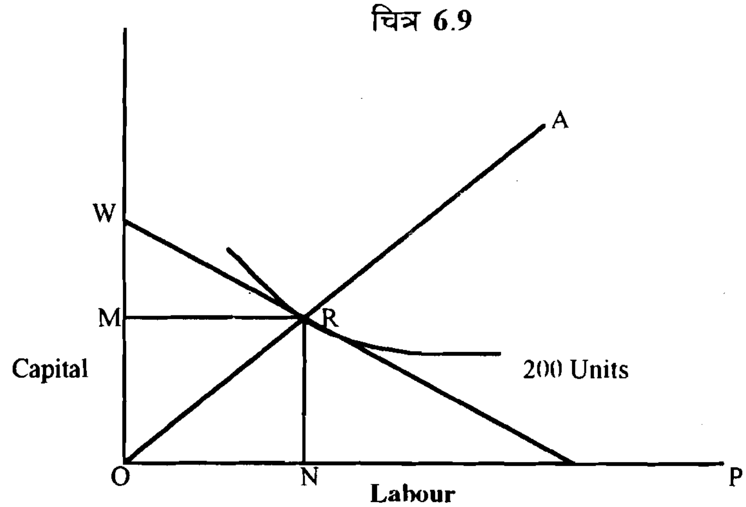

चित्र 6.9 दिखाता है कि उत्पादक सारी बजट राशि खर्च कर OW पूँजी अथवा OT श्रम प्राप्त कर सकता है। वह चाहे तो WT रेखा द्वारा दिखाए गए किसी भी संयोजन में श्रम और पूँजी का प्रयोग कर सकता है। वस्तुतः वह R बिंदु पर कार्य करेगा, क्योंकि 200 इकाई उत्पादन वाली सम-उत्पाद वक्र WT रेखा को इस बिंदु पर स्पर्शी है।

स्पर्श बिंदु R पर ही उत्पादन विधि चुनी जाएगी क्योंकि इस बिन्दु पर ही सम लागत रेखा सम-उत्पाद वक्र के स्पर्शी है। उत्पादक 200 इकाई बनाने के लिए OM मात्रा में पूँजी तथा ON मात्रा में श्रम का प्रयोग करेगा। R बिंदु पर सम लागत वक्र का ढाल (w/r) तथा सम-उत्पाद वक्र के ढाल के समान हैं। अतः इस बिन्दु पर आगत-कीमत अनुपात, सीमांत तकनीकी प्रतिस्थापन दर तथा श्रम और पूँजी की सीमांत उत्पादिताओं का अनुपात सब एक समान है। उपभोक्ता संतुलन में भी ऐसा ही था।

6.3.2 पैमाने के प्रतिफल : रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण

यह बात तो हमने पहले ही जान ली है कि पैमाने के प्रतिफल सदा स्थिर नहीं करते। आइए अब हम चित्र में स्थिर, ह्रासमान तथा वृद्धिमान प्रतिफलों को दर्शाने का प्रयास करें। इसके लिए हमें चित्र 6.10 जैसे रेखाचित्र की आवश्यकता रहती है।

चित्र 6.10

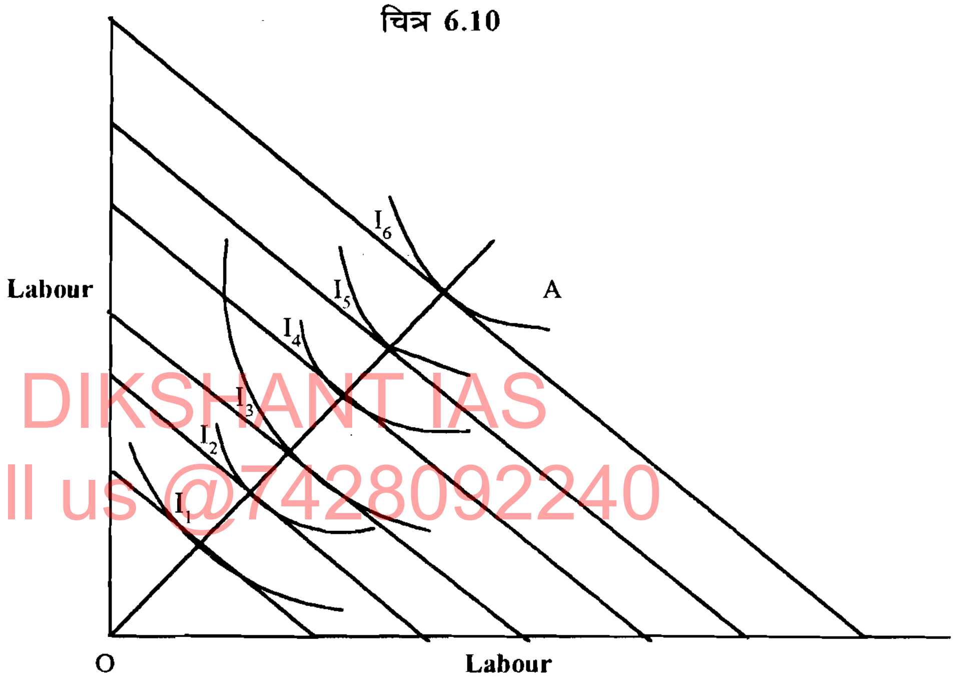

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 6.10 में पैमाने के प्रतिफलों के तीनों स्वरूप दिखाए गए हैं। पहले स्थिर फिर ह्रासमान और अंततः वृद्धिमान प्रतिफल।

यदि हम अक्ष केंद्र से एक तिरछी रेखा खींचें तो, वह सभी सम-उत्पाद वक्रों को चीरती जाती है। इस रेखा OA को हम 'प्रसार-पथ' का नाम देते हैं। मान लेते हैं कि पहला समुत्पाद वक्र 100, दूसरा 200..... छठा 600 इकाई उत्पादन दर्शा रहा है। इन वक्रों के OA रेखा से प्रतिच्छेदन बिंदुओं से हमें बहुत महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। यदि तीन वक्रों के प्रतिच्छेदन बिन्दु इस रेखा पर समान अन्तराल बनाते हैं तो हम कह सकते हैं कि इन तीनों सम-उत्पाद वक्रों तक पैमाने के प्रतिफल स्थिर होंगे। यदि उत्तरोत्तर अन्तर कम हो रहे हों, तो यह वृद्धिमान प्रतिफल का परिचायक होगा। इसके विपरीत अन्तराल की वृद्धि का अर्थ होगा ह्रासमान प्रतिफल।

हमारे चित्र 6.10 को ही लें। इसमें 6 सम-उत्पाद वक्र दिखाए गए हैं। पहला 100 इकाई तथा दूसरा 600 इकाई उत्पादन दिखा रहा है। I तथा I_2 का अन्तर I_2 और I_3 के अन्तर के समान है। अतः इन तीनों वक्रों के बीच पैमाने के प्रतिफल स्थिर रहे हैं। श्रम का प्रयोग OB से OC तथा फिर OD हुआ है। पर BC=CD। ऐसी ही प्रवृत्ति ऊर्ध्व अक्ष पर भी दिखाई दे रही है। अतः साधनों के

प्रयोग की वृद्धि के अनुरूप ही उत्पादन वृद्धि हुई हैं। किन्तु I_4 तथा I_5 तो उत्तरोत्तर अधिक दूर हट रहे हैं। इसका अर्थ है कि दोनों ही साधनों के परिणामों में ज्यादा और ज्यादा वृद्धि हो रही है किन्तु उत्पादन का परिवर्तन वही 100 इकाई ही हो रहा है। दूसरे शब्दों में, उत्पादन वृद्धि साधन प्रयोग की वृद्धि की अपेक्षा पिछड़ रही है। यही पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल का परिचायक है। हमारा समुत्पाद वक्र I_6 तो I_5 के काफी निकट आ गया है– अर्थात् I_6 और I_5 का अन्तर I_5 तथा I_4 के अन्तर से काफी कम है। पर इस बार भी उत्पादन में वृद्धि पहले जितनी ही हो रही है। इसका अर्थ होगा कि साधनों के प्रयोग में वृद्धि की तुलना में उत्पादन वृद्धि तीव्र हो गई है– अर्थात् पैमाने के प्रतिफल वृद्धिमान है।

बोध प्रश्न 2

1) एक वाक्य में सम-उत्पाद वक्र की परिभाषा दें। सम-उत्पाद वक्र के चित्र में दोनों अक्षों पर आप क्या दिखाएँगे?

....

....

....

....

....

2) किसी आदान संयोजन में पूँजी की सीमांत उत्पादिता 6 है तथा सीमांत तकनीकी प्रतिस्थापन दर 2 इकाई पूँजी प्रति इकाई श्रम है। श्रम की सीमांत उत्पादिता का आकलन करें।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

....

3) पूँजी की कीमत 60 रुपये तथा श्रम की कीमत 50 रुपये प्रति इकाई है। 2000 रुपये के बजट के लिए सम-लागत रेखा का समीकरण लिखें और इस सम-लागत वक्र का ढाल ज्ञात करें।

....

....

....

....

....

....

....

6.4 सारांश

इस इकाई में उत्पादन फलन की व्याख्या की गई है। वह फलन आदानों तथा उत्पादन के स्तरों के बीच तकनीकी संबंध होता है। सम-उत्पाद वक्र का विचार इस तथ्य पर बल देता है कि श्रम तथा पूँजी जैसे आदानों का एक-दूसरे के स्थान पर प्रयोग किया जा सकता है तथा इसमें उत्पादन का स्तर भी पूर्ववत् बनाए रखना संभव होता है। सम-उत्पाद वक्र दाहिनी ओर ढलवाँ होती हैं तथा यह अक्ष केंद्र की ओर उन्नोत्तर रहती हैं क्योंकि यद्यपि हम एक आदान का दूसरे के स्थान पर प्रयोग कर सकते हैं पर यह परस्पर सर्वांगपूर्ण प्रतिस्थापक नहीं होते। इस वक्र के निर्माण की आधार स्वरूप मान्यता है कि श्रम पूँजी अनुपात बढ़ने से श्रम की पूँजी के लिए सीमांत तकनीकी प्रतिस्थापन दर कम हो जाती है। इसी समुत्पाद वक्र के माध्यम से हमने समघात, रेखीय समघात तथा विषयघात उत्पादन फलनों की भी व्याख्या की है। उत्पादन फलन का विश्लेषण प्रसार पथ की रचना तथा विभिन्न प्रकार के पैमाने के प्रतिफलों की मौजूदगी में पैमाना रेखा की व्याख्या करने में भी सहायक होता है। यदि आदान कीमतें स्थिर रहें व उत्पादक का बजट बढ़ जाए तो समघात उत्पाद फलन की अवस्था में उत्पादन की तकनीक (अर्थात् श्रम-पूँजी अनुपात) में कोई बदलाव आए बिना ही उत्पादन का पैमाना भी बढ़ जाता है।

6.5 शब्दावली

स्थिर पैमाने के प्रतिफल : वह उत्पादन अवस्था जब किसी निश्चित अनुपात में आदानों का प्रयोग बढ़ाया जाए तो उत्पादन भी उसी अनुपात में बढ़ जाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

समघात उत्पादन फलन : यदि किसी उत्पाद फलन के सम उत्पाद वक्रों का अक्ष केंद्र से खींची गई सरल रेखा के बिंदुओं पर ढाल समान रहे तो उस फलन को समघात फलन कहा जाता है।

ह्रासमान पैमाने के प्रतिफल : इस अवस्था में उत्पादन वृद्धि-दर आदान वृद्धि दर से कम के रहती है।

प्रसार-पथ : साधन कीमतें स्थिर रहते हुए उत्पादन बजट बढ़ने पर न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन बिंदुओं के पथ को ही प्रसार-पथ कहा जाता है।

वृद्धिमान पैमाना प्रतिफल : इस स्थिति में वृद्धि आदान वृद्धि के अनुपात से अधिक रहती है।

समलागत वक्र/रेखा : वर्तमान कीमतों तथा निश्चित उत्पादन बजट की स्थिति में एक फर्म जिन संयोजनों में दोनों संसाधनों की सेवाएँ प्राप्त कर सकती है उन्हीं के समूह को दिखाने वाली सरल रेखा समलागत रेखा कहलाती है।

सम-उत्पाद वक्र : किसी वस्तु का निश्चित मात्रा में उत्पादन करने के लिए फर्म जिन संयोजनों में दो आदानों का प्रयोग कर सकती है उन्हीं के समूह को दिखाने वाला वक्र सम-उत्पाद वक्र कहलाता है।

दीर्घकाल : वह अवधि जिसमें फर्म की संयंत्र क्षमता तक सभी आदानों में परिवर्तन संभव हो, दीर्घकाल कहा जाता है।

सीमांत लागत : अतिरिक्त इकाई के उत्पादन पर आई लागत।

सीमांत आगम : एक अतिरिक्त इकाई के विक्रय से मिली आगम।

विषम-घात उत्पादन फलन : यदि किसी फलन के सम-उत्पाद वक्रों के अक्ष केंद्र से खींची गई सरल रेखा पर ढाल समान न हो तो उसे विषम घात उत्पाद फलन कहा जाता है।

उत्पादन फलन : आदानों तथा उत्पादन के स्तर के बीच तकनकी संबंध की उत्पादन फलन कहते हैं।

अल्पकाल : आदानों तथा उत्पादन के स्तर के बीच तकनीकी संबंध को उत्पादन फलन कहते हैं।

अल्पकाल : वह उत्पादन अवधि जिसमें कम से कम एक आदान की मात्रा स्थिर रह (सामान्यतः संयंत्र या भवन आदि)।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

6.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

कोत्सोयान्निस ए., 1979, *मॉडर्न माइक्रो इक्नामिक्स,* मैक्मिलन, न्यूयार्क, अध्याय, 3, 4 एवं 5, पृष्ठ 67 से 163

साल्वाटोर डी., 1983, *माइक्रो इक्नोमिक्स थ्यौरी,* शॉम आउट लाइन सिरीज़ अध्याय 7, 8 एवं 10 पृष्ठ, 124-174 तथा 196-220।

सैम्युलसन पॉल ए. तथा नोर्धा, डब्ल्यु.डी., 1985, *इक्नॉमिक्स,* मक्ग्राहिल, अध्याय 21 एवं 22, पुठ 461-501।

लिप्से रिचर्ड जी., 1979, *एन इन्ट्रोडक्शन टू पॉजिटिव इक्नॉमिक्स,* इंगलिश लैंग्वेज बुक सोसाइटी, अध्याय 16, 17, 18 एवं 19, पुठ 201-259।

6.7 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

बोध प्रश्न 1

1) i) T ii) F iii) F iv) F v) T

2) भाग 6.2.4 तथा 6.2.4 के आधार पर उत्तर लिखें।

3) देखें भाग 6.2.7

बोध प्रश्न 2

1) यह वक्र श्रम तथा पूँजी के विभिन्न संयोजनों द्वारा उत्पादित स्थिर उत्पादन दिखाती है। सामान्यतः X-अक्ष पर श्रम तथा Y-अक्ष पर पूँजी दिखाते हैं।

$$X - (-)\frac{\text{श्रम की सीमांत उत्पादिता } (MP_L)}{\text{पूँजी की सीमांत उत्पादिता } (MP_K)} = (-)\frac{MP_L}{MO_K}$$

2) सीमांत तकनीकी प्रतिस्थापन दर

3) सम लागत समीकरण : कुल बजट = पूँजी की कीमत x पूँजी + श्रम की कीमत x श्रम।

$$\text{or } -2 = (-)\frac{(MP_L)}{6} = MO_L = 12$$

अतः 2000 = 120 x पूँजी + 50 x श्रम

= 120K + 50L

$$\text{सम लागत रेखा का ढाल } (-)\frac{\text{श्रम की कीमत}}{\text{पूँजी की कीमत}} = \frac{-50}{120} = \frac{5}{12}$$

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 7 लागत सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 अल्प काल में लागतें

- 7.2.1 स्थिर लागतें
- 7.2.2 परिवर्ती लागतें
- 7.2.3 कुल लागत
- 7.2.4 औसत स्थिर लागत
- 7.2.5 औसत परिवर्ती लागत
- 7.2.6 औसत कुल लागत
- 7.2.7 सीमांत लागत

7.3 औसत तथा सीमांत लागत वक्रों में संबंध

7.4 लागत एवं उत्पादन वक्रों में संबंध

7.5 दीर्घकाल में लागतें

7.6 सारांश

7.7 शब्दावली

7.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

7.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस स्थिति में होंगे किः

- विभिन्न प्रकार की लागतों में भेद कर सकें;
- विभिन्न लागत अवधारणों के रेखाचित्र बना सकें;
- विभिन्न लागतों के पारस्परिक संबंधों की स्पष्ट पहचान कर सकें;
- दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन लागतों में अन्तर कर सकें; तथा
- दीर्घ एवं अल्पकालीन लागत वक्रों के संबंध समझ सकें।

7.1 प्रस्तावना

हमारी रोज़मर्रा की जिन्दगी में लागत शब्द बार-बार आता है। किसी वस्तु की खरीद या सेवा की प्राप्ति के लिए किए भुगतान को हम लागत कहते हैं लेकिन एक उत्पादन इकाई अथवा फर्म के लिए उत्पादन करने हेतु आगतों को खरीदने के लिए किया गया भुगतान लागत कहलाता है। हम जानते हैं कि उत्पादन के चार कारक होते हैं– भूमि, श्रम, पूँजी तथा उद्यमवृत्ति। इनमें से हम श्रम (L) तथा

पूँजी (K) को प्रमुख आगतों के रूप में उत्पादन फलन में प्रयोग कर चुके हैं (देखिए इकाई 6)। आगतों से उत्पादन होता है। हमने पिछली इकाई में यह भी देखा है कि उत्पादन का स्तर आगतों की मात्रा पर निर्भर करता है। अतः हम यह भी कह सकते हैं कि लागत उत्पादन की मात्रा पर निर्भर करती है।

लागत की स्पष्ट परिभाषा करना आवश्यक है। लागत एक प्रवाह है। अतः इसे समय से जोड़ना आवश्यक है जैसे जागत प्रति माह, लागत प्रतिवर्ष आदि। कुल और औसत लागत की अवधारणाओं को भी स्पष्ट करना आवश्यक है। यह भी बताना आवश्यक है कि लागतों में क्या-क्या शामिल किया जाए? इन सभी अवधारणाओं के बारे में हम अगले खंड (7.2) में चर्चा कर रहे हैं।

7.2 अल्पकालीन लागतें

आप 'अल्पकाल की अवधारणा से तो परिचित हैं। यह अवधि इतनी कम होती है कि कम से कम एक आगत में परिवर्तन लाना संभव नहीं होता। मशीनें, भवन आदि स्थिर आगतों के कुछ उदाहरण हैं।

7.2.1 स्थिर लागत

हम यह मानकर चले रहे हैं कि हमारी उत्पादन प्रक्रिया को केवल दो आगतें हैं : पूँजी (K) तथा श्रम (L)। फर्म अल्पकाल में मशीन आदि के रूप में अपनी पूँजी की मात्रा को बदल नहीं पाती पर श्रम की मात्रा बदल सकती है। जो मशीनें एक बार खरीदी जाती हैं उनको आसानी उत्पादन प्रक्रिया में से हटाना संभव नहीं होता। फैक्टरी के भवन या गोदाम का आकार भी एक दम बदल पाना संभव नहीं रहता। ऐसी आगतें काफी समय के बाद ही बदली जा सकती हैं। ऐसे स्थिर आगतों पर लगी लागत को ही कुल स्थिर लागत कहा जाता है। उत्पादन स्तर कुछ भी हो स्थिर लागत वही रहती है। अतः फर्म की स्थिर लागतें स्थिर रहती हैं। यदि फर्म Ko पूँजी की मात्रा का प्रयोग कर रही है तथा पूँजी का किराया मूल्य (rental value) है, तो स्थिर लागतः FC = YKo (7.1)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

स्थिर लागतों को कई बार बंधी लागतों (overhead costs) का नाम भी दिया जाता है। यदि इसका रेखाचित्र बनाया जाए तो इकाई तक के उत्पादन की स्थिर लागत 128 रुपये ही रहती है (तालिका 7.1)।

चित्र 7.1

चित्र 7.1 यहाँ क्षैतिज अक्ष पर उत्पादन दिखाया गया है। ऊर्ध्व अक्ष पर रुपयों में स्थिर लागत दर्शायी गई है। इस चित्र में तालिख 7.1 के पहले तथा दूसरे कालम की जानकारी अंकित की गई है।

7.2.2 परिवर्ती लागत

परिवर्तनशील आगतों पर आए खर्च को ही परिवर्ती लागत (variable costs) कहा जाता है। श्रम एक ऐसा ही आगत है। एक जूते बनाने की फैक्टरी में, जहाँ मशीनों की संख्या निश्चित है, श्रम के प्रयोग द्वारा ही उत्पादन घटाया-बढ़ाया जा सकता है। कच्चा माल भी एक परिवर्तनशील आगत है। उत्पादन के स्तर में परिवर्तन के साथ-साथ कच्चे माल की मात्रा भी बदलती है।

उत्पादन बढ़ने के साथ ही श्रम का प्रयोग बढ़ता है। अतः श्रम पर आई लागत भी बढ़ जाती है। इसीलिए कहा जाता है कि परिवर्ती लागत उत्पादन के स्तर पर निर्भर करती है। यदि Q उत्पादन के लिए L श्रम का प्रयोग हो और प्रत्येक श्रमिक को w मज़दूरी दी जाए तो:

$$VC(Q) = wL$$

आप अवश्य यह सोच रहे होंगे कि VC वक्र का आकार कैसा होगा? क्या यह सरल रेखा होगी या फिर वक्र? यह ऊपर की ओर ढलवा होगा या नीचे की ओर। इन सभी प्रश्नों के उत्तर के लिए हमें पिछली इकाई (इकाई 6) बनाए गए कुल उत्पाद वक्र के आकार एवं स्वरूप पर ध्यान देना होगा।

आपको ध्यान होगा कि कुल उत्पाद-YP वक्र में दो प्रकार की वृद्धियाँ आती हैं। यह शुरू में कुल उत्पाद बढ़ती दर से बढ़ता है और फिर घटती दर से बढ़ता है। स्थिर लाग-FC तो स्थिर ही रहती है, अतः कुल लागत वृद्धि केवल परिवर्ती लागत में वृद्धि के कारण ही होती है। इसीलिए VC वक्र का व्यवहार TP वक्र के व्यवहार के एकदम विपरीत होता है। जब कुल उत्पाद में वृद्धि बढ़ती दर से होती है, परिवर्ती लागत में वृद्धि घटती दर से होती है। जब कुल उत्पाद में वृद्धि घटती दर से होती है, परिवर्ती लागत में वृद्धि बढ़ती दर से होती है। अतः परिवर्ती लागत शुरू में मंदगति से बढ़ती है। लेकिन दूसरे चरण में, नति-परिवर्तन-बिन्दु (point of infexion) के बाद से, कुल उत्पाद वक्र घटते प्रतिफल दिखाता है। इस चरण में परिवर्ती लागत तेज़ गति से बढ़ती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 7.2

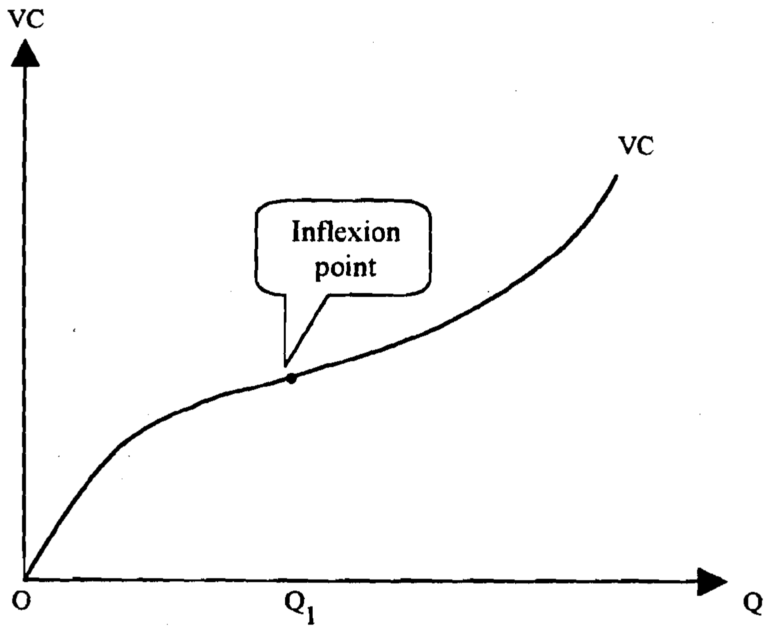

चित्र 7.2 उत्पादन तथा परिवर्ती लागतों का संबंध दर्शाता है। Q_1 बिन्दु (तालिका 7.1) में उत्पादन स्तर 7 इकाइयों को दर्शाता है।

इसी व्यवहार को हमने तालिका 7.1 में दिखाया है। उत्पादन की पाँच इकाई तक परिवर्ती लागत (VC) घटती हुई दर पर बढ़ रही है। इसके बाद परिवर्ती लागत बढ़ती दर से बढ़ रही हैं।

चित्र 7.2 उत्पादन दर पर बढ़ रही है। इसके बाद परिवर्ती लागत बढ़ती दर से बढ़ रही हैं। चित्र 7.2 में उत्पादन का Q_1 स्तर दो चरणों को अलग करना है।

तालिका 7.1 : उत्पादन तथा लागतें

उत्पादन (Q)	स्थिर लागत (FC)	परिवर्ती लागत (VC)	कुल लागत (TC)	औसत स्थिर लागत (AFC)	औसत परिवर्ती लागत (AVC)	औसत कुल लागत (ATC)	सीमांत लागत (MC)
0	128	0	128	-	-	-	-
1	128	56	184	128	56	184	56
2	128	90	218	64	45	109	34
3	128	108	236	42.7	36	78.7	18
4	128	116	244	32	29	61	8
5	128	120	248	25.6	24	49.6	4
6	128	126	254	21.3	21	42.3	6
7	128	140	268	18.3	20	38.3	14
8	128	168	296	16	21	37	28
9	128	216	344	14.2	24	38.2	48
10	128	290	418	12.8	29	41.8	74
11	128	390	618	11.6	35.5	56.1	100

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

7.2.3 कुल लागत

कुल लागत स्थिर तथा परिवर्ती लागतों का योग है:

$$TC(Q)=FC+VC(Q)$$

अतः इसके दो घटक हैं : FC तथा VC। इनमें से FC तो स्थिर है पर VC उत्पादन के स्तर के अनुसार बदलती रहती है। अतः TC भी उत्पादन पर निर्भर होगी। ज़्यादा उत्पादन की कुल लागत भी ज़्यादा होगी।

चित्र 7.3

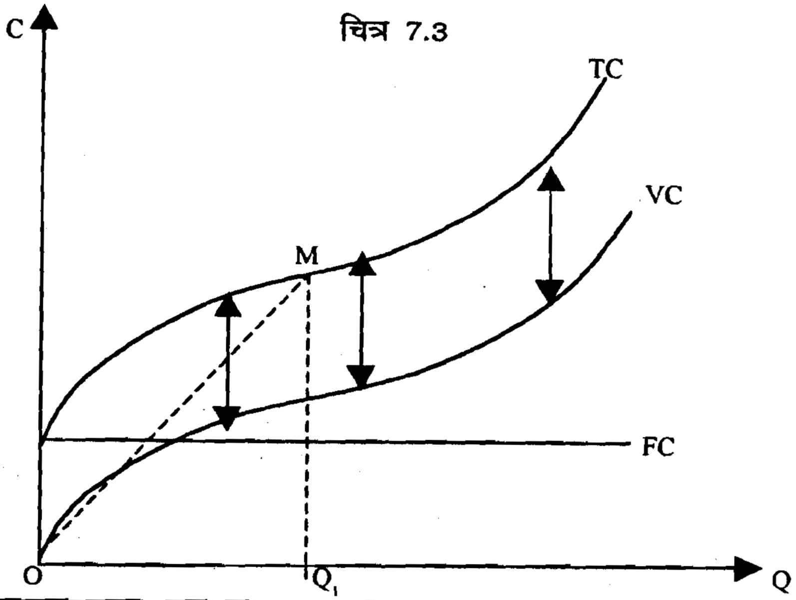

चित्र 7.3 में चित्र 7.1 तथा चित्र 7.2 में निहित सूचनाएँ एक साथ दी गई हैं। TC वक्र को हमने प्रत्येक उत्पादन स्तर पर FC वक्र तथा VC वक्र के बीच का अन्तर एक समान रहता है। यही अन्तर स्थिर लागत है।

7.2.4 औसत स्थिर लागत

कुल स्थिर लागत को कुल उत्पादन से भाग लेने पर औसत स्थिर लागत प्राप्त होती है।

$$AFC(Q)=FC/Q$$

एक तो आप जानते ही हैं कि FC उत्पादन के साथ-साथ नहीं बदलती। अतः स्वाभाविक है कि जैसे-जैसे हम उत्पादन बढ़ाएँगे, AFC कम होती जाएगी। यही बात तालिका 7.1 के आँकड़े भी स्पष्ट करते हैं। एक इकाई उत्पादन की AFC=128 रुपये पर चार इकाइयों के उत्पादन की AFC घटकर 32 रुपये ही रह जाती है। अतः यह बात याद रखने योग्य है कि TFC तो उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर स्थिर रहती है पर उत्पादन बढ़ने पर AFC निरंतर घटती है।

आइए चित्र 7.4 में AFC का वक्र देखें। इसके आकार को एक 'आयतीय अति परवलय' (Rectangular Hyperbola) कहा जाता है।

यह वक्र दोनों में से किसी अक्ष को नहीं छूता लेकिन उनके नज़दीक आता चला गया है। इसके प्रत्येक बिन्दु पर वक्र के नीचे का क्षेत्रफल स्थिर रहता है। शून्य उत्पादन पर AFC का परिमाण अनंत (infinity) रहता है। बहुत विशाल उत्पादन स्तर पर यह नगण्य होकर रह जाता है।

चित्र 7.4

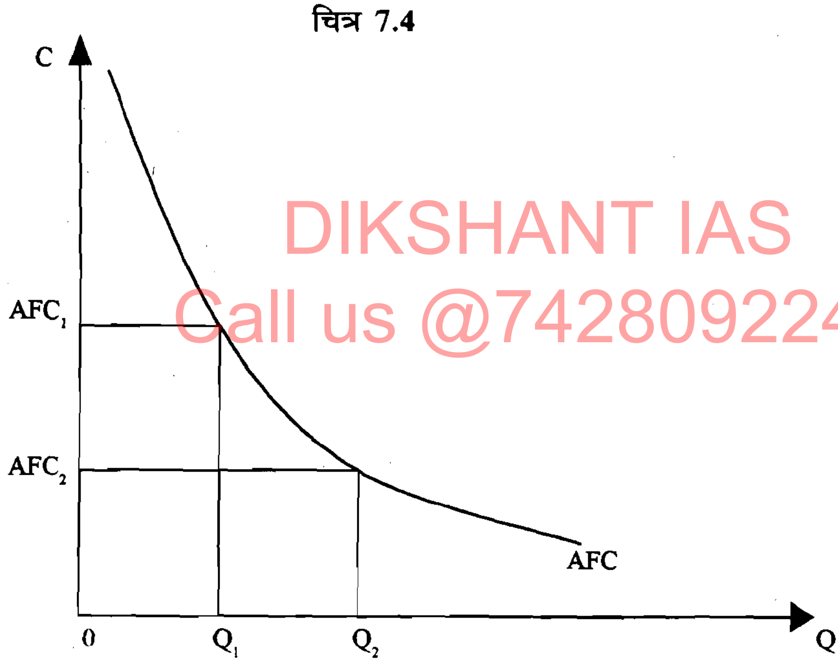

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 7.4 में फर्म औसत स्थिर लागत वक्र दिखाया गया है। इस वक्र के प्रत्येक बिन्दु के नीचे का क्षेत्रफल एवं उत्पादन स्तर का गुणनफल होता है जो कुल स्थिर लागत के समान होता है।

7.2.5 औसत परिवर्ती लागत

यह परिवर्ती लागतों को उत्पादन की इकाइयों से भाग देकर प्राप्त होती है।

अतः $AVC(Q)=VC/Q$

AVC को चित्र 7.5 में रेखांकित किया जाता है। यह चित्र दो भागों में बनाया गया है। ऊपरी भाग में हमने VC वक्र दिखाया है। इस वक्र में Q_1 उत्पादन पर AVC MQ_1/OQ_1 के समान है। इसी तरह से Q_2 तथा Q_3 उत्पादन पर AVC का मान NQ_2/OQ_2 तथा PQ_3/OQ_3 होगा। AVC के इन्हीं स्तरों को हमने चित्र 7.5 के निचले भाग में अंकित किया है।

चित्र 7.5 के ऊपरी भाग में MQ_1/OQ_1 वस्तुतः रेखा OM का ढाल है। इसी तरह से OQ_2 उत्पादन स्तर पर भी औसत लागत NQ_2/OQ_2 है जोकि ON रेखा का ढाल (slope) के समान है।

अतः TVC के किसी भी बिंदु को अक्ष केन्द्र से जोड़ने वाली सरल रेखा का ढाल AVC का मान होता है।

हम यह देख सकते हैं कि Q_1 पर यह ढाल Q_2 की अपेक्षा ज़्यादा है। अतः Q_1 की औसत परिवर्ती लागत Q_2 की अपेक्षा अधिक है। इसी प्रकार Q_3 की अपेक्षा Q_2 पर AVC कम हैं। इस विश्लेषण से यह बात साफ हो जाती है कि AVC शुरू में गिरती है, न्यूनतम पर पहुँचती है और फिर यह बढ़ने लगती है।

चित्र 7.5

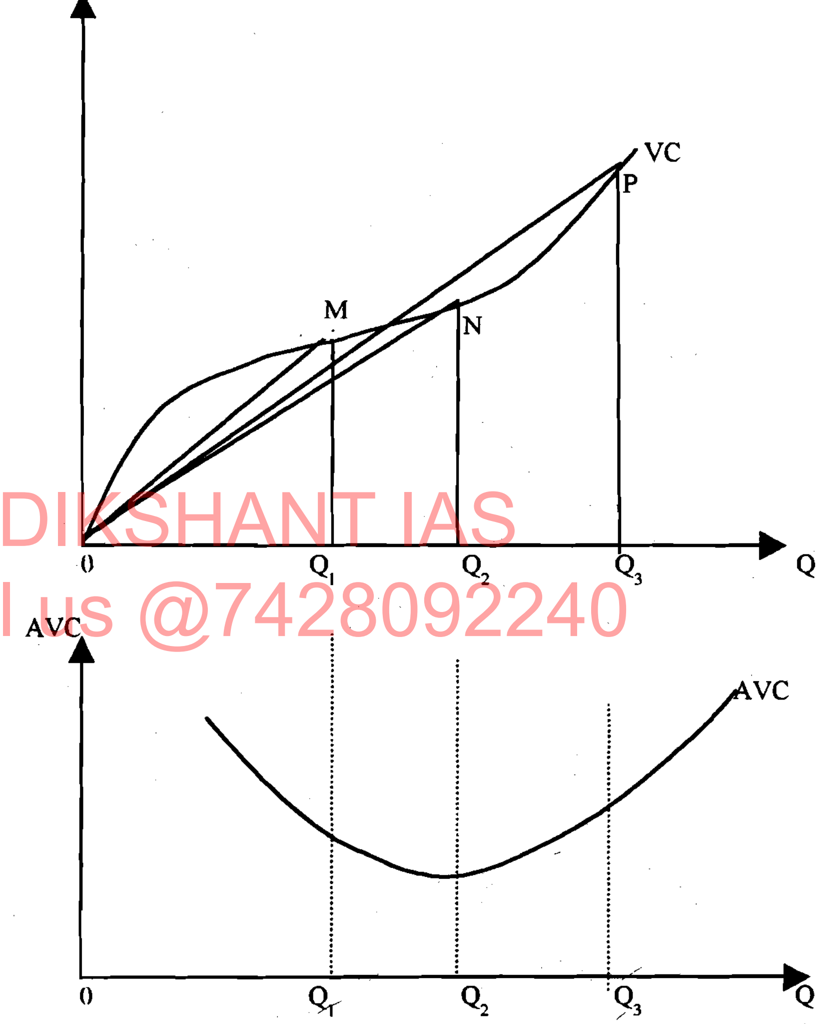

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 7.5 में दिखाया गया है कि VC वक्र से AVC कैसे ज्ञात की जा सकती है। प्रत्येक उत्पादन स्तर पर अक्ष केन्द्र तथा VC वक्र को मिलाने वाली सरल रेखा का ढाल का मूल्य AVC होता है।

7.2.6 औसत (कुल) लागत

औसत कुल लागत ATC वस्तुतः AVC तथा AFC का योगफल है। उत्पादन स्तर Q_1 परः

$$ATC (Q_1) = AFC (Q_1)+AVC (Q_1)$$

हम जानते ही हैं कि AFC तथा AVC उत्पादन के स्तर पर निर्भर होती हैं। इसीलिए ATC भी उत्पादन स्तर पर निर्भर करेगी। चित्र 7.6 में यह दिखाया गया है कि ATC का मूल्य AFC तथा AVC के मूल्यों का योग है।

चित्र 7.6

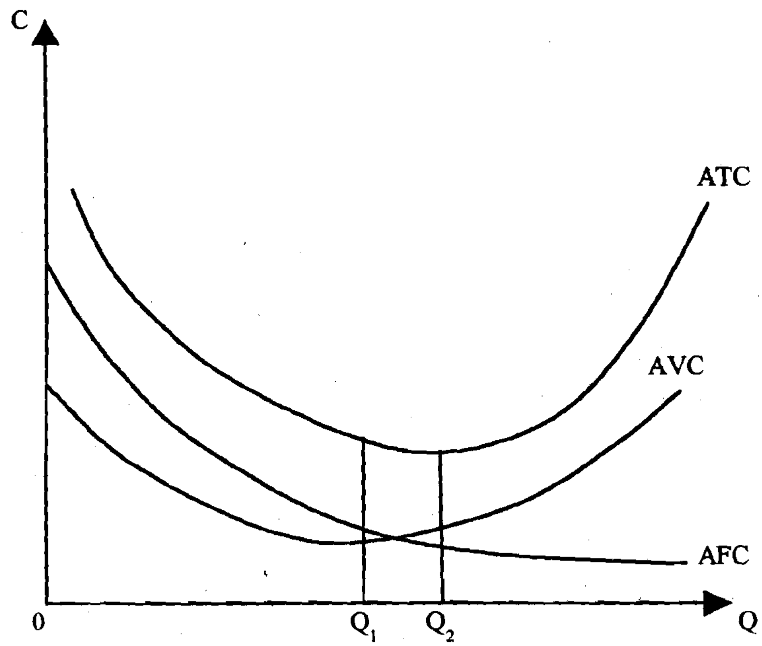

चित्र 7.6 में हमने प्रत्येक उत्पादन स्तर पर AFC तथा AVC को जोड़कर ATC का ज्ञात करते हैं। इसी ATC को हम सामान्यतः AC भी कहते हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि AC वक्र U आकार का होता है।

जैसे हमने VC वक्र पर बिन्दु तथा अक्ष केन्द्र को मिलाने वाली रेखाओं के ढाल के रूप में AVC को मापा था, उसी प्रकार कुल लागत वक्र, TC तथा अक्ष केन्द्र को जोड़ने वाली रेखाओं के ढाल AC का माप है। चित्र 7.5 तथा चित्र 7.3 पर ध्यान दें। इसमें Q उत्पादन स्तर पर ATC का मूल्य MQ /OQ है जोकि OM रेखा के ढाल के मूल्य के समान है। इसी तरह हर उत्पादन स्तर पर अक्ष केंद्र से TC वक्र तक की रेखा का ढाल ज्ञात किया जा सकता है। इन सबके रेखांकित करने पर ATC वक्र ज्ञात किया जा सकता है। चित्र 7.6 में एक ऐसा ATC वक्र बनाया गया है। इस प्रकार से बनी ATC वक्र की दो विशेषताएँ ध्यान देने योग्य हैं। प्रथमतः इसका आकार U जैसा है। इसका अर्थ यह है कि ATC शुरू में कम होती है बाद में बढ़ने लगती है। हमने पहले भी कहा था कि AVC भी U जैसे ही आकार का होता है। यही बात हम तालिका 7.1 के आँकड़ों में भी देख सकते हैं। न्यूनतम AVC उत्पादन की 7 इकाई पर है। पर ATC का न्यूनतम स्तर 8 इकाई उत्पादन पर है। अतः हम देख सकते हैं कि कुछ सीमा तक AVC में वृद्धि शुरू होने के बाद भी ATC गिरावट ज़ारी रहती है। इसका कारण यह है कि इस उत्पादन सीमा में AFC की गिरावट AVC की वृद्धि से कहीं ज़्यादा रहती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

7.2.7 सीमांत लागत

एक अतिरिक्त इकाई का उत्पादन करने से कुल लागत में हुई वृद्धि को ही सीमांत लागत कहते हैं।

$$MC(Q_1)=\Delta TC/\Delta Q$$

चित्र 7.7 हम उत्पादन Q_1 से बढ़कर Q_2 होने पर कुल लागत में आई वृद्धि दिखा रहे हैं। जब उत्पादन Q_1 से बढ़कर Q_2 होता है (यानि ΔQ बढ़ता है) तो कुल लागत MQ_1 से बढ़कर NQ_2 हो जाती है (यानि ΔC बढ़ जाती है)। अतः Q_1 उत्पादन स्तर पर सीमांत लागत $=\Delta TC/\Delta Q=PN/MP$। इसी प्रकार से हम उत्पादन में किसी भी परिवर्तन के लिए सीमान्त लागत (MC) ज्ञात कर सकते हैं। एक बात ध्यान देने योग्य हैं कि यहाँ हमने सीमान्त लागत को उत्पादन में अपेक्षाकृत बड़े

और असतत् (Discrete) परिवर्तन के संदर्भ में मापा है। यदि हम कुल लागत वक्र के किसी बिन्दु पर सीमान्त लागत का आँकलन करना चाहें तो हमें उत्पादन में अत्युणु (infinitesimal) परिवर्तन लेना होगा।

अवकलन गणित (differential calculus) से परिचित छात्र यह बात सहज ही समझ सकते हैं कि सीमांत लागत का माप $\Delta TC/\Delta Q$ का सीमा मूल्य (limiting value) है।

अतः हम उत्पादन के विषय में TC के आंशिक अवकलन (partial derivative) लेकर MC ज्ञात कर सकते हैं।

$$MC=\partial TC/\partial Q$$

आप जानते ही हैं कि उत्पादन में वृद्धि का FC पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अतः कुल लागत में उत्पादन की एक अतिरिक्त इकाई से हुई वृद्धि केवल VC में वृद्धि के कारण होती है। इसीलिए $MC=\Delta VC/\Delta Q$ अवकलन फार्मूला अनुसार हम कह सकते हैं :

$$MC=\partial TC/\partial Q=\partial VC/\partial Q$$

आइए इससे थोड़ा और आगे बढ़े। हमने MC को $\partial TC/\partial Q$ के समान पाया है और यह भी देखा है कि Q_1 बिन्दु पर MC=PN/MP। पर यह TC वक्र Q_1 बिन्दु पर खींची गई स्पर्श रेखा t_1 के ढाल के समान है।

एक बार फिर तालिका 7.1 की ओर चलते हैं। उत्पादन मात्रा शून्य से एक होने पर TC128 से बढ़कर 184 हो जाती है। इसीलिए MC=56 रुपये। जब उत्पादन एक से बढ़कर दो इकाई होता है तो TC218 रुपए हो जाती है। अब MC=34 रुपये (218-184)। इसी तरह से हम हर उत्पादन स्तर पर MC ज्ञात कर सकते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 7.7

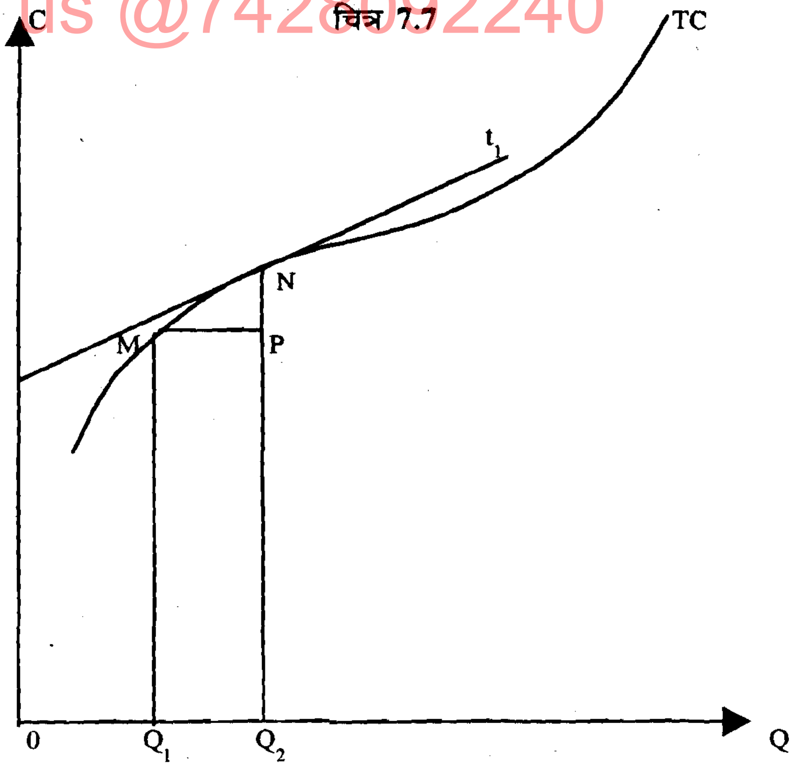

चित्र 7.7 बताता है कि उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर कुल लागत वक्र का ढाल उत्पादन स्तर पर सीमान्त लागत है।

बोध प्रश्न 1

1) इन अवधारणाओं की व्याख्या करें :

i) परिवर्ती लागत

....

....

....

....

....

ii) सीमान्त लागत

....

....

....

....

....

iii) औसत स्थिर लागत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

....

7.3 सीमान्त तथा औसत लागत वक्रों में संबंध

अब आप लागत वक्रों के आकार से भली प्रकार परिचित हैं। इनके बीच कुछ संबंधों की झलक भी आपको मिल चुकी है। आइए इन्हीं को कुछ और स्पष्ट करें।

1) औसत स्थिर लागत का मान कुल स्थिर लागत को उत्पादन से भाग देकर ज्ञात होता है। स्थिर लागत वक्र **X**-अक्ष के समानान्तर एक रेखा होती है पर **AFC** वक्र का आकार एक भारतीय अतिवलय होता है।

2) कुल परिवर्ती लागत को उत्पादन से भाग देने पर औसत परिवर्ती लागत ज्ञात होती है।

3) कुल लागत को उत्पादन से भाग देकर औसत कुल लागत जानी जाती है। इसे औसत स्थिर लागत और औसत परिवर्ती लागत का जोड़ भी कहा जा सकता है।

4) उत्पादन की एक इकाई बढ़ाने से **TC** में हुई वृद्धि को **MC** कहते हैं।

आइए ATC तथा MC के संबंध को समझने का प्रयास करें। पिछले भाग में हमने देखा है कि अक्ष केन्द्र तथा कुल लागत वक्र के बिन्दुओं को जोड़ने वाली रेखाओं के ढाल ही हमें ATC का माप देते हैं। दूसरी ओर उन्हीं बिन्दुओं पर TC वक्र का अपना ढाल MC का माप है। चित्र 7.8 में यदि Q_1 उत्पादन स्तर पर ध्यान दें। इस पर $TC=Q_1M \times 1$ TC वक्र पर M बिन्दु का ढाल ATC के समान होगा। पर MC यहाँ स्पर्श रेखा t_1 के ढाल के समान है। यह स्पष्ट है कि OM रेखा का ढाल t_1 रेखा के ढाल से अधिक है। अतः Q_1 उत्पादन पर ATC>MC।

अब Q_2 उत्पादन (यानि ATC वक्र पर N बिन्दु) पर ध्यान दीजिए। इस N बिन्दु पर अक्ष केन्द्र से आ रही रेखा OR का ढाल ATC का माप है। जबकि N बिन्दु पर स्पर्श रेखा OR के ढाल सीमांत लागत का माप है। क्योंकि N बिन्दु पर ये दोनों ढाल बराबर हैं। उत्पादन पर ATC=MC।

उत्पादन स्तर Q_3 पर TC का सम्बद्ध बिन्दु P है। हम देख सकते हैं कि इस बिन्दु पर OP का ढाल t_2 के ढाल से कम हैं अतः ATC<MC।

चित्र 7.8

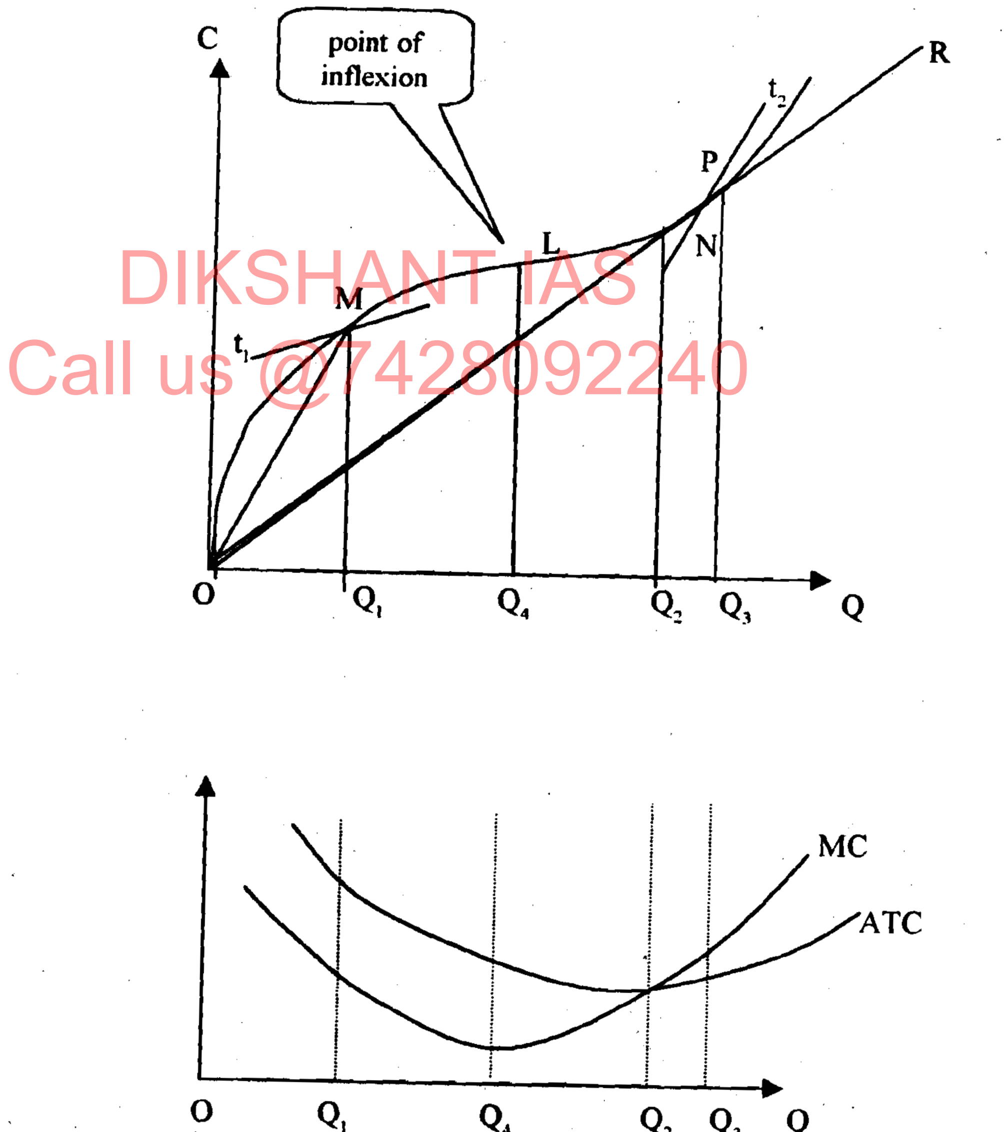

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 7.8 काफी दिलचस्प है। पहले हम ATC प्राप्त करने के लिए चित्र 7.5 में उठाए गए कदमों की पुनः आवृत्ति करते हैं। फिर हम उन्हीं बिंदुओं पर TC के ढालों के रेखांकन करते हैं। इससे हमें MC वक्र मिल जाता है। इस बात पर भी ध्यान दीजिए कि MC वक्र का आकार ATC वक्र जैसा ही है MC वक्र ATC वक्र को उस बिन्दु पर काटती है जहाँ ATC अपने न्यूनतम स्तर पर होती है।

यह स्पष्ट है कि शुरू में Q_2 उत्पादन तक ATC>MC । Q_2 पर दोनों में समानता आ जाती है । उत्पादन और बढ़ने पर MC>ATC । इस बात पर भी ध्यान दें कि Q_2 उत्पादन पर ATC न्यूनतम रहती है और इसी उत्पादन स्तर पर ATC=MC । इससे कम उत्पादन होने पर MC<ATC जबकि उत्पादन बढ़ने पर MC>ATC हो जाती है । अतः न्यूनतम ATC बिन्दु पर MC वक्र ATC वक्र को इसे नीचे की ओर से काटता हुआ ऊपर की ओर उठने लगता है ।

बोध प्रश्न 2

1) एक लागत फलन इस प्रकार है : $TC=53+0.5Q+0.2Q_2$ ज्ञात करें :

i) स्थिर लागत

....

....

....

....

....

ii) औसत परिवर्ती लागत

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

iii) सीमांत लागत

....

....

....

....

....

7.4 लागत तथा उत्पाद वक्रों में संबंध

उत्पादन फलन एवं लागत फलन में बहुत गहरा संबंध है । पिछली इकाई में हमने उत्पादन फलन की व्याख्या करते हुए कहा था कि पूँजी स्थिर होने तथा श्रम के ही मात्र परिवर्तनशील आगत होने पर: $AP=TP/L$ तथा $MP=\Delta Q/\Delta L$ हम जानते ही हैं कि अल्पकाल में लागत फलन हमें बताता है कि $MC=\Delta TC/\Delta Q$ । इसे दूसरे शब्दों में कुछ इस प्रकार रखा जा सकता है : $MC=\Delta(wL)$ ।

अब क्योंकि w स्थिर है, और $\Delta L/\Delta Q=1/MP_L$ है,

अतः $MC=w/MP_L$

यहाँ w मज़दूरी की दर

MP_L श्रम का सीमांत उत्पाद

अतः जहाँ MP_L अधिकतम होगा वहाँ MC न्यूनतम होगी। MP_L जितना कम होगा MC उतनी ही अधिक होगी। अतः MC वक्र MP_L वक्र का प्रतिलोम है। इसी तरह APL वक्र से हम AVC वक्र प्राप्त कर सकते हैं। $AVC=VC/Q=wL/Q=w/AP_2$ w/AP_2 जहाँ $L/Q=AP_L$ वक्र का प्रतिलोम है। जब AP_L अधिकतम होता है। AVC न्यूनतम होता है।

चित्र 7.9

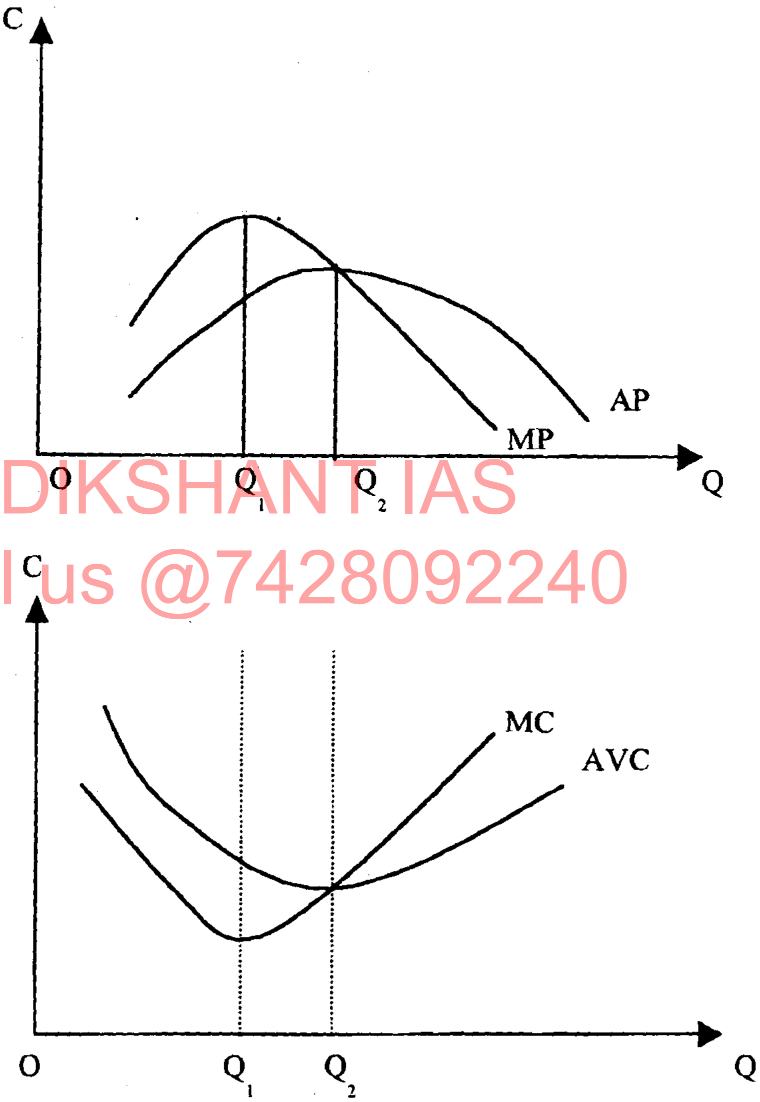

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 7.9 यहाँ हम MC तथा AVC को क्रमशः MP तथा APL के प्रतिबिंब की भाँति ही अंकित कर रहे हैं। इसका कारण यही है कि इन वक्रों के जोड़ों में आपस में प्रतिलोम संबंध हैं।

पिछली इकाई में हमने देखा कि MP_L वक्र ऊपर AP_L वक्र को उसके अधिकतम बिंदु पर काटता है तो MC वक्र AC को नीचे की ओर से छेदकर इससे ऊपर आ जाता है। यह बात आप चित्र 7.9 में स्पष्टतः देख सकते हैं। चित्र के ऊपरी भाग में Q_2 उत्पादन स्तर पर MP_L वक्र AP_L को ऊपर से काटती है। अतः उत्पादन के Q_2 स्तर पर $AP_L=MP_L$। लेकिन MP_L का अधिकतम स्तर

Q_1 उत्पादन पर ही आ चुका था यानि Q_2 से कम पर। हम यह भी जानते हैं कि AVC वक्र का न्यूनतम बिन्दु AP_L वक्र के अधिकतम बिन्दु से जुड़ा है जोकि उत्पादन स्तर Q_2 पर है। इसी से हम देखते हैं कि चित्र के निचले भाग में MC वक्र AVC वक्र को इसके न्यूनतम बिन्दु पर नीचे से काटता है। यह भी बात आपको याद ही होगी कि तालिका 7.1 के आँकड़ों से भी हमें चित्र 7.8 में इसी प्रकार की AC तथा MC वक्र मिले थे। MC वक्र ने ATC वक्र को Q_2 उत्पादन स्तर पर काटा था तथा वहाँ ATC न्यूनतम थी। वस्तुतः MC वक्र AVC वक्र तथा ATC वक्र दोनों को ही उनके न्यूनतम बिन्दुओं पर काटता है।

बोध प्रश्न 3

1) औसत उत्पादन तथा औसत लागत वक्र का आपसी संबंध समझाइए।

....

....

....

....

....

....

2) यह समझाइए कि किस तरह से MC वक्र MP वक्र का प्रतिलोम होता है।

....

....

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

7.5 दीर्घकाल में लागतें

दीर्घकाल में सभी लागतें परिवर्तनशील हो जाती हैं। फर्म किसी भी पूँजी (संयंत्र आदि) को बदल सकती हैं। अतः ऐसी अवस्था में स्थिर लागतों का कोई अर्थ नहीं रहता। फर्म की परिवर्तनशील लागत ही उसकी कुल लागत बन जाती है। इससे दीर्घकाल में लागत वक्रों के बराबर आकार पर प्रभाव पड़ता है।

अतः दीर्घकालीन कुल लागत वक्र (LTC) अक्ष केन्द्र से ही प्रारंभ होता है। चित्र 7.11 में हमने ऐसा ही एक LTC वक्र खींचा है। अल्पकाल की ही भाँति हम दीर्घकाल में भी औसत लागत वक्र (LAC) तथा सीमांत लागत (LMC) मालूम कर सकते हैं।

चित्र 7.10

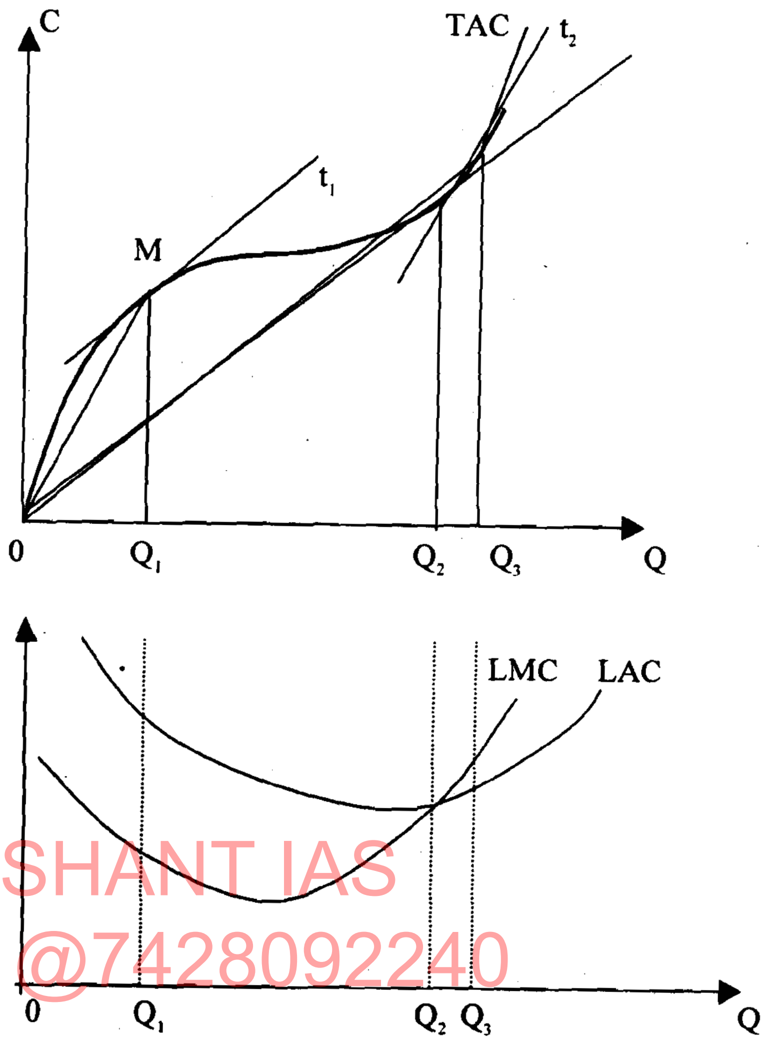

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 7.10 यह बताता है कि दीर्घकाल में परिवर्ती लागत वक्र ही कुल लागत वक्र होता है। चित्र 7.8 की ही विधि का अनुसरण करते हुए हमने LAC तथा LMC खींची है। ध्यान दें कि LAC तथा LMC वक्र भी U जैसे आकार के हैं पर इनके मुँह ऊपर की ओर चित्र 7.8 की अपेक्षा ज़्यादा खुले हुए हैं। यहाँ LMC वक्र भी LAC वक्र को इसके न्यूनतम बिन्दु पर ही काटता है।

यहाँ भी LAC का मान LTC/Q के समान हैं और यह अक्ष केन्द्र से LTC को जोड़ने वाली रेखाओं के ढाल के समान ही हैं। अतः चित्र 7.10 में Q_1 उत्पादन पर LAC=MQ_1/OQ_1 यह OM रेखा के ढाल के माप के समान है। इसी प्रकार अन्य उत्पादन स्तरों पर LAC ज्ञात कर सकते हैं।

चित्र 7.11

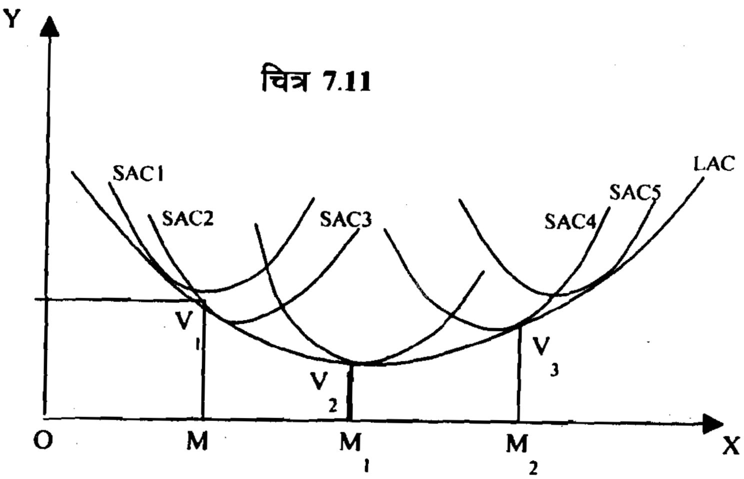

इसी दीर्घकालीन कुल लागत वक्र से दीर्घकालीन सीमांत लागत वक्र प्राप्त किया जा सकता है। हम LTC वक्र के विभिन्न बिन्दुओं पर इसकी स्पर्श रेखाओं के ढाल को मापकर LMC वक्र बना सकते हैं। चित्र 7.10 में Q_1 उत्पादन पर स्पर्श रेखा t_1 का ढाल का मान LMC होगा। LAC तथा LMC वक्रों का आपसी संबंध अल्पकालीन AC तथा MC वक्रों के बीच संबंध जैसा ही रहता है।

आरंभ में LAC>LMC। यह क्रम Q_2 उत्पादन स्तर तक बना रहता है। Q_2 उत्पादन पर LAC=LMC तथा इस स्तर पर LAC न्यूनतम भी है। इससे आगे उत्पादन बढ़ने पर LMC>LAC। इसी Q_2 उत्पादन स्तर पर LAC न्यूनतम रइती है तथा LMC वक्र उसे नीचे से काटकर ऊपर उठ जाती है। अल्पकालीन दीर्घकालीन लागत वक्रों के आपसी संबंध की चर्चा हम पूर्ण प्रतियोगिता के संदर्भ में भी करेंगे। (देखिए इकाई 8)।

बोध प्रश्न 4

1) दीर्घकालीन लागत वक्र किस प्रकार अल्पकालीन लागत वक्र से भिन्न होता है।

....

....

....

....

....

....

2) LAC तथा LMC के बीच संबंध की व्याख्या करें।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

....

....

7.6 सारांश

फर्म की लागतें आगतों पर हुआ खर्च फर्म की लागत कहलाता है। अल्पकाल में पूँजी जैसे आगत स्थिर रहते हैं श्रम जैसी आगत घटती-बढ़ती रह सकती हैं। इस इकाई में हमने सात प्रकार की लागतों की चर्चा की है स्थिर लागत, परिवर्ती लागत, कुल लागत, औसत स्थिर लागत, औसत परिवर्ती लागत, औसत कुल लागत तथा सीमांत लागत। हमने इन लागतों की अवधारणाओं का चित्रांकन भी किया है तथा उनके आपसी संबंधों पर भी विचार किया है।

साथ ही हमने उत्पादन वक्रों एवं लागत वक्रों के प्रतिलोम संबंध भी दर्शाए हैं। अन्ततः बहुत ही संक्षेप में दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन लागत वक्रों के बीच समानताओं तथा अंतर की चर्चा की है।

7.7 शब्दावली

औसत लागत	:	कुल लागत को कुल उत्पादन से भाग देने पर प्राप्त होती है।
औसत स्थिर लागत	:	स्थिर लागत को उत्पादन से भाग देने पर प्राप्त होती है। इसका वक्र आयातीत अतिपरवलय वक्र होता है जो निरंतर नीचे की ओर ढलवा होता है।
औसत परिवर्ती लागत	:	कुल परिवर्ती लागत को उत्पादन से भाग देने पर प्राप्त होती है।
लागत वक्र	:	लागत संबंधी अवधारणाओं के चित्र।
स्थिर लागत	:	अल्पकाल में परिवर्तित रहने वाले आगतों पर व्यय। पूँजी ऐसे ही एक आगत का उदाहरण है।
नतिपरिवर्तन	:	किसी वक्र का वह बिन्दु जहाँ ढाल धनात्मक से ऋणात्मक (अथवा इसके उलट) हो जाता है।
सीमांत लागत	:	एक इकाई अधिक उत्पादन करने से लागत से हुई वृद्धि।
कुल लागत	:	उत्पादन की स्थिर एवं परिवर्ती लागतों का योगफल।
परिवर्ती लागत	:	परिवर्तनशील आगतों पर हुआ व्यय। जैसे श्रम एक ऐसा ही आगत है। इसलिए श्रमिकों को दी गई मज़दूरी एक परिवर्ती लागत होगी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

7.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Frank, R.H., 1991 *Microeconomics and Behaviour*, McGraw Hill Inc., Singapore.

7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर एवं दिशा-संकेत

बोध प्रश्न 1

1) भाग 7.2 देखें। वहीं इनकी व्याख्या की गई है।

बोध प्रश्न 2

1) लागत वक्र है $TC=53+0.5Q+0.2Q^2$
   i) स्थिर लागत : $FC=53$, यह उत्पादन के साथ परिवर्तित नहीं होती।
   ii) परिवर्ती लागत $(VC)=0.5Q+0.2Q^2$ अतः $AVC=VC/Q=0.5+0.2Q$
   iii) $MC=0.5+0.4Q$

बोध प्रश्न 3

1) भाग 7.4 में औसत उत्पाद एवं औसत परिवर्ती लागत के संबंध का विवेचन हुआ है।
2) भाग 7.4 को पढ़ें, फिर अपना उत्तर लिखें।

बोध प्रश्न 4

1) भाग 7.5 में तथा LMC के LAC संबंधों की व्याख्या है। इसे पढ़कर उत्तर लिखें।

इकाई 8 बाज़ार के विभिन्न स्वरूप : पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत निर्धारण

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 बाज़ार के विभिन्न स्वरूप
8.3 पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यताएँ
    8.3.1 विशुद्ध एवं पूर्ण प्रतियोगिता
8.4 पूर्ण प्रतियोगिता में संतुलन : उत्पादन और कीमत
8.5 फर्म का संतुलन
    8.5.1 अल्पकाल में संतुलन
    8.5.2 दीर्घकाल में संतुलन
8.6 सामान्य कीमत
8.7 बाहरी बचतें तथा अपबचतें
8.8 पूर्ण प्रतियोगी उद्योग का आपूर्ति-वक्र
    8.8.1 फर्मों की संख्या में परिवर्तन
8.9 सारांश
8.10 शब्दावली
8.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें
8.12 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

8.0 उद्देश्य

आप इस इकाई के अध्ययन के बाद समझ सकेंगे :

- बाज़ार के विभिन्न स्वरूपों की पहचान;
- पूर्ण प्रतियोगिता की शर्तें और विशेषताएँ;
- फर्म की अल्प और दीर्घकालिक संतुलन की विशेषताएँ;
- पूर्ण प्रतियोगिता उद्योग के संतुलन की शर्तें;
- पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत अल्प और दीर्घकालिक संतुलन में भेद;
- बाहरी बचतों और अपबचतों में भेद; तथा
- पूर्ण प्रतियोगिता में पूर्ति-वक्र का स्वरूप।

8.1 प्रस्तावना

अभी तक हमने यह जाना है कि किस प्रकार माँग और पूर्ति मिलकर बाज़ार व्यवस्था में संतुलन कीमत एवं मात्रा का निर्धारण कर दुर्लभ संसाधनों का आबंटन करते हैं। इकाई 7 के भाग 7.3 में हमने देखा है कि अल्पकाल में ह्रासमान प्रतिफल किस तरह से फर्म की लागतों के स्वरूप को

प्रभावित करते हैं। हमने वहाँ इस बारे में चर्चा की थी कि दीर्घकाल में जब फर्म संसाधनों के प्रयोग में बदलाव ला सकती है तो वह किस तरह से न्यूनतम लागत पर उत्पादन करने में सफल रहती है।

इस इकाई में हमारा ध्यान फर्म द्वारा पूर्ण प्रतियोगिता में अधिकतम लाभ कमाने की प्रक्रिया पर केंद्रित रहेगा। हम जानते ही हैं कि लाभ आगतों तथा लागतों का अंतर होता है। किन्हीं दी गई माँग-पूर्ति की दशाओं में फर्म की आगतें इस बात पर निर्भर करती हैं कि अपने उद्योग में उसे कितनी स्पर्धा या प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है (उद्योग किसी वस्तु बेचने/बनाने वाली सभी फर्मों के समूह का ही नाम है)। उद्योगों को हम चार प्रकार के बाज़ारों पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार, एकाधिकारी प्रतियोगिता एवं अल्पाधिकार में रख सकते हैं।

8.2 बाज़ार के विभिन्न स्वरूप

एक पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार या उद्योग की पाँच विशेषताएँ होती हैं: (1) वस्तु के क्रेताओं तथा विक्रेताओं की बड़ी संख्या, (2) किसी भी क्रेता या विक्रेता का बाज़ार कीमत पर कोई नियंत्रण नहीं, (3) उद्योग में आने या इसे छोड़ने पर कोई पाबंदी नहीं, (4) सभी फर्में एक-जैसा उत्पादन करती हैं; तथा (5) बाज़ार के विषय में सभी को पूरी जानकारी सुलभ रहती है।

एकाधिकारी बाज़ार में केवल एक विक्रेता होता है जो कि ऐसी वस्तु बेचता है जिसका निकट प्रतिस्थापक **(close substitute)** उपलब्ध नहीं होता। इस बाज़ार में यह फर्म ही उद्योग होती है यानि उद्योग में केवल एक ही फर्म होती है तथा बाज़ार में प्रवेश पर प्रतिबंध भी हो सकते हैं। फर्म का कीमत पर पूर्ण नियंत्रण रहता है तथा वह (एकाधिकारी) अधिकतम लाभ कमाने के लिए आवश्यक स्तर पर कीमत का निर्धारण करता है। बाज़ार व्यवस्था के इस स्वरूप पर हम इसी खंड की इकाई 9 में विस्तृत चर्चा करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार की दो धुरियों के बीच में हम एकाधिकारी प्रतियोगिता और अल्पाधिकार को रखते हैं। एक विशेषता को छोड़कर इसकी बाकी सभी विशेषताएँ वे होती हैं जो पूर्ण प्रतियोगिता बाज़ार की होती है। इसकी अलग विशेषता यह है कि फर्मों के उत्पाद विभेदित **(differentiated)** होते हैं (पूर्ण प्रतियोगिता में उत्पाद समरूप होते हैं)। उत्पाद भिन्न होने से फर्म को कुछ एकाधिकारी शक्ति मिलती है। इससे फर्म कुछ सीमा तक अपने उत्पाद के मूल्य को प्रभावित कर सकती है।

अल्पाधिकार एक और बाज़ार व्यवस्था है। ऐसे उद्योग में कुछ इनी-गिनी फर्में होती हैं। इस बाज़ार की फर्मों की परस्पर निर्भरता इस सीमा तक पहुँच जाती है कि कोई फर्म प्रतिद्वंद्वियों की प्रतिक्रिया का आकलन किए बिना स्वतंत्र रूप से कीमत में परिवर्तन का कोई फैसला नहीं कर सकती। इस व्यवस्था की कुछ व्याख्या हम इकाई 10 में ही करेंगे।

इस इकाई में हमारा सारा ध्यान पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार व्यवस्था में फर्म के उत्पादन की कीमत के निर्धारण पर ही केंद्रित रहेगा।

8.3 पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यताएँ

पूर्ण प्रतियोगिता की अवधारणा के दो आधारस्तंभ हैं– (1) फर्म का व्यवहार; तथा (2) जिस उद्योग में फर्म कार्य करती हैं, उसका स्वरूप। फर्म कीमत को स्वीकार करती हैं। यह अपने उत्पादन के स्तर

या विक्रय को बदलकर भी कीमत पर कोई प्रभाव नहीं डाल पातीं। अतः उसे बाज़ार में व्याप्त कीमत पर ही संतोष करना पड़ता है।

उद्योग की सबसे बड़ी विशेषता इसमें प्रवेश तथा निर्गमन की स्वतंत्रता है। इसका अर्थ है जब चाहे नई फर्म इस उद्योग में आ सकती है तथा कोई पुरानी फर्म अपनी इच्छा से उद्योग छोड़ भी सकती है। वर्तमान फर्में, नई फर्मों के आने से नहीं रोक सकती और न ही प्रवेश या निर्गमन पर कोई कानूनी रुकावट होती है।

कीमत स्वीकार करने के व्यवहार के कुछ परिणाम होते हैं। आइए इसे एक उदाहरण द्वारा समझने का प्रयास करें। एक गेहूँ का उत्पादक किसान है और एक कार निर्माता। कार-निर्माता को बाज़ार पर अपना अधिकार मालूम है। अगर यह कारों के दाम बढ़ाएगा तो निश्चित रूप से बिक्री कम हो जाएगी। वह दाम घटाकर अपने प्रतियोगियों के कुछ ग्राहक खींचने का प्रयास भी कर सकता है। अतः यह फर्म कीमत का स्वीकार करने वाली फर्म नहीं है। इसकी माँग-वक्र नीचे की ओर ढलवाँ है तथा यह उसी पर किसी कीमत-उत्पादन संयोजन का अंततः चयन करती है।

परंतु गेहूँ का उत्पादक किसान, कार-निर्माता से कई तरह से भिन्न है। इसी से इसका कीमत-स्वीकृति व्यवहार भी निर्धारित होता है :

एक-समान उत्पादन : कार-निर्माता तो विभेदित **(differentiated)** उत्पादन बेचता है। उसकी तुलना में गेहूँ उत्पादक की स्थिति बहुत भिन्न है। गेहूँ की किसी किस्म में इस बात से कोई फर्क नहीं आता कि उसे किसके खेत में उगाया गया है। अतः सभी किसान एक-जैसा गेहूँ बेचते हैं। यदि किसान ज़रा भी कीमत बढ़ाता है तो सभी लोग दूसरों से गेहूँ खरीदना शुरू कर सकते हैं। अतः कीमत स्वीकार करने का व्यवहार तभी होगा जबकि फर्म समान या समरूप उत्पादन बेच रही हो।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ग्राहक को पूरी जानकारी होना : यह भी कीमत स्वीकृति व्यवहार के लिए आवश्यक शर्त है। कोई भी ग्राहक अनजाने में भी अधिक दाम नहीं देता।

विक्रेताओं की बड़ी संख्या : कार एवं गेहूँ उत्पादकों में एक और बहुत बड़ा अंतर है। एक गेहूँ उत्पादक किसान का कुल उत्पादन में हिस्सा बहुत ही कम होता है। अतः इसके उत्पादन का कीमत पर प्रभाव नहीं पड़ता। वह बाज़ार कीमत पर चाहे जितना माल बेच सकता है। उसकी माँग-वक्र क्षितिजीय अक्ष के समानांतर रहती है।

8.3.1 विशुद्ध एवं पूर्ण प्रतियोगिता

अर्थशास्त्री सामान्यतः विशुद्ध तथा पूर्ण प्रतियोगिता में भेद करते हैं। उपरोक्त शर्तें विशुद्ध प्रतियोगिता की स्थिति बताती है। पूर्ण प्रतियोगिता के लिए कुछ अतिरिक्त मान्यताएँ भी महत्त्वपूर्ण होती हैं– (क) संसाधन एक से दूसरे उद्योग में बिना किसी बाधा के आ-जा सकते हैं; तथा (ख) परिवहन लागतें शून्य हैं।

हमारी आगे की चर्चा पूर्ण प्रतियोगिता पर केंद्रित रहेगी न कि विशुद्ध प्रतियोगिता पर।

बोध प्रश्न 1

1) पूर्ण प्रतियोगिता की पूर्व-धारणाओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

....

....

2) एकाधिकार एवं अल्पाधिकार का अंतर दो वाक्यों में समझाइए।

8.4 पूर्ण प्रतियोगिता में संतुलन : उत्पादन और कीमत

एक पूर्ण प्रतियोगी फर्म को कीमत स्वीकारक कहा गया है, परंतु यह किस कीमत को स्वीकार करती है? पूर्ण प्रतियोगिता में संतुलन कीमत स्तर वह होता है जिसपर बाज़ार में सभी क्रेताओं की कुल माँग सभी फर्मों की कुल पूर्ति के समान हो, अर्थात् जहाँ बाज़ार माँग-वक्र बाज़ार की पूर्ति-वक्र को काटती हो। इसी बाज़ार संतुलन को हमने चित्र 8.1 में दिखाया है। संतुलन बिंदु E पर बाज़ार में OP कीमत पर OQ मात्रा खरीदी और बेची जाती है। प्रत्येक फर्म इसी कीमत को स्वीकार करती है तथा अधिकतम लाभ कमाने का व्यवहार इस कीमत के अनुरूप अपने उत्पादन के स्तर के निर्धारण तक ही सिमट कर रह जाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 8.1

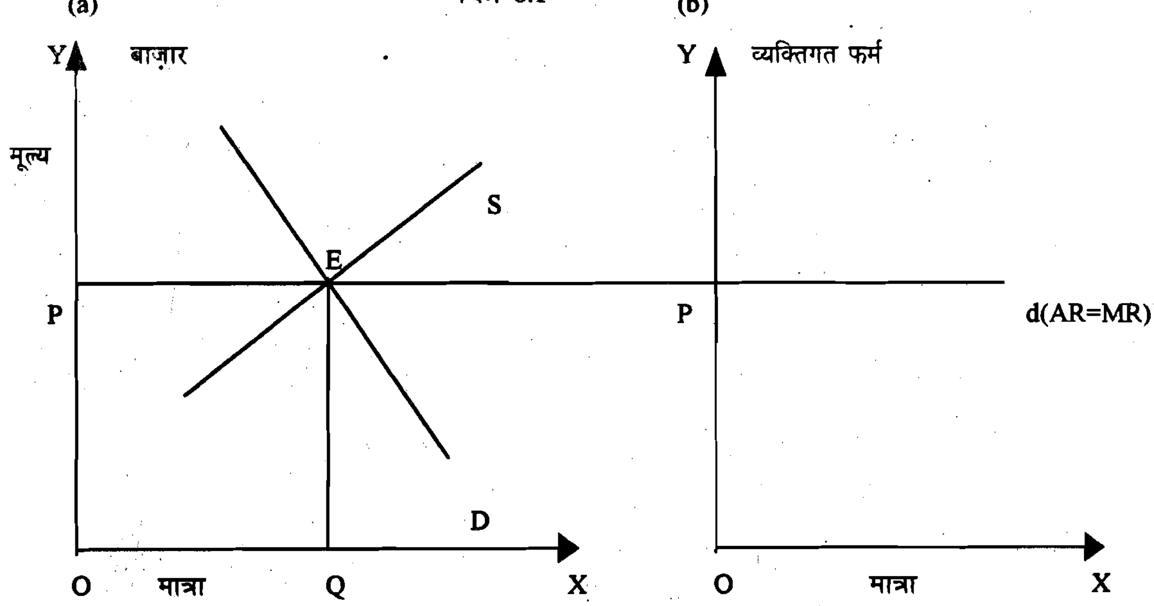

चित्र 8.1 के भाग (a) में बाज़ार का संतुलन बिंदु E पर होता है जहाँ DD तथा SS एक-दूसरे के समान होते हैं। बाज़ार कीमत P निश्चित हो जाती है। इस बाज़ार कीमत पर प्रत्येक फर्म चाहे जितना माल बेच सकती है। अतः भाग (b) में फर्म की माँग-वक्र क्षितिज के समानांतर रहती है।

फर्म अपने उत्पादन की कीमत को प्रभावित नहीं कर सकती। इसका आकार बाज़ार की तुलना में बहुत ही छोटा होने के कारण कीमत पर इसका कोई नियंत्रण नहीं रहता। यह बाज़ार भाव जितना चाहे उतना माल बेच सकती है। इसी कारण से इसकी माँग-वक्र पूर्णतः लोचशील होती है। परंतु यह बात ध्यान देने योग्य है कि एक पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार की बाज़ार-माँग कभी पूर्णतः लोचशील होनी आवश्यक नहीं। चित्र 8.1 (a) की माँग-वक्र D यही दिखा रही है। यह सभी परिवारों की इस वस्तु के लिए कुल माँग है। आपको ध्यान होगा कि इकाई 2 में व्यक्तियों की अलग-अलग सामूहिक माँग-वक्रों के संबंध पर चर्चा हुई थी। इसी तरह, बाज़ार की आपूर्ति के बारे में भी उसी इकाई 2 में बातचीत की गई थी।

बाज़ार कीमत एक फर्म के उत्पादन से प्रभावित नहीं होती। अतः इस फर्म द्वारा एक इकाई अधिक बेचने से प्राप्त सीमांत आगम भी बाज़ार में प्रचलित कीमत के ही समान होगी। औसत आगम तो परिभाषा ही इस प्रकार होती है कि यह कीमत के समान रहती है (औसत आगम = कुल आगम ÷ बेची गई इकाइयाँ)। अतः इस फर्म के लिए P = AR = MR। यह तीनों उत्पादन के स्तर के साथ घटते-बढ़ते नहीं, स्थिर रहते हैं।

कुल आगम (TR) : फर्म की कुल आय आगम उस द्वारा बेची गई इकाइयों तथा कीमत का गुणनफल ही है।

अतः $TA = P \times Q$.

फर्म कीमत स्वीकारकर्ता है। अतः प्रत्येक अतिरिक्त इकाई उत्पादन से इसकी कुल आगम में होने वाली वृद्धि का परिमाण स्थिर रहता है।

औसत आगम (AR) : फर्म द्वारा प्राप्त इकाई आगम ही है। यह कुल आगम तथा उत्पादन का अनुपात है। फर्म अपना उत्पादन एक स्थिर कीमत पर ही बेचती है। अतः गणितीय दृष्टि से

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

$$AR = TR/Q = P \times Q/Q = P$$

सीमांत आगम (MR) : उत्पादन में एक इकाई परिवर्तन से कुल आगम में आया परिवर्तन ही सीमांत आगम कहा जाता है। यह उत्पादन में परिवर्तन के कारण TR के परिवर्तन की दर है। यदि उत्पादन में एक इकाई परिवर्तन हो तो MR यह व्यक्त करता है कि कुल आगम में कितना बदलाव आएगा।

$$MR = \Delta TR/\Delta Q$$

कीमत स्वीकारकर्ता फर्म के लिए MR भी कीमत के समान ही रहता है।

$$MR = P$$

जब भी फर्म अपना उत्पाद एक इकाई बढ़ाती है, इसकी कुल आगम में $1 \times P$ की वृद्धि हो जाती है। MR को हम उत्पादन में परिवर्तन के कारण TR में परिवर्तन मानते हैं, अतः $MR = 1 \times P = P$

8.5 फर्म का संतुलन

सभी पूर्ण प्रतियोगी फर्में अधिकतम लाभ कमाना चाहती है। यह लाभ (π) कुल आगम तथा कुल आगत का अंतर ही है।

$$\pi = TR - TC$$

एक फर्म उस समय संतुलन में कही जाती है जब उसका उत्पादन इतना हो कि उसे अधिकतम लाभ मिले।

अधिकतम लाभ कमाने के लिए फर्म को कितना उत्पादन करना चाहिए, इस निर्णय में MC तथा MR का बहुत महत्त्व होता है। ये बातें ध्यान रखने योग्य हैं :

- यदि MR > MC तथा MC बढ़ रही हो तो फर्म उत्पादन बढ़ाएगी।
- यदि MR < MC तथा MC बढ़ रही हो तो फर्म उत्पादन कम करेगी।
- यदि MR = MC तथा MC बढ़ रही हो तो फर्म का उत्पादन संतुलन स्तर तक पहुँच गया है और लाभ भी अधिकतम हो गए हैं।

अतः एक प्रतियोगी उद्योग में संतुलन के लिए दो शर्तें पूरी होना आवश्यक है :

i) सीमांत आय = सीमांत लागत

ii) संतुलन के पश्चात् सीमांत लागत सीमांत आय से अधिक हो।

अल्पकाल और दीर्घकाल दोनों में एक जैसी शर्तें हैं। अंतर केवल इतना है कि अल्पकाल में सामान्य से अधिक लाभ या हानि हो सकती है। ऐसा स्थिर लागतों व फर्मों को उद्योग में प्रवेश करने की या उद्योग छोड़ने की स्वतंत्रता न होना है। दीर्घकाल में न तो असमान्य लाभ होते हैं और न ही कोई हानि। इसके पीछे दो कारण है। एक, सभी लागतें परिवर्तनीय होती है और उत्पादन न करने की दशा में बचा जा सकता है। दूसरे, फर्मों को उद्योग में आने व उद्योग छोड़ने की स्वतंत्रता होती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

8.5.1 अल्पकाल में संतुलन

विषय प्रवेश : हमने पिछली इकाई में यह तो बताया ही था कि अल्पकाल वह अवधि है जिसमें फर्म परिवर्तनशील साधनों के प्रयोग में फेरबदल द्वारा अधिकतम लाभ कमाने का प्रयास करती है। इस अवधि में स्थिर साधनों की मात्रा नहीं बदल सकती। अतः अल्पकाल में संतुलन की चर्चा करते समय हमें लागतों की दशा भी स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए। यदि फर्मों की लागतें भिन्न-भिन्न हों तो उद्योग की संतुलन स्थिति उस अवस्था से अलग हो जाएगी जब सभी फर्मों की लागतें एक-जैसी रही हों। अतः हम फर्म तथा उद्योग के संतुलन की तीन अवस्थाओं का निरूपण और विश्लेषण करेंगे।

क) सभी साधन समरूप हैं : हमारी पहली अवस्था है कि उत्पादन के सभी साधन समरूप हैं। इनसे उद्यम भी सम्मिलित हैं। अतः सभी उत्पादक इकाइयों में सभी साधनों को एक ही जैसे अनुपात में संयोजित कर उत्पादन सम्पन्न होगा। प्रत्येक फर्म का प्रयास न्यूनतम लागत पर उत्पादन करना है। उनकी लागत-वक्र भी (साधनों की समरूपता तथा समान अनुपातों के कारण) एक-समान होंगी।

ख) दूसरी अवस्था में हम यह मान लेते हैं कि अन्य सभी साधन तो समरूप हैं, परंतु उद्यम में कुछ न कुछ अंतर अवश्य होता है। इस मान्यता के परिणामस्वरूप कुछ फर्में अपेक्षाकृत अधिक कुशल हो सकती हैं और वे उन्हीं साधनों का प्रयोग कर अपेक्षकृत कम लागत पर उत्पादन करने में सफल रहती हैं।

ग) तीसरी अवस्था में तो सभी साधनों को विषम माना जा सकता है। अतः केवल उद्यम ही नहीं, वरन् अन्य साधनों की कुशलता में अंतर के कारण भी लागतों में अंतर आ जाएगा।

एक समान लागत की दशा में संतुलन

आइए अब फर्म के अल्पकालीन संतुलन को एक बार फिर एक रेखाचित्र के माध्यम से समझने का प्रयास करें। चित्र 8.2 में हम फर्म के संतुलन की तीन संभव दशाएँ दिखा रहे हैं। हम यह मानकर चल रहे हैं कि यह फर्म साधन बाज़ार पूर्ण प्रतियोगी खरीदारों में से एक है और वहाँ की नियत कीमतों पर समरूप साधन इकाइयाँ प्राप्त कर उत्पादन कार्य करती हैं। पूर्ण प्रतियोगिता का परम्परागत सिद्धांत इसी पूर्वधारणा पर आधारित है।

चित्र 8.2

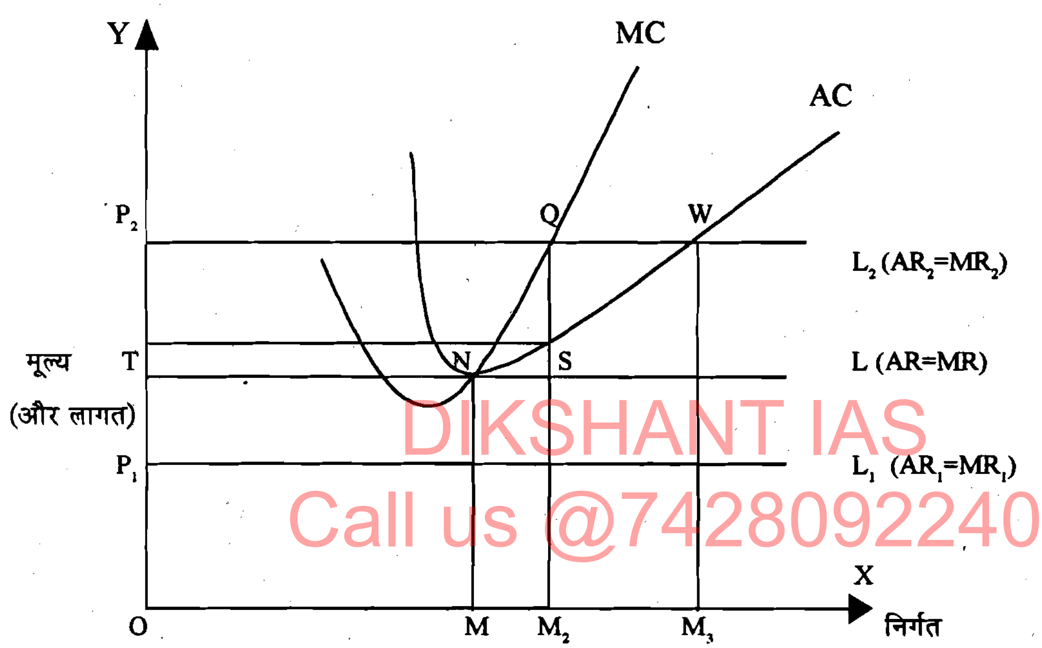

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 8.2 : बिंदु N जहाँ MC = AC = AR = MR के अतिरिक्त भी किसी अन्य बिंदु पर अल्पकालीन संतुलन संभव है। यदि अल्पकाल कीमत P_2 > P तो फर्म OM_2 उत्पादन कर P_2LRS 'अतिशय लाभ' कमा सकती है। यदि अल्पकालीन कीमत P_1 < P तो फर्म सभी लागतें पूरी नहीं कर पाती। फिर भी, यदि कम से कम परिवर्ती लागतें पूरी हो रही हों तो यह उत्पादन करती रहती है। MC की संतुलन शर्त के अनुसार, उत्पादन का स्तर OM_1 निर्धारित होता है।

चित्र में हमने AC तथा MC वक्रों को बनाया है तथा हम यह मानते हैं कि प्रत्येक फर्म न्यूनतम संभव लागत पर उत्पादन करने का प्रयास करती है। लाभ स्थिति अगर आरंभ में वस्तु की कीमत OP_2 हो तो क्या होगा? सभी फर्म अपना उत्पादन अधिकतम लाभ कमाने की दृष्टि से निश्चित करेंगी। यह स्तर OM_2 होगा, जिसे प्रतियोगी कीमत OP_2 पर बेचा जाएगा। औसत लागत M_2R होगी तथा प्रति इकाई अतिरिक्त लाभ LR होगा। क्षेत्रफल P_2LRS फर्म द्वारा कमाए गए सारे 'असमान्य-लाभ' को दर्शाता है। उद्योग की सभी इकाइयाँ संतुलन में होंगी एवं अधिकतम लाभ कमा रही होंगी।

सामान्य लाभ स्थिति : अल्पकाल में यह स्थिति बनी रहेगी क्योंकि न तो ये फर्में नई स्थिर लागत-जन्य संयंत्र आदि लगा पाती हैं तथा न ही कोई नई फर्म उद्योग में प्रवेश कर पाती हैं। किंतु दीर्घकाल में नई फर्में बाज़ार में प्रवेश कर असमान्य लाभ समाप्त कर देंगी।

सामान्य लाभ स्थिति : यदि कीमत OP_2 के स्थान पर OP होती तो सभी फर्में OM स्तर पर उत्पादन करते हुए सामान्य लाभ अर्जित करतीं। औसत लागत-वक्र OM उत्पादन स्तर पर औसत आगम को स्पर्श करती। यही अल्पकाल में पूर्ण संतुलन होगा। उद्योग में उतनी ही फर्में होंगी जितनी होनी चाहिए तथा वे सभी सामान्य लाभ कमाने की स्थिति में होंगी।

हानि की स्थिति : इसके विपरीत, यदि कीमत OP_1 हो तो फिर भी इस उद्योग में सभी इकाइयाँ OM_1 बिंदु पर उत्पादन करते हुए संतुलन प्राप्त करेंगी। परंतु यह संतुलन ऐसा होगा जिसमें सभी P_1QNT के समान हानि उठा रही होंगी। यह हानि का वह न्यूनतम स्तर है जिसे सभी इकाइयों को सहन करना पड़ता है। हाँ, दीर्घकाल तक यह स्थिति नहीं चल सकती। कुछ न कुछ फर्में (दीर्घकाल में) इस उद्योग से बाहर निकल ही जाएँगी। इस प्रकार से शेष फर्में सामान्य लाभ कमा पाएँगी। अब यह स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि एक हानि उठा रही फर्म में क्यों बनी रहेगी? फर्म के कार्य करते रहने के लिए यह ज़रूरी है कि उसकी परिवर्तनशील लागतें पूरी होती रहें। इस बात को हम चित्र 8.4 द्वारा समझा रहे हैं। इस चित्र में भी फर्म की लागत-वक्र तथा आगम वक्र दिखाई गई है। फर्म तभी तक काम करते रह सकती है जब तक कि परिवर्ती लागतें पूरी हो रही हों। यदि फिर भी वह काम बंद करने का निर्णय करती है तो उसे अपने स्थिर निवेश को बर्बादी का भारी लाभ उठाना पड़ेगा। यदि वह कार्य करती रहती है तो बाज़ार में उसका स्थान बना रहता है तथा उसकी पूँजी एवं संयंत्र आदि कबाड़ बनने से बच जाते हैं।

चित्र 8.3

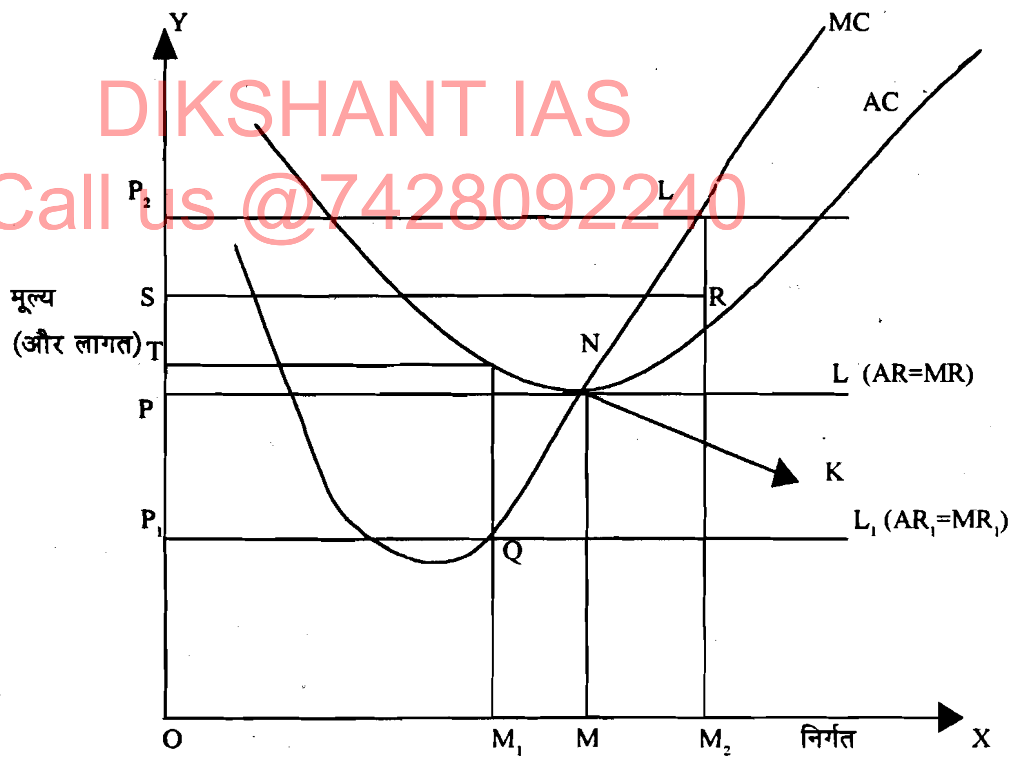

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 8.3 : अल्पकाल में फर्म को OM पर उत्पादन करना ही बेहतर लगता है, यद्यपि कीमत OP औसत लागत MS को पूरा नहीं कर पाती। फर्म की स्थिर लागत TRSV काफी ज़्यादा है। उत्पादन में बने रहते हुए फर्म स्थिर लागत की पूर्ति की ओर TPQV के समान योगदान करती रह सकती है। अतः OP कीमत पर इसका 'न्यूनतम-हानि' उत्पादन स्तर OM होगा।

चित्र 8.3 पर ध्यान दें। कीमत स्तर OP पर फर्म का न्यूनतम-हानि उत्पादन स्तर OM है। अतः कीमत औसत परिवर्ती लागत MV से QV ज़्यादा है। इसी को स्थिर लागत पूरा करने में प्रति इकाई

योगदान कहा जाता है। इस स्थिति में फर्म को कार्य करते रहना ही श्रेयस्कर लगता है। परिवर्ती लागतों के पूरा होने के बाद स्थिर लागतों का भी कुछ न कुछ हिस्सा तो पूरा हो ही जाता है। हम PQVT को स्थिर लागतों की ओर समग्र योगदान कह सकते हैं। फर्म कार्य करते रहकर अपनी संभावित हानि को इस परिमाण (PQVT) द्वारा कम कर सकती है। फिर भी RSQP के समान हानि इसे बर्दाश्त करनी ही पड़ती है, परंतु यह हानि कुल संभावित हानि अर्थात् कुल स्थिर लागत RSVT से काफी कम है। अतः उसकी हानि RSVT-PQVT ही रह जाती है।

यदि अल्पकाल कीमत OP_1 हो जाए तो फर्म की औसत लागत MS रहते हुए उसे प्रति इकाई SQ_1 हानि उठानी पड़ेगी। यहाँ तो उसकी परिवर्तनशील साधन पर आई लागत भी पूरी नहीं हो पाती। OM उत्पादन स्तर पर फर्म की हानि में स्थिर लागत RSVT के अतिरिक्त P_1Q_1VT की ओर वृद्धि हो जाती है। यहाँ तो फर्म को अल्पकाल में भी काम बंद करना ही श्रेयस्कर लगेगा। वास्तव में, यदि फर्म को OT के बराबर न्यूनतम प्रति इकाई कीमत नहीं मिलती, जिससे इसकी परिवर्ती लागत पूरी हो सके, तो वह बिल्कुल ही उत्पादन नहीं कर पाएगी।

चित्र 8.4

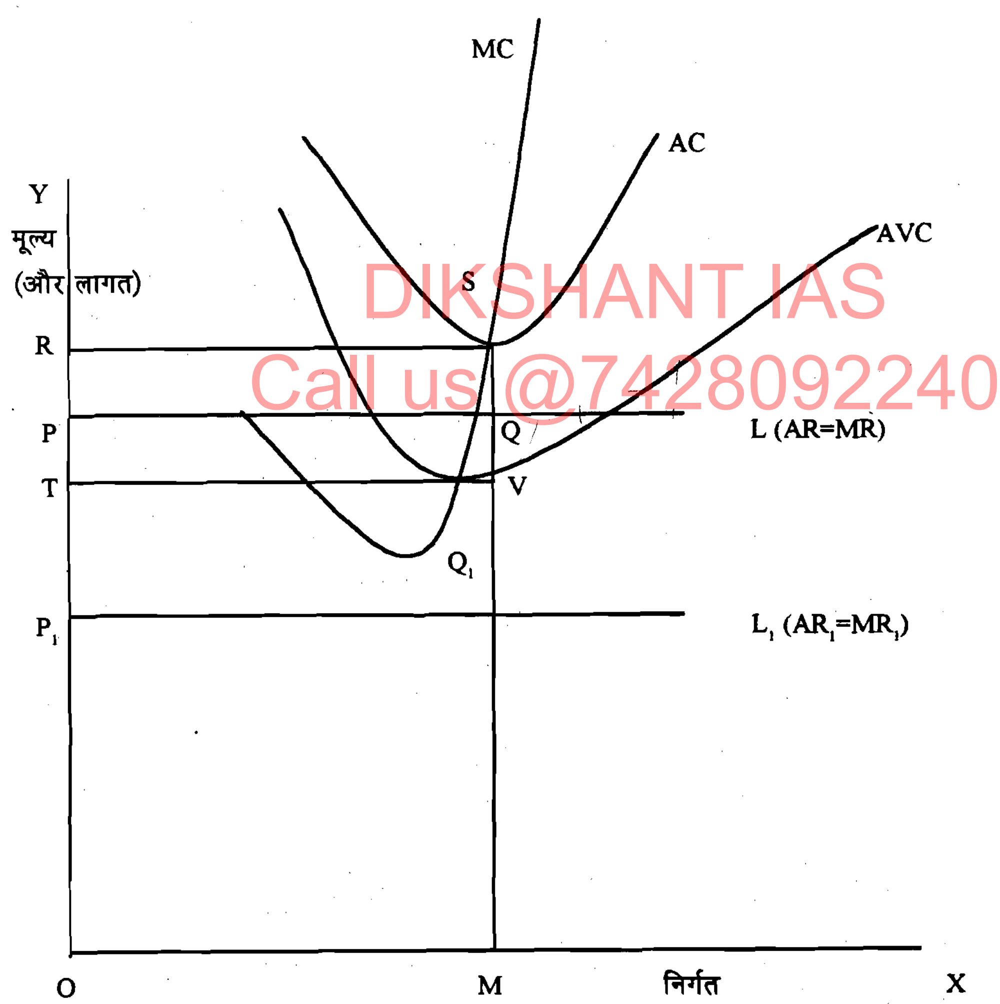

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 8.4 एक फर्म का दीर्घकालिक संतुलन की स्थिति दर्शाता है जहाँ वह सामान्य लाभ ही कमाती है।

सभी उद्यमी एक समान कुशल न होने की दशा में संतुलन

आइए, अब उस स्थिति पर ध्यान दें जहाँ सभी फर्में एक जैसी कुशल नहीं होतीं। साधनों की कीमतें तो सभी फर्मों के लिए एक-समान रहती हैं, परंतु उद्यमी की दक्षता में अंतर के कारण कुछ फर्मों की औसत लागत अन्यों के मुकाबले में कम या ज़्यादा हो सकती है। अधिक कुशल उद्यमी कम लागत पर उत्पादन कर सकेंगे। अतः समरूप उत्पादन को एक ही समान कीमत बेचने वाली फर्मों के अधिकतम लाभ कमाने वाले उत्पादन स्तर समान नहीं रह पाएँगे। प्रत्येक फर्म का लाभ स्तर भी समान नहीं रहेगा।

मान लीजिए कि उद्योग में चार फर्में हैं। फर्म **A** का उद्यमी सबसे कुशल है। यह वर्तमान या प्रचलित कीमत पर असमान्य लाभ कमाता है।

फर्म **B** कम कुशल होने के कारण प्रचलित कीमत पर केवल सामान्य लाभ ही अर्जित कर पाती है। फर्म **C** और भी कम कुशल है तथा कुछ हानि उठाती है। परंतु यह फर्म अभी भी परिवर्ती लागतें पूरी करने में सफल रहती है। अतः यह अल्पकाल में कार्य करती रह सकती है और इस प्रकार हानि को न्यूनतम स्तर पर बनाए रख सकती है। चौथी फर्म **D** सभी से ज़्यादा अकुशल है। यह तो उत्पादन के किसी स्तर पर परिवर्तनशील लागतें भी पूरी नहीं कर पाती। अतः हानि का स्तर न्यूनतम रखने का इसके पास तो अल्पकाल में भी एक ही रास्ता बचता है–काम बंद करना।

सभी उत्पादन साधनों की कुशलता भिन्न-भिन्न होने पर संतुलन

तीसरी स्थिति में तो सभी साधनों के दक्षता स्तरों में भिन्नता पाई जाती है। अतः फर्मों की लागतों में अंतर और भी अधिक व्यापक होंगे। ऊपर वाली चार फर्मों जैसी ही स्थिति रहेगी, परंतु फर्मों के बीच लागत स्तरों में अंतर और ज़्यादा महत्त्वपूर्ण हो जाएँगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

8.5.2 दीर्घकाल में संतुलन

हम जानते हैं कि दीर्घकाल में उद्योग में प्रवेश या इससे निर्गमन पर कोई प्रतिबंध नहीं होता। सभी उत्पादक साधन भी पूरी तरह गतिशील होते हैं। पूर्ण प्रतियोगी फर्में सामान्य लाभ कमाती रहेंगी। उद्योग में उस बिंदु तक फर्मों का आना-जाना लगा रहता है जब तक कि सभी का लाभ सामान्य स्तर तक नहीं पहुँच जाता। बाहर से इस उद्योग में वही आएगा जिसे यहाँ पर सामान्य स्तर तक नहीं पहुँच जाता। बाहर से इस उद्योग में वही आएगा जिसे यहाँ पर सामान्य लाभ की आशा हो। वही इस उद्योग को छोड़ेगा जिसे बाहर जाकर कुछ बेहतरी की उम्मीद हो। आइए इसी बात को कुछ और विस्तार से समझें।

यदि इस उद्योग में सभी फर्मों को असमान्य लाभ हो रहा हो तो नई फर्में इसमें प्रवेश करेंगी और पूर्ति का विस्तार होगा। पूर्ति-वक्र बाहर की ओर खिसककर जाएगा। माँग-वक्र के अपरिवर्तित रहने पर पहले वाली कीमत-स्तर टिक नहीं पाती– पूर्ति की वृद्धि से कीमत कम हो जाएगी। यह कीमत गिरने का क्रम तब तक चलता रहेगा जब तक कि सभी फर्में उस स्थिति में नहीं पहुँच जातीं जहाँ वे केवल अपनी लागतें ही पूरी कर पाती हैं। लाभ का स्तर शून्य हो जाता है।

दूसरी ओर, यदि उद्योग में घाटे की स्थिति व्याप्त हो तो कुछ फर्में काम बंद कर देती हैं। इससे पूर्ति कम हो जाती हैं, अर्थात् पूर्ति-वक्र बाईं ओर खिसककर जाता है। इसके कारण माँग स्थिर रहने पर कीमत-स्तर ऊपर उठता है। यह निर्गमन एवं कीमत वृद्धि का क्रम तब तक चलता रहता है जब तक बची हुई फर्में अपनी लागतें पूरी कर सामान्य लाभ न कमाने लगें। दीर्घकाल में फर्म के संतुलन चित्र 8.5 में दर्शाया गया है।

चित्र 8.5

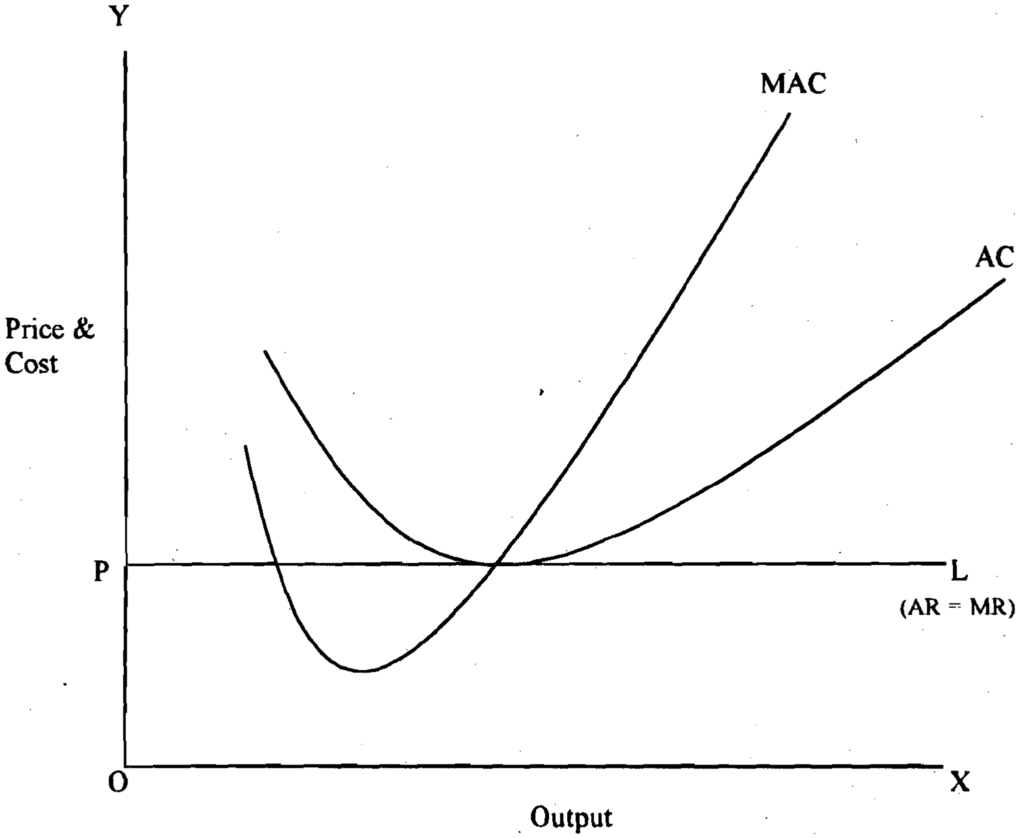

चित्र 8.5 दीर्घकाल में फर्म का संतुलन दर्शाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

8.6 सामान्य कीमत

मार्शल के अनुसार सामान्य कीमत वह कीमत है जो कि माँग और पूर्ति की वर्तमान दशाओं में अपेक्षित हो सकती है। यहाँ समय बहुत महत्त्वपूर्ण कारक है। दीर्घ एवं अल्पकाल की सामान्य कीमतें अलग-अलग हो सकती हैं। परंतु वास्तविक व्यवहार में दीर्घकालिक सामान्य कीमत स्तर पर हम शायद ही सभी पहुँच पाते हैं। हम जानते हैं कि कल की तरह से ही दीर्घकाल भी कभी नहीं आता। किसी न किसी शर्त में दीर्घकालिक संतुलन के निर्धारित होने से पूर्व ही पुनः परिवर्तन हो ही जाता है।

बोध प्रश्न 2

1) सत्य अथवा असत्य बताइए :

क) सीमांत आगम उत्पादन की प्रति इकाई आगम है। (सत्य/असत्य)

ख) पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म कीमत निर्धारक नहीं होती। (सत्य/असत्य)

ग) पूर्ण प्रतियोगिता में फर्मों के प्रवेश और निर्गमन पर कोई रुकावट नहीं होती। (सत्य/असत्य)

घ) पूर्ण प्रतियोगिता परिवहन लागतों की उपस्थिति मानकर चलती है। (सत्य/असत्य)

2) जब उद्यम के अतिरिक्त सभी साधन समरूप हों तो फर्म का अल्पकालिक संतुलन समझाइए।

....

....

....

....

....

3) फर्म का दीर्घकालिक संतुलन समझाइए।

....

....

....

....

....

4) हानि उठाने वाली फर्म अल्पकाल में कब उद्योग से बाहर निकल जाती है?

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

8.7 उत्पादन की बचतें तथा अपबचतें

अब हम उद्योग की अल्प और दीर्घकालिक पूर्ति-वक्र की रचना की ओर ध्यान देंगे। परंतु उससे पूर्व बाहरी बचतों और अपबचतों का अर्थ बताएँगे। ये बाहरी बचतें/अपबचतें आंतरिक बचतों और अपबचतों से भिन्न होती हैं। आंतरिक बचतें/अपबचतें आंतरिक बचतों और अपबचतों से भिन्न होती हैं। आंतरिक बचतें/अपबचतें तो साधन अनुपातों अथवा आंतरिक संगठन आदि में बदलाव का परिणाम होती हैं।

दूसरी ओर, बाहरी बचतें/अपबचतें एक फर्म नहीं बल्कि सारे उद्योग के उत्पादन में वृद्धि से जुड़ी हुई हैं। यदि उद्योग के विस्तार से इसकी सभी फर्मों की उत्पादन लागत कम हो जाए तो हम इसे बाहरी मितव्ययता/बचत कहेंगे। दूसरी ओर, उद्योग प्रसार के कारण सभी फर्मों की उत्पादन लागतों में वृद्धि की संभावना को नकारा नहीं जा सकता। यह अपबचत की स्थिति होगी।

8.8 पूर्ण प्रतियोगी उद्योग का आपूर्ति-वक्र

इस इकाई में हमारा मुख्य उद्देश्य अंततः पूर्ण प्रतियोगी उद्योग की पूर्ति-वक्र का निर्माण है। किंतु इस पूर्ति-वक्र का आकार सदैव एक जैसा नहीं रहता। यह आकार, आधारभूत उत्पादन शर्तों पर निर्भर करता है तथा उत्पादन शर्तें कुछ मान्यताओं के आधार पर निरूपित होती हैं। सबसे पहली बात तो यही है कि प्रत्येक उत्पादक साधन की सभी इकाइयाँ परस्पर समरूप हैं तथा इस उद्योग के लिए

उनकी आपूर्ति भी पूर्णतः लोचशील है। हम साधन बाज़ार में भी पूर्ण प्रतियोगिता मानते हैं ताकि उत्पादक को किसी भी साधन की प्रत्येक इकाई के लिए एक जैसी ही कीमत चुकानी पड़े।

अल्पकालीन आपूर्ति-वक्र

हम पूर्ण प्रतियोगी उद्योग की पूर्ति-वक्र का निर्धारण तीन प्रकार की अवस्थाओं के अनुरूप करेंगे :

अल्पकालिक पूर्ति-वक्र जबकि उद्योग की घटक फर्मों की संख्या तथा प्रत्येक के उत्पादन का पैमाना स्तर भी पूर्व-निर्धारित होता है।

हम यह मानकर चलते हैं कि सभी फर्में सभी समरूप साधनों का प्रयोग करती हैं। इसी कारण से उनका लागत-वक्र भी एक-समान होगा। प्रत्येक फर्म, प्रारंभिक अवस्था में दीर्घकालिक संतुलन की भाँति OM_1 उत्पादन OP_1 कीमत पर बेचती रहेगी (चित्र 8.6)। उद्योग की सभी फर्मों के लिए सीमांत आगम वक्र MR अल्प और दीर्घकालिक सीमांत लागत MC के समान होगी। सभी फर्मों को सामान्य लाभ ही मिलता रहेगा।

चित्र 8.6

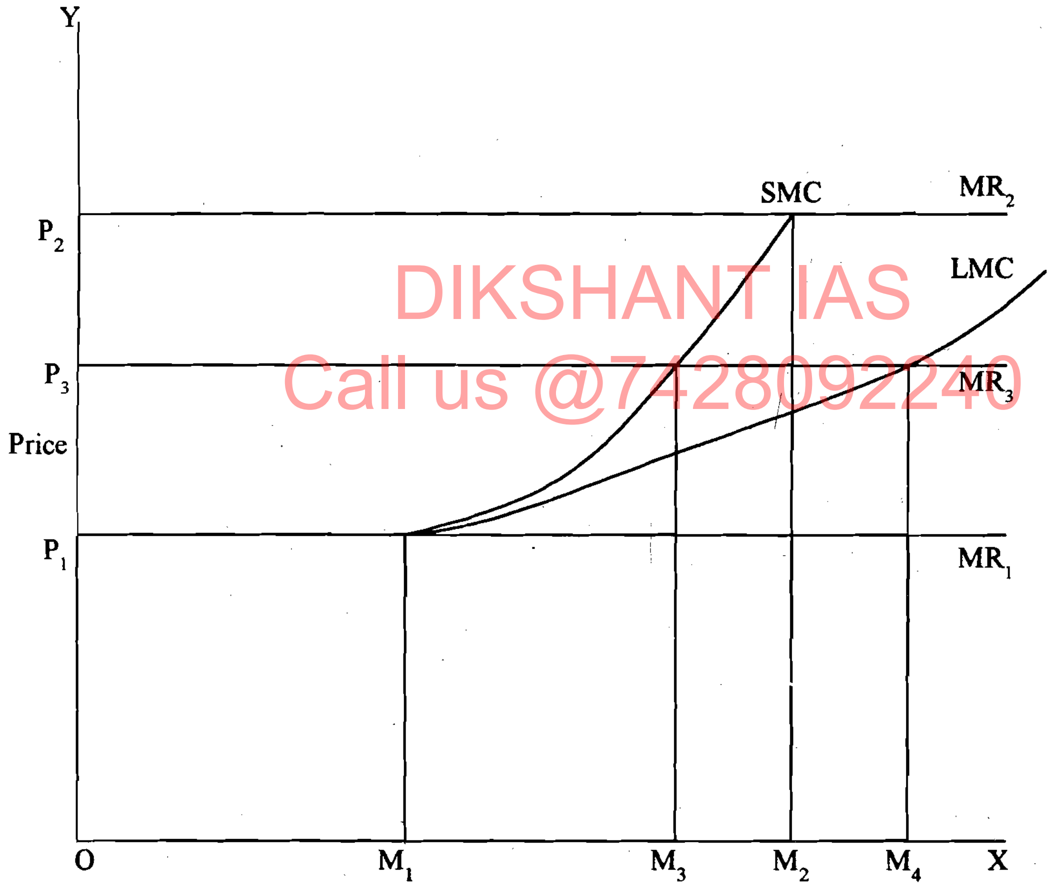

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 8.6 : उद्योग का दीर्घकालीन संतुलन दिखाता है। फर्म OM_1 उत्पादन OP_1 कीमत पर बेचते हैं।

आपूर्ति-वक्र का आकार जानने के लिए कीमत में परिवर्तन का प्रभाव जानना होगा। आइए कीमत बढ़ाकर OP_2 कर दें और देखें कि इस उद्योग की इकाइयाँ किस प्रकार व्यवहार करती हैं। अब प्रत्येक फर्म की AR=MR वक्र P_2MR_2 हो जाती है। अल्पकाल में फर्म अपनी सीमांत आगत पर

ही उत्पादन बढ़ा सकती है। अतः उसकी अल्पकाल सीमांत लागत-वक्र ही अल्पकालिक आपूर्ति-वक्र बन जाती है। अब नई कीमत OP_2 पर $MR = MC$ द्वारा हमें उत्पादन का नया स्तर OM_2 प्राप्त होता है। यही बात प्रत्येक फर्म पर लागू होगी। अतः उद्योग का आपूर्ति-वक्र वस्तुतः घटक फर्मों की अल्पकालिक आपूर्ति (सीमांत लागत) वक्रों के क्षैतिज योगफल के समान होगा।

फर्म का दीर्घकालिक पूर्ति-वक्र : प्रत्येक फर्म का उत्पादन बढ़ने पर उद्योग व्यापी पूर्ति-वक्र बाहर की ओर खिसक जाएगा। बाज़ार में यदि माँग की अवस्था अपरिवर्तित रहे तो नया आपूर्ति-वक्र की अपेक्षा दाहिनी ओर (उसी पुराने) माँग-वक्र को काटेगा। दूसरे शब्दों में, सारा उद्योग अपने बढ़े हुए उत्पादन को अपेक्षाकृत कम कीमत पर ही बेच पाएगा। अतः जब सारी फर्में OP_2 पाने की आशा में उत्पादन बढ़ा लेती हैं तो उन्हें यह अहसास होता है कि वे ज्यादा माल केवल OP_3 कीमत पर बेच पाएँगी ($OP_3 < OP_2$)। हाँ यह सत्य है कि दीर्घकाल में वे OM_3 स्तर पर उत्पादन कर उसे OP_3 कीमत पर बेच सकेंगी। यह बात ध्यान देने योग्य है कि अल्पकाल में $SMC = MR_3$ द्वारा निर्धारित उत्पाद OM_4 ही होगा, जो कि OM_3 से कम है। यह भी स्पष्ट है कि दीर्घकालिक MC वक्र, LMC अल्पकालिक MC वक्र, SLC की अपेक्षा कम ती... ढाल वाली रहती है।

लेकिन उद्योग में फर्मों की संख्या स्थिर रहने पर भी उस उद्योग की दीर्घकालिक संतुलन OM_3 उत्पादन एवं OP_3 कीमत पर ही होगा। उद्योग की दीर्घकालिक सीमांत लागत-वक्र भी अपेक्षाकृत कम तीखे ढलान की होगी तथा अल्पकाल की अपेक्षा उत्पादन वृद्धि भी अधिक होगी प्रत्येक फर्म का उत्पादन M_1M_4 की बजाए M_1M_3 हो जाएगा। अतः दीर्घकालिक पूर्ति-वक्र भी अल्पकालिक पूर्ति की अपेक्षा धीमे-धीमे ऊपर की ओर उठेगी। अब एक और भी महत्त्वपूर्ण तथ्य पर हमें ध्यान देना होगा : OP_3 कीमत पर उद्योग की सभी फर्मों की संख्या को अपरिवर्तित रखा है। किंतु पूर्ण प्रतियोगिता में शीघ्र ही नई फर्में इस उद्योग की ओर आकृष्ट होंगी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

8.8.1 फर्मों की संख्या में परिवर्तन

उद्योग का दीर्घकालीन पूर्ति-वक्र : आइए अब हम दीर्घकाल में उस स्थिति की ओर ध्यान दें जिसके होने की संभावना अधिक है। यहाँ न केवल फर्मों का आकार बल्कि उनकी संख्या भी बदल सकती है। नई फर्में तब तक इस उद्योग में आती रहेंगी जब तक कि असमान्य लाभ पूरी तरह से समाप्त नहीं हो जाता। अतः यद्यपि अल्पकाल में सभी फर्मों ने OP_2 कीमत पर OM_2 उत्पादन करने का प्रयास किया था, परंतु अंततः दीर्घकाल में वे अपनी आरंभिक स्थिति, अर्थात् OP_1 कीमत पर OM_2 उत्पादन पर लौट आएँगी। सीमांत आगम वक्र P_1MR_4 हो जाएगा जो कि P_1HR_1 के समान है। यद्यपि सभी फर्में OM_1 जितना ही उत्पादन करेंगी परंतु फर्मों की संख्या ज़्यादा हो जाने से उद्योग का उत्पादन कहीं ज़्यादा हो जाएगा। नई फर्मों के आगमन के कारण दीर्घकालिक उद्योग-व्यापी पूर्ति-वक्र क्षैतिज अक्ष के समानांतर बन जाएगा। नई फर्में भी पुरानी फर्मों के ही समान होंगी एवं सामान्य लाभ कमाएँगी। अतः सभी साधनों के समरूप होने की दशा में अनिर्बंध प्रवेश के कारण उद्योग की दीर्घकालिक पूर्ति-वक्र क्षैतिज-अक्ष के समानांतर सरल रेखा होगी। प्रत्येक उत्पादन स्तर उसी स्थिर आपूर्ति कीमत पर ही उपलब्ध होता रहेगा।

उद्योग का अल्पकालीन पूर्ति-वक्र : आइए अब साधनों की समरूपता की मान्यता को नकारने का प्रभाव देखें। आमतौर पर ऐसा देखा गया है कि अन्य साधन समान ही रहें तो भी उद्यम की दक्षता के स्तर में अंतर आ ही जाते हैं। परंतु अल्पकाल में पूर्ति-वक्र पर उद्यम कुशलता के अंतरों का खास प्रभाव नहीं पड़ता। वह अभी भी सभी घटक फर्मों की अल्पकालिक लागत-वक्रों के क्षैतिज योग द्वारा ही बनाई जा सकती है। हाँ यह बात अवश्य है कि अब पृथक-पृथक फर्मों के सीमांत लागत-वक्र भिन्न-भिन्न स्वरूप के हो सकते हैं और उनको जोड़ने में कुछ ज़्यादा सावधानी एवं प्रयास ...ी जरूरत

पड़ेगी। अल्पकालिक पूर्ति-वक्र का सामान्य स्वरूप की ओर उठता हुआ होता है, परंतु असमरूप साधन दक्षता के कारण इसका यह उठाव कुछ ज़्यादा तीखा हो जाता है।

उद्योग में प्रवेश तथा निर्गमन पर कोई बाधा न होने के कारण इसकी दीर्घकालिक पूर्ति-वक्र भी ऊपर की ओर उठता हुआ ही बनता है, परंतु उसका उठाव अल्पकालिक पूर्ति की अपेक्षा कम रहता है।

आगतों की कीमतों, तकनीकी ज्ञान, साधनों की गुणवत्ता, फर्मों पर कर आदि किसी भी उत्पादन एवं लागत संबंधों को प्रभावित करने वाले कारक के प्रभावस्वरूप उद्योग की अल्प एवं दीर्घकालिक पूर्ति-वक्रों में खिसकन **(shift)** आती है। उदाहरण के तौर पर, ईंधन और ऊर्जा की कीमतों में वृद्धि सभी चीज़ों की उत्पादन लागत को बढ़ा सकती है। फर्में लागत वृद्धि के कारण उत्पादन घटाने को बाध्य हो जाती है। अतः अल्पकालिक पूर्ति-वक्र बाईं ओर खिसक जाएगी। यह खिसकाव तब तक चलता रहेगा जब तक कि एक नया दीर्घकालिक संतुलन कायम नहीं हो जाता।

बोध प्रश्न 3

1) संक्षेप में बताइए कि बाहरी बचतें और अपबचतें क्या होती हैं? (50 शब्दों में)

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) एक जैसी लागत-वक्रों वाली फर्मों से बने उद्योग की पूर्ति-वक्र का आकार कैसा होगा? (50 शब्दों में)

....

....

....

....

....

3) पूर्ण प्रतियोगी उद्योग के आपूर्ति-वक्र की व्याख्या कीजिए, जबकि फर्मों के आकार और संख्या दोनों ही बदल रहे हों।

....

....

....

....

....

....

8.9 सारांश

इस इकाई में हमने बाज़ार के विभिन्न स्वरूप बताए हैं तथा शुद्ध प्रतियोगिता से भेद करते हुए पूर्ण प्रतियोगिता की व्याख्या की है। उसके लक्षण तथा शर्तें भी बताई गई हैं। पूर्ण प्रतियोगी फर्म कीमत स्वीकारक होती हैं। जहाँ सीमांत आगम वृद्धि सीमांत लागत के समान होता है वहीं फर्म का संतुलन होता है। हमने फर्म के अल्प और दीर्घकालिक संतुलन की व्याख्या भी की है। उद्योग का संतुलन भी समय-अवधि के परिप्रेक्ष्य में समझाया गया है तथा समय तो अल्पकाल एवं दीर्घकाल के सोपानों में बाँटकर यह व्याख्या की गई है।

पूर्ण प्रतियोगी उद्योग के अलग-अलग पहलुओं की चर्चा के आधार पर हम फर्म एवं उद्योग की अल्प एवं दीर्घकालिक पूर्ति-वक्रों का आकर निर्धारित कर पाए हैं।

8.10 शब्दावली

बाहरी बचतें और अपबचतें : उद्योग के प्रसार से यदि फर्म की उत्पादन लागत कम होती है तो इसे बाहरी बचतें कहा जाता है। इसके विपरीत, यदि लागत बढ़ती है तो यह अपबचत होगी। अपबचत के उदाहरणस्वरूप हम कह सकते हैं कि उद्योग के प्रसार के कारण साधन-विशेष की उपलब्ध कम हो सकती है या फिर परिवहन व्यवस्था में भीड़-भाड़ का दुष्प्रभाव भी लागतों पर पड़ सकता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

आंतरिक बचतें और अपबचतें : फर्म का उत्पादन बढ़ने पर स्थिर साधनों के बेहतर उपयोग, श्रम-विभाजन तथा विपणन में सुधार आदि से फर्म की लागतें कुछ कम हो जाती हैं। इनके विपरीत, स्थिर साधनों पर अत्यधिक भार पड़ने या स्थिर एवं चल साधनों के अनुपात में बदलाव के कारण कभी-कभी लागतें बढ़ भी जाती हैं। यह अपबचत होती है।

दीर्घकाल : वह कालावधि जिसमें फर्म के संयंत्र सहित सभी साधनों में परिवर्तन संभव होता है।

सीमांत लागत (MC) : एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन पर आई लागत।

सीमांत आगम (MR) : एक अतिरिक्त इकाई के विक्रय से मिली अतिरिक्त आगम।

अल्पकाल : वह अवधि जब कम से कम एक साधन तो अवश्य स्थिर रहता है।

8.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Koutsoyiannis, A. 1979. *Modern Microeconomics*, Macmillan; New York, Chapter 3, 4 & 5, pp. 67 to 163.

Salvatore, D. 1983. *Microeconomic Theory*, Schaum's Outline Series, Chapters 7, 8 and 10, pp. 124 to 174 and 196 to 220.

Samuelson, Paul A. and W.D. Nordhaus, 195. *Economics*, McGraw-Hill Book Company, Chapters 21 and 22, pp. 461 to 501.

Lipsey, Richard G. 1979. *An Introduction to Positive Economics*. English Language Book Society/Weidenfold and Nicoloon, Chapters 16, 17, 18 & 19, pp. 201 to 259.

Stronier, Alfred W. and Hague, Douglas C. 1986. *A Text Book of Economic Theory*, Chapters 5, 6 and 7, pp. 103 to 188.

8.11 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

बोध प्रश्न 1

1) भाग 8.3 देखिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) भाग 8.3 देखिए।

3) भाग 8.2 देखिए।

बोध प्रश्न 2

1) (क) (ख) (ग) (घ)

2) भा 8.5 देखिए।

3) भाग 8.6 देखिए।

4) भाग 8.5 देखिए।

बोध प्रश्न 3

1) भाग 8.7 देखिए।

2) भाग 8.8 देखिए।

3) उपभाग 8.8.1 देखिए।

इकाई 9 एकाधिकार का सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 एकाधिकार के कारण

9.3 एकाधिकारी की माँग एवं सीमान्त आगम

9.4 एकाधिकार में कीमत एवं उत्पादन निर्णय

9.5 एकाधिकारी फर्म का दीर्घकालिक संतुलन

9.6 एकाधिकारी का व्यवहार : कुछ प्रश्न

- 9.6.1 क्या एकाधिकारी को सदा लाभ होता है?
- 9.6.2 क्या एकाधिकारी को कीमत बढ़ाना लाभप्रद होता है?
- 9.6.3 क्या एकाधिकारी की आपूर्तिवक्र सुनिश्चित होती है?
- 9.6.4 क्या एकाधिकारी अपने संयंत्र की उपयुक्ततम क्षमता का प्रयोग कर अभीष्ट स्तर पर उत्पादन करता है?
- 9.6.5 क्या गिरती हुई अथवा स्थिर सीमांत लागतों की दशा में भी एकाधिकार संभव है?
- 9.6.6 क्या एकाधिकार अकुशल प्रकार का बाजार है?

9.7 एकाधिकार एवं कीमत विभेदन

- 9.7.1 कीमत विभेदन का स्तर
- 9.7.2 कीमत विभेदन कब संभव होता है
- 9.7.3 कीमत विभेदन एवं संतुलन का निर्धारण

9.8 सार्वजनिक एकाधिकार : संतुलन कीमत एवं उत्पादन

- 9.8.1 सीमांत लागत के अनुसार कीमत निर्धारण
- 9.8.2 औसत लागत के अनुसार कीमत निर्धारण
- 9.8.3 औसत लागत से अधिक अनुपात द्वारा कीमत निर्धारण

9.9 सारांश

9.10 शब्दावली

9.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.12 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

9.0 उद्देश्य

पिछली इकाई में हमने चरम प्रकार के बाज़ार अर्थात् पूर्ण प्रतियोगिता का अध्ययन किया था। इस इकाई में हम एकाधिकार बाज़ार का अध्ययन करेंगे। जिसमें केवल एक ही उत्पादक होता है। इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप कर सकेंगे :

- एकाधिकार की परिभाषा;
- एकाधिकार के पीछे कारणों की व्याख्या;
- एकाधिकारी अवस्था में माँग, लागतों, कीमत एवं उत्पादन के निर्धारण की व्याख्या;

- एकाधिकार के अंतर्गत कीमत विभेदन का विश्लेषण, और
- एक सार्वजनिक एकाधिकार की विशेषताएँ एवं कीमत निर्धारण विधियों की समीक्षा।

9.1 प्रस्तावना

सामान्यतः यदि किसी वस्तु की कोई स्थानापन्न वस्तु बाज़ार में नहीं हो और उसका केवल एक ही विक्रेता (उत्पादक) हो तो हम उस बाज़ार व्यवस्था को एकाधिकारी बाज़ार कहते हैं। इस एकमात्र उत्पादक पर किसी अन्य वस्तु की कीमत का उत्पादन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यह स्वयं भी किसी अन्य वस्तु की कीमत अथवा उत्पादन को प्रभावित नहीं कर पाता। इस परिभाषा में वस्तु के निकट स्थानापन्नों के नितान्त अभाव पर बहुत बल दिया गया है। अभिप्रायः है कि इस प्रकार की वस्तुएँ हैं ही नहीं जिनका इस वस्तु विशेष के स्थान पर प्रयोग किया जा सके। इसका कारण यही है कि आमतौर पर मनुष्य विभिन्न वस्तुओं/सेवाओं का कोई न कोई स्थानापन्न बना ही लेता हैं। अतः हम स्थानापन्नों उपलब्ध नहीं होने की बात करने की अपेक्षा उनका अस्तित्व नहीं होने की बात पर बल दे रहे हैं। उदाहरण के लिए यदि हम रेल द्वारा यात्रा करना चाहें तो भारतीय रेल हमारा एकमात्र विकल्प होगा। इस दृष्टि से भारतीय रेल एकाधिकारी उपक्रम हो जाता है। किन्तु यदि एक शहर से दूसरे शहर जाने की बात हो तो फिर रेल, सड़क, या फिर वायुयान तीनों ही साधन उपलब्ध हो सकते हैं। अतः भारतीय रेलों के स्थानापन्न परिवहन के माध्यम तो उपलब्ध हैं पर उन्हें निकट स्थानापन्न नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार भारतीय रेल हमारी एकाधिकारी फर्म की परिभाषा को एक उपयुक्त उदाहरण हैं। सामान्यतः किसी एकाधिकारी बाज़ार में ये शर्तें पूरी होती दिखाई पड़ती है (क) बाज़ार में क्रेताओं की संख्या तो बहुत बड़ी होती है पर उत्पादक विक्रेता केवल एक। (ख) उस उत्पादक का उत्पादन समरूप हो सकता है, और भेदीय भी है किन्तु इस उत्पादक के उत्पादनों का अन्य कोई निकट स्थानापन्न नहीं होता अथवा कोई स्पर्धा नहीं होती। इसका यह भी अभिप्राय होगा कि अन्य उत्पादकों की बनाई वस्तुओं एवं एकाधिकारी के उत्पादन के बीच माँग की तिरछी लोच बहुत ही कम होती हैं। (ग) बाज़ार में प्रवेश कर पाने की स्वतंत्रता नहीं होगी। कहीं कच्चे माल पर नियंत्रण जैसे प्राकृतिक कारण, कहीं कानूनी एवं संस्थागत कारक–जैसे कि पैटेण्ट अधिकार तो कहीं विशाल पैमाने पर उत्पादन की उपयुक्तता-दक्षता आदि के तकनीकी कारक इस प्रवेश स्वतंत्रता के मार्ग के बाधक हो जाते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

यदि उपर्युक्त तीनों शर्तें एक साथ पूरी हो तो बाज़ार का स्वरूप एकाधिकारी कहलाता है। पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति ही एकाधिकार भी एक काल्पनिक-सी व्यवस्था होती है इसके लिए सभी आवश्यक शर्तें शायद ही कहीं पूरी हो जाती हों।

9.2 एकाधिकार के कारण

एकाधिकार को बनाए रखने के लिए प्रतियोगियों को उद्योग से बाहर रखने का कोई न कोई तरीका होना ही चाहिए। ऐसे अनेक अवरोध होते हैं जैसे : (i) पैटेण्ट तथा सरकारी लाइसेन्स व्यवस्था; (ii) कच्चे माल के स्रोतों पर नियंत्रण; (iii) वस्तु के किसी ब्रांड आदि का बाज़ार में जमा होना; (iv) प्रतियोगियों को बाज़ार से बाहर रखने की दृष्टि से अपनाई गई कीमत निर्धारण नीति; (v) उद्योगों में प्रवेश के लिए बहुत पूँजी की आवश्यकता पड़ना; और (vi) बाज़ार का आकार। इन्हीं कारकों को हम तीन श्रेणियों में बाँट सकते हैं : (क) प्राकृतिक; (ख) कानूनी एवं संस्थागत; एवं (ग) तकनीकी। प्राकृतिक कारणों में से एकाधिकारी की किसी उत्पादन के लिए कच्चे माल के प्राकृतिक

स्रोतों पर नियंत्रण रखने की क्षमता प्रमुख होती है। वैसे आधुनिक काल में वैधानिक एवं संस्थागत तथा तकनीकी कारण एकाधिकारिता को बढ़ाने में अधिक योगदान दे रहे हैं। प्रवेश पर कानूनी प्रतिबंध तो स्पष्टतः ही वर्तमान उत्पादक को बाज़ार पर एकाधिकार प्रदान कर देता है। सरकार द्वारा लाइसेंस आदि के कानूनी अधिकार प्रदान करना भी अन्य उत्पादकों का इस उद्योग विशेष में प्रवेश रोक सकता है। शौधकर्ता का उत्पादन की तकनीक पर पैटेण्ट अधिकार भी कानूनी कारकों का ही एक उदाहरण है।

किसी बाज़ार में किसी एक ही व्यक्ति को विपणनाधिकार (exclusive franchise) किया जाना भी एकाधिकार की रचना में सहायक हो जाता है। तकनीकी अवरोधों में तो सबसे महत्त्वपूर्ण बड़े पैमाने पर उत्पादन करने की बाध्यता होता है यदि उत्पादक ऐसा नहीं करता, तो वह बड़े पैमाने की मितृव्ययताओं के माध्यम से न्यून लागत का लाभ नहीं उठा पाता। अतः यदि कोई नई फर्म बाज़ार में आना चाहती है तो उसे वर्तमान उत्पादक से कहीं अधिक कुशलतापूर्वक (कम लागत) पर उत्पादन कर पाने योग्य विशाल संयंत्र लगाना पड़ेगा। उस पर निवेश लागत भी बहुत भारी होगी किन्तु साथ ही यदि बाज़ार का आकार अपेक्षाकृत सीमित हो तो नई फर्म इस प्रकार का निर्णय ले पाने में बहुत ही हिचकिचाएगी। अतः वर्तमान उत्पादक का एकाधिकार बना रहता है। उन उद्योगों में, जहाँ बहुत विशाल क्षेत्र में पाइप लाइन या तारों का जाल बिछाना अनिवार्य हो, एकाधिकार आवश्यक बन जाता है। ऐसे उद्योगों के उदाहरण जल आपूर्ति, विद्युत आपूर्ति, तार और दूरभाष आदि हैं।

9.3 एकाधिकारी की माँग एवं सीमांत आगत

आपने इकाई 8 में देखा था कि पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म की कीमत तथा सीमांत आगम एक समान होते हैं क्योंकि प्रत्येक फर्म बाज़ार में निर्धारित कीमत को यथास्वरूप स्वीकार कर लेती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 9.1

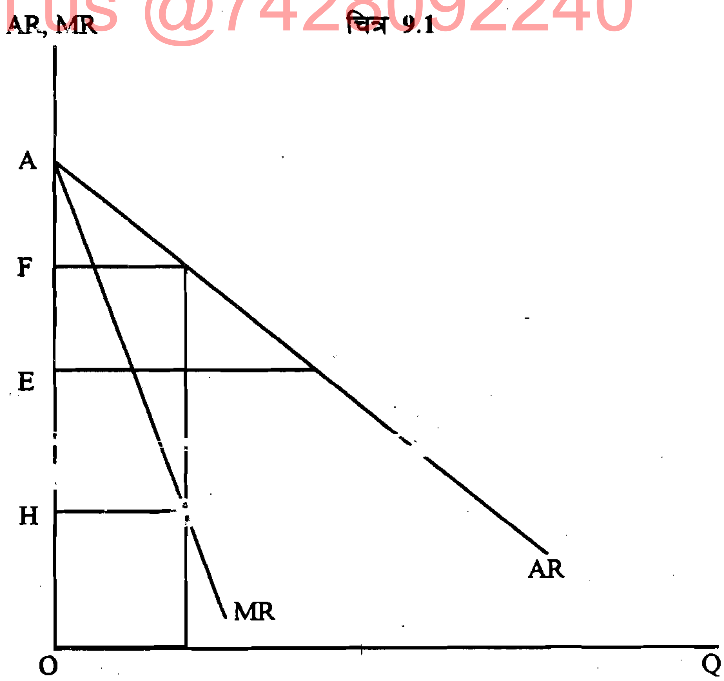

चित्र 9.1 में औसत आगम-AR तथा सीमांत आगम-MR का संबंध दर्शाया गया है। जहाँ माँग-वक्र सरल रेखा FD द्वारा दिखाई जा रही है। कीमत OF से कम होकर OE रह जाने पर सीमांत आगत OF से घटकर OH रह जाती है और FE = EH। किन्तु जब FE = EH हो अतः FH = 2FE, अर्थात् सीमांत आगम में औसत आगम (AR = P) से दुगुनी तेज़ी से परिवर्तन होता है।

किन्तु एकाधिकारी का माँग-वक्र तो उद्योग माँग-वक्र ही होता है। यहाँ केवल एक ही उत्पादक होने के कारण उत्पादक एवं उद्योग में कोई अन्तर नहीं रहता। गिफिन पदार्थों के अपवाद को छोड़कर बाज़ार माँग-वक्र तो सामान्यतः दाहिनी ओर ढलवाँ ही होते हैं। हम पहले ही इकाइयों 4 एवं 5 में माँग, सीमांत आगम तथा माँग की लोच का वर्णन कर चुके हैं। आइए एकाधिकार के संदर्भ में उन्हीं संकल्पनाओं पर पुनः विचार कर कुछ और उपयोगी जानकारी प्राप्त करें।

जब माँग-वक्र दाहिनी ओर ढलवाँ होता है तो सीमांत आगम-वक्र इससे नीचे रहता है। दूसरे शब्दों में सीमांत आगम में औसत आगम से अधिक तेज़ी से गिरावट आती है। यदि माँग-वक्र सरल रेखीय हो तो सीमांत उससे दुगुने ढाल वाली सरल रेखा ही होती है।

आइए एक बार फिर से औसत एवं सीमांत आगम तथा माँग की लोच **(e)** के संबंध पर चर्चा करें। $MR = AR - AR/e = AR(1-1/e)$ यदि $e>1$ तो कीमत कम होने पर कुल आगम में वृद्धि होती है। इसका कारण यही है कि सीमांत आगम कुल आगम में हुई वृद्धि ही है। दूसरी ओर यदि $e<1$ तो कीमत कम होने पर कुल आगम में गिरावट आएगी, यहाँ सीमांत आगम अपने ऋणात्मक हो जाएगी। यदि $e=1$ तो कुल आगम अपरिवर्तित रहती है अतः सीमांत आगम शून्य होनी चाहिए। अतः हम कह सकते हैं कि यदि $MR>0$ तो $e>1$, यदि $MR=0$ तो $e=1$, तथा यदि $MR<0$ तो $e=1$। यही बात चित्र 9.2 द्वारा दिखाई गई हैं।

चित्र 9.2

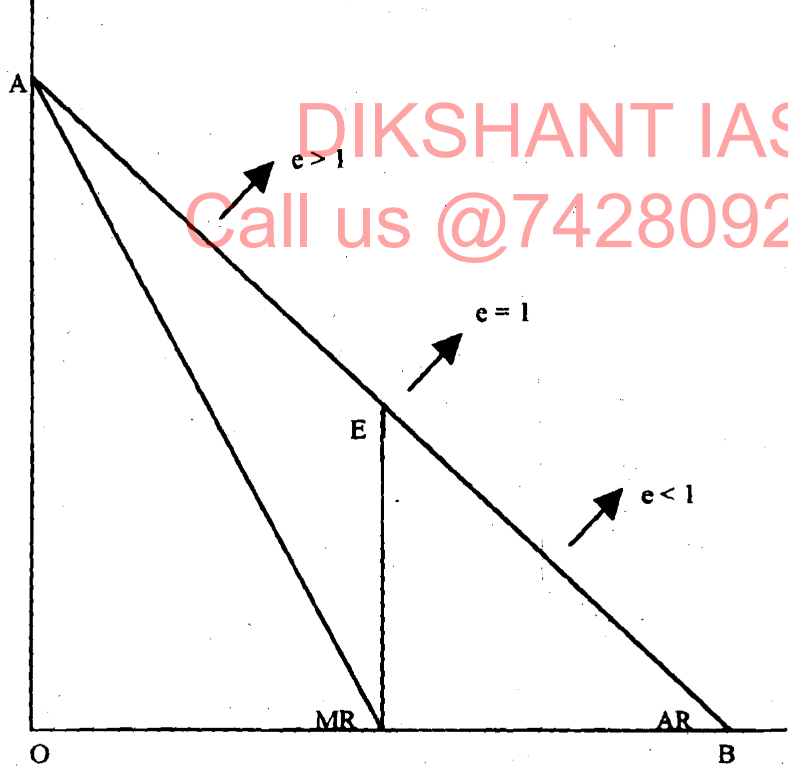

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 9.2 हम जानते ही हैं कि माँग-वक्र के किसी बिन्दु E पर माँग की लोच निचले हिस्से BE तथा ऊपर वाले हिस्से EA के अनुपात द्वारा ज्ञात होती है। यहाँ E पर e=1, E से B तक के बिन्दुओं पर e<1, तथा E से A तक के सभी बिन्दुओं पर e>1 होगी।

आइए अब उपर्युक्त सूत्र, $MR=AR(1-1/2)$ का प्रयोग करके देखें। मान लो कि $e=2$। अतः $MR=AR-AR/2$। अतः $MR>0$। यदि $e=1$, तो फिर $MR=AR-AR/1=0$। दूसरी और यदि $e=1/2$, तो फिर $MR=AR-AR/1/2 = AR-2AR = -AR$ अर्थात् $MR<0$।

9.4 एकाधिकार में कीमत एवं उत्पादन निर्णय

एकाधिकार में कीमत एवं उत्पादन संबंधी निर्णय पूर्ण प्रतियोगी फर्म की भाँति ही होते हैं। यहाँ एकाधिकारी दीर्घकाल में अधिकतम लाभ कमाने को उत्सुक होता है। अल्पकाल में वह कुल आगम एवं कुल लागत के अन्तर को अधिकतम बनाए रखना चाहता है– बस उसकी परिवर्ती लागतें पूरी होती रहें।

यह भी ध्यान देने की बात है कि एकाधिकारी ऐसे किसी बिन्दु पर उत्पादन नहीं करना चाहेगा जहाँ उसकी माँग लोच इकाई से कम रह जाती हो। चित्र 9.2 के संदर्भ में हुई चर्चा से यह तो सहज ही देखा जा सकता है $e<1$ होने पर $MR<0$ हो जाता है। अतः उत्पादन कम करने पर कुल आगम बढ़ेगा। दूसरी ओर, सीमांत लागत सदैव धनात्मक ही रहती है अतः उत्पादन कम करने पर कुल लागत में कमी आएगी। इस प्रकार $e<1$ बिन्दु पर उत्पादन घटाने (अथवा कीमत बढ़ाने) पर लाभ में वृद्धि होगी। अतः एकाधिकारी किसी ऐसे बिन्दु पर संतुलन नहीं पा सकता जहाँ माँग की लोच एक इकाई से कम हो।

दूसरे शब्दों में एकाधिकारी का संतुलन वहीं हो पाएगा जहाँ इसकी माँग की लोच एक से अधिक हो। लाभ हो अधिकतम करने के लिए प्रयत्नशील एकाधिकारी ऐसी किसी कीमत पर अपना उत्पादन नहीं बेच सकता जहाँ माँग लोचहीन हो। वह माँग-वक्र के लोचशील भाग में ही कार्य कर पाता है। अधिकतम लाभ कमाने की मान्यता के आधार पर एकाधिकारी का अल्पकालिक संतुलन उसी लागत एवं आगम-वक्रों द्वारा ज्ञात किया जा सकता है। पिछली इकाई में चर्चित संतुलन की सामान्य शर्त यहाँ भी लागू होती है। अतः एकाधिकारी का संतुलन वहीं होगा। जहाँ (क) फर्म की MR उसी MC के समान हो, तथा (ख) MC वक्र MR के नीचे की ओर से काट रही हो। अल्पकाल में सीमांत लागत-वक्र ही (संयंत्र के आकार आदि के निश्चित रहने पर) उत्पादन एवं लागतों से संबंध दर्शाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 9.3

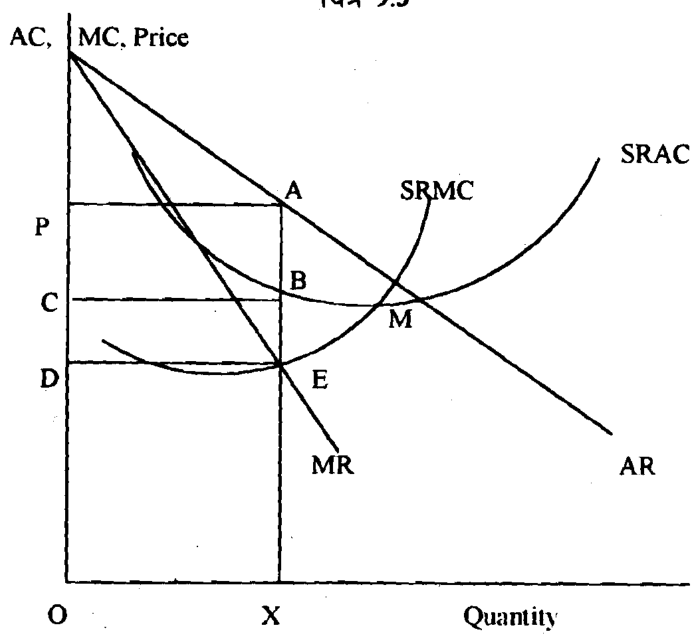

चित्र 9.3 : यहाँ हम एकाधिकारी के संतुलन का निर्धारण कर रहे हैं E बिन्दु पर उठती हुई SRMC गिरती हुई MR को नीचे से काट रही है। अतः फर्म MR उत्पादन करेगी। वह उस उत्पादन को उस अधिकतम कीमत OP पर बेचेगी जो उपभोक्ता चुकाने को तैयार हो सकते हैं।

चित्र 9.3 में माँग-वक्र AR, सीमांत आगम-MR, अल्पकालिक औसत लागत SRAC तथा अल्पकालिक सीमांत लागत SRMC द्वारा दिखाई गई हैं। बिन्दु E पर संतुलन की दोनों शर्तें, अर्थात् MR=SRMC तथा सीमांत लागत सीमांत आगम को नीचे से काटती हो, पूरी हो रही है। अतः यही उत्पादक का संतुलन बिन्दु होगा। यहाँ उत्पादक OX मात्रा का उत्पादन करेगा। इस उत्पादन को बाज़ार में OP कीमत पर बेचा जाएगा। ध्यान दें कि यह कीमत SRMC से अधिक हैं यही नहीं, OP>SRAC। अतः फर्म निश्चित रूप से मुनाफा कमा रही है। यदि उत्पादन बढ़ाने का प्रयास किया जाए तो लागत की वृद्धि आगम में वृद्धि से अधिक होगी। उससे लाभ में कमी आएगी। यदि फर्म OX से कम उत्पादन कर रही हो तो उसे उत्पादन वृद्धि करना लाभप्रद होगा क्योंकि वहाँ MR>MC अतः उत्पादन वृद्धि से लागत में हुई वृद्धि आगत की वृद्धि से कम रहेगी। अतः हम कह सकते हैं कि फर्म OX उत्पादन PABC क्षेत्र द्वारा निर्दिष्ट अधिकतम लाभ कमा रही है।

9.5 एकाधिकारी फर्म का दीर्घकालिक संतुलन

दीर्घकाल में एकाधिकारी इस बात पर भी विचार कर सकता है कि संयंत्र के आकार में परिवर्तन से वह और लाभ कमा सकता है या नहीं। अतः उसकी दीर्घकालिक सीमांत लागत-वक्र में संयंत्र के आकार सहित सभी कारकों के परिवर्तन के कारण कुल लागत में हुए परिवर्तन शामिल रहेंगे। इसी दीर्घकालिक सीमांत लागत (LRMC) एवं सीमांत आगत की समानता बिन्दु जहाँ LRMC इसी MR को नीचे से काटती हो पर ही उत्पादन का संतुलन उत्पादन संतुलन निर्धारित होगा। इस प्रकार के संतुलन में अल्पकालिक संतुलन भी निहित रहता है। फर्म यहाँ इस प्रकार के संयंत्र का चयन करती है कि AR>AC हो। यदि AR=AC तो फर्म तो सामान्य लाभ मिलता है। यदि AR>AC तो उसे अतिरिक्त लाभ मिल सकता है। दीर्घकाल में AR<AC जैसी अवस्था पैदा नहीं हो सकती। एक विशुद्ध एकाधिकार में तो किसी भी संभावित प्रतियोगी का बाज़ार में प्रवेश नहीं हो पाता। अतः ये आर्थिक अथवा अतिरिक्त लाभ बने ही रहते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 1

1) एकाधिकार से आप क्या समझते हैं? एकाधिकार के लिए किन शर्तों का पूरा होना अनिवार्य होता है?

....

....

....

....

....

2) वे कौन-सी शर्ते हैं जिनसे एकाधिकार की संभावना हो सकती हैं?

....

....

....

....

....

3) एकाधिकारी के उत्पादन की माँग-वक्र दाहिनी ओर ढलवाँ होती है, व्याख्या करें।

....

....

....

....

....

4) एकाधिकारी फर्म के औसत एवं सीमांत आगम-वक्रों के संबंध की व्याख्या करें।

....

....

....

....

....

5) एक रेखीय माँग-वक्र और उससे संबद्ध सीमांत आगम-वक्र बनाए। औसत, सीमांत आगम तथा माँग की लोच का संबंध बताने वाले सूत्र बताएँ। यह भी बताएँ कि ये माँग एवं सीमांत आगम-वक्र किस प्रकार इस सूत्र के निरूपित संबंध का निर्धारण करते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

....

6) कोई एकाधिकारी मनमाने ढंग से उत्पादन एवं कीमत दोनों का ठीक निर्धारण नहीं कर सकता। व्याख्या करें।

....

....

....

....

....

7) साधारण एकाधिकार में कीमत निर्धारण किस प्रकार होता है?

....

....

....

....

8) दीर्घकाल में एकाधिकारी फर्म किस प्रकार कीमत एवं उत्पादन निर्धारित करती है?

....

....

....

....

9.6 एकाधिकारी का व्यवहार : कुछ प्रश्न

एकाधिकारी फर्म के व्यवहार को लेकर आपके मन में कुछ प्रश्न उठ सकते हैं जैसे : (क) क्या एकाधिकारी सदा ही लाभ कमाता है? (ख) क्या एकाधिकारी को कीमत बढ़ाना लाभप्रद होता है? (ग) क्या एकाधिकारी की आपूर्ति-वक्र सुनिश्चित होती है? (घ) उद्योग में एकमात्र फर्म होने के नाते क्या एकाधिकारी अपने संयंत्र का अनुकूलतम प्रयोग कर इष्टतम स्तर पर उत्पादन करता है? (च) क्या गिरती हुई अथवा स्थिर सीमांत लागत के साथ एकाधिकार का निर्वाह हो सकता है? तथा (छ) क्या एकाधिकार व्यवस्था एक अकुशल बाज़ार प्रणाली होती है? आइए इन प्रश्नों पर बारी-बारी से विचार करें।

9.6.1 क्या एकाधिकारी को सदा लाभ होता है?

वास्तव में ऐसा मानने का कोई निश्चित आधार नहीं है। यदि माँग-वक्र का स्तर लागतों की अपेक्षा काफी नीचा हो तो एकाधिकारी को लाभ पाने के स्थान पर हानि उठाने की संभावना भी हो सकती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 9.4

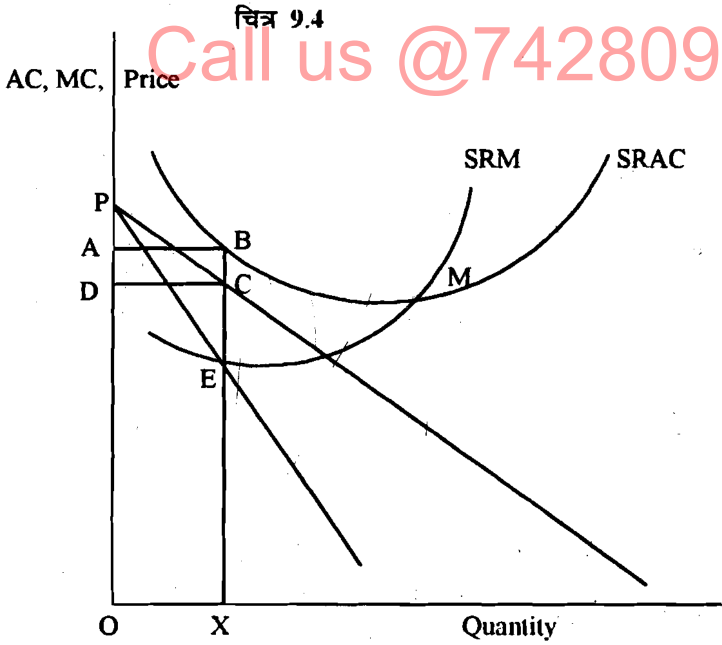

चित्र 9.4 एक ऐसी अवस्था दिखा रहा है जहाँ एकाधिकारी को अल्पकाल में कुछ हानि सहन करनी पड़ सकती है। जब तक उसकी औसत आगम (AR) उसकी परिवर्ती औसत लागत से अधिक रहे, वह उत्पादन करते रह सकता है। किन्तु यदि माँग-वक्र और नीचे खिसक जाए तो फिर फर्म को व्यवसाय बंद करना पड़ सकता है। यदि दीर्घकाल में फर्म अपने संयंत्र आदि में परिवर्तन कर बाज़ार की माँग के अनुरूप अपने आप को ढाल पाती है तो ठीक है, अन्यथा LRAC वक्र के AR से ऊपर बने रहने की दशा में उसे व्यवसाय बंद करना ही श्रेयस्कर रहेगा।

चित्र 9.4 को ध्यान से देखें। फर्म का SRAC का AR से ऊँचा है। अतः फ़र्म को भरे हुए क्षेत्र के समान हानि सहन करनी पड़ती है। दीर्घकाल तक ऐसी दशा बनी रहने पर तो फर्म को या तो अपने संयंत्र का आकार बदलना होगा अथवा व्यवसाय ही छोड़ना पड़ जाएगा। हाँ, अल्पकाल में वह जब तक व्यवसाय में बना रह सकता है जब तक कि उसकी परिवर्तनीय लागत पूरी होती रहती है। यदि संतुलन कीमत परिवर्ती लागतों से भी कम रह जाए तो फिर व्यवसाय बंद करने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं रहता। ध्यान दें पूर्ण प्रतियोगिता में भी ऐसी दशा में फर्म को बाज़ार छोड़ना पड़ जाता था।

9.6.2 क्या एकाधिकारी को कीमत बढ़ाना लाभप्रद होता है?

यदि एकाधिकारी उस क्षेत्र में उत्पादन कर रहा हो कि $e<1$ तो निश्चित रूप से कीमत वृद्धि (और उत्पादन में कटौती) लाभप्रद होगी। कारण सीधा सा है : $e<1$ का अर्थ है $MR \leq 0$ (अतः कीमत बढ़ने से जहाँ कुल आगम में वृद्धि होगी वहीं कुल लागत में कमी आएगी। क्योंकि सीमांत लागत तो वृद्धिमान होती हैं)।

अतः जब तक $e<1$, कीमत वृद्धि से एकाधिकारी को लाभ होगा। किन्तु यदि वह माँग-वक्र के लोचशील हिस्से में कार्य कर रहा हो तो $MR<0$ होगा। यहाँ कीमत वृद्धि से केवल कुल लागत ही नहीं कुल आगम में भी कमी होगी। अतः उसी दशा में कीमत वृद्धि लाभप्रद हो पाएगी जबकि कुल लागत की गिरावट कुल आगम की गिरावट से अधिक हो। अन्यथा फर्म को लाभ बढ़ाने के लिए कीमतें कम करना उचित प्रतीत होगा।

9.6.3 क्या एकाधिकारी की आपूर्तिवक्र सुनिश्चित होती है?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

एकाधिकारी द्वारा ग्राहक से ली गई कीमत उसकी सीमांत लागत के समान नहीं होती। इसी कारण आपूर्ति-वक्र का आकार सुनिश्चित नहीं रह पाता। यदि MC का स्तर ज्ञात हो (तो भी) माँग की कीमत लोच के आधार पर उत्पादक एक ही कीमत पर अलग-अलग मात्राएँ बेचने को तत्पर हो सकता है (पृथक्-पृथक् लोचशीलतापूर्ण संभव माँग-वक्रों के आधार पर तो वह एक ही मात्रा के लिए अलग-अलग कीमत वसूलने में भी सफल हो सकता है)। यही नहीं, कभी-कभी तो एक ही कीमत पर वह अलग-अलग लोभशील माँगों वाले बाज़ारों में अलग-अलग मात्रा बेचने का प्रयास भी कर सकता है। अतः कीमत एवं मात्रा का संबंध सुनिश्चित नहीं होगा—अर्थात् आपूर्ति-वक्र सुनिश्चित नहीं होगा।

9.6.4 क्या एकाधिकारी अपने संयंत्र की अनुकूलतम क्षमता का प्रयोग कर इष्टतम स्तर पर उत्पादन करता है?

एकाधिकारी का अनुकूलतम संयंत्र प्रयोग एवं इष्टतम उत्पादन कर पाना वस्तुतः उसकी लागत-वक्रों की तुलना में माँग-वक्र की स्थिति पर निर्भर करता है। एक बार लागत-वक्र की स्थिति निर्धारित हो जाने पर यदि माँग-वक्र ऊपर होगी तो क्षमता का अधिक प्रयोग संभव हो जाएगा— किन्तु माँग-वक्र के नीचे खिसकने के कारण क्षमता का अल्प प्रयोग हो पाएगा। किसी अन्य प्रतियोगी के बाज़ार प्रवेश की संभावना नहीं होने के कारण भी एकाधिकारी अनुकूलतम स्तर पर संयंत्र का प्रयोग करने को खास इच्छुक नहीं होता। उसके लिए दीर्घकालिक औसत लागत-वक्र (LAC) के निम्नतम बिन्दु पर उत्पादन करना अनिवार्य नहीं होता वस्तुतः संयंत्र का आकार एवं प्रयोग का स्तर, दोनों ही बाज़ार में माँग की दशाओं पर निर्भर करते हैं। बाज़ार की दशाओं के आधार पर वह अपने न्यूनतम लागत बिन्दु पर उत्पादन कर सकता है, गिरती हुई औसत लागत की दशा में कार्य कर सकता है तथा आवश्यक होने पर बढ़ती हुई औसत लागत की दशा में भी काम करते रह सकता है।

बाज़ार में प्रवेश अवरोधों के कारण ही एकाधिकार में वे बाज़ार शक्तियाँ कार्य नहीं कर पाती जिनके कारण कोई उत्पादक दीर्घकाल में पूर्ण क्षमता उत्पादन करने को बाध्य होता है। वह पूर्ण क्षमता, उससे कम यहाँ तक कि अधिक भी उत्पादन कर सकता है सब कुछ बाज़ार के आकार– अर्थात् बाज़ार में माँग की दशाओं पर निर्भर है।

9.6.5 क्या गिरती हुई अथवा स्थिर सीमांत लागतों की दशा में भी एकाधिकार संभव है?

हम जानते हैं कि गिरती हुई अथवा स्थिर सीमांत लागतों की दशा में पूर्ण प्रतियोगिता तो संभव नहीं होती। उसमें तो संतुलन बिन्दु पर सीमांत लागत का वृद्धिमान होना अनिवार्य होता है। किन्तु अपूर्ण प्रतियोगिता में यह आवश्यक नहीं रहता। एकाधिकारी की सीमांत लागत वृद्धिमान, स्थिर या फिर ह्रासमान भी हो सकती है– बस संतुलन अवस्था में उसका गिरती हुई आगम के समान होना तथा सीमांत आगम को नीचे को काटना जरूरी है। ऐसी ही एक संभावना हम चित्र 9.5 में दिखा रहे हैं। यहाँ हमने एकाधिकारी की सीमांत लागत स्थिर (तथा इसीलिए) और सीमांत लागत के समान आती हैं।

चित्र 9.5

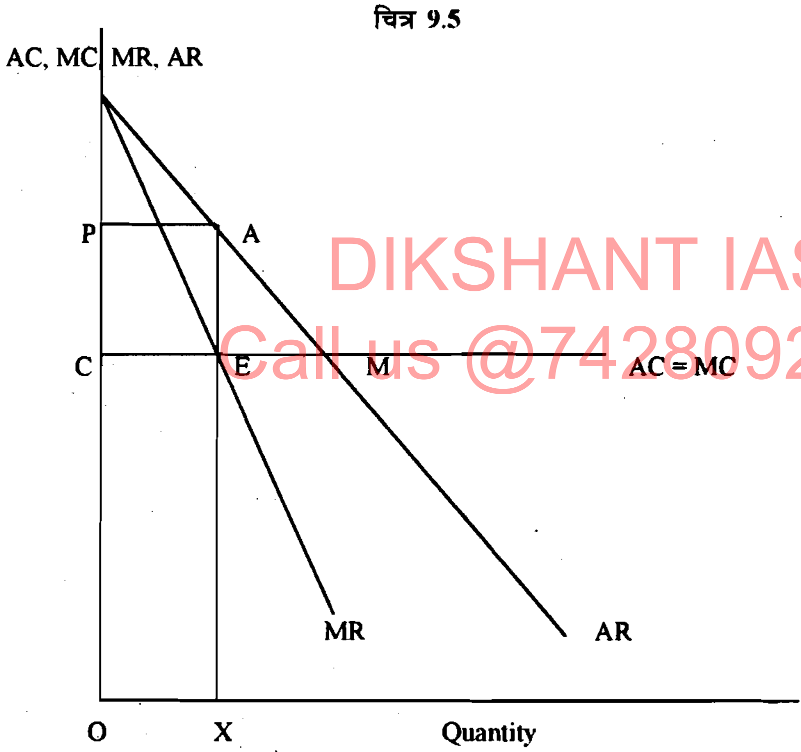

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 9.5 एक विशेष अवस्था का चित्रण कर रहा है। यहाँ फर्म की MC=AC= स्थिर रहती हैं। फिर भी उसका संतुलन बिन्दु E पर होगा क्योंकि इस बिन्दु पर MC वक्र AR को नीचे की ओर से काटती है। फर्म OX उत्पादन कर उसे OP(=AR) कीमत पर बेचती है।

एकाधिकारी का संतुलन गिरती सीमांत लागत पर भी संभव हो सकता है बस यहाँ भी सीमांत लागत का सीमांत आगम को नीचे से काटना ही अनिवार्य होता है। यह सुनिश्चित करने का एकमात्र तरीका यही है कि सीमांत लागत के गिरावट की दर सीमांत आगम की गिरावट दर से कम हो। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि एकाधिकारी का संतुलन वृद्धिमान, स्थिर एवं ह्रासमान तीनों ही प्रकार की सीमांत लागत दशाओं में संभव है। केवल एक अवस्था ऐसी होती है जहाँ साम्य का निर्धारण नहीं हो पाता वह दशा है : जबकि सीमांत लागत में गिरावट की दर सीमांत आगम की गिरावट से अधिक तीव्र हो।

9.6.6 क्या एकाधिकार बाज़ार एक अकुशल बाज़ार है?

वास्तव में एकाधिकार बाज़ार व्यवस्था में अकुशलता ही पाई जाती है। सीमांत लागत से अधिक कीमत वसूल कर पाने की फर्म की एकाधिकारी शक्ति से उसे होने वाले लाभ इसी कारण उपभोक्ता को हुई बचत हानि, में कमी से कम रहता है। इस बचत की हानि तथा उत्पादक को मिले अतिरिक्त लाभ का अंतर को ही समाज पर एकाधिकार का निबल भार (Deadweight loss) का नाम दिया जाता है :

चित्र 9.6

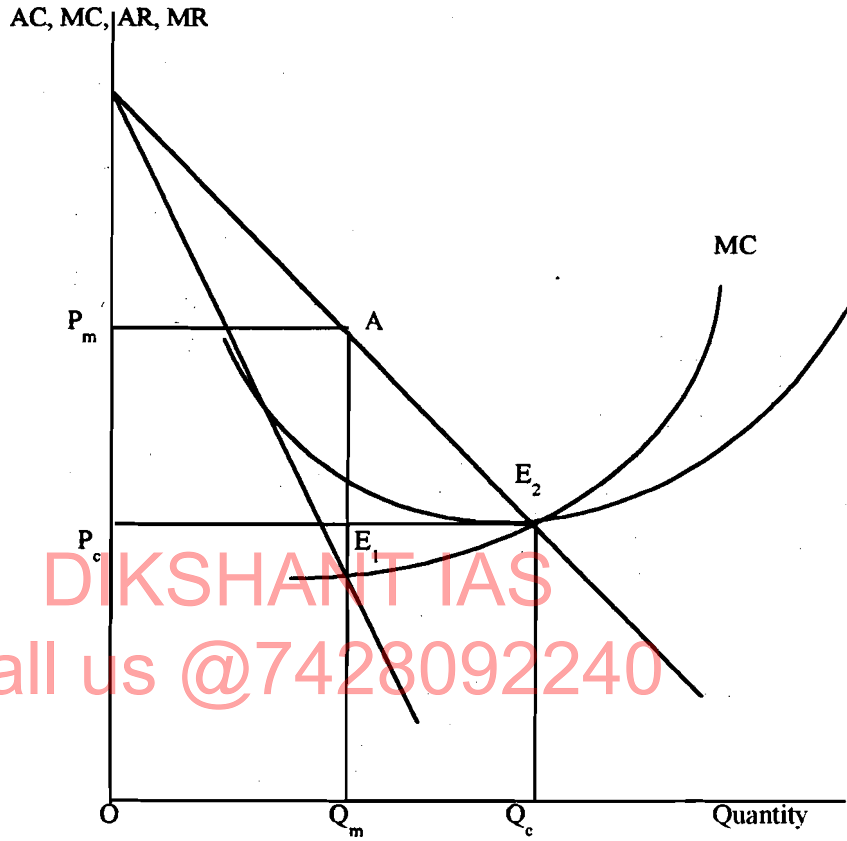

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 9.6 को गौर से देखिए। एकाधिकारी कीमत P_m तथा पूर्ण प्रतियोगी कीमत Pc द्वारा दिखाई गई है (क्योंकि प्रतियोगिता में P=AR=MR=MC) एकाधिकारी द्वारा अधिक कीमत वसूली के कारण उपभोक्ता की बचत में कमी आती है। यह कमी आयत A तथा त्रिभुज B के योग के समान है। दूसरी ओर, उत्पादक को मिला अतिरिक्त लाभ तो आयत A तथा त्रिभुज C के अंतर के समान ही रह जाता है। अतः उत्पादक का अतिरिक्त लाभ उपभोक्ता की हानि से कहीं कम ही रहता है। यह कमी त्रिभुज B तथा C के योग के समान होती है। यही एकाधिकार के कारण समाज पर पड़ा निवल भार होता है।

9.7 एकाधिकार एवं कीमत विभेदन

कीमत विभेदन का अभिप्राय है समग्र वस्तु इकाइयों के लिए अलग-अलग कीमत वसूल पाना। सामान्यतः यदि कोई फर्म अपना उत्पादन एक ही समय में अलग-अलग कीमतों पर बेचती है तो हम कहते हैं कि फर्म कीमत विभेदन कर रही हैं। यदि फर्म द्वारा अलग-अलग कीमतों पर बेची जा रही इकाइयाँ समरूप नहीं हो तो फिर कीमत विभेदन का अर्थ होगा कि फर्म द्वारा उगाही गई कीमतों में अंतर उन इकाइयों की उत्पादन लागत के अंतरों के अनुरूप नहीं है। हम तीन प्रकार या कोटि के कीमत विभेदनों की चर्चा करेंगे। इनमें से तीसरा प्रकार सबसे अधिक चर्चित रहता है– इसमें लागतों

में अंतर नहीं होते हुए भी व्यापारी अलग-अलग बाज़ारों में अलग-अलग कीमतें वसूलकर पाता हैं। यह सब केवल एकाधिकार में ही संभव होता है।

9.7.1 कीमत विभेदन की कोटि या स्तर (Degree)

एकाधिकारी कहाँ तक अपने उत्पादन को अलग-अलग दामों पर बेच पाने में सफल हो सकता है वस्तुतः इसकी सीमाओं का निर्धारण कीमत विभेदन की कोटि या उसके स्तर द्वारा ही हो जाता है:

प्रथम कोटि का कीमत विभेदन

इस प्रकार के कीमत विभेदन में समरूप उत्पादन के लिए एकाधिकारी द्वारा उगाही जाने वाली कीमतों के अधिकतम स्तर का निर्धारण होता है। उत्पादक यह जानता है कि कोई उपभोक्ता वस्तु की किसी इकाई के लिए अधिकतम कितनी कीमत चुकाने को तैयार हो सकता है। वह प्रत्येक अतिरिक्त इकाई के लिए वही उच्चतम कीमत तय करता है जिस पर कोई उपभोक्ता उसे खरीदने को तैयार हो जाए। इस प्रकार एकाधिकारी प्रत्येक उपभोक्ता से उसकी समस्त बचत वसूल कर लेता है। फर्म अपने उत्पादन की माँग-वक्र पर ही कार्य करती है तथा माँग-वक्र के नीचे का समग्र क्षेत्रफल ही उसकी समग्र आगम के समान होता है। इस विशेष अवस्था में उसकी माँग-वक्र– अर्थात् औसत आगत-वक्र ही सीमांत आगम-वक्र भी बन जाती है। उत्पादन का स्तर वहाँ निर्धारित होता है जहाँ उसकी सीमांत लागत-वक्र माँग-वक्र को नीचे से काटती हैं।

द्वितीय कोटि का कीमत विभेदन

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस अवस्था में उत्पादक अपने उत्पादन की इकाइयों के समूहों का समूहवार (blockwise) विक्रय करता है। यह पहले समूह का किसी कीमत पर तो अगले समूह का विक्रय अलग-अलग कीमतों पर करता है। इस प्रकार यह उपभोक्ता की बचत का एक अच्छा खासा हिस्सा प्राप्त करने में सफल रहता है, पर प्रथम कोटि के कीमत विभेदन की भाँति सारी बचत नहीं प्राप्त कर पाता। सार्वजनिक सेवा उपक्रमों द्वारा सामान्यतः इसी प्रकार से अपनी आपूर्तियों की कीमतें निर्धारित होती है। उदाहरण के लिए विद्युत तथा जल बोर्ड आदि एक निश्चित स्तर तक उपभोग करने वालों से न्यूनतम दर–उससे आगे कुछ उच्च दर तथा उस दूसरे स्तर से भी ज़्यादा उपभोग पर उच्चतम दर से कीमत वसूल करते हैं।

तृतीय कोटि का कीमत विभेदन

यहाँ तो एकाधिकारी अपने ग्राहकों के अलग-अलग समूहों से अलग-अलग कीमतें वसूलता है। यह प्रत्येक समूह को एक पृथक् बाज़ार मानकर व्यवहार करता है। यह सबसे अधिक प्रचलित प्रकार का कीमत विभेदन होता है हम इसकी अच्छे विस्तार से विवेचना कर रहे हैं।

9.7.2 कीमत विभेदन कब संभव होता है

आइए इन शर्तों पर विचार करें जिनके पूरा होने पर एकाधिकारी के लिए अलग-अलग कीमतों पर अपना समरूप उत्पादन बेच पाना संभव हो पाता है। तृतीय कोटि का कीमत विभेदन के लिए मूलभूत शर्त तो यही है कि एक उपभोक्ता किसी अन्य को एकाधिकारी से खरीदी गई सामग्री बेच नहीं पाए। इस विभेदन का आधार उपभोक्ताओं की अपनी विलक्षणताएँ, वस्तु की प्रकृति, स्थानों में फासले या फिर कर अथवा शुल्कों आदि द्वारा निर्मित बाधाएँ हो सकती हैं। संभव है कि बाज़ार के एक विभाग में खरीदारी करने वालों को किसी अन्य विभाग में दाम कम होने की जानकारी ही

नहीं हो। यह स्पष्टतः संपूर्ण बाज़ार में जानकारी के प्रवाह के अवरुद्ध होने का मामला होगा। कभी-कभी उपभोक्ताओं को यह भ्रम भी हो जाता है कि यदि कीमत ज्यादा है तो वस्तु की गुणवत्ता भी अधिक होगी। वस्तु की अपनी प्रकृति का भी महत्त्व रहता है। इस संदर्भ में प्रत्यक्ष सेवाओं के उदाहरणों पर गौर किया जा सकता है। किसी डाक्टर या फिर शिक्षक आदि की विशेष सेवाओं को इसी प्रकार के विभेदन का आधार माना जा सकता है। यहाँ कम कीमत पर ये सेवाएँ पाने वाले किसी अन्य व्यक्ति को, जिसे सामान्यतः अधिक कीमत देनी पड़ती हो, इनका पुनः विक्रय नहीं हो सकता। कई बार एकाधिकारी अपने बाज़ार के विभागों के बीच भौगोलिक या कृत्रिम सीमाओं अथवा बाधाओं का लाभ उठाकर भी अलग-अलग कीमतें वसूलने में सफल हो जाता है। अन्ततः कीमत विभेदन की सफलता इसी बात पर निर्भर रहती है कि कोई अन्य व्यक्ति एकाधिकारी का माल उसके ग्राहकों को उससे कम कीमत पर नहीं बेच पाए।

कीमत विभेदन कब लाभकारी होता है?

उपर्युक्त शर्तों के पूरा होने पर एकाधिकारी कीमत विभेदन कर सकता है। पर, क्या उसे इससे कुछ लाभ भी होगा? वास्तव में कीमत विभेदन से व्यापारी को फायदा तभी संभव है जबकि अलग-अलग बाज़ारों में माँग की लोच के मान में अंतर हों, अन्यथा नहीं। इस शर्त की कुद और व्याख्या करने की आवश्यकता है :

मान लो कि एक एकाधिकारी ने अपने बाज़ार को दो विभागों या उप बाज़ारों में बाँट रखा है। ये हैं बाज़ार A तथा बाज़ार B। उसके पास इनमें बेचने के लिए वस्तु की एक निश्चित मात्रा उपलब्ध है। अतः प्रश्न यह है उस मात्रा को इन दो बाज़ारों में किस प्रकार बाँटा जाए कि व्यापारी की कुल आगम अधिकतम हो सके? इसके लिए आवश्यक शर्त यही होगी कि उत्पादक दोनों बाज़ारों से समान सीमांत आगम पाने का प्रयास करें अर्थात् वह इस प्रकार वस्तु की बिक्री करें कि $MR_A=MR_B$।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अब यह बात सहज रूप से समझ आ सकती है कि यदि दोनों बाज़ारों में माँग की लोच एक समान हो तो फिर कीमत विभेदन का कोई लाभ नहीं होगा। अभीष्ट आबंटन के लिए $MR_A=MR_B$ की शर्त पूरी करना आवश्यक होता है। साथ ही सीमांत आगम एवं कीमतों के बीच संबंध की रचना में माँग की लोच का भी महत्त्व होता है : यथा $MR_A=P_A(1-1/e_A)$ तथा $MR_B=P_B\ (1-1/e_B)$ यदि $MR_A=MR_B$ तथा दोनों बाज़ारों में माँग की लोच भी समान हों, अर्थात् $e_A=e_B$ तो फिर वहाँ वसूली गई कीमतें, $P_A=P_B$ भी समान हो जाती हैं। दूसरे शब्दों में कीमत विभेदन तभी व्यावहारिक एवं प्रभावी हो पाएगा जब कि दोनों बाज़ारों की लोच में समानता नहीं हो।

दूसरी ओर, यदि $e_A<e_B$ तो बाज़ार A में कीमत वृद्धि से माँग में गिरावट कम ही रहती है और कीमत कम करने से बाज़ार B में माँग काफी बढ़ सकती है। इस प्रकार कुल आगम की वृद्धि लागतों की वृद्धि से अधिक होगी—अर्थात् फर्म को अधिक लाभ होगा। अतः एकाधिकारी बाज़ार A से वस्तु की कुछ मात्रा को बाज़ार B में भेज देगा। बाज़ार B में बिक्री में आई कमी बाज़ार B में हुई वृद्धि से कम ही रहेगी। बाज़ार A में कम आपूर्ति होने के कारण वहाँ कीमत में वृद्धि होगी। बाज़ार A में आपूर्ति की वृद्धि के कारण कीमत में कुछ मामूली कमी हो सकती है।

सीमांत अगम तथा कीमत स्तर का संबंध निरूपित करने वाला सूत्र, $MR=P(1-1/e)$ इस परिणाम को और स्पष्ट कर सकता है। हम जानते हैं कि $MR_A=MR_B$ अतः $P_A(1-1/e_A)$। अतः यदि e_A, e_B तो P_A का मान P_B से कम होना अनिवार्य होगा। अर्थात् एकाधिकारी कम लोचशील माँग वाले बाज़ार में अधिक एवं अधिक लोचशील माँग वाले बाज़ार में कम कीमत पर माल बेचकर अधिकतम

लाभ की अनिवार्य शर्त, $MR_A=MR_B$ की पूर्ति कर सकता है। इस शर्त के पूरा होने के लिए यह भी आवश्यक है कि :

क) दोनों बाज़ारों ed>1 हो तथा

ख) उसे दोनों ही बाज़ारों में माल बेचना लाभप्रद भी हो अर्थात् दोनों ही जगहों MR, MC से अधिक हो–आगत वृद्धि की दर लागत वृद्धि से अधिक हो।

9.7.3 कीमत विभेदन एवं संतुलन का निर्धारण

विभेदकारी एकाधिकारी फर्म के कुल लाभ को अधिकतम करने वाले उत्पादन स्तर का निर्धारण उसके समग्र सीमांत आगम एवं समग्र सीमांत लागत की समानता द्वारा ही होता है। इस विचार को हम चित्र 9.7 द्वारा समझा रहे हैं। फर्म की दोनों बाज़ारों, A, B में औसत आगत एवं सीमांत आगत-वक्र क्रमशः AR_A, AR_B तथा MR_A एवं MR_B हैं। कुल माँग-वक्र D वस्तुतः AR_A तथा AR_B का क्षैतिज योग ही है। इसी प्रकार फर्म की कुल सीमांत आगत दोनों बाज़ारों की सीमांत आगतों, MR_A तथा MR_B का योग होगी। फर्म की सीमांत लागत MC है।

चित्र 9.7

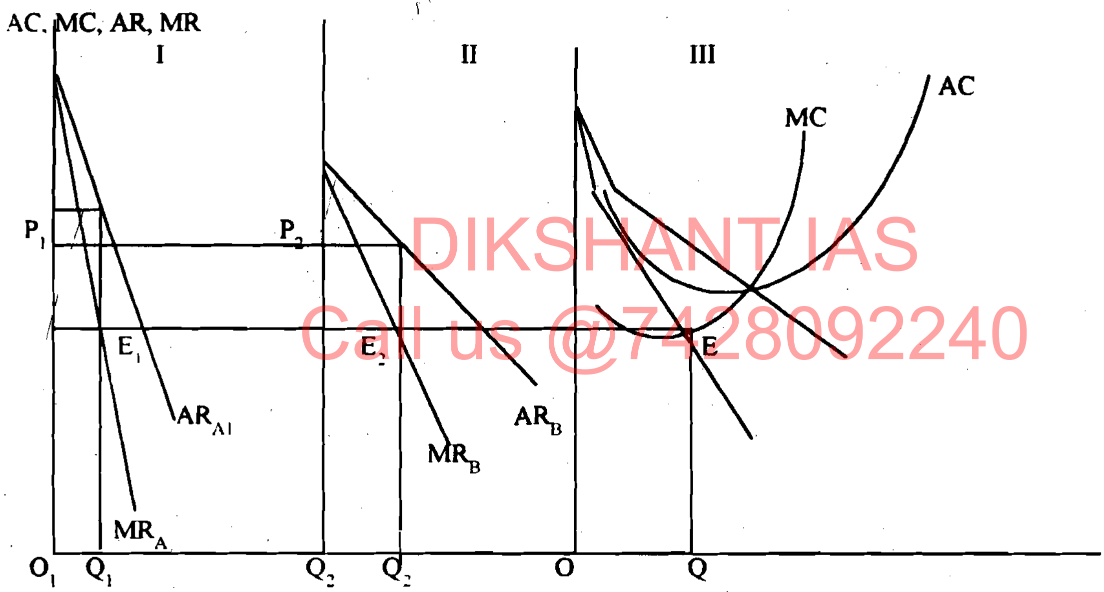

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 9.7 के खंड I में हम बाज़ार A की माँग एवं सीमांत आगत-वक्र D_A तथा MR_A दिखा रहे हैं। खंड II में बाज़ार B की माँग एवं सीमांत आगत दिखाई गई हैं। खंड III में कुल माँग $D=D_A+D_B$ और उसे जुड़ा सीमांत आगत-वक्र AMR दिखाया गया हैं। फर्म की सीमांत आगत MC हैं। MC द्वारा AMR को E पर काटने से ही संतुलन उत्पादन स्तर OQ का निर्धारण होता है। अधिकतम लाभ कमाने के लिए फर्म दोनों बाज़ारों में सीमांत आगत को इस संतुलन MC-MR के समान करेगी। अतः बाज़ार A में MR_A=MC द्वारा OQ_A मात्रा बेचने का निर्णय लिया जाता है। इसके अनुरूप कीमत OP_B होगी। इसी प्रकार बाज़ार B में OQ_B मात्रा को OP_B कीमत पर बेचा जाएगा। ध्यान दें $OQA<OQ_B$ और $OPA>OP_B$। अर्थात् कम लोचशील माँग-वक्र के बाज़ार में कम मात्रा ऊँचे दामों बेची जाती है तथा अधिक लोचशील माँग वाले बाज़ार में अपेक्षाकृत अधिक मात्रा कम कीमत पर बेची जाती है।

लाभ का स्तर अधिकतम करने के लिए फर्म को दो प्रकार के फैसले करने होंगे :

क) कुल कितना उत्पादन करें? तथा

ख) किस बाज़ार में कितना माल किस दाम पर बेचें?

फर्म के समग्र उत्पादन का निर्धारण तो MC=AMR द्वारा हो जाता है। किन्तु दोनों बाज़ारों में माँग की लोचशीलता में अंतर हैं। इसलिए लाभ अधिकतम करने की शर्त होगी $MR_A=MR_B=AMR=MC$। उत्पादक अधिक लोचशील माँग वाले बाज़ार के ग्राहकों से ज्यादा ऊँची कीमत वसूल करने में सफल हो जाएगा।

बोध प्रश्न 2

1) कीमत विभेदन क्या होता है?

....

....

....

....

....

2) कीमत विभेदन के लिए आवश्यक शर्तें बताइए।

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3) एक अधिकतम लाभ को उत्सुक एकाधिकारी दो बाज़ारों को अपने उत्पादन का आबंटन किस प्रकार करना है? वह अलग-अलग कीमत वसूल करने में किस प्रकार सफल रहता है?

....

....

....

....

....

4) कीमत विभेदन एवं माँग की लोच का संबंध समझाइए।

....

....

....

....

....

9.8 सार्वजनिक एकाधिकार : संतुलन कीमत एवं उत्पादन

अभी तक हम ऐसे निजी क्षेत्र के एकाधिकारी के विषय में चर्चा कर रहे थे जो अपने आर्थिक एवं तकनीकी अवरोधों को ध्यान में रखते हुए अधिकतम लाभ कमाने के उद्देश्य से कार्य कर रहा था। इस भाग में हम किसी सार्वजनिक एकाधिकारी फर्म के व्यवहार का अध्ययन करेंगे जिसकी रचना सार्वजनिक हितों की रक्षा के लिए सरकार द्वारा की गई हो। इस फर्म का उद्देश्य कम कीमत पर अधिक उत्पादन उपलब्ध कराकर जनसामान्य के कल्याण का सवंर्धन होता है। इसका लक्ष्य अधिक आगम या लाभ का उपार्जन नहीं होता। स्वाभाविक ही है कि ऐसी फर्म के उपयुक्त कीमत एवं उत्पादन स्तरों का आकलन अधिकतम लाभ के लिए उपयुक्त नियमों के निर्देशानुसार नहीं हो जाता। यहाँ तो अधिकतम कल्याण का विचार ही उपयोगी सिद्ध होता हैं।

सार्वजनिक एकाधिकारी उपक्रम के लिए कीमत निर्धारण की दो वैकल्पिक नीतियाँ हो सकती हैं। इन्हें हम औसत लागत आधारित कीमत निर्धारण तथा सीमांत लागत आधारित निर्धारण कहते हैं। वस्तुतः सरकार इन्हीं दो विधियों द्वारा निजी एकाधिकारी की कीमतों पर अंकुश रखने के लिए भी उपयुक्त दिशा-निर्देश प्राप्त कर सकती है यह सामान्य कराधान की नीतियों से भिन्न है।

एकाधिकारी अपना उत्पादन सीमित कर कीमतों को बढ़ा पाने में समर्थ रहता है। इसी कारण उनके व्यवहार का नियमन आवश्यक हो जाता है। यदि उनके व्यवहार पर अंकुश नहीं लगाए जाते तो वे अतिलाभ कमाते हैं, इससे आय की विषमताओं में वृद्धि होती है, उपभोक्ताओं का शोषण होता है तथा संसाधनों के आबंटन में विकृतियाँ घर कर जाती है। इन सभी से उपभोक्ताओं के कल्याण स्तर पर दुष्प्रभाव पड़ता है। अतः एकाधिकार नियमन का मुख्य उद्देश्य तो उपभोक्ताओं के कल्याण स्तर बढ़ाना ही होता है या फिर एकाधिकारी द्वारा वसूल की जा रही कीमतों के अधिकतम स्तर का निर्धारण किया जा सकता है। इस इकाई में हम कीमत निर्धारण द्वारा एकाधिकार के नियमन पर चर्चा करेंगे। औसत एवं सीमांत लागतों पर आधारित कीमत निर्धारण से जुड़े मुद्दों पर हम सार्वजनिक उपक्रम कीमत नीतियों एवं निजी एकाधिकार के नियमन, दोनों ही संदर्भों में चर्चा कर रहे हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

9.8.1 सीमांत लागत के अनुसार कीमत निर्धारण

हमने देखा है कि सामान्यतः एकाधिकारी सीमांत लागत से अधिक, कीमत निश्चित करता है P, P=MC चित्र 9.6 की एक बार फिर याद करें। एकाधिकारी OQ_M उत्पादन OP_M कीमत पर बेचता है। यहाँ सरकार अधिकतम कीमत का निर्धारण उसकी सीमांत लागत के समान कर सकती है। फिर तो उत्पादन का स्तर बढ़कर OQ_C तक पहुँच जाएगा और कीमत कम होकर OP_C ही रह जाएगी। यही कीमत संसाधनों के आबंटन में कुशलता भी आती है क्योंकि यह उत्पादन की सीमांत लागत के समान होती है। इससे उपभोक्ताओं का कल्याण स्तर भी संबंधित होता है। अनियंत्रित एकाधिकार की अवस्था में उपभोक्ता की बचत त्रिभुज AP_ME_1 के समान होता पर नियमन के बाद इसका स्तर AP_CE_2 हो जाता है।

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि सीमांत लागत के आधार पर निर्धारित कीमत में भी एकाधिकारी असामान्य लाभ कमाते रह सकता है। अभी भी उसकी औसत आगम औसत लागत से अधिक ही रहती है। ऐसी अवस्था को हम उत्पादन क्षमता बाधित **(capacity constrained)** अवस्था का नाम देते हैं अर्थात् यहाँ वस्तु की माँग फर्म की उत्पादन क्षमता से बहुत अधिक होती है। दूसरी ओर यदि फर्म की उत्पादन क्षमता माँग से अधिक हो तो फिर फर्म को प्रत्यक्षतः हानि भी उठानी पड़ सकती

है। उस दशा में उसकी औसत लागत सीमांत लागत से अधिक ही रहती है। फिर भी फर्म उसी स्थिति में सीमांत लागत आधारित कीमत पर उत्पादन कर पाएगी जबकि उसे सरकार से सहायता प्राप्त हो रही हो (आपको ध्यान होगा कि उत्पादन क्षमता से हमारा तात्पर्य उत्पादन के उस स्तर से होता है जहाँ फर्म की औसत लागत न्यूनतम होती है। अतः हानि वाली अवस्था वही होगी जहाँ माँग-वक्र फर्म की औसत वक्र से नीचे आ जाए या उसे स्पर्श करें)।

9.8.2 औसत लागत के अनुसार कीमत निर्धारण

सार्वजनिक नीति का उद्देश्य एकाधिकार का नियमन या फिर न्यूनतम संभव कीमत पर अधिकतम उत्पादन उपलब्ध कराना हो सकता है। यहाँ दूसरी विधि, अर्थात् औसत लागत के आधार पर कीमत निर्धारण का अनुसरण भी हो सकता है (यदि कीमत इस प्रकार तय की जाए कि $AR=AC$ तो फर्म केवल सामान्य लाभ कमा पाएगी। क्षमता बाधित अवस्था में भी औसत लागत आधारित कीमत सीमांत लागत आधारित कीमत से कम होगी। इस प्रकार उपभोक्ता की बचत और अधिक हो पाएगा। किन्तु उत्पादन क्षमता की अधिकता की दशा में $P=AC$ का अनुपालन करने पर कीमत का स्तर ऊँचा हो जाएगा, फर्म को कोई प्रत्यक्ष हानि नहीं होगी। सीमांत लागत के आधार पर कीमत निर्धारण द्वारा ही पूर्ण आर्थिक कुशलता और अधिकतम सामाजिक कल्याण प्राप्त होता है लेकिन अप्रयुक्त क्षमता (excess capacity) और प्राकृतिक एकाधिकार (इस प्रकार की बाज़ार व्यवस्थाओं में कीमत निर्धारण विस्तृत आप प्रबंधकीय अर्थशास्त्र विषय के अंतर्गत करेंगे।) की दशा में तो $AC>AC$ होने के कारण सीमांत लागत कीमत निर्धारण में फर्म को व्यवसाय में बनाए रखने के लिए सरकारी आर्थिक सहायता (subsidies) की व्यवस्था अनिवार्य हो जाती हैं।

9.8.3 औसत लागत से अधिक निर्धारण (Mark Up Pricing)

DIKSHANT IAS
Call Us @7428092240

कई बार ऐसा समझा जाता है कि वास्तविक व्यवहार में उत्पादक सीमांत आगम एवं लागत विश्लेषण द्वारा कीमत निर्धारण नहीं करते। वे एक वैकल्पिक विधि का प्रयोग करते हैं जिसमें औसत लागत–जमा (average cost plus) सिद्धांत अपनाया जाता है।

दूसरे शब्दों में फर्म इस प्रकार कीमत का निर्धारण करती है कि उसकी सारी औसत लागतें पूरी हो सकें और उसे अतिरिक्त लाभ भी मिलें। अर्थात् $P=AVC+GPM$ यहाँ P कीमत, AVC औसत परिवर्ती लागत तथा GPM सकल लाभ मार्जिन के समान होता है। GPM में औसत स्थिर लागत एवं कुछ अतिरिक्त लाभ मार्जिन सम्मिलित होते हैं।

हमारी इस टिप्पणी का उद्देश्य यही दर्शाना है कि दीर्घकाल में तो औसत लागत तथा सीमांत लागत दोनों विधियों से हमें वही अधिकतम लाभ उपार्जन वाली अवस्था ही प्राप्त हो जाती है। औसत लागत के आधार पर कीमत निर्धारण में दीर्घकालिक संतुलन में माँग की लोच का आकलन निहित रहता है। अधिकतम लाभ की शर्त है $MC=MR$। हम पहले ही देख चुके हैं कि $MR=P(1-1/e)$। अतः यदि $MC>0$ तो अधिकतम लाभ के लिए MR भी धनात्मक होगा। दूसरे शब्दों में $e>1$, यदि उपयुक्त उत्पादन स्तर पर AVC स्थिर हो–अर्थात् $AVC=MC$। संतुलन के लिए आवश्यक होगा कि $AVC=MR$।

अतः $AVC=P\,(1-1/e)=P\{e-1/e)$।

दूसरे शब्दों में $P=AVC\{e/e-1\}$। यदि $e>1$ तो हम $e/e-1$ को $1+k$ मान सकते हैं जहाँ $k>0$। अतः कीमत $P=AVC\{e/(e-1)\}$। यह $kAVC$ की कुल लाभ मार्जिन है। यदि फर्म AVC का 20 प्रतिशत लाभ मार्जिन तय करती है तो AVC। अतः $e/e-1=1.20$। इस दशा में e का मान

6 होगा। इस प्रकार कुल लाभ मार्जिन का निर्धारण माँग की कीमत लोचशीलता के आकलन के समान बन जाता है। यह सीमांत विश्लेषण के परोक्ष प्रयोग के समान भी है। अतः हम कह सकते हैं कि जब कोई व्यवसायी औसत लागत में कुछ जोड़कर कीमत निर्धारण करता है तो वह वास्तव में अपने उत्पादन की माँग की कीमत लोच का आकलन ही कर रहा होता है।

बोध प्रश्न 3

1) सार्वजनिक एकाधिकारी फर्म निजी एकाधिकारी से किस प्रकार भिन्न होती है? सार्वजनिक एकाधिकारी अपने उत्पादन एवं कीमत निर्धारण किस प्रकार करता है?

....

....

....

....

....

....

2) औसत आगत से अधिक अनुपात द्वारा कीमत निर्धारण पर एक टिप्पणी लिखिए।

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

9.9 सारांश

हमने इस इकाई का आरंभ बाज़ार के एकाधिकार को जन्म देने वाले कारकों की व्याख्या से किया था। कहीं-कहीं टेक्नोलॉज़ी का विकास भी एकाधिकार का जनक हो सकता है, पर सामान्यतः तो वह किसी न किसी कानूनी प्रावधान जैसे (पैटेण्ट) का परिणाम ही होता है अथवा कानून द्वारा प्रत्यक्षतः किसी सेवा की आपूर्ति के लिए एकाधिकारी उपक्रम भी हो सकता है। फिर हमने एकाधिकारी की माँग एवं सीमांत आगम-वक्रों के स्वरूप की विवेचना की और इसके संतुलन की व्याख्या की है। इसके बाद चर्चा हुई एकाधिकार से जुड़े मुद्दों की। क्या एकाधिकारी सदा लाभ ही कमाता है, अथवा क्या कीमत वृद्धि सदैव लाभप्रद रहती है? उसकी आपूर्ति-वक्र का निरूपण एवं उत्पादन में दक्षता आदि अन्य बातों पर भी ध्यान दिया गया है।

एकाधिकारी के व्यवहार का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण पहलु है कीमत विभेदन। इस प्रकार हमने बड़े विस्तार से 9.7 में चर्चा की है। फिर हमने एक सार्वजनिक एकाधिकार में कीमत निर्धारण की दो वैकल्पिक नीतियों पर बातचीत करते हुए यह भी स्पष्ट किया है कि इन्हीं तर्कों के आधार पर निजी एकाधिकार पर कीमत नियंत्रण लागू करने के निर्णय भी लिए जा सकते हैं। इकाई के अन्त में हमने लागत के अधिक अनुपात के रूप में कीमत निर्धारण की व्याख्या करते हुए उसे वस्तु की माँग की लोच के आकलन के समतुल्य ठहराया है।

9.10 शब्दावली

एकाधिकार	:	बाज़ार में किसी वस्तु के एक ही उत्पादक/विक्रेता का होना।
प्राकृतिक एकाधिकार	:	किसी प्राकृतिक संसाधन पर स्वामित्व से जन्मा एकाधिकार।
कानूनी एकाधिकार	:	पैटेण्ट आदि की कानूनी व्यवस्था पर आधारित एकाधिकार।
टैक्नोलॉज़िकल एकाधिकार	:	टैक्नोलॉज़ी का ऐसा स्वरूप जिससे बहुत विशाल पैमाने पर उत्पादन ही एकमात्र विकल्प होता है। इस प्रकार बाज़ार में एक से अधिक उत्पादकों की आवश्यकता ही नहीं रहती।
कीमत विभेदन	:	अलग-अलग उपभोक्ताओं/बाज़ारों में अलग-अलग कीमत वसूल कर पाने की एकाधिकारी की क्षमता।
सार्वजनिक एकाधिकार	:	किसी वस्तु या सेवा को अधिक मात्रा में उचित दामों पर उपलब्ध करने के उद्देश्य से सरकार द्वारा स्थापित एकाधिकार।
सीमांत लागत के अनुसार कीमत निर्धारण	:	वह कीमत निर्धारण नीति जहाँ वस्तु की सीमांत लागत उगाहने का प्रयास होता है।
औसत लागत के अनुसार कीमत निर्धारण	:	इस कीमत निर्धारण नीति में औसत लागत की उगाही क्रेताओं से की जाती है।
औसत लागत से अधिक कीमत निर्धारक	:	इस नीति में औसत परिवर्ती लागत के अनुपात का ही उसमें जोड़कर कीमत निर्धारित होती है। इसमें फर्म की स्थिर लागतों की उगाही के साथ उसके लिए कुछ लाभ की व्यवस्था भी हो जाती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

9.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Nicholson, W. (1995) : *Intermediate Microeconomics and its Applications*, Dryden Press, Harcourt Brace, New York.

Pindyck, R.S. and Rubinfold (D.L. (1995): *Microeconomics*, Prentice Hall of India, New Delhi.

Varian, Hal (1995) : *Intermediate Microeconomics*, W.W. Norten and Co., New Yourk.

9.12 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

बोध प्रश्न 1

1) अपने उत्तर के लिए भाग 9.1, 9.2 पढ़ें।

2) अपने उत्तर के लिए भाग 9.1, 9.2 पढ़ें।

3) अपने उत्तर के लिए भाग 9.3 पढ़ें।

4) अपने उत्तर के लिए भाग 9.3 पढ़ें।

5) अपने उत्तर के लिए भाग 9.3 पढ़ें।

6) अपने उत्तर के लिए भाग 9.4 पढ़ें।

7) अपने उत्तर के लिए भाग 9.3, 9.4 पढ़ें।

8) अपने उत्तर के लिए भाग 9.5 पढ़ें।

बोध प्रश्न 2

1) अपने उत्तर के लिए भाग 9.7 पढ़ें।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) अपने उत्तर के लिए पभाग 9.7.2 पढ़ें।

3) अपने उत्तर के लिए पभाग 9.7.2 पढ़ें।

बोध प्रश्न 3

1) अपने उत्तर के लिए उपभाग 9.8.1, 9.8.2 पढ़ें।

2) अपने उत्तर के लिए उपभाग 9.8.3 पढ़ें।

इकाई 10 एकाधिकारी प्रतियोगिता

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 एकाधिकारी प्रतियोगिता का अर्थ
10.3 उत्पाद-विभेदन
10.4 एकाधिकारी प्रतियोगी फर्मों के कीमत एवं उत्पादन संबंधी निर्णय
10.4.1 एकाधिकारी प्रतियोगी फर्मों के उत्पादों की माँग-वक्रों का स्वरूप
10.4.2 एकाधिकारी प्रतियोगी फर्म का अल्पकालिक संतुलन
10.4.3 एकाधिकारी प्रतियोगी फर्म का दीर्घकालिक संतुलन
10.5 एकाधिकारी प्रतियोगिता तथा पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना
10.6 एकाधिकारी प्रतियोगिता के आर्थिक प्रभाव
10.7 एकाधिकारी फर्म में नीति निर्धारक तत्त्व
10.7.1 एक नीतिगत तत्त्व के रूप में विक्रय लागतें
10.8 एकाधिकारी-प्रतियोगिता : एक सिंहावलोकन
10.9 अल्पाधिकारी व्यवस्था
10.10 सारांश
10.11 शब्दावली
10.12 कुछ उपयोगी पुस्तक
10.13 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

10.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम आपको पूर्ण प्रतियोगिता एवं एकाधिकार के बीच के दो बाज़ार रूपों से परिचित करा रहे हैं। इनमें से एक में फर्मों की संख्या काफी बड़ी होती है पर दूसरे में यह संख्या सीमित रह जाती है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित कर सकेंगे :

- एकाधिकारी प्रतियोगिता की परिभाषा;
- उत्पाद-विभेदन अवधारणा की व्याख्या;
- एकाधिकारी प्रतियोगी फर्मों के निर्णय-आधार की व्याख्या;
- एकाधिकारी प्रतियोगिता और पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना;
- एकाधिकारी प्रतियोगिता के आर्थिक प्रभावों का विश्लेषण; तथा
- अल्पाधिकार की परिभाषा और एकाधिकारी प्रतियोगिता से इसका भेद।

10.1 प्रस्तावना

पिछली दो इकाइयों (इकाई संख्या 8 एवं 9) में हमने पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकारी बाज़ारों में कीमत एवं उत्पादन स्तर के निर्धारण संबंधी प्रक्रिया का अध्ययन किया है। ये दोनों बाज़ार

महत्त्वपूर्ण होते हुए भी वास्तविकता से काफी दूर प्रतीत होते हैं। बाज़ार की पूर्ण जानकारी से सम्पन्न समरूप उत्पादन करने वाले उत्पादकों की एक बहुत विशाल संख्या वाला पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार शायद ही कभी देखने में आता हो। इसी प्रकार, एकाधिकार यानि एकमात्र ऐसे उत्पादक का मिलना भी सहज सुलभ नहीं होता जिसके उत्पादन की कोई निकट स्थानापन्न वस्तु नहीं हो। आधुनिक अर्थव्यवस्था में बीच की स्थिति, जिसे अपूर्ण अथवा एकाधिकारी प्रतियोगिता कहा जाता है, अधिक पाई जाती है। एकाधिकारी प्रतियोगिता में पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के अतिरिक्त शेष सभी बाज़ार सम्मिलित हो जाते हैं।

आज के विश्व में कोई फर्म न तो पूरी तरह कीमत निर्धारक (price maker) हो सकती है, जिसका कीमत पर पूर्ण नियंत्रण हो और जिसे किसी तरह के प्रतियोगियों की कोई चिन्ता न हो, तथा न ही कोई फर्म पूरी तरह से कीमत स्वीकारक (price taker) हो सकती है, जो कीमत को बिल्कुल ही प्रभावित नहीं कर सके। एकाधिकारी प्रतियोगिता में पूर्ण प्रतियोगिता एवं शुद्ध एकाधिकार दोनों के तत्त्व पाए जाते हैं और यह बाज़ार वास्तविकता के नज़दीक है। एकाधिकारी प्रतियोगिता फर्म को कुछ एकाधिकार प्राप्त होता है लेकिन साथ-साथ उसे स्थानापन्न वस्तुओं का उत्पादन करने वाली फर्मों से कड़ी स्पर्धा या प्रतियोगिता का सामना भी अवश्य करना पड़ता है।

एकाधिकारी प्रतियोगिता में फर्म विज्ञापन, बिक्री प्रोत्साहन तथा उत्पाद विकास आदि पर व्यय करती है। अतः इस बाज़ार में केवल कीमत-उत्पादन निर्णय ही सभी कुछ नहीं होते। बल्कि इसमें नीति से जुड़े विज्ञापन, बिक्री-प्रोत्साहन, उत्पाद-विकास तथा गुणवत्ता परिवर्तन आदि को भी ध्यान में रखा जाता है।

अपूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत हम अनेक प्रकार की बाज़ार संरचनाओं को सम्मिलित कर सकते हैं। मोटे तौर पर ये दो प्रकार के होते हैं :

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1) अल्पाधिकार यानि थोड़े से उत्पादकों के बीच प्रतियोगिता;

2) बहुत से उत्पादकों में प्रतियोगिता– बड़े उत्पाद समूह का व्यवहार– इसी को सामान्यतः एकाधिकारी प्रतियोगिता का नाम भी दिया जाता है।

अल्पाधिकार में कुछ थोड़ी-सी फर्में एक वस्तु का उत्पादन करती हैं। इस बाज़ार की सबसे बड़ी खूबी यह है कि फर्मों के बीच कीमत एवं अन्य निर्णयों में परस्पर निर्भरता होती है। एक फर्म के उत्पादन की माँग उसकी अपनी कीमत पर ही नहीं बल्कि अन्य प्रतियोगिताओं की कीमतों पर भी निर्भर करती है। एक फर्म की नीतियों के परिवर्तन अन्य फर्मों को प्रभावित करते हैं जिससे ये फर्में प्रतिक्रिया करती हैं। अतः अन्य फर्मों की प्रतिक्रियाओं को ध्यान में रखे बिना किसी फर्म के उत्पादन की माँग पर कीमत या किसी अन्य चर के प्रभाव के विषय में कुछ भी कह पाना संभव नहीं रहता। अलग-अलग फर्मों की अलग-अलग प्रतिक्रियाएँ हो सकती हैं। अतः अल्पाधिकार के भी अलग-अलग रूप होते हैं। अल्पाधिकार का कोई एक विशेष सिद्धांत नहीं होता।

लेकिन इस प्रकार की परस्पर निर्भरता एकाधिकारिक प्रतियोगिता में नहीं होती। इस एकाधिकारी प्रतियोगिता में बड़ी संख्या में उत्पादक होते हैं। अतः एक फर्म के कीमत या अन्य नीतिगत निर्णयों का अन्य फर्मों पर बहुत महत्त्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ता। अतः फर्में प्रतिक्रिया नहीं करतीं। इसीलिए, इस बाज़ार में फर्म कीमत और उत्पादन संबंधी निर्णय स्वतंत्र रूप से लेती हैं। इस इकाई में हम ऐसे बाज़ार के बारे में चर्चा करेंगे।

10.2 एकाधिकारी प्रतियोगिता का अर्थ

एकाधिकारी प्रतियोगिता बाज़ार की संरचना का यह स्वरूप है जिसमें फर्मों की एक बड़ी संख्या बहुत-कुछ मिलते-जुलते उत्पादों का उत्पादन करती हैं। ये उत्पाद समरूप नहीं होते। अलग-अलग फर्म द्वारा बनाई गई वही चीज़ भी किसी न किसी तरह से भिन्न अवश्य रहती है। एकाधिकारी प्रतियोगिता की मान्यताएँ इकाई 8 में चर्चित शुद्ध प्रतियोगिता जैसी ही हैं– बस यहाँ पर समरूप उत्पादन की मान्यता को नकार दिया जाता है। ये मान्यताएँ इस प्रकार हैं–

1) क्रेताओं और विक्रेताओं की बड़ी संख्या;
2) विभेदीकृत यानि निकट स्थानापन्न उत्पाद;
3) फर्मों को बाज़ार में प्रवेश करने और बाज़ार से बाहर जाने की स्वतंत्रता;
4) बाज़ार का पूर्ण ज्ञान।
5) सभी फर्मों की माँग एवं लागत एक-समान होना।

1) **क्रेताओं और विक्रेताओं की बड़ी संख्या :** इस बाज़ार में वस्तु के क्रेताओं और विक्रेताओं की बड़ी संख्या होती है। उत्पादकों की संख्या इतनी बड़ी होती है कि कोई भी एक उत्पादक कीमत, उत्पादन स्तर आदि विषयक निर्णय अपने प्रतिस्पर्धियों की प्रतिक्रिया की परवाह किए बिना ही कर सकता है। इसका अर्थ है कि किसी एक उत्पादक के किसी भी निर्णय का अन्य उत्पादकों पर कोई महत्त्वपूर्ण प्रभाव नहीं होता। इसी कारण से वे इसके निर्णय पर कोई प्रतिक्रिया करना आवश्यक नहीं समझते। बाज़ार का यह व्यवहार, पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार से भिन्न नहीं है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) **विभेदीकृत उत्पाद यानि एक-दूसरे के निकट स्थानापन्न उत्पाद :** एकाधिकारी प्रतियोगिता में एक उत्पादक का उत्पाद अन्य फर्मों के उत्पादों से अलग तो होता है परंतु सभी उत्पादकों के उत्पाद एक-दूसरे के निकट प्रतिस्थानापन्न होते हैं। उत्पाद-विभेद का यह अर्थ भी लगाया जा सकता है कि उपभोक्ता अलग-अलग फर्मों की उत्पादित (उसी) वस्तुओं का वरीयता-क्रम बना सकते हैं। यह वरीयता-क्रम वस्तुओं के बाहरी रूप-रंग अथवा स्वरूप पर आधारित हो सकते हैं या फिर उपभोक्ताओं की इन वस्तुओं के प्रति अनुभूति पर। इस बारे में हम इकाई में आगे भाग 10.3 में और अधिक विस्तार चर्चा करेंगे।

3) **बाज़ार में प्रवेश करने और बाज़ार से बाहर जाने की स्वतंत्रता :** कोई भी नया उत्पादक बाज़ार में जब चाहे प्रवेश कर सकता है। इसी तरह से यदि वर्तमान विक्रेता काम बंद करना या बाज़ार छोड़ना चाहे तो उसपर भी किसी तरह का कोई प्रतिबंध नहीं होता।

4) **बाज़ार का पूर्ण ज्ञान :** प्रत्येक फर्म माँग-वक्र तथा लागत-वक्रों के विषय में पूर्ण एवं सुनिश्चित जानकारी रखती है।

5) **सभी फर्मों की माँग एवं लागत-वक्रों का एक-समान होना :** चैम्बरलिन का विचार था कि किसी भी बाज़ार में 'काम कर' रहीं– अर्थात् किसी वस्तु का 'उत्पादन-कर' रहीं– सभी फर्मों की माँग एवं लागत-वक्र भी एक जैसी ही होंगी। इस मान्यता के दो महत्त्वपूर्ण परिणाम होते हैं– (क) उपभोक्ताओं की वरीयताएँ सभी विक्रेताओं पर समान रूप से वितरित रहती हैं; तथा (ख) वस्तुओं के बीच अंतर होते हुए भी लागतों के बीच कोई अंतर नहीं होता। इस मान्यता को अर्थशास्त्रियों ने अतिशयोक्तिपूर्ण ही माना है।

10.3 उत्पाद-विभेदन

पूर्ण प्रतियोगिता के विपरीत प्रतियोगिता में उत्पाद समरूपता का प्रभाव रहता है। सामान्यतः उपभोक्ता किसी विशेष विक्रेता या कंपनी के ब्राण्ड को अधिक पसंद करते हैं। उत्पाद-विभेदन का यही अर्थ है कि खरीदार या उपभोक्ता पृथक-पृथक उत्पादकों द्वारा बाज़ार में प्रस्तुत वस्तुओं के बीच स्पष्ट अंतर करते हुए अपनी खरीदारी करते हैं। उदाहरण के रूप में उपभोक्ता किसी विशेष ब्रांड के टूथपेस्ट को पसंद करते हैं। अतः उसके लिए ज़्यादा कीमत चुकाने को भी तैयार रहते हैं। दूसरे शब्दों में, एकाधिकारी प्रतियोगिता में उपभोक्ता अलग-अलग उत्पादकों द्वारा बनाई गई उसी वस्तु को भी पृथक-पृथक या भिन्न-भिन्न वस्तुएँ मानते हैं। इस 'विशेषता' के कारण फर्मों को कुछ सीमा तक एकाधिकारी शक्ति प्राप्त हो जाती है।

उत्पाद विभेद कई बार 'वास्तविक' भी हो सकता है– अर्थात् विभिन्न उत्पादकों की वस्तुओं में कुछ न कुछ अंतर भी हो सकते हैं। ये अंतर वस्तु के उत्पादन में प्रयुक्त सामग्री, कलात्मकता या फिर उसके टिकाऊपन से जुड़े हुए हो सकते हैं। वस्तुओं के आकार, रंग, रूप, बनावट तथा उसकी प्रस्तुति के अंतर भी महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं। कई बार विक्रेता के कार्य-स्थान, विनम्र व्यवहार, सेवा-तत्परता, या फिर उधार आदि की सुविधा भी उत्पादन विभेदन का आधार हो सकता है।

उत्पाद विभेद काल्पनिक भी हो सकता है। इस प्रकार का विभेद विज्ञापन, पैकिंग में अंतर, डिज़ाइन में अंतर या फिर वस्तु के बाण्ड आदि के आधार पर उपभोक्ता के मन में डाला जाता है। उत्पाद विभेदन का उद्देश्य ही यह होता है कि किसी उत्पादक द्वारा वस्तु को उपभोक्ता 'कुछ खास चीज़' या विशिष्ट वस्तु मानने लगे। यही खास पहचान उसे अपेक्षाकृत ऊँची कीमत चुकाने को भी प्रोत्साहित करती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

वस्तु-विभेदन के प्रभाव के कारण ही कुछ उपभोक्ता अन्य फर्मों की अपेक्षा किसी विशेष फर्म के उत्पादन को बेहतर मानने लगते हैं। प्रत्येक फर्म अपने उत्पादन के विशिष्ट स्वरूप के कारण एक सीमित एकाधिकारी बन जाती हैं। दूसरे शब्दों में वे किसी सीमा तक 'कीमत निर्धारक' बन जाते हैं। पर यह बात भी सत्य है कि एकाधिकारी प्रतियोगी फर्म अपने प्रतिद्वंद्वियों के उत्पादन की कड़ी स्पर्धा का सामना करती है। कीमत पर नियंत्रण बहुत सीमित ही रहता है। इन फर्मों के उत्पादन के बीच कीमत लोच ऊँची तो रहती है लेकिन पूर्ण प्रतियोगिता की तरह अनंत नहीं होती।

एकाधिकारी प्रतियोगिता में उत्पाद विभेद के कारण फर्मों के बीच ग़ैर-कीमत स्पर्धा **(non-price competition)** का व्यापक आधार तैयार हो जाता है। फर्म कुछ सीमा तक तो कीमत के आधार पर प्रतियोगिता करती हैं और कुछ सीमा तक उत्पाद की गुणवत्ता एवं उपभोक्ता सेवा प्रदान करने आदि के मामले में भी परस्पर होड़ करती है। एक फर्म अपने उत्पाद की बिक्री बढ़ाने के लिए तीन रणनीतियाँ अपना सकती है। प्रथम तो फर्म अपनी कीमत में परिवर्तन ला सकती है। यह कीमत-रणनीति होगी। दूसरे, फर्म उत्पादन के स्वरूप को बदलकर उत्पाद-परिवर्तन रणनीति अपना सकती है। तीसरे, फर्म अपनी बिक्री संवर्द्धन तकनीकों का प्रयोग कर संवर्द्धनात्मक स्पर्धा का सहारा ले सकती है। जहाँ पहली रणनीति में फर्म अपनी माँग-वक्र पर ही घूमती रहती है वहीं शेष दोनों रणनीतियाँ उसकी माँग-वक्र को ही दाहिनी ओर खिसकाने का प्रयास कहलाती हैं।

बोध प्रश्न 1

1) एकाधिकारी प्रतियोगिता की परिभाषा दीजिए। इसके कुछ उदाहरण भी दीजिए।

....

....

....

....

....

2) एकाधिकारी प्रतियोगिता के प्रतियोगी एवं एकाधिकारी तत्त्वों की पृथक-पृथक व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

....

3) पूर्ण प्रतियोगिता की इन मान्यताओं में से कौन-सी मान्यता एकाधिकारी प्रतियोगिता पर लागू नहीं होती ?

क) बहुत से क्रेता एवं विक्रेता

ख) उद्योग में निर्बंध प्रवेश एवं निकासी

ग) समरूप उत्पादन

घ) 'क' तथा 'ख' दोनों

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

4) एकाधिकारी प्रतियोगिता में हम पाते हैं :

क) कुछ ही फर्में जो विभेदित उत्पादन बेचती हैं।

ख) बहुत-सी फर्में जो एक समरूप उत्पादन बेचती हैं।

ग) कुछ फर्में जो समरूप उत्पादन बेचती हैं।

घ) बहुत-सी फर्में जो विभेदित उत्पादन बेचती हैं।

5) 'उत्पादन विभेदन का अर्थ है कि उपभोक्ता विभिन्न फर्मों के उत्पादों को एक समान नहीं मानते।' व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

....

....

10.4 एकाधिकारी प्रतियोगी फर्मों के कीमत एवं उत्पादन संबंधी निर्णय

10.4.1 एकाधिकारी प्रतियोगी फर्म के माँग-वक्र का स्वरूप

एकाधिकारी प्रतियोगी फर्म का माँग-वक्र दाहिनी ओर ढलवाँ होता है, परंतु एकाधिकारी की तुलना में इसका ढाल (slope) कम होता है। इसका मुख्य कारण उत्पाद विभेद द्वारा कर्म-विशेष के उत्पादन के प्रति 'जुड़ाव' या 'लगाव' ही रहता है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस बाज़ार में हमें पूर्ण प्रतियोगिता एवं एकाधिकार के मिले-जुले लक्षण देखने को मिलते हैं।

उत्पाद विभेद के कारण फर्म को अपनी वस्तु की कीमत निर्धारण में एकाधिकारी की भाँति ही कुछ सीमित स्वेच्छाधिकार मिल जाता है। यदि यह फर्म अपनी कीमत कम रखे तो कुछ खरीददार अवश्य आकृष्ट कर लेगी क्योंकि इसका उत्पादन अन्य फर्मों के उत्पादों के स्थान पर प्रयोग में लाया जा सकता है। किंतु अन्य फर्मों के सभी ग्राहक उन्हें अनायास ही छोड़कर इधर नहीं आएँगे– उनकी ब्राण्ड के प्रति वफादारी उन्हें पुराने उत्पादकों से ही जोड़े रखती है। चाहे उन्हें अपेक्षाकृत अधिक कीमत चुकानी पड़ रही हो। इसके विपरीत, यदि यह फर्म कीमत बढ़ाना चाहे तो इसकी बिक्री में काफी कमी आने की संभावना रहती है क्योंकि इसके कितने ही ग्राहक अन्य फर्मों के सस्ते दामों पर उपलब्ध माल से सहज ही आकृष्ट हो सकते हैं, परंतु अभी भी बहुत से ग्राहक जो इसी फर्म के माल को ज़्यादा अच्छा मानते हैं, ऊँची कीमत पर भी इसी से अपनी खरीदारी करते रहेंगे। अतः हम यह कह सकते हैं कि फर्म बिक्री घटाए बिना कीमत नहीं बढ़ा सकती और कीमत गिराए बिना बिक्री बढ़ाना भी संभव नहीं होता। कीमत बढ़ाने पर सभी ग्राहक इसका साथ नहीं छोड़ते तो कीमत घटाने पर सारे बाज़ार के ग्राहक इसके पास भी नहीं आ जाते। अतः फर्म की माँग-वक्र दाहिनी ओर ढलवाँ ही रहती है– यह पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति पूर्णतः लोचदार नहीं बन पाती। साथ ही साथ, अनेक प्रतिस्थानापन्न उत्पादों की बाज़ार में उपलब्ध इस फर्म की माँग-वक्र की लोचशीलता का स्तर उच्च बनाए रखती है। ऐसी फर्म का माँग-वक्र चित्र 10.1 में दिखाया गया है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 10.1

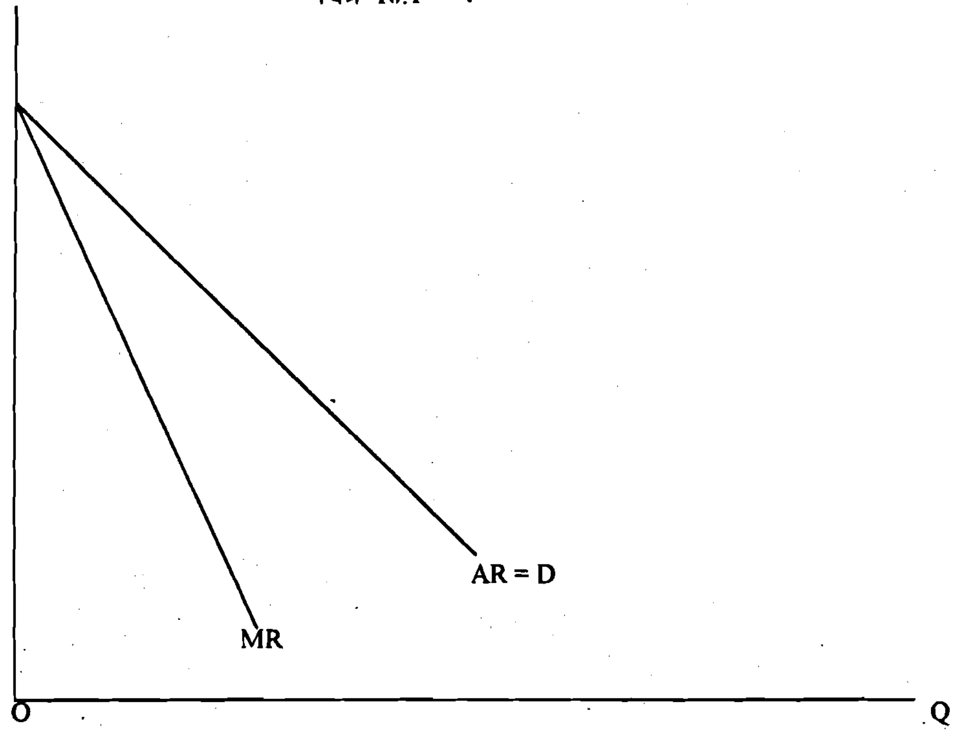

एकाधिकारी प्रतियोगी फर्म की माँग-वक्र बहुत ही लोचदार पर दाहिनी ओर ढलवाँ होती है। फर्म के प्रतियोगी जितने ज़्यादा होंगे तथा उत्पाद विभेदन जितना कमज़ोर होगा, फर्म के उत्पादन की माँग उतनी ही कीमत के प्रति अधिक लोचदार या संवेदनशील होगी। MR वक्र भी AR की भाँति ही रेखीय है पर इसका (MR) ढाल AR वक्र के ढाल से दुगुना रहता है।

यह तो आप जानते हैं कि जब फर्म की माँग-वक्र दाहिनी ओर ढलवाँ हो तो इसकी सीमांत आगम (MR) वक्र इसकी औसत आगम (AR) वक्र से नीचे ही रह जाती है। यदि फर्म की AR वक्र (माँग-वक्र) रखीय हो तो इसके दाहिनी ओर ढलवाँ होने के कारण MR वक्र भी रेखीय ही होगा पर MR का ढाल AR से दुगुना रहेगा। यह भी हमने चित्र 10.1 में दिखाया गया है।

10.4.2 एकाधिकारी प्रतियोगी फर्म का अल्पकालिक संतुलन

फर्म अपनी विक्रय लागतों के स्तर तथा उत्पाद की गुणवत्ता अथवा स्वरूप का निर्णय करने के पश्चात् अधिकतम लाभ कमाने के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए ही कीमत स्तर का निर्धारण करती है। फर्म की औसत लागत (AC) वक्र U-आकार की होती है। फर्म के AC तथा MC वक्रों और AR व MR वक्रों के आधार पर हम आपके अधिकतम लाभ सुनिश्चित करने वाले उत्पादन स्तर का निर्धारण कर सकते हैं। यह उत्पादन स्तर MR=MC बिंदु पर निर्धारित होता है तथा इस बिंदु पर सीमांत लागत-वक्र सीमांत आगम-वक्र को नीचे से काटती है। यह चित्र 10.2 (क) तथा 10.2 (ख) में दर्शाया गया है।

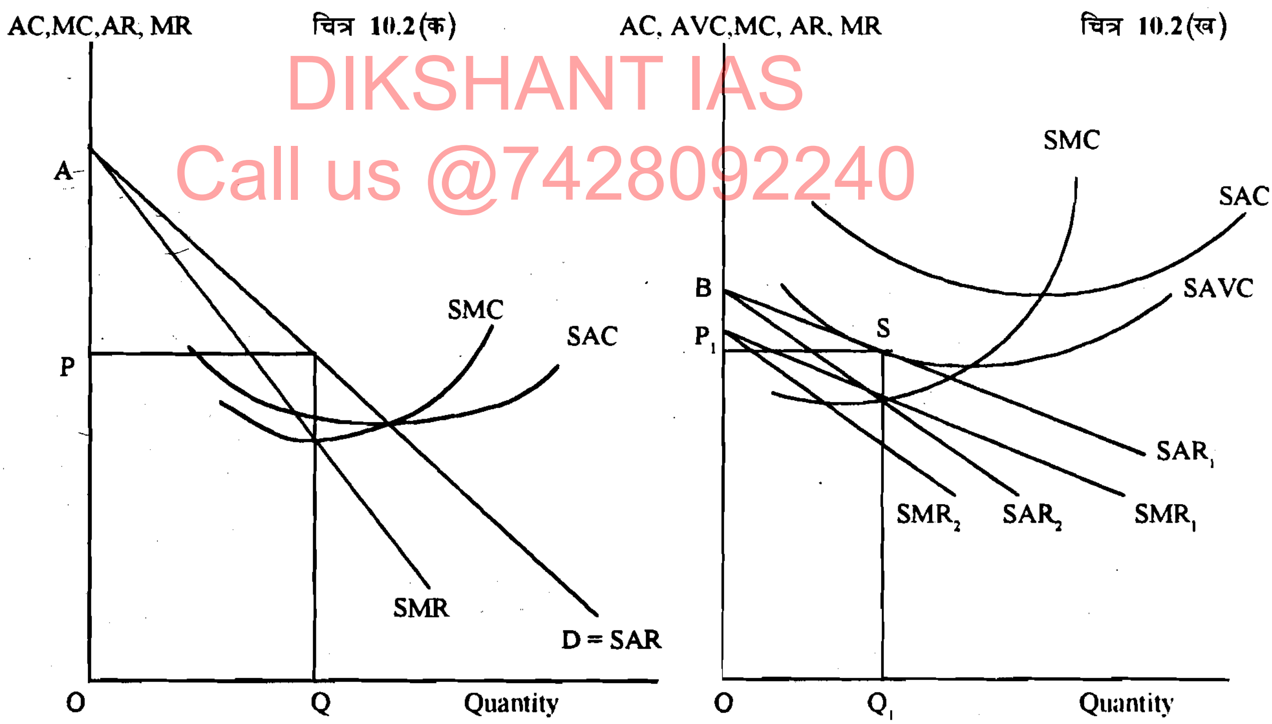

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 10.2 में एकाधिकारी प्रतियोगी फर्म का संतुलन दिखाया गया है। अल्पकालिक AR यानि माँग-वक्र अल्पकालिक AC वक्र से ऊपर है। लेकिन संतुलन उसी बिन्दु पर है जहाँ MC वक्र MR वक्र को नीचे से काटता है। उत्पादन स्तर OQ है। कीमत OP है। कुल उपागम कुल आय से P, P R N के समान अधिक है जो कि असमान्य लाभ है।

जब तक फर्म अपनी परिवर्तनीय लागतों को पूरा कर सकती है बाज़ार में उपस्थिति बनाए रखती है तथा उत्पादन करती रहती है। यह स्थिति तभी तक रह पाती है जबकि फर्म की औसत आगम रेखा (AR) इसकी अल्पकालिक AVC से ऊपर रहे या कम से कम उसे स्पर्श अवश्य करे। यदि

AR<AVC की स्थिति उत्पन्न हो जाए तो फर्म को व्यवसाय बंद करना ही श्रेयस्कर रहता है। इसीलिए हम चित्र 10.2 (क) के बिंदु S को कामबंदी बिन्दु (shut down point) भी कहते हैं।

अल्पकाल में उत्पादन स्तर OQ पर अधिकतम लाभ अर्जित होते हैं (ध्यान दें, इसी उत्पादन स्तर पर MC वक्र MR वक्र को छेदती हुई इससे ऊपर निकल जाती है।) यह संतुलन-स्तर स्थिर (stable) है क्योंकि OQ से अधिक उत्पादन पर सीमांत लागत सीमांत आय से अधिक हो जाती है। यहाँ फर्म OP कीमत वसूल सकती है– यही स्तर AR रेखा द्वारा तय हुआ अधिकतम कीमत स्तर है। यह भी स्पष्ट है कि AR>AC। अंतः फर्म को सामान्य से अधिक लाभ मिलता है। इसे हम $PRNP_1$ निर्दिष्ट कर रहे हैं। परंतु यदि माँग कमज़ोर हो, तो एकाधिकारी सामान्य से अधिक तो क्या सामान्य लाभ कमाने से भी वंचित रह जाता है। यदि माँग इतनी कमज़ोर है कि फर्म अपनी परिवर्ती लागत भी वसूल नहीं कर पाती तो उसे व्यवसाय बंद करने के सिवाय कोई चारा नहीं रहता। पूर्ण प्रतियोगिता की भाँति ही एकाधिकारी प्रतियोगी फर्म भी निम्न तीनों दशाओं में व्यवसाय करती रह सकती है–

i) AR>AC, फर्म सामान्य से अधिक लाभ कमाए,

ii) AR=AC, फर्म को सामान्य लाभ हो; तथा

iii) AR<AC, पर AR>AVC यहाँ फर्म व्यवसाय बंद करने से जुड़ी हानि को न्यूनतम करने का प्रयास करते हुए कार्य ज़ारी रखती है।

10.4.3 एकाधिकारी प्रतियोगी फर्म का दीर्घकालिक संतुलन

आपने इकाई 8 में पढ़ा था कि उद्योग में प्रवेश तथा निकासी पर कोई पाबंदी नहीं हो तो एक प्रतियोगी उद्योग में दीर्घकाल में सभी फर्में केवल सामान्य लाभ ही कमा पाती हैं। एकाधिकारी

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 10.3

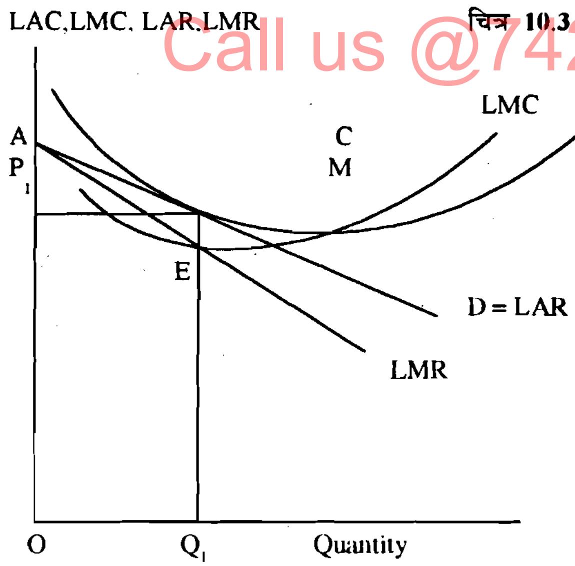

चित्र 10.3 : फर्म का दीर्घकालिक संतुलन दिखा रहा है। अधिकतम लाभ कमाने वाले उत्पादन स्तर OQ_1 (जिसकी निर्धारण शर्त है– MC=MR) पर फर्म की AR रेखा इसकी दीर्घकालिक औसत लागत-वक्र LAC को स्पर्श-भर कर रही है। अतः OQ_1 दीर्घकालिक संतुलन उत्पादन स्तर एवं OQ_1 दीर्घकालिक संतुलन कीमत स्तर होंगे। इस उत्पादन स्तर OQ_1 पर कीमत दीर्घकालिक औसत लागत के समान है। अतः फर्म अपनी सभी लागतों, जिनमें निहित एवं अवसर लागतें शामिल हैं, को पूरा ही कर पाती है। अतः लाभ का स्तर सामान्य ही रहता है और उद्योग में प्रवेश बंद हो जाता है। यह संतुलन स्थिर होता है, क्योंकि OQ_1 के भिन्न उत्पादन तथा OP_1 से भिन्न किसी भी कीमत पर फर्म को प्राप्य आगम सामान्य लाभ सहित सभी लागतों को पूरा नहीं कर पाती।

प्रतियोगिता की बाज़ार व्यवस्था भी नई फर्मों के प्रवेश अथवा पुरानी फर्मों की निकासी पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाती। अतः यहाँ भी दीर्घकालिक संतुलन प्रक्रिया पूर्ण प्रतियोगिता से ही मिलती-जुलती रहती है। अल्पकालिक सामान्य से अधिक लाभ नई फर्मों को आकर्षित करते हैं। यदि उद्योग के लिए माँग का स्तर पूर्ववत् रहे तो नई फर्मों के आने पर सभी फर्मों की माँग-वक्र कुछ बाईं ओर खिसक जाती हैं। प्रत्येक फर्म का बाज़ार में हिस्सा अब कुछ कम हो जाता है क्योंकि अब ज़्यादा फर्मों के बीच बाज़ार माँग बँट जाती है। साथ ही साथ, प्रतियोगियों की संख्या बढ़ने के कारण माँग की लोचशीलता में भी वृद्धि होती है क्योंकि अब वस्तु के निकट प्रतिस्थापकों की संख्या भी अधिक हो जाती है। इन सभी के कारण लाभ घटने लगता है। दीर्घकाल में सभी आर्थिक लाभ समाप्त हो जाते हैं।

बोध प्रश्न 2

1) एकाधिकारी प्रतियोगी फर्म की माँग-वक्र क्षैतिज (horizontal) होगी या दाहिनी ओर ढलवाँ? कारण बताइए।

....

....

....

....

....

2) एकाधिकारी प्रतियोगी फर्म ऐसी अल्पकालिक संतुलन दशा का विवरण दें जबकि वह कुछ असमान्य लाभ कमा रही हो। ये भी बताएँ कि यह दशा अस्थायी क्यों रहती है?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

....

3) एकाधिकारी प्रतियोगी फर्म का अल्पकालिक संतुलन उत्पादन स्तर निर्धारित होता है जहाँ :

i) P=SMC,

ii) P=SAC,

iii) MR वक्र SMC को काटे, अथवा

iv) MR वक्र SMC को नीचे से काटे और P>AVC or P=AVC.

4) दर्शाइए कि दीर्घकाल में सभी एकाधिकारी प्रतियोगी फर्मों का लाभ शून्य हो जाता है। (यहाँ लाभ शब्द आर्थिक अथवा सामान्य से अधिक लाभ की ओर इंगित करता है।)

....

....

....

10.5 एकाधिकारी प्रतियोगिता तथा पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना

एकाधिकारी एवं पूर्ण प्रतियोगिता, दोनों व्यवस्थाओं में दीर्घकालिक संतुलन उत्पादन स्तर पर माँग-वक्र और दीर्घकालिक औसत लागत एक-दूसरे को स्पर्श करती हैं। इस बिंदु पर एकाधिकारी प्रतियोगिता में MC=MR तथा P=AR=AC, पर P>MC। किंतु पूर्ण प्रतियोगिता के बाज़ार में तो P=AR=MR=MC=AC। अतः एकाधिकारी प्रतियोगिता की दीर्घकालिक संतुलन की AC तथा AR के स्पर्श की शर्त से यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि यहाँ उत्पादन का स्तर फर्म के न्यूनतम लागत उत्पादन स्तर से कम ही रहेगा। इसका कारण है कि एक दाहिनी ओर ढलवाँ AR रेखा AC वक्र को इसके ढलवाँ भाग पर ही स्पर्श कर सकती है और ऐसे सभी बिंदु न्यूनतम लागत बिंदु से बाईं ओर ही रह जाते हैं क्योंकि AC का आकार U जैसा होता है। इसका अर्थ है कि फर्म दीर्घकाल में भी पैमाने की सभी बचतों (economies of scale) का पूरा फायदा उठा पाने में सफल नहीं रहती। चित्र 10.4 में अधिक्षमता (excess capacity) का मान Q_2Q_1 मात्रा द्वारा दिखाया गया है।

चित्र 10.4

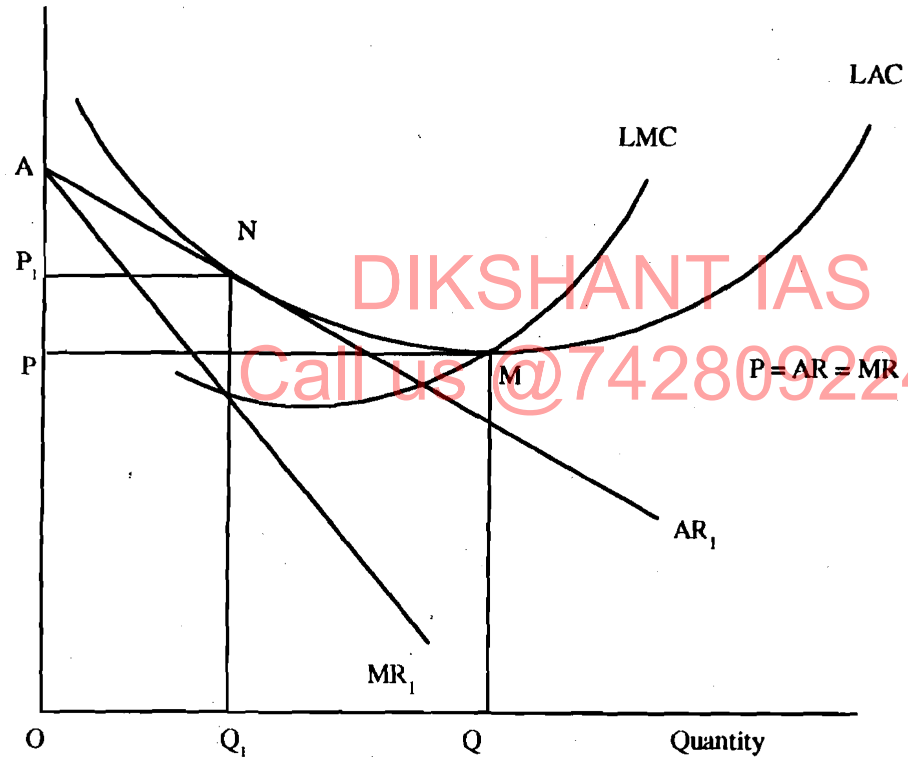

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 10.4 में सरल रेखा PP=AR=MR पूर्ण प्रतियोगी फर्म की माँग-वक्र है तथा ढलवाँ रेखा AR एकाधिकारी प्रतियोगी की माँग है। प्रथम माँग-वक्र LAC के M बिंदु पर स्पर्शी है जो कि न्यूनतम लागत बिंदु भी है। दूसरी माँग-वक्र LAC को N पर स्पर्श करती है। यह स्पष्ट ही है कि N बिंदु M से बाईं ओर ही है। अतः एकाधिकारी प्रतियोगिता में फर्म OQ_2 उत्पादन करती हैं जबकि इसी आकार की फर्म पूर्ण प्रतियोगिता में OQ_1 उत्पादन करने में सफल रहती।

एकाधिकारी प्रतियोगी फर्म के पास दीर्घकाल में कुछ न कुछ अप्रयुक्त क्षमता बच रहती है। यद्यपि फर्म (अपनी गणना के अनुसार) जो उत्पादन यह बेच पाएगी उसे कुशलतम आकार के संयंत्रों से करने का प्रयास करती है, परंतु फिर भी, यह पैमाने की बचतों का भरपूर प्रयोग नहीं कर पाती– अर्थात् अपने उत्पादक संयंत्र के इष्टतम (optimum) स्तर पर कार्य नहीं कर पाती।

10.6 एकाधिकारी प्रतियोगिता के आर्थिक प्रभाव

हम एकाधिकारी प्रतियोगिता के दो प्रमुख आर्थिक प्रभावों की चर्चा कर रहे हैं। प्रथम इस बाज़ार में सीमांत लागत से अधिक रहने के कारण संसाधनों का आबंटन इष्टतम नहीं रह पाता। इष्टतम आबंटन के लिए कीमत का सीमांत लागत के समान होना अनिवार्य है।

दूसरे, एकाधिकारी प्रतियोगिता में विक्रय लागतों या विज्ञापन व्यय के कारण भी काफी साधनों का अपव्यय होता है। एक फर्म के लिए विज्ञापन आवश्यक तथा लाभप्रद भले ही हों, परंतु सामाजिक दृष्टि से तो यह फिज़ूलखर्ची ही है। यदि यही फर्म विज्ञापनों पर खर्च किए गए संसाधनों का प्रयोग उत्पादन वृद्धि या गुणवत्ता संवर्धन के निमित्त करती तो सामाजिक कल्याण के स्तर में निश्चित रूप से कुछ सुधार हो सकता था।

10.7 एकाधिकारी फर्म में नीति निर्धारक तत्त्व

एकाधिकारी प्रतियोगी फर्म अपनी नीतियों के निर्धारण में कीमत, उत्पाद-परिवर्तन तथा विक्रय-लागतों का सहारा लेती है। उत्पाद-परिवर्तन एवं विक्रय-लागतों को ही फर्म के ग़ैर-कीमत स्पर्धा प्रयासों का नाम दिया जाता है। इन्हीं के माध्यम से फर्म अपने उत्पादन की माँग को अपेक्षाकृत कम लोचशील बनाने की चेष्टा करती है।

10.7.1 एक नीतिगत तत्त्व के रूप में विक्रय लागतें

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

यह तो हम जानते ही हैं कि एकाधिकारी प्रतियोगिता की एक मूलभूत विशेषता उत्पाद-विभेद है। विक्रय लागतें इसी उत्पाद-विभेद को उपभोक्ताओं के मन-मस्तिष्क पर हावी बनाने में बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य करती हैं। जहाँ उत्पादन लागतें उत्पादन को बाज़ार माँग के अनुरूप ढालने

चित्र 10.5

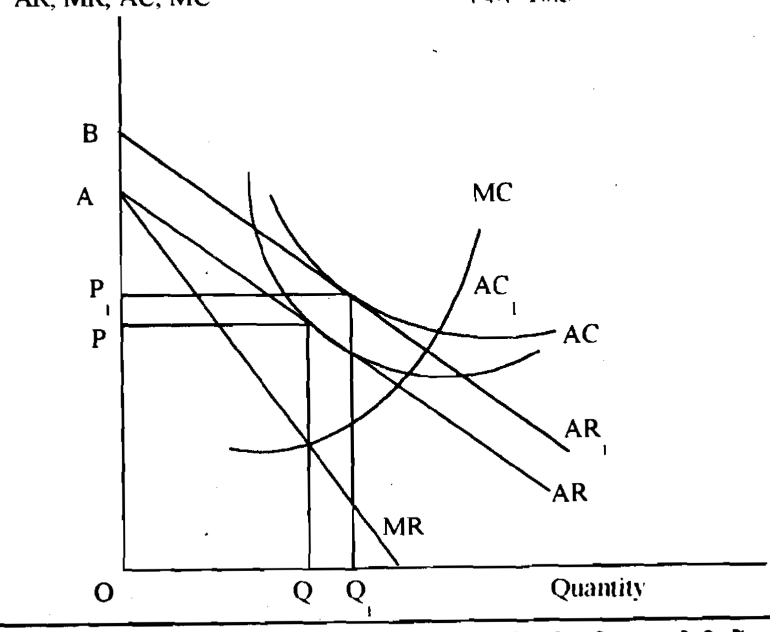

चित्र 10.5 : विक्रय लागतें फर्म की माँग-वक्र को दाहिनी ओर खिसका देती हैं। फर्म द्वारा विक्रय प्रयासों पर व्यय आरंभ होने से पूर्व इसकी माँग-वक्र **AR** थी। अब यह खिसककर **AR_1** हो गई है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि **AR_1** की किसी भी दी हुई कीमत (=OP_1) पर लोच पुरानी माँग-वक्र की तुलना में कम रहती है।

पर आय-व्यय का नाम है वहीं विक्रय लागतें उपभोक्ताओं की रुचियों और बाज़ार माँग को ही फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु के अनुरूप ढालने पर होने वाला व्यय होता है। इनके माध्यम से पहले फर्म (संभावित) उपभोक्ताओं को अपने उत्पादन से अवगत कराती है, फिर सतत् प्रयास द्वारा उनके मस्तिष्क में इसी उत्पादन में 'उपयुक्त' होने की धारणा का संचार करती है। विज्ञापन का मुख्य उद्देश्य तथा प्रभाव माँग-वक्र को दाहिनी ओर खिसकाना तथा यथासंभव कुछ कम लोचशील बनाना होता है। यह संभव है कि शुरू में विज्ञापन व्यय के कारण माँग में जन-सामान्य तक वस्तु के बारे में जानकारी पहुँचती है तथा उनकी जिज्ञासा जाग्रत होती है। किंतु बाद में विज्ञापन व्यय की वृद्धि से क्रेताओं पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ता। चित्र 10.5 में हम वस्तु की माँग-वक्र पर विक्रय लागतों का प्रभाव दर्शा रहे हैं :

विक्रय प्रयासों पर व्यय से जहाँ फर्म की माँग-वक्र दाहिनी ओर खिसकती है वहीं उसकी लागतों में भी वृद्धि होती है। जब तक फर्म की आगम में वृद्धि विक्रय लागतों से अधिक रहती है, उन विक्रय प्रयासों को अच्छा माना जा सकता है। इसी बात को हमने चित्र 10.6 में दर्शाया है। AR विज्ञापन प्रारम्भ करने से पूर्व का माँग-वक्र है। AC_1 औसत उत्पादन लागत है जिसमें विज्ञापन लागत शामिल नहीं है। संतुलन यानि अधिकतम लाभ की स्थिति OM उत्पादन और OP_1 कीमत पर है। मान लीजिए फर्म विज्ञापन पर व्यय करती है जो कि स्थिर लागत मानी जाती है। नया औसत लागत-वक्र AC होगा जिसमें उत्पादन और विज्ञापन लागतें दोनों शामिल हैं। इसके कारण AR दाईं हाथ की ओर खिसक जाता है। यदि नए संतुलन पर लाभ बढ़ जाएँ तो विज्ञापन करना ठीक होगा। इस तरह फर्म विज्ञापन व्यय में वृद्धि कर यह देखती रहेगी कि लाभ बढ़ते हैं या नहीं। जब तक लाभ बढ़ते रहेंगे फर्म विज्ञापन पर अतिरिक्त व्यय करती रहेगी। लाभ उस स्थिति में अधिकतम होंगे। जब अतिरिक्त आगत विज्ञापन पर अतिरिक्त लागत के समान हो जाते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 10.6

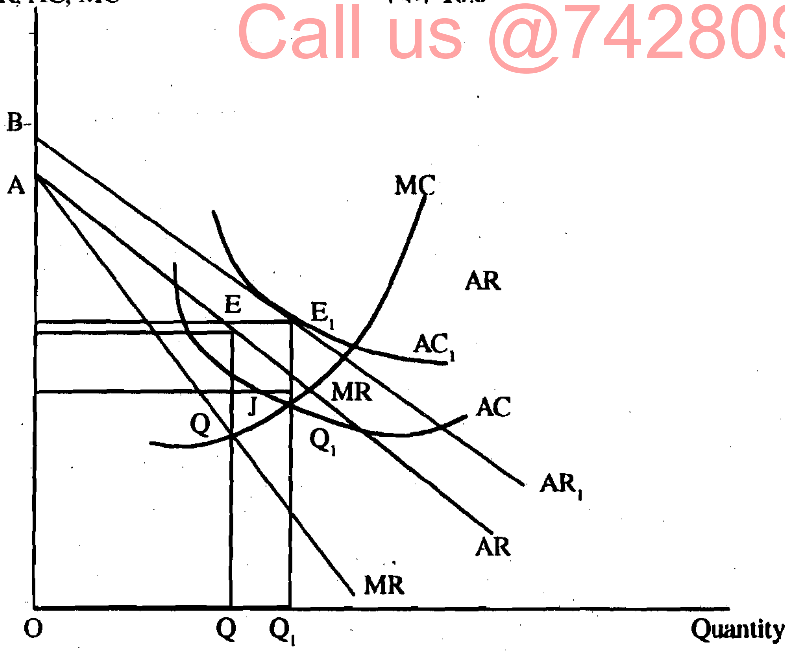

चित्र 10.6 : विक्रय लागतें फर्म की औसत लागत AC को AC_1 तक उठा देती है। यह बात ध्यान रखने योग्य है कि विक्रय लागतों की प्रकृति स्थिर लागतों जैसी होती है। इन लागतों के प्रभाव से फर्म की माँग-वक्र AR भी ऊपर खिसककर AR_1 हो जाती है। इस तरह से अब फर्म को कुल आगम OP_2E_2M के समान होती है जो कि पुरानी कुल आगम OP_1R_1M की तुलना में $P_1P_2E_2E_1$ अधिक है। जब तक यह आगम वृद्धि लागतों में हुई वृद्धि से अधिक रहती है, फर्म और अधिक विक्रय प्रयास व्यय कर सकती है। किंतु यदि आगम वृद्धि लागतों की अपेक्षा कम रह जाने की स्थिति में भी फर्म द्वारा विक्रय लागतों को बढ़ाना उचित नहीं होगा।

यह बात ध्यान देने योग्य हैं कि फर्म विज्ञापन व्यय करे या नहीं, दोनों ही दशाओं में उसका संतुलन उत्पादन स्तर तो MR तथा MC के प्रतिच्छेदन से ही निर्धारित होता है। विज्ञापन व्यय का MC पर कोई प्रभाव नहीं रहता, पर AR के खिसकने का अर्थ होगा कि MR भी खिसककर MR_1 हो जाएगा। अब नया संतुलन उत्पादन MR_1 तथा MC (पुरानी) के प्रतिच्छेदन बिन्दु पर द्वारा तय होगा।

10.8 एकाधिकारी-प्रतियोगिता : एक सिंहावलोकन

यहाँ हम संक्षेप में एकाधिकारी प्रतियोगिता की व्याख्या को दोहरा रहे हैं। इस प्रकार के बाज़ार की मुख्य विशेषताएँ ये हैं :

1) बहुत-सी फर्में मिलती-जुलती (लेकिन विभेदित) वस्तुओं की बिक्री करती हैं;
2) प्रत्येक फ़र्म अपनी कीमत में परिवर्तन कर कुल विक्रय को प्रभावित कर सकती है;
3) सभी फर्मों की माँग-वक्र दाहिनी ओर ढलवाँ पर अधिक लोचशील होती हैं;
4) फर्मों को उद्योग में प्रवेश तथा उसे बाहर जाने की स्वतंत्रता होती है।
5) एक फर्म की कार्यवाही का अन्य फर्मों पर थोड़ा ही प्रभाव पड़ता है; तथा
6) सभी फर्में अपने-अपने लाभ को 'अधिकतम' करने के निमित्त कार्यरत रहती हैं।

जहाँ छोटी-छोटी फर्मों की एक बहुत बड़ी संख्या समरूप उत्पादन बेच रही हों वहाँ पूर्ण प्रतियोगिता होती है। परंतु, जहाँ बड़ी संख्या में छोटी विभदीकृत उत्पाद बेच रही हों उस बाज़ार को एकाधिकारी प्रतियोगिता का नाम दिया जाता है। एकाधिकारी प्रतियोगी फर्म अल्पकाल में अतिरिक्त लाभ भी कमा सकती हैं तो कुछ हानि का वहन भी कर सकती है परंतु उद्योग में निर्बाध आगमन/निर्गमन के कारण दीर्घकाल में अतिरिक्त लाभ तथा हानि, दोनों की संभावनाएँ समाप्त हो जाती हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

एकाधिकारी प्रतियोगी फर्म अधिकतम लाभ कमाने के लिए इन तीन प्रकार की रणनीति कर सकती हैं– कीमत में परिवर्तन, उत्पादन में परिवर्तन या फिर विक्रय लागतों में परिवर्तन।

कीमत, उत्पाद तथा विक्रय लागतों के प्रत्येक संयोजन से फ़र्म की माँग एवं लागत-वक्रों का स्वरूप बदल जाता है। अतः यहाँ अधिकतम लाभ कमाने वाले उत्पादन एवं कीमत स्तर का निर्धारण एक जटिल प्रक्रिया बन जाता है।

यदि उपभोक्ता समरूप उत्पाद को सहज भाव से स्वीकृत कर रहें हों तो पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार वस्तु की कीमत को न्यूनतम औसत लागत तक पहुँचा देता है। प्रत्येक कर्म अपनी न्यूनतम अल्प एवं दीर्घकालिक औसत लागत पर कार्य करने को बाध्य हो जाती है। जो फर्म इस प्रकार कार्य कर पाने में असफल रहती है, उसे उद्योग से बाहर हो जाना पड़ता है। इस प्रकार से प्रतियोगी उद्योग में संसाधन अपने इष्टतम स्तर पर कार्य करते हैं।

यदि उपभोक्ता उत्पादों में विभेदीकरण पसंद करते हों तो भी एकाधिकारी प्रतियोगिता उनके लिए फायदेमंद होती है क्योंकि इस व्यवस्था में भी प्रतियोगिता इतनी सशक्त अवश्य रहती है कि कीमत (घटकर) लागत के समान हो जाए तथा किसी को भी अतिरिक्त लाभ कमाने का मौका न मिले। फिर भी, ऐसी व्यवस्था में सभी फर्में अपने इष्टतम (अथवा न्यूनतम औसत लागत) बिंदु से कम पर उत्पादन करती हैं क्योंकि माँग-वक्र दीर्घकालिक औसत लागत-वक्र के नीचे की ओर ढलवाँ भाग को ही स्पर्श कर पाती है।

10.9 अल्पाधिकारी व्यवस्था

आइए अब हम अल्पाधिकारी बाज़ार व्यवस्था पर भी एक सरसरी नज़र डालें। इस व्यवस्था में थोड़े से ही उत्पादकों के बीच प्रतिस्पर्धा रहती है। यह एक ऐसी बाज़ार व्यवस्था है जहाँ उद्योग का ज्यादातर उत्पादन इनी-गिनी फर्मों द्वारा ही बनाया जाता है।

थोड़ी-सी, परंतु बड़ी-बड़ी फर्मों की मौजूदगी का एक महत्त्वपूर्ण प्रभाव यह रहता है कि प्रत्येक फर्म के निर्णयों और क्रियाकलापों का बाज़ार की शेष सभी फर्मों पर सीधे ही प्रभाव पड़ता है। यदि एक फर्म अपनी कीमत में परिवर्तन करती है, नया उत्पाद या मॉडल बाज़ार में लाती है अथवा विज्ञापन-प्रचार आदि बढ़ाती है तो अन्य फर्मों पर इसकी प्रतिक्रिया होती है। यहाँ प्रतिस्पर्धा का स्वरूप अत्यंत ही व्यक्तिपरक हो जाता है, प्रत्येक फर्म यह बखूबी समझती है कि उसे अपनी 'रणनीति' प्रतिद्वंद्वियों की गतिविधियों पर ध्यान देकर ही तय करनी होगी। अल्पाधिकारियों के बीच की यह पारस्परिकता प्रतिस्पर्धा के प्रत्येक आयाम को प्रभावित करती है। प्रतिद्वंद्वियों के कार्यों एवं प्रतिक्रियाओं का पूर्वानुमान फर्म की निर्णय प्रक्रिया को अत्यंत ही जटिल स्वरूप प्रदान कर देता है। फर्मों के व्यवहार की परस्पर 'निर्भरता' तथा उसके परिणामस्वरूप माँग-वक्र की अनिश्चितता अल्पाधिकारी व्यवस्था की एक आधारभूत विशेषता है।

यदि उद्योग में एक मानक (समरूप) वस्तु का ही उत्पादन होता है तो इसे हम विशुद्ध अल्पाधिकार कहते हैं। दूसरी ओर, यदि थोड़ी-सी फर्में एक विभेदित उत्पाद बाज़ार पर छाई हुई हों तो वह विभेदित अल्पाधिकार **(differentiated oligopoly)** होगी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अल्पाधिकारी बाज़ार में प्रवेश असंभव तो नहीं, पर कठिन अवश्य रहता है। बड़े पैमाने पर उत्पादन की बचतें, जटिल तकनीकें और वर्तमान फर्मों द्वारा व्यापक विज्ञापन आदि नई-नई फर्मों को सहज ही अपने पाँव जमाने का मौका नहीं देती।

अल्पाधिकारी बाज़ार में ऐसी कोई सुस्पष्ट संतुलन स्थिति नहीं पाई जाती है जिसकी ओर सभी फर्में अग्रसर होने का प्रयास करती हों। यहाँ तो स्पर्धात्मक रणनीतियों की खोज में संलग्न फर्मों को कई तरह से व्यवहार करने की संभावनाएँ उपलब्ध रहती हैं। फर्म क्या करेगी तथा उसके प्रतिद्वंद्वी किस प्रकार से प्रतिक्रिया करेंगे– इस बारे में कुछ भी सुनिश्चित कर पाना संभव नहीं होता। ऐसी व्यवस्था में अनेक संभावनाएँ रहती हैं, अल्पाधिकारी के व्यवहार को किसी एक सिद्धांत में बाँध पाना संभव नहीं रहता।

बोध प्रश्न 3

1) एकाधिकारी प्रतियोगिता, पूर्ण प्रतियोगिता से किस प्रकार भिन्न है? उपयुक्त चित्रों की सहायता से व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

....

....

2) एकाधिकारी प्रतियोगिता फर्म किन नीतिगत चरों का सहारा ले सकती है? इस व्यवस्था में विक्रय लागतों या विज्ञापन व्यय का कीमत तथा उत्पादन पर प्रभाव समझाइए।

....

....

....

....

....

3) अल्पाधिकारी बाज़ार की मुख्य विशेषताएँ बताइए।

....

....

....

....

....

10.10 सारांश

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

पूर्ण प्रतियोगिता से भिन्न बाज़ार व्यवस्थाओं की व्याख्या से जुड़ी यह दूसरी इकाई है। इससे पहले हमने इकाई 9 में एकाधिकारी बाज़ार पर विचार किया था, परंतु वर्तमान इकाई की विशेषता यह है कि हमने इसमें पूर्ण प्रतियोगिता और पूर्ण एकाधिकारी के बीच के दो बाज़ारों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। इसमें हमने एकाधिकारी स्पर्धा तथा अल्पाधिकारी की चर्चा की है, पर ज़्यादा विस्तारपूर्वक एकाधिकारी स्पर्धा पर ही विचार किया गया है। इस प्रकार की बाज़ार व्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं का ब्यौरा देकर उनकी पूर्ण प्रतियोगिता की विशेषताओं से तुलना की गई है। फिर हमने एकाधिकारी व्यवस्था से जुड़ी मुख्य-मुख्य विशेषताओं पर चर्चा की है, परंतु यह चर्चा संक्षिप्त ही रखी गई है क्योंकि विभिन्न बाज़ार व्यवस्थाओं पर अधिक विस्तृत जानकारी आपके प्रबंधकीय अर्थशास्त्र विषय के अंतर्गत इकाई 9 और 10 में रखना अधिक प्रासंगिक लगता है। इस व्यवस्था के बारे में यह बात अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि सामान्यतः अल्पाधिकार में कोई एक निश्चित संतुलन स्तर नहीं होता।

10.11 शब्दावली

एकाधिकार : ऐसी बाज़ार स्थिति जहाँ केवल एक विक्रेता का नियंत्रण रहता है।

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता : बाज़ार की इस स्थिति में क्रेताओं एवं विक्रेताओं की संख्या अधिक होती है। किन्तु पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत पाए जाने वाले समरूप उत्पाद की अपेक्षा यहाँ उत्पाद विभेद (product differentiation) होता है। वस्तुएँ एक-दूसरे की स्थानापन्न होते हुए भी एक उत्पादक की वस्तुएँ दूसरे उत्पादक की वस्तु से भिन्न होती हैं।

अल्पाधिकार	:	बाज़ार की वह स्थिति जिसमें कुछ ही विक्रेता होते हैं तथा उनके निर्णय एक-दूसरे पर निर्भर होते हैं।
उत्पादन लागत	:	वह लागत जिसका उत्पादन से सीधा संबंध है। उत्पादन लागत में परिवर्तन होने से कुल लागत में भी परिवर्तन हो जाता है।
विक्रय लागत	:	अपूर्ण जानकारी वाले बाज़ार में उत्पादक अपनी वस्तु के प्रति क्रेताओं को आकर्षित करने हेतु कुछ खर्च करते हैं। विभिन्न उत्पादों के लिए विज्ञापन इस प्रकार के व्यय प्रमुख उदाहरण है।

10.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Varian, Hal (1997), *Intermediate Microeconomics*, W.W. Norton & Co. : New York.

Pindyck, Robert S., and Daniel Rubinfeld (1995) *Microeconomics*, 3rd Edition, Prentice Hall of India Pvt. Ltd., New Delhi.

10.13 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 1

1) भाग 10.1 और 10.2 पढ़िए एवं उत्तर दीजिए।
2) भाग 10.2 और 10.3 पढ़िए एवं उत्तर दीजिए।
3) (iii)
4) (iv)
5) भाग 10.3 पढ़िए एवं उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 10.4.1 पढ़िए एवं उत्तर दीजिए।
2) भाग 10.4.2 पढ़िए एवं उत्तर दीजिए।
3) (iv)
4) भाग 10.4.3 पढ़िए एवं उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 3

1) भाग 10.5 पढ़िए एवं उत्तर दीजिए।
2) भाग 10.7 पढ़िए एवं उत्तर दीजिए।
3) भाग 10.9 पढ़िए एवं उत्तर दीजिए।

इकाई 11 वितरण का सीमांत उत्पादिता सिद्धांत एवं मज़दूरी का निर्धारण

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 उत्पादन के साधन
11.3 सीमांत उत्पाद की अवधारणाएँ
11.3.1 सीमांत भौतिक उत्पाद
11.3.2 सीमांत उत्पाद का मूल्य
11.3.3 सीमांत आगम उत्पाद
11.4 उत्पादन साधन की माँग
11.4.1 साधन की बाज़ार माँग
11.5 साधन आपूर्ति
11.5.1 साधन का प्रतिफल एवं उसकी आपूर्ति
11.5.2 पूर्ण उत्पाद वितरण प्रमेय
11.5.3 वस्तु बाज़ार की अपूर्णताएँ और साधन प्रतिफल एवं रोज़गार
11.6 वितरण के सीमांत उत्पादिता सिद्धांत की सीमाएँ
11.7 मज़दूरी निर्धारण
11.7.1 श्रम एवं श्रम की आपूर्ति
11.7.2 एक व्यक्ति द्वारा श्रम की आपूर्ति
11.7.3 श्रम की बाज़ार आपूर्ति
11.8 श्रम की अल्पकालीन माँग
11.8.1 श्रम बाज़ार : एक फर्म की श्रम की माँग से श्रम की बाज़ार माँग का निर्धारण
11.8.2 श्रम की माँग की लोचशीलता
11.9 माँग एवं आपूर्ति : बाज़ार संतुलन
11.9.1 उत्पाद एवं श्रम, दोनों ही बाज़ारों में पूर्ण प्रतियोगिता
11.10 बाज़ार की अपूर्णताएँ तथा मज़दूरी की दर
11.10.1 वस्तु बाज़ार की अपूर्णताएँ
11.10.2 श्रम बाज़ार की अपूर्णताएँ
क) श्रमिक संघ
ख) एक नियोजक
ग) द्विपक्षीय एकाधिकार
11.10.3 सरकारी हस्तक्षेप
11.11 बाज़ार में अनेक प्रकार की मज़दूरी दरें क्यों प्रचलित होती हैं?
11.12 सारांश
11.13 शब्दावली
11.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें
11.15 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

11.0 उद्देश्य

यह इकाई आपको वितरण के सीमांत उत्पादिता सिद्धांत से परिचित कराती है। हम इस सिद्धांत की व्याख्या श्रम के पारिश्रमिक के निर्धारण के उद्धरण के माध्यम से कर रहे हैं। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इन बातों को समझ और समझा सकेंगे :

- किसी साधन की सीमांत उत्पादिता के विभिन्न माप;
- क़ीमत निर्धारण के सामान्य सिद्धांत के एक विशेष स्वरूप में, साधन कीमत का निर्धारण;
- पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार व्यवस्था के अंतर्गत समग्र उत्पादन का पूरी तरह निकल विभक्त हो जाना;
- मज़दूरी दर की निर्धारण प्रक्रिया;
- श्रम बाज़ार में श्रमिक संघों के कार्य एवं राजकीय हस्तक्षेप के प्रभाव; तथा
- विभिन्न मज़दूरों की प्राप्तियों (मज़दूरी) में अंतर, आदि।

11.2 प्रस्तावना

हम जानते हैं कि सामाजिक उत्पादन समाज के सदस्यों की मेहनत का परिणाम होता है। समाज के सदस्य अपनी-अपनी तरह से उत्पादन प्रक्रिया में भागी बनते हैं। वे सभी अपने योगदान के बदले में कुछ प्रतिफल की अपेक्षा भी करते हैं। प्रश्न उठता है कि समग्र उत्पादन में व्यक्तियों के अंशभाग का निर्धारण किस प्रकार होना चाहिए? इन प्रश्न पर कई पीढ़ियों से अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, दार्शनिक एवं चिन्तक विचार करते रहे हैं एवं उन्होंने अनेक प्रकार के सुझाव प्रस्तुत किए हैं। सीमांत उत्पादिता सिद्धांत सामाजिक उत्पादन के वितरण की समस्या का एक व्यवहारिक समाधान है। यहाँ हम किसी साधन की सीमांत उत्पादिता एवं उसके प्रतिफल के बीच साम्य लाने का प्रयास करते हैं। बाज़ार की शक्तियाँ कुछ इस प्रकार कार्य करती हैं कि दीर्घकाल में अंततः प्रत्येक संसाधन का प्रतिफल उसकी उत्पादिता के अनुरूप ही रहता है। यही नहीं, उत्पादन एवं संसाधन बाज़ारों में पूर्ण स्पर्धा व्याप्त होने पर तो हमारा सीमांत उत्पादिता सिद्धांत समग्र उत्पादन के पूरे-पूरे विभक्त हो जाने को भी सुनिश्चित कर देता है। कभी-कभी तो यह भी दावा किया जाता है कि इस प्रकार का वितरण न्यायपूर्ण भी है। यद्यपि हमने सीमांत उत्पादिता सिद्धांत की अवधारणाएँ श्रम के संदर्भ में ही विकसित की हैं, फिर भी श्रम बाज़ार की विलक्षणताओं की ओर आपका ध्यान आकर्षित करने के लिए मज़दूरी के निर्धारण के बारे में चर्चा अलग से (भाग 11.7–11.11 में) की गई है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

11.2 उत्पादन के साधन

उत्पादन की गतिविधि में अनेक व्यक्तियों का सहयोग आवश्यक होता है। कुछ तो कार्यस्थान/फैक्टरी आदि में इकट्ठे मिलकर काम करते हैं। कुछ उस स्थान पर उपस्थित नहीं होते हुए भी उन फैक्टरियों की स्थापना में सहायक रहे होते हैं। कुछ लोग यंत्रों-संयंत्रों की खरीदारी तथा उनके लिए उपयुक्त भवनों के निर्माण के लिए पूँजी उपलब्ध कराते हैं। कुछ अन्य व्यक्ति श्रमिकों एवं मशीनों को एक साथ जुटाने का कार्य करते हैं। उन फैक्टरियों में उत्पादन करने के लिए कच्चे माल को जुटाने का कार्य कहीं ओर ही हो रहा होता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आज के युग में उत्पादन तभी संभव हो पाता है जबकि कोई श्रम, कच्चेमाल, भूमि तथा पूँजी को वस्तुओं का उत्पादन करने हेतु इकट्ठा करें। स्वाभाविक ही है कि व्यवस्था करने वाला संगठनकर्ता या उद्यमी ही यह तय करेगा कि उत्पादन किस चीज़ का हो। अर्थशास्त्र में इन सभी को–अर्थात् श्रम, भूमि, पूँजी एवं उद्यम को उत्पादन साधन कहते हैं। इनकी काम चलाऊ परिभाषाएँ इस प्रकार हैं :

i) **भूमि**

यह प्रकृति से प्राप्त भौतिक संसाधन है। इसमें सभी खनिज, ठोस एवं जल संसाधन सम्मिलित रहते हैं

ii) **श्रम**

उत्पादन के इस सर्वोत्कृष्ट साधन में मानव के सभी प्रकार के भौतिक एवं बौद्धिक प्रयास शामिल होते हैं। श्रम प्रकृति से प्राप्त वस्तुओं को मानव आवश्यकताओं को पूरी करने वाली अन्य वस्तुओं में बदलता है।

iii) **पूँजी**

प्रकृति की देन को वस्तुओं में परिवर्तित करने के प्रयास में मानव समय पर कुछ पदार्थों को इस प्रकार बदलता-ढालता रहा है कि उसका वस्तु निर्माण कार्य और सहज हो सके। इन्हीं परिवर्तित स्वरूप के पदार्थों को प्रदान किया गया साझानाम *पूँजी* है। परंपरा से ही हम पूँजी को एक पृथक उत्पादक कारक मानते हैं।

iv) **उद्यम**

मौटे तौर पर, उत्पादन की व्यवस्था करने एवं जोख़िम उठाने की मानव़ीय योग्यता विशेष को उद्यम कहा जाता है।

नोट : आगे चलकर हम इन उत्पादक साधनों के स्वरूप का और परिमार्जन करेंगे। श्रम की विशेषताओं पर तो हम भाग 11.7.1 में और शेष कारकों, भूमि, पूँजी एवं उद्यम पर चर्चा इकाई 12 में करेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

11.3 सीमांत उत्पाद की अवधारणाएँ

अन्य सभी साधनों की प्रयुक्त मात्राओं को पूर्ववत् रखते हुए, किसी एक साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से उत्पादन में आई वृद्धि ही उस साधन का सीमांत उत्पाद कहलाता है। दूसरे शब्दों में, मान लो कि एक फैक्टरी में मशीनों की संख्या तो स्थिर है, पर हम एक श्रमिक और काम पर लगा लेते हैं, तो फिर इस अतिरिक्त श्रमिक के काम पर लगने से उत्पादन में हुआ परिवर्तन ही श्रम का सीमांत उत्पाद होगा। इसी प्रकार से हम किसी भी साधन के सीमांत उत्पाद की परिभाषा कर सकते हैं। जिस साधन की प्रयुक्त मात्रा में परिवर्तन किया जाता है, उसे हम परिवर्ती साधन कहते हैं। शेष सभी स्थिर साधन कहे जाते हैं

तालिका 11.1 में एक काल्पनिक उद्योग में उत्पादन दिखाया जा रहा है। यहाँ यंत्र-संयत्रादि तो स्थिर रहते हैं, पर श्रमिकों की संख्या में एक-एक वृद्धि की जा रही है :

तालिका 11.1 में एक फैक्टरी में उत्पादन

परिवर्ती साधन श्रम की इकाइयाँ	कुल उत्पाद	सीमांत उत्पाद
0	0	0
1	10	10
2	18	8
3	24	6
4	28	4
5	30	2

11.3.1 सीमांत भौतिक उत्पादन (Marginal Physical Product : MPP)

तालिका 11.1 के तीसरे कालम पर ध्यान दें : पहले श्रमिक के कार्य के फलस्वरूप 10 इकाइयों का उत्पादन होता है। दूसरा श्रमिक के आने से उत्पादन में 8 इकाइयाँ और जुड़ जाती हैं। यह क्रम इसी तरह चलता रहता है। अंततः पाँचवें श्रमिक के आगमन से तो केवल 2 इकाई अतिरिक्त उत्पादन ही संभव होता है। यहाँ हमने उत्पादन को भौतिक इकाइयों में ही दर्शाया है। इसी कारण हम तीसरे कालम में दर्ज उत्पादन को श्रम का सीमांत भौतिक उत्पाद (MPP) भी कहते हैं।

11.3.2 सीमांत उत्पादन का मूल्य (Value of Marginal Product : VMP)

श्रम का भौतिक सीमांत उत्पाद बाज़ार में प्रचलित कीमत पर बेचा जा सकता है। इस प्रकार प्राप्त हुए मूल्य को ही सीमांत उत्पाद का मूल्य अथवा सीमांत मूल्य उत्पादन (VMP) का नाम दिया जाता है। यह इस प्रकार ज्ञात होता है:

VMP = MPP × Price (वस्तु की)

11.3.3 सीमांत आगम उत्पाद (Marginal Revenue Product : MRP)

कई बार फर्म की रुचि यह जानने में नहीं होती कि अतिरिक्त श्रमिक के कारण उत्पादन कितनी इकाई बढ़ा है अथवा अतिरिक्त उत्पादन कितने रुपयों में बिका। फर्म तो अपनी कुल आगम पर प्रभाव जानने की इच्छुक होती है। इस प्रकार हम सीमांत आगम उत्पाद की अवधारणा तक पहुँचते हैं। इसे एक अतिरिक्त श्रमिक को काम पर लगाने से कुल आगम में आए परिवर्तन द्वारा व्यक्त किया जाता है। अतः

DIKSHANT IAS

सीमांत आगम उत्पाद = सीमांत आगम × सीमांत भौतिक उत्पाद

Call us @7428092240

अथवा MRP = MR × MPP

इसे परिवर्ती साधन के प्रयोग में परिवर्तन के कारण कुल आगम की परिवर्तन दर भी कहा जा सकता है:

$$\text{MRP} = \frac{\text{कुल आगम में परिवर्तन}}{\text{परिवर्ती साधन प्रयोग में परिवर्तन}}$$

वस्तु बाज़ार में पूर्ण प्रतियोगिता होने पर तो फर्म बाज़ार कीमत पर चाहे जितना उत्पादन बेच सकती है। इसकी माँग-वक्र क्षैतिज (horizontal) रहती है। इसी कारण औसत आगम, और उसके कारण सीमांत आगम स्थिर एवं कीमत के समान रहते हैं। यही हमें तालिका 11.1 का परिवर्तन पर तालिका 11.2 की रचना करने में सहायक बनता है। वस्तु की कीमत के विषय में जानकारी से हम कुल आगम (TR) सीमांत उत्पाद मूल्य (VMP), तथा सीमांत आगम उत्पाद (MRP) का आकलन कर सकते हैं।

तालिका 11.2

परिवर्ती साधन : श्रम की इकाइयाँ	कुल उत्पादन	सीमांत उत्पाद	वस्तु की कीमत	TR	VMP	VMP
0	0	0	20	0	0	0
1	10	10	20	200	200	200
2	18	8	20	360	160	160
3	24	6	20	480	120	120
4	28	4	20	560	80	80
5	30	2	20	600	40	40

नोट : ध्यान दें कि VMP = MRP (स्तंभ 6 तथा 7 की तुलना करें)। यह वस्तुतः हमारी पूर्ण प्रतियोगिता की पूर्वधारणा के कारण है। हम भाग 11.10 में इस विषय में और चर्चा करेंगे।

बोध प्रश्न 1

1) प्रत्येक निम्न अवधारणा की 50-60 शब्दों में व्याख्या करें :

क) सीमांत भौतिक उत्पाद

....

....

....

....

....

ख) सीमांत उत्पाद का मूल्य

....

....

....

....

....

ग) सीमांत आगम उत्पादन

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

....

2) एक फर्म में पाँच श्रमिक कार्य करते हैं और यह फर्म प्रतिदिन 10 कुर्सियाँ उत्पादित कर उन्हें 50 रुपये प्रति इकाई के दामों बाज़ार में बेच रही है। एक और श्रमिक को काम पर लगाकर फर्म प्रतिदिन 12 कुर्सियाँ बना सकती है, किन्तु उन्हें केवल 45 रुपये प्रति इकाई बेचा जा सकता है। इस जानकारी के आधार पर बताएँ :

क) श्रम की MPP क्या है?

....

....

....

....

....

....

....

ख) श्रम की VMP क्या है?

....

....

....

....

....

....

ग) श्रम की MRP क्या है?

....

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

11.4 उत्पादन साधन की माँग

फर्म बाज़ार में बेचने योग्य वस्तुओं के उत्पादन के लिए ही साधनों की माँग करती हैं। अतः हम कह सकते हैं कि उस फर्म की किसी भी उत्पादन साधन की माँग इस बात पर निर्भर होगी कि उस साधन द्वारा उत्पादित वस्तुओं की माँग की (बाज़ार में) कैसी स्थिति है। जब फर्म श्रम की इकाइयों की सेवाएँ प्राप्त करती है तो उसकी नज़र निरंतर इस बात पर रहती है कि उसकी अपनी कुल आगम एवं कुल लागत पर क्या प्रभाव पड़ता है। हमारी तालिका 11.2 में दिखाई गई काल्पनिक फर्म की बात ही लें। मान लो कि यह फर्म प्रत्येक कारीगर को 40 रुपये दिहाड़ी देती है। अतः पहले कारीगर के आने पर फर्म की लागत 40 रुपये बढ़ जाती है। इसके आगमन से उत्पादन में दस इकाइयों की वृद्धि होती है तथा फर्म इस सारे उत्पादन को 200 रुपये में बेच देती है। यहाँ फर्म की कुल आगम में 200 रुपये की वृद्धि हुई है पर लाइन में केवल 40 रुपये की है। यह तो बहुत ही उत्साहवर्धक स्थिति है। फर्म एक और कारीगर को रख लेती है। अब MPP = 8 है। इसका भी बाज़ार मूल्य 160 रुपये बनता है। आगम 360 रुपये हो जाती है– पर लागत में केवल 40 रुपये ही और जुड़ते हैं। दूसरा कारीगर फर्म के लिए 160 – 40 = 120 रुपये अधिकतम का सृजन करता है। फर्म इसी प्रकार अन्य कारीगरों को काम पर रखने का निर्णय करती रहती है। पाँचवाँ कारीगर भी फर्म की लागत को 40 रुपये ही बढ़ाता है पर उसकी MPP = 2 है। अतः फर्म की कुल आगम में भी 40 रुपये की ही वृद्धि होती है अब फर्म को आगे विस्तार करना उपयुक्त नहीं लगता। यहाँ तो लागत का परिवर्तन आगम के परिवर्तन के समान हो गया है। यहीं पर फर्म का संतुलन होता है। यही नहीं, यदि दर 40 रुपये से अधिक होती तो फर्म पाँचवें कारीगर को भी काम नहीं देती।

हम फर्म की VMP = MRP वक्र को चित्र 11.1 द्वारा दिखाई गई आकृति के समान बना सकते हैं।

चित्र 11.1

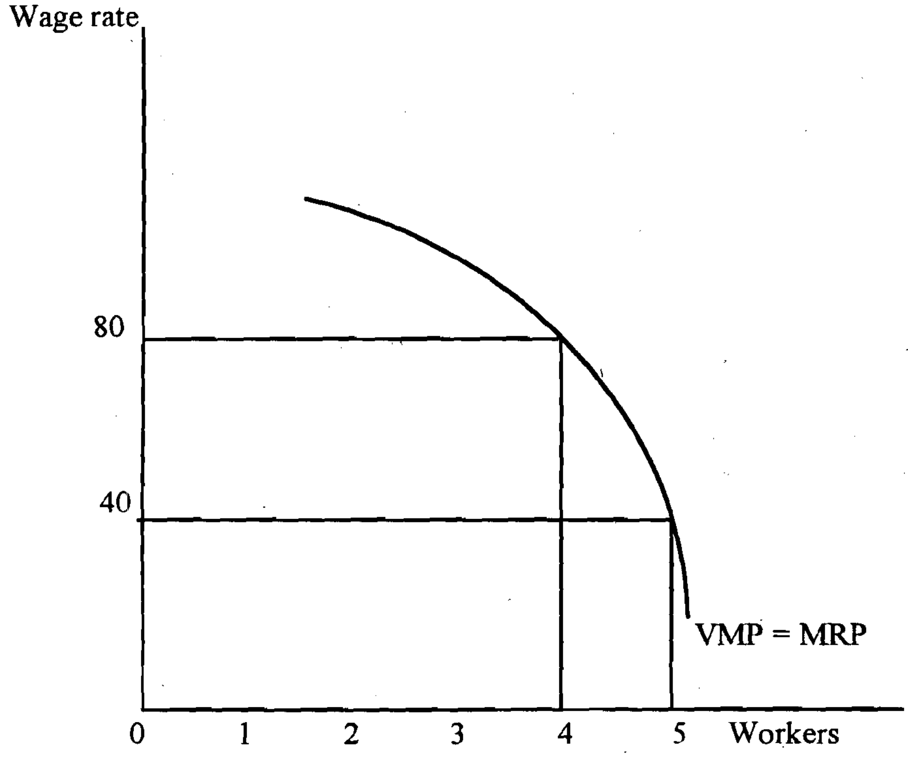

चित्र 11.1 में फर्म की VMP = MRP वक्र दिखाई गई है। यह वक्र एक उच्च स्तर से प्रारंभ हो शुरू में धीरे-धीरे, पर बाद में बड़ी तेज़ी से नीचे गिरने लगती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

यदि मज़दूरी दर 40 रुपये हो तो फर्म 5 कारीगरों को काम पर रखती है, किन्तु मज़दूरी दुगुनी हो जाने पर यह केवल 4 ही कारीगरों को काम देना ठीक समझेगी। ध्यान दें कि मज़दूरी दुगुनी होने पर श्रम के प्रयोग में कमी तो आती है पर वह प्रयोग आधार नहीं रह जाता।

चालीस रुपये की मज़दूरी पर फर्म 5 लोगों को काम देती है पर अस्सी रुपये की दर से तो वह केवल 4 कारीगरों को ही रख पाती है। इसका कारण यही हैं कि अब पाँचवाँ कारीगर फर्म की लागत तो 80 रुपये बढ़ा देगा पर उसकी आगम में केवल 40 रुपये की वृद्धि हो पाएगी। उस श्रमिक की MPP = 2 तथा बीस रुपये प्राप्ति इकाई पर ये दो इकाइयाँ केवल 40 रुपयों में ही बिक पाएगी। फर्म इस प्रकार होने वाली 40 रुपये की हानि सहन नहीं करती।

MRP वक्र के माध्यम से हम उत्पादक के व्यवहार की एक और विलक्षणता को भी समझ सकते हैं। इस वक्र के नीचे आयताकार क्षेत्रफल फर्म की कुल श्रम लागत दिखाता है जबकि वक्र के अधीनस्थ समग्र क्षेत्रफल उसके समग्र आगत का परिचालक है। अतः वक्र एवं आयत के बीच का त्रिभुजाकार क्षेत्रफल उत्पादक का आधिक्य कहा जा सकता है। अब उसके अधिकतम लाभ कमाने को हम एक नई व्याख्या प्रदान कर सकते हैं– उत्पादक अपना उपर्युक्त विधि से परिभाषित आधिक्य अधिकतम करने का प्रयास करता है। हम कह सकते हैं कि साधन कीमतों का समावेश कर MRP वक्र द्वारा हम यह जान सकते हैं कि फर्म उस संसाधन की अधिकतम कितनी इकाइयों की सेवाएँ प्राप्त करनी चाहेगी। इस प्रकार से किसी भी साधन की MRP वक्र फर्म की उस साधन् के लिए माँग-वक्र बन जाती है।

सामान्यतः फर्म उस बिन्दु तक साधन की इकाइयों का प्रयोग करती रहेगी जहाँ तक कि उसकी MRP बाज़ार में साधन कीमत के समान नहीं हो जाती। हमारे उदाहरण में जब तक MRP बाज़ार मज़दूरी दर (40 रुपये) से अधिक रहती है फर्म और श्रमिकों को काम देती रहती है। ऐसा प्रत्येक

कारीगर फर्म के आधिक्य में कुछ न कुछ योगदान ही देता है। किन्तु MRP = W (जहाँ वह 5 कारीगर रखती है से आगे छठे श्रमिक की MRP तो मज़दूरी दर से कम रह जाएगी। उसे काम पर रखने का अर्थ होगा पाँचवें कारीगर तक अर्जित आधिक्य में से भुगतान करना। फर्म का 6 श्रमिकों के साथ काम करने पर आधिक्य उस राशि से कम रह जाएगा जो वह केवल पाँच श्रमिकों से ही कमा रही थी। अतः मज़दूरी दर 40 रुपये होने पर तो फर्म केवल 5 श्रमिक रखकर ही अधिकतम आधिक्य कमा सकती है।

इस प्रकार हम जान गए कि MRP ही किसी साधन की माँग-वक्र होती है। अतः वे सभी कारक जिनका MRP पर प्रभाव पड़ता हो, साधन की माँग-वक्र को भी प्रभावित करेंगे। ये प्रभाव है :

i) **साधन की प्रतिस्थापनशीलता :** किसी साधन के बदले अन्य साधन प्रयोग में लाना जितना सहज होता है, उसकी माँग की लोच भी उतनी ही अधिक होती है।

ii) **वस्तु की माँग में परिवर्तन :** हम जानते है कि वस्तु की कीमत, और इस प्रकार उसकी सीमांत आगम, किसी साधन की MRP के स्तर को किस प्रकार निर्धारित करती है। अतः यदि किसी वस्तु की माँग में वृद्धि होती है, तो इसकी कीमत में भी वृद्धि होगी। उत्पाद माँग-वक्र के ऊपर की ओर खिसकने से सीमांत आगत-वक्र भी ऊपर उठा जाएगी। साधन की सीमांत भौतिक उत्पाद वक्र स्थिर रहने पर, अब तो उसकी सीमांत आगम उत्पाद वक्र ऊपर (या बाहर) की ओर खिसक जाएगी। यह साधन की माँग में वृद्धि का ही परिचायक है।

iii) फर्म की कुल उत्पादन लागत का कितना प्रतिशत अंश किसी साधन पर व्यय होता है। इस बात का भी उस साधन की माँग की लोचशीलता पर प्रभाव पड़ता है।

DIKSHANT IAS

11.4.1 साधन की बाज़ार माँग

Call us @7428092240

हम जानते ही हैं कि उत्पादन साधनों के अनेक वैकल्पिक प्रयोग हो सकते हैं। श्रम का सभी औद्योगिक गतिविधियों में प्रयोग होता है। तो फिर श्रम की बाज़ार माँग का स्वरूप क्या होगा?

हम बाज़ार माँग का निर्धारण दो चरणों में कर सकते हैं। पहले तो किसी वस्तु X का उत्पादन करने वाली सभी फर्मों द्वारा श्रम की माँग-वक्रें उनकी अपनी-अपनी MRP वक्रों द्वारा निर्धारित होती हैं। इन सभी MRP वक्रों का योग कर हम उद्योग X द्वारा श्रम की माँग ज्ञात कर सकते हैं। चित्र 11.2 में इसी X उद्योग व्यापि साधन माँग-वक्र का निर्धारण किया गया है। यह कार्य इन फर्मों की MRP का प्रत्येक मज़दूरी दर पर क्षैतिज योग द्वारा किया गया है। यह उद्योग MRP माँग-वक्र इसके घटकों की माँग-वक्रों की अपेक्षा बहुत धीमे-धीमे ही नीचे गिरती दिखाई देती है।

चित्र 11.2

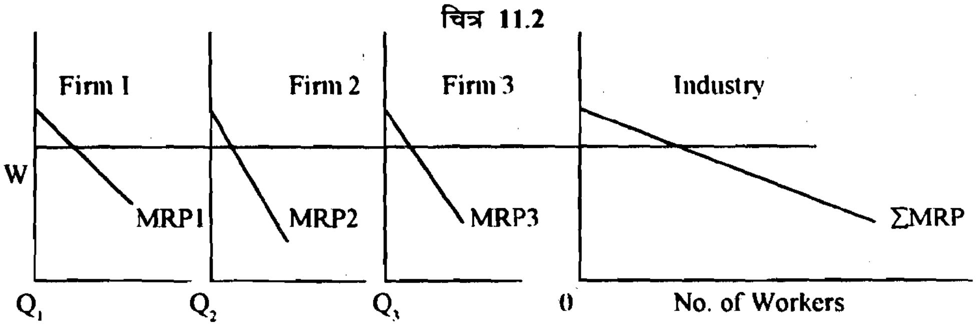

चित्र 11.2 के चार भाग हैं। पहले तीन भागों में उद्योग X के घटक फर्मों की MRP हैं। W_1 मज़दूरी दर पर ये घटक फर्में क्रमशः OA, OB तथा OC इकाई श्रम का प्रयोग करना चाहती हैं। इन इकाइयों का योग (OA + OB + OC) चौथे भाग में दिखाई गई उद्योग माँग OL_1 के समान ही है। इसी प्रकार हम प्रत्येक मज़दूरी दर पर सारे उद्योग श्रम की संकलित माँग-वक्र (=MRP) के सभी बिन्दु निर्धारित कर सकते हैं।

दूसरे चरण में हम विभिन्न उद्योगों, X_1, X_2 तथा X_3 आदि, के माँग-वक्रों को जोड़कर श्रम की समग्र माँग-वक्र बना सकते हैं। चित्र 11.3 में यही किया गया है। पहले तीन भाग X_1, X_2 और X_3 उद्योगों की श्रम की माँग दर्शा रहे हैं। चौथे भाग में उन माँगों का क्षैतिज योग कर अर्थव्यवस्था के श्रम माँग-वक्र का निर्धारण हुआ है।

चित्र 11.3

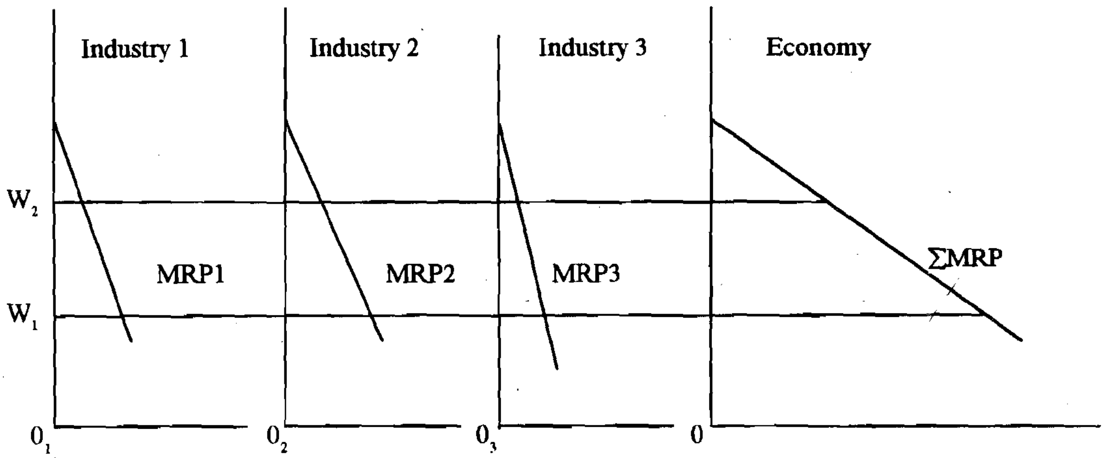

चित्र 11.3 में विभिन्न उद्योगों के मांगवक्र जोड़कर श्रम की समग्र मांग-वक्र देखाया गया है।

11.5 साधन आपूर्ति

बाज़ार में एक साधन की कीमत का निर्धारण माँग एवं आपूर्ति की शक्तियों से होता है। हमने भाग 11.1 से 11.4 तक एक साधन (श्रम) की माँग-वक्र का निरूपण किया हैं। आइए, अब उसकी आपूर्ति पर जुड़ी बातों पर भी चर्चा करें। जब हमारे पास माँग और आपूर्ति-वक्र होंगे तभी हम साधन के संतुलन स्तर पर कीमत, माँग व आपूर्ति ज्ञात कर पाएँगे। माँग-वक्रों की कुछ विशेषताओं का पहले ही स्पष्टीकरण कर देना अच्छा रहेगा। हम साधनों को चार वर्गों में बाँटते हैं। ये हैं : श्रम, भूमि, पूँजी और उद्यम। उनकी अपनी-अपनी अंतर्भूत विशेषताएँ हैं। यह कहना तो ठीक नहीं होगा कि श्रम की और भूमि की आपूर्तियाँ चीनी और गेहूँ की आपूर्तियों जैसी ही होगी। किसी वस्तु का क्रेता उस वस्तु को खरीदकर अपने साथ ले जाता है। किन्तु भूमि का उर्वरा शक्ति के खरीदार को भूमि पर आकर मेहनत करनी पड़ेगी। इसी तरह श्रम के खरीददार श्रमिक द्वारा किए गए काम की ही कीमत चुकाते हैं। यहाँ श्रमिक रोज़गारदाता द्वारा इंगित स्थान पर आकर काम पूरा कर वापस चला जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि वस्तुओं की खरीदारी में तो खरीदार उनका मालिक बन जाता है, किन्तु साधन सेवाओं के मामले में ऐसा नहीं होता। फसल की कटाई के बाद भूमि पुनः अपने मालिक के अधिकार में चली जाती हैं। श्रम का स्वामी स्वयं प्रयास करके ही श्रम की आपूर्ति को प्रभावी बना जाता है। फिर भी हम एक उत्पादन साधन के आपूर्ति-वक्र की परिभाषा दे सकते हैं। यदि समाज में कोई उत्पादन साधन उपलब्ध है तो उस साधन की आपूर्ति इस बात पर निर्भर करेगी कि बदले में उन्हें क्या आय मिलती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

11.5.1 साधन का प्रतिफल एवं उसकी आपूर्ति

किसी साधन को जितना अधिक प्रतिफल प्राप्त होता है, उसकी आपूर्ति भी उतनी ही अधिक होती है। चित्र 11.4 ऐसी ही एक साधन आपूर्ति-वक्र दिखा रहा है। प्रतिफल तो साधन के स्वामी को किसी अन्य व्यक्ति को उस साधन का प्रयोग करने की अनुमति देने के लिए प्रोत्साहित करता है। अतः जितना अधिक प्रतिफल दिया जाएगा, साधन स्वामी उस साधन का उतना अधिक प्रयोग करने की अनुमति देने को तैयार हो पाएगा।

चित्र 11.4

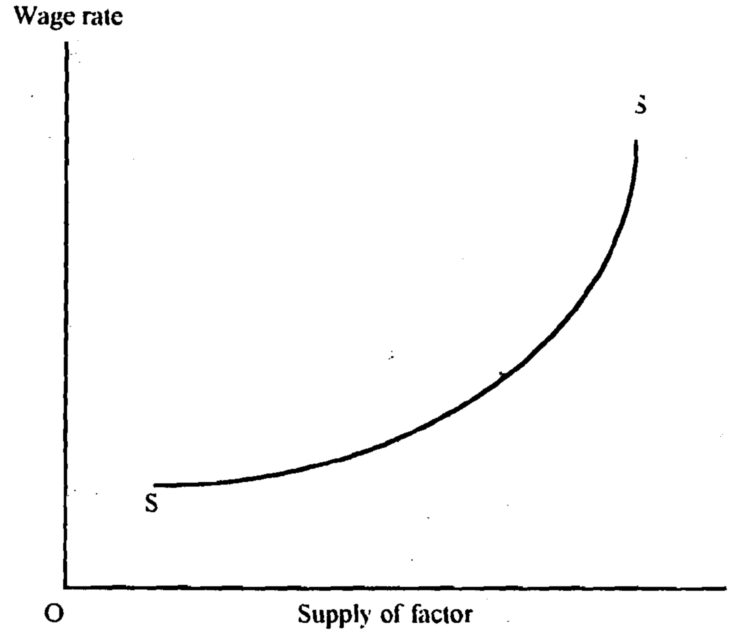

चित्र 11.4 एक साधन आपूर्ति वक्र दिखा रहा है।

अलग-अलग साधनों के प्रतिफलों को हम पृथक-पृथक नाम देते हैं। श्रम का प्रतिफल मज़दूरी, भूमि का लगान, पूँजी का ब्याज तो उद्यम का प्रतिफल लाभ कहा जाता है

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

11.5.2 पूर्ण उत्पाद वितरण प्रमेय (Product Exhaustion Theorem)

वितरण के सीमांत उत्पादिता सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक साधन इकाई को उस साधन की सीमांत उत्पादिता के समान प्रतिफल मिलता है। इसका निहित अर्थ यह भी रहता है कि किसी भी साधन की सभी इकाइयों को मिलने वाले प्रतिफल एक समान रहता है। हमारे चित्र 11.1 में दिखाए गए उद्धरण को एक बार याद कीजिए। बाज़ार में मज़दूरी की दर 40 रुपये बताई गई थी। यह प्रतिफल अन्तिम श्रमिक की MRP के समान था। हम जानते हैं कि प्रथम श्रमिक की उत्पादन का मूल्य तो 200 रुपये था, दूसरे के उत्पादन का मूल्य 160 रुपये था, आदि। सीमांत आगम उत्पाद के समान प्रतिफल का अर्थ यह कदापि नहीं होगा कि प्रत्येक इकाई को उसकी अपनी MRP के समान प्रतिफल मिलता है। प्रत्येक इकाई को अपनी ही तरह की अन्तिम इकाई के सीमांत आगम उत्पाद के समान प्रतिफल मिलता है। हमने कुल आगम एवं श्रम भुगतान के बीच के अंतर को उत्पादक का आधिक्य (producer's surplus) बताया था। यह सारा आधिक्य अकेले उत्पादक को नहीं मिलता। इसी में से उसे अन्य तीन साधनों को प्रतिफल देना पड़ता है।

आइए इसी भाग में हम वितरण के सीमांत उत्पादिता सिद्धांत के एक अत्यंत साफ-सुथरे परिणाम पर विचार करें। यह परिणाम पैमाने के स्थिर प्रतिफलों की मान्यता पर आधारित है। आप पहले की कॉब डगलस (Cobb-Douglas) उत्पादन फलन (production function) से परिचित हैं। अर्थात् $Q = AL^{\alpha} K^{\beta}$ जहाँ कि $\alpha + \beta = 1$

यहाँ K = पूँजी

L = श्रम

Q = उत्पादन

A = तकनीकी (Constant)

ऐसे फलन में श्रम एवं पूँजी की सीमांत उत्पादिता क्रमशः MP_1 तथा MP_K होगी। इनके मान ज्ञात करने के उद्देश्य से हम उत्पादन फलन का क्रमशः श्रम एवं पूँजी से अवकलन (differentiate) करते हैं। अतः

$$MP_L = \delta Q / \delta L = \alpha A L^{\alpha-1} \beta K^{\beta}; \text{ तथा}$$

$$MP_K = \delta Q / \delta K = \alpha A L^{\alpha} \beta K^{\beta-1}$$

मज़दूरी की दर (=W) श्रम की सीमांत उत्पादिता MP_L तथा पूँजी का प्रतिफल दर (= r) पूँजी की सीमांत उत्पादिता MP_K के समान होगी। अतः समग्र मज़दूरी राशि $MP_L \times L$ और समग्र पूँजी प्रतिफल $MP_K \times K$ के समान होगी।

अतः हम कह सकते हैं :

श्रम का कुल उत्पादन का अंश $= L \times \alpha A L^{\alpha-1} K^{\beta} = \alpha A L^{\alpha} K^{\beta}$

पूँजी का कुल उत्पादन का अंश $= K \times \beta A L^{\alpha} K^{\beta} = \beta A L^{\alpha} K^{\beta}$;

यहाँ केवल श्रम एवं पूँजी का प्रयोग हुआ है। आइए अब इन दोनों संसाधनों के उत्पादन अंशों का योग करें:

श्रम का अंश + पूँजी का अंश $= \alpha A L^{\alpha} K^{\beta} + \beta A L^{\alpha} K^{\beta}$

$$= A L^{\alpha} K^{\beta} + (\alpha + \beta)$$

$$= A L^{\alpha} K^{\beta} = Q$$

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

हम देखते हैं इन दोनों साधनों के अंशों का कुल योग कुल उत्पादन के समान ही है। इसी कारण इस विचार को पूर्ण उत्पाद वितरण प्रमेय का नाम दिया जाता है, अर्थात् यदि प्रत्येक साधन की प्रत्येक इकाई को उस साधन की सीमांत उत्पादिता के समान प्रतिफल दिया जाए तो सारा उत्पादन पूरी तरह बँट जाता है, कुछ भी बचा नहीं रहता।

11.5.3 अपूर्ण वस्तु बाज़ार में साधन प्रतिफल एवं रोज़गार

अभी तक हम वस्तु एवं साधन बाज़ारों में पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता के आधार पर ही विचार कर रहे थे, पर, आइए अब वस्तु बाज़ार की पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता में ढील देकर उसके परिणामों को समझने का प्रयास करें। हम जानते हैं कि पूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु का प्रत्येक उत्पादक बाज़ार कीमत को अपनाता है इससे उसका माँग-वक्र X-अक्ष के समांतर रहता है और वही वक्र कीमत, औसत आगम और सीमांत आगम-वक्र भी है। परिणामस्वरूप VMP एवं MRP वक्र भी एक-दूसरे के समान रहती हैं। हमने यही बात चित्र 11.1 में दर्शाई थी। किन्तु, यदि वस्तु बाज़ार में किसी प्रकार की अपूर्णता आ जाए तो फिर माँग-वक्र X-अक्ष के समांतर न होकर वह दाहिनी ओर ढलवा हो जाती है। फिर तो उससे जुड़ी सीमांत आगम-वक्र भी पूरी तरह उसके नीचे ही रहेगी। यह Y-अक्ष एवं औसत आगम-वक्र के मध्य में स्थित होगी। अब सीमांत आगम उत्पाद की क्या स्थिति होगी? एक अतिरिक्त मज़दूर रखने से उत्पादन में वृद्धि होगी। उत्पादन बढ़ने पर तो सारा उत्पादन ही पहले की अपेक्षा कम कीमत पर बेचना पड़ेगा। अब कुल आगम की वृद्धि की दर पहले की अपेक्षा कम रह जाएगी। अतः अब तो VMP के स्थान पर MRP ही इस बात का निर्णय करेगी कि उस साधन का प्रयोग कहाँ तक लिया जाए। हमारा चित्र 11.5 इसी अवस्था को दर्शा रहा है।

चित्र 11.5

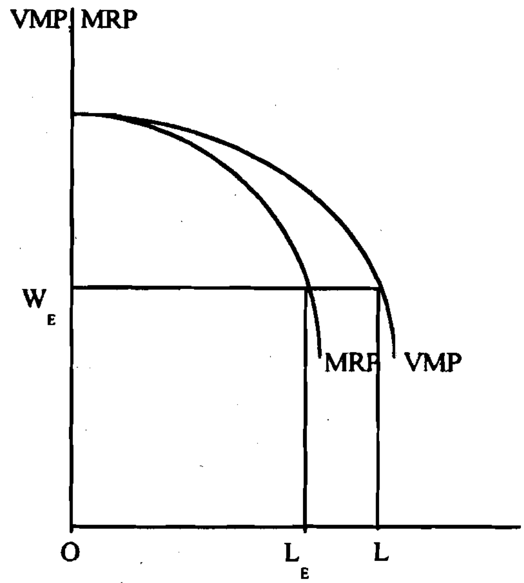

चित्र 11.5 यह दर्शाता है कि वस्तु बाज़ार की अपूर्णता के परिणामस्वरूप MRP की पूरी तरह VMP से नीचे ही रह जाती है। इसी कारण जहाँ प्रतियोगी वस्तु बाज़ार में हमारा उत्पादक OL_C मात्रा में श्रम इकाइयों का प्रयोग कर रहा था वहीं वस्तु बाज़ार की अपूर्णता के कारण अब MRP के आधार पर यह निर्णय होगा कि श्रम की कितनी इकाइयों का प्रयोग की जाएँ। इब केवल OL_N श्रम का प्रयोग होगा।

स्पष्ट है कि वस्तु बाज़ार में अपूर्णता के कारण श्रम का रोज़गार कम हो जाता है। पर, इस अपूर्णता का मज़दूरी की दर पर क्या प्रभाव होगा? एक बार फिर इसी चित्र पर ध्यान दें। यदि वस्तु बाज़ार प्रतियोगी होता तो OL_N श्रमिकों को OW_1 दर से मज़दूरी मिलती, किन्तु अपूर्णता के कारण उन्हें OW से ही संतोष करना पड़ता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस प्रकार हम पाते हैं कि वस्तु बाज़ार की अपूर्णता, जिसके पीछे श्रमिकों का कोई हाथ नहीं होता, के कारण श्रम पर दौहरी मार पड़ती है। श्रमिकों को न केवल रोज़गार की तंगी अनुभव होती है बल्कि उन्हें कम मज़दूरी पर भी कार्य करने को बाध्य होना पड़ता है। यह घटनाक्रम श्रम के शोषण का अभ्यास करता है यह तर्क सभी साधनों के प्रयोग एवं प्रतिफलों पर शासन रूप से लागू होता है।

नोट : साधन बाज़ार की अपूर्णताओं के प्रभावों का विश्लेषण हम अलग-अलग साधनों की कीमत निर्धारण के संदर्भ में करेंगे। श्रम के विषय में इन मुद्दों पर भाग 11.10 में विचार किया

11.6 वितरण के सीमांत उत्पादिता सिद्धांत की सीमाएँ

कई बार पूर्ण उत्पादन प्रमेय के आधार पर यह दावा किया जाता है कि सीमांत उत्पादिता सिद्धांत के अनुसार सारा उत्पादन पूरी तरह बाँट दिया जाता है—कुछ भी शेष नहीं बचता। अतः वितरण की यह विधि से न्यायपूर्ण भी मानी जानी चाहिए, क्योंकि कुछ शेष नहीं बचने का अर्थ होगा कि किसी का शोषण भी नहीं हुआ। पर इस प्रकार के लेखांकन को सिद्धांत की न्यायपूर्णता का आधार नहीं बनाया जा सकता। ये प्रतिफल साधनों को नहीं उनके स्वामियों का ही प्राप्त होते हैं।

यह सिद्धांत हमें किसी भी प्रकार नहीं बता पाता कि MRP के आधार पर प्रतिफल पाने वाला व्यक्ति क्या सचमुच में उस प्रतिफल को पाने का अधिकारी भी है अथवा नहीं। उदाहरणतः, मान लो कि एक एकड़ भूमि का लगान 2000 रुपये है। जिस भी किसी का उस एक एकड़ भू-खंड पर नियंत्रण

होगा, उसे 2000 रुपये प्रतिफल मिल जाएगा। पर क्या वह व्यक्ति वास्तव में इस रकम को पाने का अधिकारी है? हो सकता है, उस भू-स्वामी ने धोखाधड़ी करके उस जमीन् पर कब्ज़ा किया हो, या भाड़े के गुंडों द्वारा किसी से वह भू-खंड हथियाया हो, या फिर नदी के पार की सरकारी ज़मीन पर नाजायज़ कब्ज़ा किया हुआ हो।

एक अन्य बात, MRP हमें यह नहीं बताती कि भूमि पर कोई व्यक्ति कितनी मेहनत कर रहा है। यहाँ तो बस MRP = MPP × MR होता है, पर MPP इस बात पर भी निर्भर है कि कितने श्रमिक काम कर रहे हैं– जितने अधिक श्रमिक, MPP उतनी ही कम। अतः MRP भी कम रह जाएगी। इस प्रकार MRP उन श्रमिकों के प्रयास या मेहनत को भली प्रकार नहीं दिखा पाती जिन्हें इसके आधार पर मेहनताना या प्रतिफल दिया जाता है।

यही नहीं, जैसे हमने भाग 11.5 में दिखाया था, रोज़गार एवं प्रतिफल, दोनों ही वस्तु बाज़ार के घटनाक्रम से भी प्रभावित होते हैं। मान लो कि किसी फर्म के कर्मी बहुत मेहनत करते हैं। फर्म का व्यवसाय बहुत फलता-फूलता है और वह अपने उद्योग में कुछ शक्तिशाली बन जाती है। फिर तो इसकी औसत एवं सीमांत आगत-वक्र दाहिनी ओर ढलवा हो जाएँगे। परिणामस्वरूप, MRP अब VMP से नीचे रह जाएगी। फर्म अपेक्षाकृत कम श्रमिकों को पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में, कम मज़दूरी पर काम देना ही लाभप्रद मानेगी। क्या श्रमिकों के पूर्ण मनोयोग से किए गए प्रयासों का यही पुरस्कार होगा? किसी भी अन्य सिद्धांत की मुख्य मान्यताएँ हैं पैमाने के स्थिर प्रतिफल, सभी बाज़ारों में पूर्ण प्रतियोगिता और अर्थव्यवस्था में बाह्यताओं की अनुपस्थिति। किन्तु क्या आज के विश्व में ये तीनों मान्यताएँ एक साथ कहीं पूरी हो जाती हैं?

वैसे भी यह विचार प्रतिफल पाने वाले व्यक्तियों को उत्पादन में एक आगत (Input) मात्र मान लेता है। फिर बड़े बूढ़ों एवं कमज़ोर व लाचार व्यक्तियों का क्या होगा? उनकी सीमांत उत्पादिता शून्य प्रायः रह जाएगी– फिर तो उनकी आय भी शून्य हो जाएगी। सामाजिक उत्पादन को समाज के घटकों के बीच बाँटने की इस प्रकार की हिसाब-किताब पर आश्रित विधि को न्यायपूर्ण मानना और सामाजिक आधार पर उचित ठहरा पाना संभव नहीं है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अतः हम निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि सीमांत उत्पादिता सिद्धांत हमें व्यवस्था की कार्यपद्धति एवं नीति निर्धारण प्रक्रिया के विषय में कुछ जानकारी अवश्य प्रदान करती है। यद्यपि इसमें कई त्रुटियाँ हैं, फिर भी जब तक वितरण का कोई अन्य बेहतर प्रतिमान विकसित नहीं हो जाता, इसका प्रयोग करते रहना ही हितकर रहेगा।

बोध प्रश्न 2

1) किसी साधन को काम पर रखते हुए फर्म सीमांत उत्पाद की किस अवधारणा को ध्यान में रखती है? (एक वाक्य में बताइए)

....

....

2) क) यदि MRP>W तो फर्म के विस्तार से लाभ में वृद्धि/कमी आएगी।

....

ख) यदि MRP<W तो रोज़गार में संकुचन से फर्म की हानि में कमी/वृद्धि होगी।

....

3) बताइए कि ये कथन सत्य (T) है अथवा असत्य (F) :

   क) पूर्ण उत्पादन वितरण प्रमेय (Product Exhaustion Theorem) पैमाने के बढ़ते प्रतिफलों की दशा में भी मान्य होती है।

   ख) बाह्यताओं की उपस्थिति में भी पूर्ण उत्पादन वितरण प्रमेय वैध रहता है।

4) फर्म की VMP इसकी श्रम के लिए माँग/आपूर्ति-वक्र बन सकती है तथा यह श्रम के सीमांत/औसत उत्पाद एवं फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु की कीमत/लागत पर निर्भर होती है। (इस वाक्य में अनुपयुक्त शब्दों को काटकर इसका तर्क संगत स्वरूप लिखें)

   ....

   ....

11.7 मज़दूरी निर्धारण

इस भाग में हम मज़दूरी की दर के निर्धारण पर चर्चा कर रहे हैं। इससे पहले कि हम उस संदर्भ में श्रम की माँग एवं आपूर्ति के बारे में बात करें, कुछ अवधारणाओं की परिभाषा जानना आवश्यक है:

i) **मज़दूरी :** यह श्रम के मेहनताने का सामान्य नाम है।

ii) **वेतन :** दफ्तरों में कार्य करने वालों की मज़दूरी को वेतन कहा जाता है। सामान्यतः मासिक वेतन की चर्चा होती हैं, कहीं-कहीं वार्षिक वेतन की बात भी की जा सकती है।

iv) **नकद एवं वस्तु रूप :** सामान्यतः मज़दूरी का भुगतान नकद होता है। किन्हीं परिस्थितियों में कुछ विशेष वर्ग के श्रमिकों को खाद्यान्न आदि के रूप में भी काम का मेहनताना दिया जा सकता है। जैसे, अकाल सहायता कार्यों में लगे श्रमिक। इसी प्रकार घरेलू नौकरों के वेतन में रोटी, कपड़ा एवं रहने की जगह भी शामिल रहती हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

v) **कार्यानुसार मज़दूरी :** मज़दूरों को उनके काम के हिसाब से मज़दूरी दी जा सकती है। यहाँ प्रत्येक मज़दूर द्वारा किए गए कार्य का पृथक मापन संभव रहता है। पर सामान्यतः कार्य की गुणवत्ता का आकलन की आवश्यकता नहीं रहती। मज़दूरों पर निगरानी रखने की आवश्यकता नहीं रहती।

vi) **समयानुसार मज़दूरी :** यहाँ मज़दूर द्वारा कार्य पर लगाए समय के अनुसार भुगतान होता है कार्य की गुणवत्ता महत्त्वपूर्ण होती है, किन्तु प्रत्येक कारीगर द्वारा किए गए कार्य का आकलन संभव नहीं होता। इसीलिए उन पर निगाह जरूरी हो जाता है।

vii) **मौद्रिक मज़दूरी :** मज़दूरी के रूप में प्राप्त नकद राशि।

viii) **वास्तविक मज़दूरी :** मज़दूरी की क्रय शक्ति - अन्ततः किसी व्यक्ति आमदनी की कसौटी उस राशि द्वारा प्राप्य वस्तुओं - सेवाओं की मात्रा ही होती है। किन्तु वास्तविक मज़दूरी में रोज़गार से संबंधित कुछ अन्य सुविधाएँ (जैसे चिकित्सा, आवास, बच्चों की शिक्षा आदि) भी शामिल की जाती है।

11.7.1 श्रम एवं श्रम की आपूर्ति

श्रम पदार्थों को वस्तुओं में परिवर्तित करने के निमित्त हुआ मानवीय प्रयास ही है। यह परिवर्तन *भौतिक* हो सकता है - जैसे कपास से कपड़े का निर्माण। परिवर्तन का स्वरूप *स्थानांतरण* भी हो

सकता है जैसे कश्मीर में पैदा हुए सेब केरल के उपभोक्ताओं को सुलभ कराना। *समयांतरण* भी इसी परिवर्तन का तीसरा स्वरूप है– गर्मी में काटी गई फसलों के अनाज को महीनों बाद सर्दियों में भी उपभोग के लिए सुलभ रखना इसी का उदाहरण होगा। इन तीनों प्रकार के परिवर्तनों से उपयोगिता की वृद्धि होती है। इसी से इन्हें उत्पादन की क्रियाएँ कहा जाता है– इनमें बनाना, निर्माण करना, भण्डारण और परिवहन सभी कार्य सम्मिलित रहते हैं। इन कार्यों में हुए मानवीय प्रयास को ही श्रम कहा जाता है। कुछ प्रकार के श्रम के लिए भुगतान होता है पर किन्हीं श्रमों का कोई भुगतान या पारिश्रमिक नहीं चुकाया जाता– परिवार के सदस्यों द्वारा पारिवारिक व्यवसाय में हाथ बँटाने पर तो कदाचित् मज़दूरी का आकलन भी नहीं होता।

समाज में श्रम की कुल आपूर्ति निम्न तत्त्वों पर निर्भर है :

i) जनसंख्या के आकार एवं आयु अनुसार विभाजन पर, और

ii) श्रमशक्ति के मापदण्ड और उसमें भागीदारी।

इस प्रकार श्रम की आपूर्ति का निर्धारण जटिल सामाजिक, आर्थिक, जैवशास्त्रीय, यहाँ तक की कानूनी शक्तियाँ मिलजुल कर करती है।

11.7.2 एक व्यक्ति द्वारा श्रम की आपूर्ति

सामान्यतः आशा रहती है कि अधिक मज़दूरी के लालच में कोई भी व्यक्ति ज़्यादा (घंटों तक) काम करने को तैयार हो जाएगा। किन्तु यह मत कई बार इस बात को अनदेखी कर देता है कि श्रमिक को श्रम की आपूर्ति करते समय स्वयं वहाँ उपस्थित रहना पड़ता है। अपनी कार्य क्षमता को पुनः तरोताज़ा करने के लिए उसे कुछ देर तक आराम की भी जरूरत होती है। अतः यह अपेक्षा करना अनुचित होगा कि कोई भी व्यक्ति दिनों-दिन चौबीसों घंटे काम करता रह सकता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 11.6

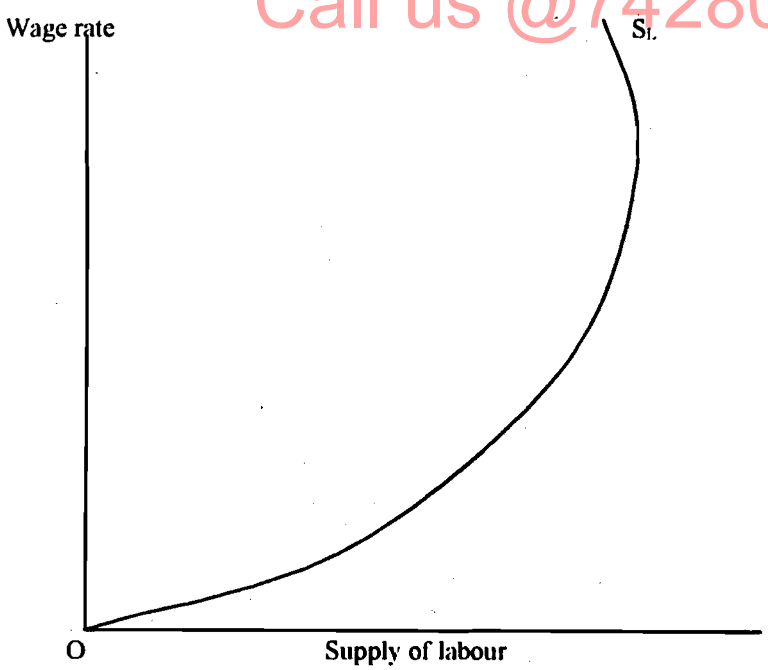

चित्र 11.6 दर्शाता है कि शुरू में कम मज़दूरी दर पर श्रमिक मज़दूरी में वृद्धि से उत्साहित होकर अधिक घंटों कार्य करता है। किन्तु एक अच्छी खासी मज़दूरी दर मिलने पर तो और वृद्धि होने पर वह पहले की अपेक्षा आराम को अधिक महत्त्व देने लगता है—आखिर आराम ही नहीं मिलेगा तो आदमी कमाता क्यों है? अतः वह कम काम करता है।

सामान्यतः व्यक्ति प्रतिदिन कुछ ही घंटे कार्य करता है। बाकी समय वह अपनी कार्य क्षमता को पुनः जाग्रत करने में लगाता है। अतः बहुत कम प्रति घंटा मज़दूरी की दर की तुलना में उच्च दर श्रमिक को अपेक्षाकृत अधिक समय तक कार्य करने को प्रोत्साहित करेगी। किन्तु यदि मज़दूरी दर पहले ही (पर्याप्त) ऊँची हो तो वही व्यक्ति मज़दूरी बढ़ने पर अधिक काम की अपेक्षा अधिक आराम को पसंद कर सकता है। आखिर इसी प्रकार तो वह अपनी मेहनत के फलों को भोग पाता है। इस कारण से व्यक्ति की श्रम आपूर्ति-वक्र किसी न किसी ऊँचे मज़दूरी स्तर पर पीछे की ओर मुड़ जाती हैं (चित्र 11.6)। जिस मज़दूरी दर पर यह पीछे की तरफ मुड़ता है, वह प्रत्येक मज़दूर की अपनी भौतिक एवं मानसिक दशा पर ही निर्भर करता है।

11.7.3 श्रम की बाज़ार आपूर्ति (Market Supply of Labour)

जिस प्रकार हम किसी वस्तु की बाज़ार में माँग या आपूर्ति का निर्धारण करते हैं उसी प्रकार विभिन्न व्यक्तियों की श्रम आपूर्ति-वक्र के क्षैतिज योग द्वारा बाज़ार श्रम आपूर्ति ज्ञात कर सकते हैं। चित्र 11.7 में 3 मज़दूरों की श्रम आपूर्ति-वक्रों को S_1, S_2 एवं S_3 द्वारा दिखाया गया है। इन्हीं का योगफल में बाज़ार श्रम आपूर्ति दिखा रहा है।

चित्र 11.7

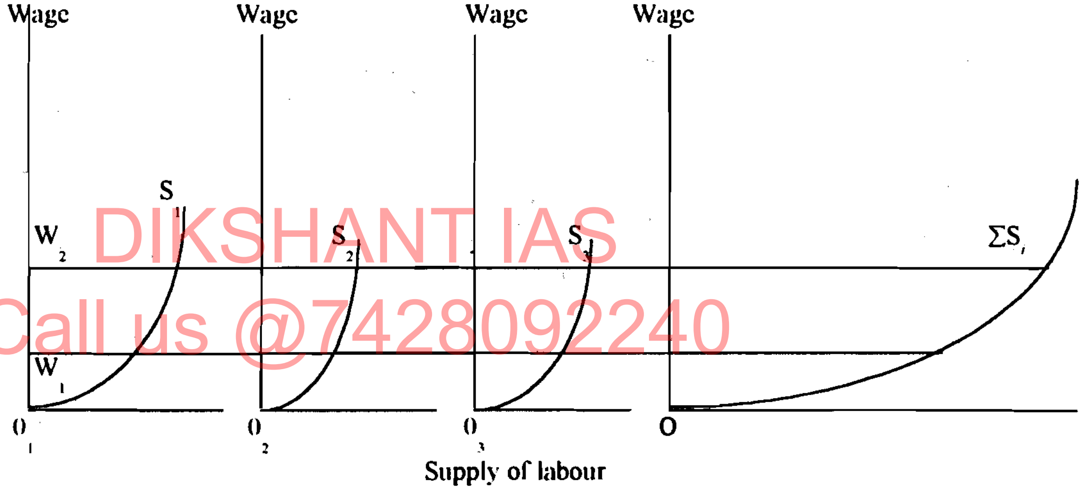

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 11.7 मजदूरों की आपूर्ति वक्रों को दिखाता है।

11.8 श्रम की अल्पकालीन माँग

उत्पादकों को उपभोक्ताओं की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उत्पादन हेतु श्रम की सेवाओं की आवश्यकता होती है। यदि उपभोक्ता वस्तु X की अधिक मात्रा की माँग करते हैं तो इसके उत्पादकों को उत्पादन वृद्धि कर अधिक लाभ कमाने का अवसर दिखाई पड़ता है। वे तत्काल (अल्पकाल में) मज़दूरों से कुछ अधिक देर तक (overtime) काम करवाकर अतिरिक्त बाज़ार माँग को पूरा करने का प्रयास करेंगे। (यदि बाज़ार में वह माँग वृद्धि स्थायी स्वरूप धारण कर ले, तो वे अपनी उत्पादन क्षमता बढ़ाने–नयी मशीनें आदि लगाने का विचार भी कर सकते हैं, पर यह तो दीर्घकाल में ही संभव होगा)। दूसरी ओर यदि किसी उद्योग के उत्पादन की माँग में कुछ कमी आती है तो उत्पादक कुछ अस्थायी मज़दूरों की छँटनी कर सकते हैं– कम से कम अधिक देर तक (overtime) काम तो अवश्य बंद हो जाएगा। दोनों ही अवस्थाओं में बाज़ार में वस्तुओं की माँग की दशाओं से ही श्रम की माँग के स्तर का निर्धारण होता है। इसी कारण हम कहते हैं कि श्रम की माँग तो व्युत्पन्न माँग (derived demand) होती है।

एक उत्पादक उतने ही श्रमिकों को काम पर लगाता है जो उसकी लागत की अपेक्षा कुल आगम में अधिक वृद्धि करते हैं। आप जानते ही हैं कि इस प्रकार की आगम वृद्धि को हमने पहले ही सीमांत आगम उत्पाद (MRP) का नाम दे रखा है। इसी प्रकार लागत वृद्धि को सीमांत मज़दूरी लागत (Marginal Wage Cost-MWC) कहा जाता है। हमारा सीमांत उत्पादिता सिद्धांत बताता है कि उत्पादक तब तक और श्रमिकों को काम देता रहेगा जब तक कि MRP का आकार MWC से अधिक रहता है। उसके संतुलन का निर्धारण MRP एवं MWC की समानता से होता है यथा : MRP = MWC

हम जानते ही हैं कि MRP श्रम की सीमांत भौतिक उत्पादिता एवं वस्तु बाज़ार में सीमांत आगम पर निर्भर करती है (देखे भाग 11.4)

यदि श्रम बाज़ार में पूर्ण प्रतियोगिता हो तो हमारा उत्पादक जितने श्रमिकों को चाहे बाज़ार मज़दूरी दर पर काम पर रख सकता है। अतः MWC बाज़ार मज़दूरी दर W के समान होगी। इसी से हम कहते हैं कि उत्पादक का संतुलन तभी होता जबकि पर MRP = W

यदि MRP > W हो तो उत्पादक और अधिक मज़दूर लगाकर और ज़्यादा मुनाफा कमा सकता है। यदि MRP < W तो वह मज़दूर घटाकर अपना घाटा कम कर पाएगा। जब MRP = W हो तो वह इस बिन्दु से दूर हटना अपने हितों के अनुकूल नहीं पाता। इस तरह से नीचे की ढलवां MRP वक्र की श्रम की माँग-वक्र का रूप धारण कर लेती है। यह दर्शाती है कि अगर मज़दूरी दर अधिक हो तो श्रम की माँग कम की जाएगी। दूसरी ओर मज़दूरी गिरने पर उत्पादक अधिक श्रमिकों को काम पर रखना चाहेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अन्य साधनों की मात्रा स्थिर रख अधिकारिक श्रम के प्रयोग के कारण उसकी सीमांत भौतिक उत्पादिता में कमी आने लगती है। इसी कारण MPP के साथ-साथ MRP भी दाहिनी ओर ढलवा हो जाती है। इसका कारण साधन के ह्रासमान प्रतिफल को ही माना जा सकता है। अतः, जैसे-जैसे MPP कम होती है, MRP = MPP × MR भी कम होने लगती है।

यदि वस्तु बाज़ार में कोई अपूर्णता हो, फिर तो MR भी स्थिर नहीं रह पाता। MR वक्र भी ह्रासमान AR वक्र से नीचे रहने लगता है। फिर तो MRP = MPP × MR और भी तेज़ी से नीचे गिरने लगती हैं।

11.8.1 श्रम बाज़ार : एक फर्म की श्रम की माँग से श्रम की बाज़ार माँग का निर्धारण

बाज़ार में श्रम की कुल माँग अथवा बाज़ार माँग का निर्धारण भाग 11.4.3 में वर्णित विधि से हो जाता है, अर्थात् विभिन्न फर्मों की माँगों को जोड़कर हम श्रम की बाज़ार माँग ज्ञात कर सकते हैं। पर हमें एक तथ्य का प्रावधान करना होगा : जैसे मज़दूरी दर में कमी आती है, सभी फर्में अधिक श्रमिकों को काम पर लगाना चाहती हैं। इस बढ़े हुए रोज़गार के फलस्वरूप उत्पादन में व्यापक वृद्धि होगी। यद्यपि पूर्ण प्रतियोगिता में कोई भी उत्पादक व्यक्तिगत रूप से बाज़ार माँग पर चाहे जितना उत्पादन बेच सकता है पर जब सभी उत्पादक ज़्यादा माल बेचना चाहेंगे तो बाज़ार आपूर्ति-वक्र बाहर की ओर खिसक जाएगी। इसके कारण बाज़ार कीमत घट जाएगी। अतः उत्पादन में वृद्धि सभी उत्पादकों को पहले से कम कीमत पर अपना माल बेचने को बाध्य कर देती हैं। MRP = MPP × MR तेज़ी से गिरने लगती हैं। इस कारण किसी भी उद्योग की श्रम के लिए माँग-वक्र उसकी घटक फर्मों की माँग-वक्रों के क्षैतिज योग की अपेक्षा कहीं अधिक तीखे ढाल वाली होगी।

11.8.2 श्रम की माँग की लोचशीलता

श्रम की माँग की मज़दूरी की दर के प्रति संवदेनशीलता ही श्रम की माँग की लोच कहलाती है।

$$E = \frac{\text{श्रम की माँग में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{मज़दूरी दर में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

उपभोक्ता की किसी वस्तु के लिए माँग की भाँति ही यदि $E > 1$ तो हम श्रम की माँग को लोचशील कहते हैं। यदि $E < 1$ तो हम इसे लोचशील कहेंगे।

यदि श्रम की माँग की लोच एक (इकाई) हो तो फिर कुल मज़दूरी (Wage Bill) स्थिर रहती है। $E > 1$ होने पर मज़दूरी दर में गिरावट से कुल मज़दूरी में वृद्धि होती हैं जबकि $E < 1$ होने पर मज़दूरी दर में गिरावट के साथ-साथ कुल मज़दूरी कम हो जाती है।

11.9 माँग एवं आपूर्ति : बाज़ार संतुलन

11.9.1 उत्पाद एवं श्रम, दोनों ही बाज़ारों में पूर्ण प्रतियोगिता

श्रम सेवाओं के क्रेता एवं विक्रेता मिलकर श्रम बाज़ार की रचना करते हैं। श्रम के माँग एवं आपूर्ति-वक्र मिलकर बाज़ार के संतुलन का निर्धारण करते हैं। हमने भाग 11.7.3 में श्रम की आपूर्ति-वक्र का निर्धारण किया है। भाग 11.8.1 में हमने दाहिनी ओर ढलवा श्रम का माँग-वक्र प्राप्त किया हैं। हम चित्र 11.8 में माँग एवं आपूर्ति को एक साथ ले आए हैं। ये बिन्दु E पर एक-दूसरे को काटते हैं। अतः OW मज़दूरी दर पर श्रम की मात्रा OL का क्रय-विक्रय होता है। इसी बाज़ार मज़दूरी दर के आधार पर विभिन्न उत्पादक अपने-अपने MRP को MWC के समान कर अपने उत्पादन एवं रोज़गार का निर्धारण कर सकते हैं, जैसा कि हमने भाग 11.8 में उल्लेख किया है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 11.8

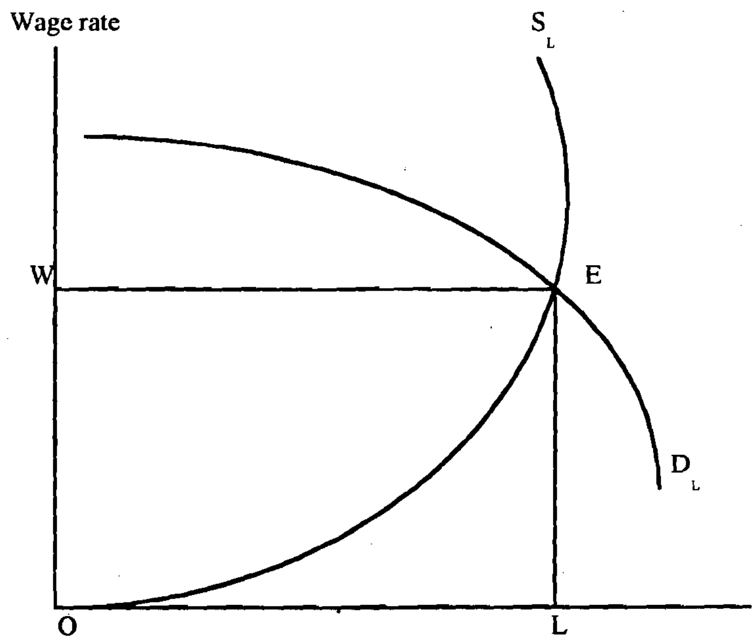

चित्र 11.8 माँग एवं आपूर्ति के संतुलन दिखाता है। अतः OW मज़दूरी दर पर श्रम की मात्रा OL में निर्धारण होता है।

यह ध्यान रहे कि हम अभी तक श्रम बाज़ार के बारे में पूर्ण प्रतियोगिता की पूर्व धारणा किए हुए हैं। प्रश्न यह उठता है कि यदि श्रम बाज़ार पूर्ण प्रतियोगिता की कसौटी पर खरा नहीं उतरे तो उसका क्या परिणाम होगा? फिर, श्रम बाज़ार प्रतियोगिता से दूर क्यों हट जाता है? इस प्रकार के प्रश्नों पर हम भाग 11.10 में विचार करेंगे।

बोध प्रश्न 3

1) आय प्रभाव से घंटों में श्रम की आपूर्ति बढ़ती/घटती है। जबकि प्रतिस्थापन प्रभाव से कार्य के घंटे बढ़ते/घटते हैं।

....

....

2) मज़दूरी वृद्धि का कुल प्रभाव निर्भर हैं :

क) आय प्रभाव पर,

ख) प्रतिस्थापन के प्रभाव पर, या

ग) आय एवं प्रतिस्थापन प्रभावों के सापेक्ष महत्त्व पर।

....

....

DIKSHANT IAS

3) व्यक्तिगत श्रम आपूर्ति-वक्र की पीछे की ओर ढलवाँ होता है। क्यों? 50 शब्दों में व्याख्या करें।

Call us @7428092240

....

....

....

....

....

....

4) एक वाक्य में सीमांत मज़दूरी लागत का विचार समझाइए।

....

....

....

....

....

....

5) कुल मज़दूरी में परिवर्तन क्या होगा, यदि मज़दूरी में वृद्धि हो जाए यथा :

क) श्रम की माँग बेलोच हो?

....

....

....

....

ख) श्रम की माँग लोचशील हो?

....

....

ग) श्रम की माँग की लोच एकिक (unit elasicity) हो?

....

....

11.10 बाज़ार की अपूर्णताएँ तथा मज़दूरी की दर

बाज़ार में कई प्रकार की मज़दूरी हो सकी हैं :

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1) संभव है कि वस्तु बाज़ार में अपूर्णता हो – अर्थात् हमारा उत्पादक अन्यथा स्पर्धी उत्पादकों में से एक न होकर अपनी अलग पहचान रखता हो।

2) श्रम बाज़ार में भी अपूर्णताएँ संभव हैं। इसके कई स्रोत हो सकते हैं : हम जानते हैं कि आज का उत्पादक 19वीं सदी के छोटे से रोज़गारदाता जैसा नहीं है। अतिविशाल वित्तीय संसाधनों पर नियंत्रण और बड़े पैमाने पर उत्पादन करने वाला व्यक्ति संभवतः किसी क्षेत्र में एकमात्र रोज़गारदाता ही हो या फ़िर गिने-चुने रोज़गारदाताओं में से एक हो। अतः बाज़ार में उसकी शक्ति किसी एक रोज़गार की तलाश कर रहे मज़दूर की तुलना में बहुत ही अधिक होगी।

रोज़गारदाताओं की बाज़ार नियंत्रण शक्ति का सामना करने के ध्येय से ही श्रमिक संघों का गठन हुआ है। इन संघों की उपस्थिति बाज़ार में कुछ दूसरी तरह की अपूर्णताओं का कारण बन जाती है।

इस भाग में हम इन सभी संभावनाओं और इनके रोज़गार एंव मज़दूरी की दर के स्तर पर प्रभावों का विवेचन करेंगे।

11.10.1 वस्तु बाज़ार की अपूर्णताएँ

बाज़ार शक्ति होते हुए भी एक उत्पादक बाज़ार कीमत पर मनमानी मात्रा में माल नहीं बेच पाता– ज़्यादा माल बेचने के लिए उसे कीमत घटानी ही पड़ती है। अतः उसके उत्पाद की माँग-वक्र दाहिनी ओर ढलवा हो जाती है और अधिक श्रमिकों को रखने से उत्पादन में बढ़ोतरी भी अवश्य होती है। उत्पादक को अब बड़ी विलक्षण स्थिति का सामना करना पड़ता है– उसे न केवल अतिरिक्त उत्पादन के लिए कम कीमत स्वीकार करनी होगी बल्कि उसका सारा उत्पादन ही कम कीमत पर बिक पाता

है। अतः उसके लिए निर्णय प्रक्रिया की दृष्टि से VMP पूरी तरह अनुपयोगी हो जाती है। उसे अब MRP के आधार पर निर्णय लेने पड़ते हैं। अतः उसकी श्रम की माँग का VMP से नहीं बल्कि MRP से ही पता चलता है। यह MRP वक्र VMP से नीचे ही रहती हैं। अतः, बाज़ार मज़दूरी पर वह, चित्र 11.5 में दर्शाए अनुसार, अपेक्षाकृत कम मज़दूरों को रखेगा। आपको ध्यान होगा कि पूर्ण प्रतियोगिता में तो OW मज़दूरी पर OL_C श्रमिकों को काम मिलता किन्तु MRP के VMP नीचे चले जाने के कारण फर्म इस मज़दूरी दर पर केवल OL_N व्यक्तियों को काम दे पाती हैं।

अतः वस्तु बाज़ार में एकाधिकारिक उत्पादक किसी प्रतियोगी उत्पादक की तुलना में कम लोगों को काम प्रदान करेगा।

11.10.2 श्रम बाज़ार अपूर्णताएँ

क) **श्रमिक संघ**

श्रमिकों के संगठन बेहतर कार्यदशाओं के लिए प्रयास करते हैं। वे अपने सदस्यों को ज़्यादा मज़दूरी एवं अन्य सुविधाएँ दिलाने की कोशिश करते हैं। इस निमित्त वे नियोजकों को श्रम आपूर्ति पर अंकुश लगाने का प्रयास करते हैं। कहीं-कहीं वे सीमित भर्ती नीति (closed shop recruitment policy) मनवाने में भी सफल हो जाते हैं– अर्थात् फर्म में उत्पन्न खाली स्थान श्रमिक संघ के सदस्यों या उनके परिवारों में से ही भरे जाएँगे।

श्रमिक संघों के ये प्रयास उस समय अधिक सफल रहते हैं जबकि श्रम की माँग-वक्र के पीछे की ओर मुड़ते हुए भाग को काट रही हो।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ख) **एक नियोजक (Monopolistic Employer)**

जब बाज़ार में केवल एक ही नियोजक फर्म हो तो उसकी शक्ति बहुत बढ़ जाती है। मज़दूरों को वही स्वीकार करना पड़ जाता है जो कुछ वह फर्म दे रही हो। यहाँ तो मज़दूरी की दर एवं रोज़गार का स्तर दोनों ही कम रहते हैं।

ग) **द्विपक्षीय एकाधिकार (Bilateral Monopolies)**

इस अवस्था में तो एकमात्र नियोजक का सामना संगठित श्रमिक संघ से हो जाता है। फर्म रोज़गार एवं मज़दूरी को यथासंभव न्यूनतम रखना चाहती है, तो श्रमिक संघ मज़दूरी स्तर को अधिकतम स्तर तक ले जाने का प्रयास करता है। अन्ततः, फर्म एवं संघ की सौदेबाजी की क्षमता एवं कुशलता द्वारा ही संतुलन का निर्धारण हो पाता है। इन दशाओं में मज़दूरी दर कोई निश्चित दर नहीं रहती। यह श्रमिकों को स्वीकार्य न्यूनतम तथा उत्पादकों की इच्छित अधिकतम के बीच कहीं भी हो सकती है।

11.10.3 सरकारी हस्तक्षेप

कई बार सरकार भी श्रम बाज़ार में हस्तक्षेप करती है। यह किसी न्यूनतम मज़दूरी का निर्धारण कर देती है। सभी फर्में कम से कम उतना भुगतान अवश्य करने को बाध्य हो जाती हैं। यह न्यूनतम मज़दूरी तभी श्रमिकों को लाभ पहुँचा पाती है जबकि यह बाज़ार दर से ऊँची हो, और इसके कारण बड़े पैमाने पर मज़दूरों को निकालना शुरू न हो जाए।

सरकारी हस्तक्षेप का दूसरा स्वरूप आदर्श नियोजक का हो सकता है। सार्वजनिक क्षेत्र में श्रमिकों को उपलब्ध मज़दूरी एवं अन्य सुविधाएँ धीरे-धीरे सारी अर्थव्यवस्था का मानक बन जाती हैं।

11.11 बाज़ार में अनेक प्रकार की मज़दूरी दरें क्यों प्रचलित होती हैं?

अभी तक हम मज़दूरी की दर निर्धारण की कुछ इस प्रकार बात करते हैं जैसे सारी अर्थव्यवस्था में एक ही दर होनी चाहिए। किन्तु कोई भी व्यक्ति सहज ही देख सकता है कि व्यवहार में तो बाज़ार में अनेक संख्या में मज़दूरी दरें प्रचलित होती हैं। इन दरों में अंतर छोटे-मोटे नहीं होते बल्कि बहुत ही भारी होते हैं। इन अंतरों की व्याख्या कैसे हो पाएगी? हम कह सकते हैं कि मज़दूरी दरों में अंतर निम्न कारणों से हो सकते हैं :

1) कार्यों में विषमताएँ होती हैं;

2) श्रमिकों में विषमताएँ होती हैं;

3) जानकारी अपूर्ण और महँगी होती है;

4) श्रम-गतिशीलता में रुकावटें होती हैं और स्थापना लागतें बहुत अधिक हैं।

कई बार हम मज़दूरी की दरों के अंतरों को मानवीय पूँजी की गुणवत्ता के आधार पर समझाते हैं :

i) श्रमिकों की योग्यताओं में अंतर होते हैं– इसी कारण उन्हें अलग-अलग आय प्राप्त होती है,

ii) कुछ व्यक्ति अपनी पारिवारिक पृष्ठभूमि के आधार पर अधिक कमा पाने में सफल रहते हैं : किसी अमीर के बेटे-बेटी सहज ही उच्च तकनीकी शिक्षा पा सकते हैं; जबकि अति योग्य पर गरीब माँ-बाप की संतान को घर चलाने के लिए माँ-बाप की सहायता के नाम पर अध्ययन ही छोड़ देना पड़ता है;

iii) कुछ लोग जोखिम उठाने को तत्पर रहते हैं– कई मामलों में उन्हें इसका समुचित पुरस्कार भी मिल जाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

हम इस बात को एक बार फिर जोर देकर दोहराना चाहते हैं कि किसी सीमा तक तो श्रमिक संघ मज़दूरी की दर को बढ़वा पाने में सफल हो जाते हैं, किन्तु यह वृद्धि केवल उन संघों के सदस्यों को ही लाभान्वित कर पाती है। ये संघ अर्थव्यवस्था के संगठित क्षेत्र तक ही सीमित हैं। इससे कहीं अधिक विशाल असंगठित क्षेत्र, जहाँ श्रम संघों का गठन इतना सहज नहीं होता, साझी सौदेबाज़ी द्वारा निर्धारित वृद्धि की संभावनाओं से वंचित रह जाता है।

बोध प्रश्न 4

1) "वस्तु बाज़ार में एकाधिकारी शक्ति प्राप्त उत्पादक अधिक/कम श्रमिकों को काम देता है" –क्यों? 50 शब्दों में स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

....

2) एक नियोजक फर्म एवं श्रमिक संघ का सामना होने पर मज़दूरी दर अनिवार्य (indeterminate) क्यों हो जाती हैं?

....

....

....

....

....

3) श्रमिकों की आय में अंतरों की व्याख्या किन कारकों पर आधारित होती हैं? लगभग 100 शब्दों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

11.12 सारांश

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

प्रस्तुत इकाई में आपको साधन कीमत निर्धारण से जुड़ी कुछ जानकारियाँ देने का प्रयास किया गया है। सीमांत उत्पादिता सिद्धांत अर्थशास्त्र के प्रमुख सिद्धांतों में से एक है। इसके अनुसार साधन एवं उत्पाद बाज़ारों में पूर्ण स्पर्धा होने पर प्रत्येक साधन का प्रतिफल उसकी सीमांत उत्पादिता के समान होगा। इस सिद्धांत को पूर्ण उत्पाद विभाजन प्रमेय से और बल मिला है, जिसके अनुसार यदि साधनों को उपर्युक्त विधि से पारिश्रमिक दिया जाए, तो सारा उत्पादन उन साधनों में परी तरह बँट जाता है। कुछ भी शेष नहीं बचा रहता।

किन्तु सीमांत उत्पादिता सिद्धांत भी आलोचनाओं से परे नहीं है। यह केवल साधन माँग पक्ष पर ही केंद्रित रह जाती है, आपूर्ति पक्ष की ओर इसका ध्यान ही नहीं जाता, जबकि कीमत निर्धारण में तो दोनों ही पक्षों पर विचार होना चाहिए। पूर्ण प्रतियोगिता पर निर्भरता भी इसकी अनेक समस्याओं का कारण बन जाती हैं, क्योंकि ऐसी बाज़ार व्यावहारिक जीवन में शायद ही कहीं देखने को मिल पाए।

माँग एवं आपूर्ति द्वारा निर्धारित संतुलन मज़दूरी दर में भी राजकीय हस्तक्षेप एवं श्रमिक संघों के क्रिया कलापों जैसे संस्थागत कारकों के आधार पर संशोधन आवश्यक हो जाते हैं।

11.13 शब्दावली

श्रम की पश्चगामी आपूर्ति-वक्र : एक निश्चित स्तर से मज़दूरी दर अधिक होने से मज़दूरी दर और श्रम आपूर्ति के बीच प्रत्यक्ष संबंध में बदल जाता

है। ऐसा प्रतिस्थापन्न प्रभाव पर आय प्रभाव के भारी पड़ने के कारण होता है।

प्रतियोगी बाज़ार	:	अनेक क्रेता-विक्रेताओं का बाज़ार जहाँ कोई भी क्रेता या विक्रेता बाज़ार कीमत पर नियंत्रण नहीं कर पाता।
आय प्रभाव	:	मज़दूरी वृद्धि से श्रमिक की आय बढ़ने पर वह श्रम सहित (अर्थात् अधिक विश्राम) सभी वस्तुओं का अधिक उपभोग करने को लालायित हो उठता है। अतः वह पहले की अपेक्षा कम घंटे काम करना चाहता है।
संस्थागत कारक	:	सामाजिक, राजनैतिक एवं संगठनात्मक कारक जिनका आर्थिक निर्णय प्रक्रिया पर प्रभाव पड़ता है।
सीमांत भौतिक उत्पाद	:	उत्पादन की मात्रा में, अन्य सब बातें स्थिर रहने पर, केवल एक साधन की प्रयुक्त मात्रा में एक इकाई वृद्धि करने से आया अंतर।
सीमांत आगम उत्पाद	:	सीमांत भौतिक उत्पाद एवं सीमांत आगम का गुणनफल।
सीमांत उत्पाद मूल्य	:	सीमांत भौतिक एवं वस्तु की कीमत का गुणनफल।
न्यूनतम मज़दूरी अधिनियम	:	सरकार द्वारा मज़दूरी की न्यूनतम दर का कानून द्वारा निर्धारण।
श्रम की गतिशीलता	:	श्रमिकों द्वारा एक रोज़गार से दूसरे रोज़गार व एक रोज़गार स्थान से दूसरे रोज़गार स्थान की ओर जाने की तत्परता।
ग़ैर प्रतियोगी बाज़ार	:	ऐसे बाज़ार जहाँ पूर्ण प्रतियोगिता की कोई न कोई शर्त पूरी नहीं हो पाती।
मौद्रिक मज़दूरी दर	:	तात्कालिक कीमतों पर आधारित मज़दूरी।
पूर्ण उत्पाद विभाजन प्रमेय	:	साधन की प्रत्येक इकाई को उस साधन की सीमांत उत्पादिता के समान प्रतिफल देने से सारा उत्पादन पूरी तरह विभाजित हो जाता है।
प्रतिस्थापन प्रभाव	:	मज़दूरी दर में वृद्धि से आराम, परित्याग की गई आय के रूप में, अधिक महँगा हो जाता है। इससे श्रमिक अधिक काम करने को प्रेरित होते हैं।
श्रमिक संघ	:	श्रमिकों का संगठन जो उनके हितों की रक्षा के लिए प्रयास करता है।
मज़दूरी के अंतर	:	श्रमिकों के विभिन्न समूहों की औसत आयों में अंतर।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

11.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Boumol, W.I. and Blinder, A.S., 1988, *Economics: Principles and Policy*. Harcourt Brace Loronovieh, Chicago.

Stonier, A.W. and Hague, D.C., *A Text Book of Economics*, Macmillan and ELPS, London.

11.15 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

बोध प्रश्न 1

1) अपने उत्तर के लिए भाग 11.3 को पढ़ें।

2) क) 2

 ख) 90 रुपये

 ग) 40 रुपये

बोध प्रश्न 2

1) MRP

2) वृद्धि, कमी

3) क) गलत

 ख) गलत

4) माँग, सीमांत, कीमत।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 12 लगान, ब्याज तथा लाभ

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 भूमि की सेवाओं का प्रतिफल : लगान

- 12.2.1 रिकार्डो का लगान सिद्धांत
- 12.2.2 मार्शल का लगान सिद्धांत
- 12.2.3 आधुनिक लगान सिद्धांत

12.3 पूँजी की सेवाओं के लिए पारिश्रमिक प्रतिफल : ब्याज

- 12.3.1 ब्याज की विभिन्न अवधारणाएँ
- 12.3.2 पूँजी, निवेश तथा ब्याज
- 12.3.3 वास्तविक एवं सांकेतिक ब्याज की दर
- 12.3.4 ब्याज संबंधी सिद्धांत या अवधारणाएँ

12.4 उद्यम वृत्ति का पुरस्कार : लाभ

- 12.4.1 लेखा-लाभ तथा आर्थिक लाभ
- 12.4.2 लाभ के सिद्धांत

12.5 सारांश

12.6 शब्दावली

12.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

12.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम गैर-श्रम उत्पादन साधनों के प्रतिफलों के निर्धारण पर विचार कर रहे हैं :

- लगान की अवधारणा के उद्गम को समझ सकेंगे और उसकी व्याख्या कर सकेंगे;
- लगान की अवधारणा को अन्य उत्पादन साधनों पर भी लागू कर सकेंगे,
- जान सकेंगे कि ब्याज की दरों का निर्धारण कैसे होता है, और उनमें बदलाव क्यों आता है, तथा
- समझा सकेंगे कि अर्थव्यवस्था में लाभ कैसे उत्पन्न होते हैं।

12.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम गैर-श्रम उत्पादन संसाधनों के प्रतिफलों के बारे में बात करेंगे। इस संबंध में हम जो भी विचार या सिद्धांत पढ़ेंगे उनसे हमें यह पता चलेगा कि सभी उत्पादन साधनों पर लागू समझे जाने वाले वितरण के सीमांत उत्पादिता सिद्धांत की भी कुछ सीमाएँ हैं। हमें पता चलेगा कि किस प्रकार भूमि, पूँजी तथा उद्यम के प्रतिफलों की निर्धारण श्रम में प्रयुक्त सीमांत उत्पादिता से भिन्न है। वस्तुतः इन तीनों ही साधनों की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं और इन्हीं के कारण इनमें से प्रत्येक के लिए अलग विधि अपनाना आवश्यक हो जाता है।

12.2 भूमि की सेवाओं के लिए प्रतिफल : लगान

यद्यपि आज हम लगान या भाड़ा शब्द का प्रयोग किसी भी परिसम्पत्ति के प्रयोग के बदले में किए गए अनुबंधिक भुगतान के लिए कर लेते हैं, जैसे किसी दुकान, मकान, भूमि के टुकड़े या मशीन का भाड़ा आदि पर अर्थशास्त्री सदा से ही लगान को भूमि की सेवाओं से ही जोड़ते रहे हैं। यही नहीं, लगान के विचार की व्युत्पत्ति उस सामंती सामाजिक व्यवस्था से हुई है जहाँ ज़्यादातर भूमि पर बड़े-स्वामी या सामंतों को अधिकार होता था। वे उस भूमि पर खेती करने वाले किसानों से कुछ रकम वसूल करते थे। भूमि की उर्वरा शक्ति के प्रयोग के बदले में किया गया भुगतान ही लगान कहलाता था।

लगान विषयक सिद्धांतों का मूलतः हम दो वर्गों में बाँट सकते हैं : (i) प्रतिष्ठित या रिकार्डो का सिद्धांत तथा (ii) आधुनिक सिद्धांत।

12.2.1 रिकार्डो का लगान सिद्धांत

लगान के मौलिक सिद्धांत का प्रतिपादन डेविड रिकार्डो (David Ricardo) ने किया। उसका विचार था कि प्रकृति ने भूमि को कुछ मूलभूत एवं अनश्वर शक्तियाँ प्रदान की हैं। इन्हीं शक्तियों के परिणामस्वरूप भूमि से प्राप्त उत्पादन उस पर प्रयुक्त सभी आगतों की तुलना में कहीं अधिक होता है। अतः कृषि कार्य में लगे सभी अन्य कारकों को मुआवजा देने के बाद भी अतिरेक (surplus) बचता है। इस अतिरेक पर भूमि के स्वामी का हक होता है। इस प्रकार कृषि कार्यों से उत्पन्न अतिरेक एक लगान है। लगान का उत्पन्न होना हम दो प्रकार से दिखा सकते हैं:

i) गहन खेती, और (ii) विस्तृत खेती।

DIKSHANT IAS

i) **गहन खेती (Intensive Cultivation)** : एक किसान अपने भू-खण्ड पर खेती के लिए तब तक श्रमिक लगाता रहता है जब तक कि श्रमिक की सीमांत उत्पादिता उसकी बाज़ार में निर्धारित मज़दूरी से अधिक रहती है। चित्र 12.1 में OWo मज़दूरी की दर पर OLo श्रमिकों को काम पर रखा जाता है। अतः श्रम का कुल उत्पाद OAELo के समान रहता है।

Call us @7428092240

चित्र 12.1

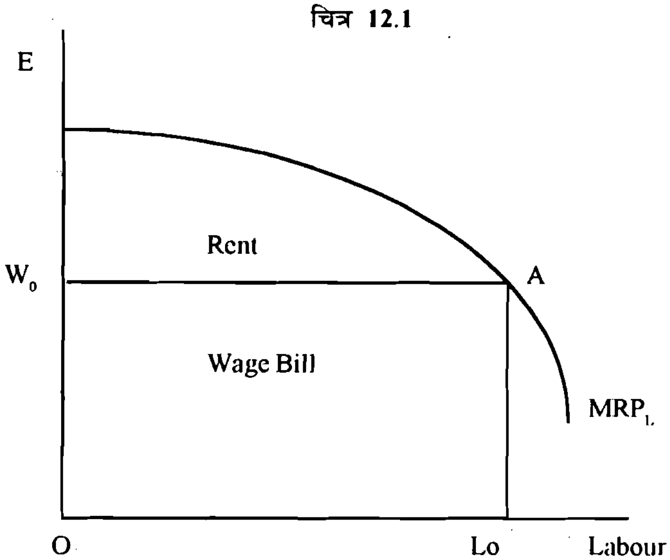

चित्र 12.1 में हमने श्रम की ह्रासमान सीमांत आगम उत्पाद-वक्र के द्वारा कुल उत्पादन में श्रम का हिस्सा (= मज़दूरी) निर्धारित किया है। शेष राशि अतिरेक है जिसे लगान कहते हैं।

किंतु इसमें से आयत OWoELo के समान राशि तो मज़दूरी है। अतः श्रमिकों को बाज़ार दर पर मज़दूरी देने के बाद भी भू-स्वामी के पास WoAE के समान राशि एक प्रकार के आधिक्य या अतिरेक के रूप में बची रहती है। इसी को कुल उत्पादन में भूमि का हिस्सा या लगान कहा जा सकता है।

ii) **विस्तृत खेती (Extensive Cultivation) :** ऐसी खेती में लगान ज्ञात करने हेतु हम मानकर चलते हैं कि हमारे पास अनेक प्रकार की गुणवत्ता वाले भू-खण्ड है। हम सर्वश्रेष्ठ को A, उससे निम्न को B तथा इसी तरह निम्नतर गुणवत्ता सम्पन्न खण्डों को C,D,E आदि अक्षरों से दर्शाते हैं। शुरू में तो किसान सबसे बढ़िया किस्म की भूमि जोतेगा। लेकिन जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ती जाती है कृषि उत्पादों की माँग भी बढ़ती जाती है। अतः धीरे-धीरे नीचे के स्तर की भूमियों पर भी खेती आरम्भ हो जाती है। E-स्तर की भूमि पर भी उत्पादन होने लगता है।

मान लो कि E-स्तर की भूमि पर हुए उत्पादन का मूल्य आगतों के मूल्य के समान है। अतः E-स्तर की भूमि से कोई अतिरेक प्राप्त नहीं होता। इस E-स्तर की भूमि को हम सीमांत भू-खण्ड का नाम देते हैं। अन्य सभी भू-खण्ड A, B, C तथा D पर हमें जो उत्पादन प्राप्त होते हैं, उनके मूल्य लागतों से अधिक रहते हैं हम वह मानकर चलते हैं कि सभी भू-खण्डों पर लागतों का स्तर एक समान रहता है। कुल उत्पादन मूल्य का लागतों से आधिक्य ही लगान कहा जाता है।

चित्र 12.2

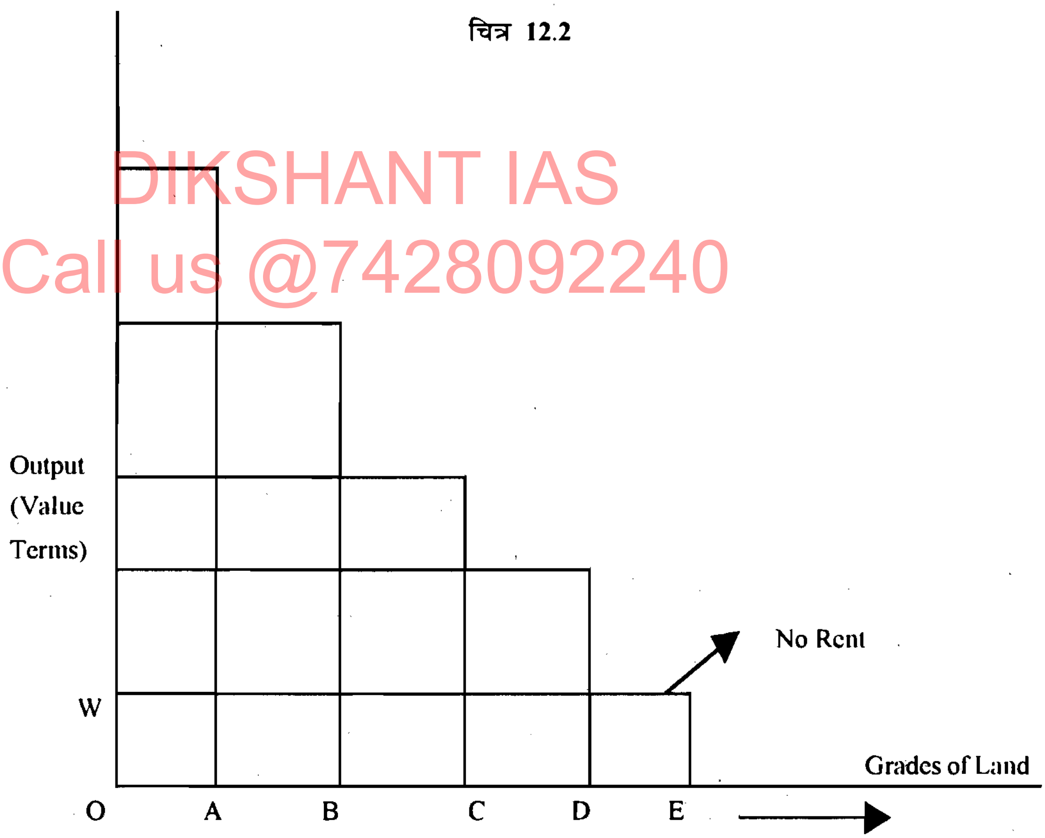

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 12.2 में पाँच भू-खण्ड हैं, A, B, C, D तथा E_1 इनमें A सबसे श्रेष्ठ, B उससे घटिया तथा अन्ततः E सबसे घटिया है। अक्षर A, B, C, D तथा E के ऊपर बने खानों (bars) की ऊँचाई उत्पादन के कुल मूल्य को दर्शाती है। मान लो कि E-स्तर की भूमि पर कुल उत्पादन का मूल्य उत्पादन लागतों के समान ही है। अतः वहाँ किसी तरह का आधिक्य नहीं बचता। उत्पादन की लागतें (=OW) सभी भू-खण्डों पर एक समान है। अतः शेष चारों भू-खण्डों से हमें कुछ न कुछ आधिक्य अवश्य मिलता है। हम स्पष्टतः देख सकते हैं कि A-स्तर की भूमि पर सबसे ज़्यादा आधिक्य मिलता है। उत्पादन लागतों से ऊपर बच रहे आधिक्य को ही लगान का नाम दिया गया है।

इस विश्लेषण से एक बात स्पष्ट होती है : केवल अच्छे स्तर की भूमि पर ही आधिक्य की प्राप्ति होती है। भू-स्वामियों को प्राप्त यह राशि एक तरह से विभेदक आधिक्य **(defferential surplus)** है। यदि **E**-स्तर भू-खण्ड से प्राप्त उत्पादन का मूल्य बाज़ार कीमतों की वृद्धि के कारण बढ़कर उत्पादन लागतों से अधिक हो जाए तो हमारा किसान अब तक कृषि की दृष्टि से अनुपयुक्त मानी जा रही है और अधिक घटिया **F**-स्तर की भूमि पर भी खेती करने का विचार कर सकता है। यही खेती का विस्तरण कहलाता है। यदि उत्पादन का मूल्य कम होने लगे, तो हमारा किसान सीमांत भू-खण्ड पर खेती बंद करने को बाध्य हो सकता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सीमांत से अधिक गुणवत्ता स्तर के भूखण्ड पर ही आधिक्य प्राप्त होता है और उन्हीं के मालिक लगान कमा पाते हैं। रिकार्डो ने इस तरह से लगान की राशि को उत्पादन की कीमतों के स्तर से जोड़ दिया था। यहाँ लगान उस खेत के उत्पादन के निमित्त आई किसी लागत का भुगतान नहीं है जैसे कि श्रम की लागत मज़दूरी के योग के रूप में चुकाई जाती है।

आलोचना : रिकार्डो के सिद्धांत की कई आधारों पर आलोचना हुई है :

क) ऐतिहासिक दृष्टि से यह आवश्यक नहीं है कि सबसे श्रेष्ठ भूखण्ड पर ही सबसे पहले खेती हुई हो। दूसरे एक आधिक्य के रूप में लगान का निर्धारण विभिन्न भू-खण्डों के खेती करने के क्रमों पर आश्रित भी नहीं रहता।

ख) रिकार्डो ने भूमि की मौलिक और अनश्वर शक्तियों को ही लगान का स्रोत माना था। किंतु, हम यह जानते हैं कि भूमि की उर्वराशक्ति न तो मौलिक है और न ही अनश्वर। इसमें तकनीक का सहारा लेकर परिवर्तन किए जा सकते हैं। पर यह बात भी हमें माननी ही पड़ेगी कि इसमें रिकार्डो का कोई दोष नहीं है क्योंकि उर्वरा शक्ति में परिवर्तन करने वाली आधुनिक तकनीकों का उनके समय में तो आविष्कार ही नहीं हुआ था। कुछ भी हो हम इस मान्यता को दूसरा रूप दे सकते हैं। हम यह मानकर चल सकते हैं भूमिपूर्ति कीमत लोचहीन होती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ग) रिकार्डो का मानना था कि कृषि क्षेत्र में पूर्ण प्रतियोगिता रहती है। पर यह मान्यता भी शायद ही कभी (कृषि क्षेत्र में) खरी उतरती हो। वस्तुतः तो (आमतौर पर) कुछ ही बड़े-बड़े भू-स्वामी अधिकतर कृषियोग्य भूमि पर कब्जा किए रहते हैं। ऐसी अवस्था में प्रतियोगिता का स्तर बहुत ही संकुचित होता रहता है।

घ) लगान का एक अनार्जित अधिक्य कहा जाना भी शायद उचित नहीं होगा। भूमि अपने आप श्रेष्ठ स्तर की नहीं हो जाती। इसकी यह श्रेष्ठता पत्थरों की छँटाई, झाड़ियों की सफाई फालतू पानी की समुचित निकासी तथा उपयुक्त सिंचाई की व्यवस्था का परिणाम होती है। इन सभी कार्यों पर लागत आती है। अतः अच्छे स्तर की भूमि की आपूर्ति का स्थिर होना जरूरी नहीं। कुछ लागत लगाकर इसकी मात्रा बढ़ाई जा सकती है।

च) रिकार्डो ने भूमि के केवल एक उपयोग पर ध्यान दिया था— कृषि पर। यदि हम अन्य वैकल्पिक प्रयोगों के संदर्भ में इस पर विचार करें तो भूमि को इसके वर्तमान प्रयोग में ही लगाए रखने के लिए कुछ-न-कुछ न्यूनतम भुगतान आवश्यक हो जाएगा। इसी को हम हस्तांतरण आय **(transfer earnings)** का नाम देते हैं। दूसरे, इस विचार को केवल भूमि तक सीमित रख पाना भी संभव नहीं होगा— यह अन्य उत्पादक साधनों पर भी समान रूप से लागू हो सकता है।

इन आलोचनाओं के बावजूद रिकार्डो द्वारा आर्थिक प्रगति के साथ-साथ बढ़ने वाले अनार्जित आधिक्य के रूप में लगान का सारे विश्व में नीति निर्धारकों पर बहुत ही गहरा प्रभाव रहा है। हमारे अपने देश भारत में भी अनार्जित आधिक्यों की समाप्ति की ललक ज़मीदारी उन्मूलन जैसे भू-सुधारों का मुख्य आधार रही है।

12.2.2 मार्शल का लगान सिद्धांत

अल्फ्रेड मार्शल (Alfred Marshall) ने रिकार्डो के लगान सिद्धांत को अन्य कारकों पर लागू करने का प्रयास किया। उनका विचार था कि यदि किसी भी साधन आपूर्ति निश्चित हो एवं उसमें किसी दी हुई अवधि में मानवीय प्रयासों द्वारा वृद्धि न हो पाए तो उस साधन की आय भी लगान की ही भाँति होगी। इस प्रकार के अल्पकालिक लगान को मार्शल ने आभास लगान (quasi rent) का नाम दिया था। रिकार्डो का लगान एक दीर्घकालिक अवधारणा थी तो मार्शल का आभास लगान मूलतः अल्पकाल से जुड़ा विचार ही है। भूमि की आपूर्ति में दो दीर्घकाल में भी वृद्धि नहीं की जा सकती, पर अन्य साधनों की दीर्घकाल में बढ़ाई जा सकती है।

12.2.3 आधुनिक लगान सिद्धांत

आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने मार्शल के विचार को और आगे विकसित किया है। ये लगान का निर्धारण भी किसी भी अन्य साधन कीमत की भाँति माँग एवं आपूर्ति-वक्रों के माध्यम से करते हैं। अतः अब भूमि की सभी इकाइयों की उर्वरा शक्ति एक समान होने पर भी लगान फिर भी होगा जो कि भूमि की दुर्लभता पर निर्भर करेगा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 12.3

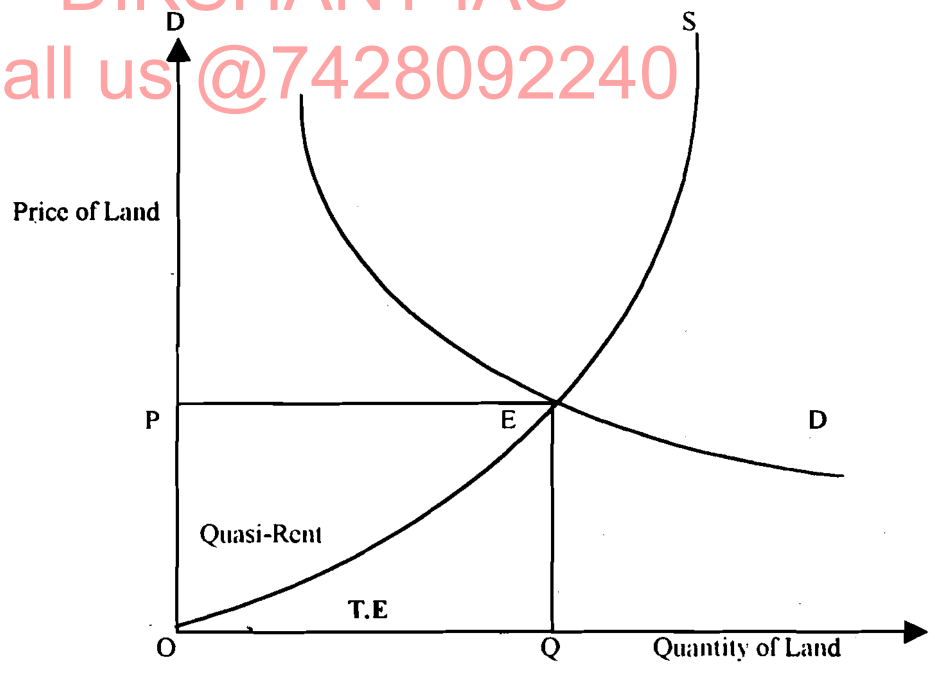

चित्र 12.3 में सामान्य माँग और आपूर्ति-वक्रों के संयोग द्वारा कीमत निर्धारित की गई है। आपूर्ति-वक्र साधन कीमतों के उन न्यूनतम स्तरों को दिखाता है जिन पर विभिन्न साधन-स्वामी कार्य करने के इच्छुक हों। दूसरी ओर, माँग और आपूर्ति-वक्र के नीचे का क्षेत्र **OEQ** साधन की हस्तांतरण आय कहलाता है। अर्थात् वह न्यूनतम भुगतान जो कि साधन को वर्तमान रोज़गार में लगाए रखने के लिए आवश्यक है। दूसरी ओर, आपूर्ति-वक्र से ऊपर का क्षेत्रफल **OPE** आभास लगान का मान है। हस्तांतरण आय से अधिक यह भुगतान साधन इकाइयों को केवल इसी कारण मिल पाता है कि बाज़ार में उनकी सापेक्ष दुर्लभता होती है।

चित्र 12.3 इसी विचार को दर्शाता है। हमने भूमि के सामान्य माँग एवं आपूर्ति-वक्र बनाए हैं–ये वक्र किसी भी अन्य साधन की भी हो सकती है। बिन्दु E माँग एवं आपूर्ति-वक्र एक दूसरे को काटती है। अतः भूमि की सेवाएँ प्राप्त करने के इच्छुक OP कीमत पर OQ मात्रा लेने को तैयार होंगे। भू-स्वामी भी OP के मत पर OQ मात्रा ही प्रदान करना चाहते हैं। इसी से संतुलन बनता है। पर एक बात पर गौर करें। आपूर्ति-वक्र उन कीमतों को भी दर्शाता है जिनपर विभिन्न साधन इकाइयाँ कार्य करने को तत्पर होती हैं। यह उनकी न्यूनतम माँग कीमत है जिसके मिलने पर वे वर्तमान कार्य में ही लगे रहने को तैयार होती हैं। इसे ही हस्तांतरण आय TE का नाम दिया जाता है। इन साधन इकाइयों को (लगान के रूप में) साधन कीमत तो OP प्रति इकाई ही मिलती है पर हस्तांतरण आय से अधिक आमदनी तो सापेक्ष दुर्लभता का ही परिणाम है। इसे आभास लगान (quasi-rent) कहा जाता है।

हम आभास लगान के सापेक्ष दुर्लभता पर आश्रित होने के विचार को चित्र 12.4 द्वारा और अधिक स्पष्ट कर सकते हैं। यहाँ माँग-वक्र DD तो एक ही है पर चार आपूर्ति-वक्र S_1, S_2, S_3 और S_4 बनाए गए हैं। ये चारों वक्र माँग-वक्र को एक ही बिन्दु E पर काटते हैं।

चित्र 12.4

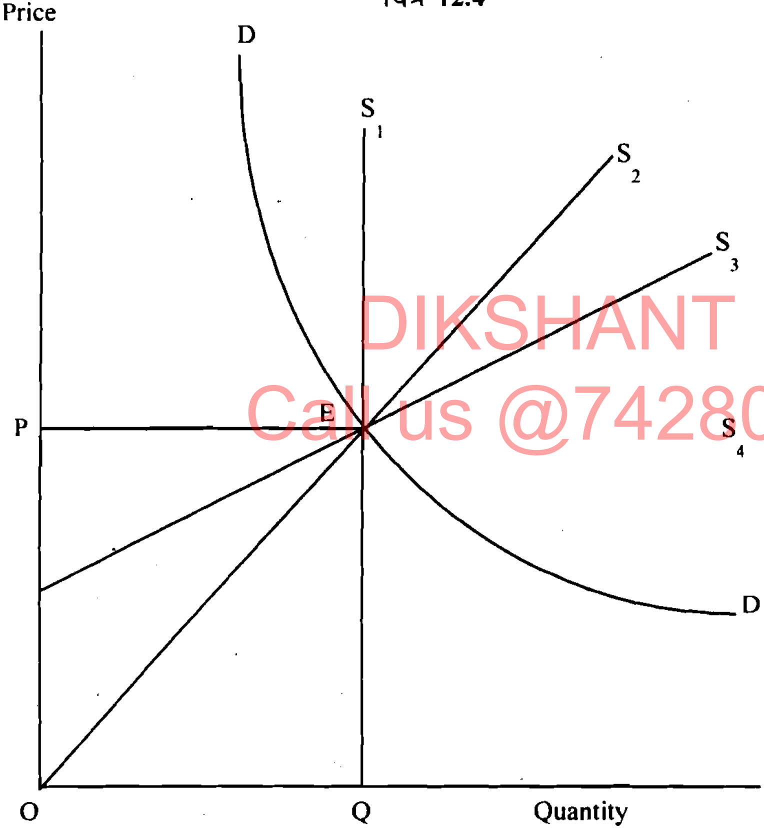

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 12.4 चार आपूर्ति-वक्र S_1, S_2, S_3 और S_4 दिखाता है। ये चारों माँग-वक्र को बिन्दु E पर करते हैं। अतः भूमि के सेवाएँ प्राप्त करने के लिए OP कीमत पर OQ मात्रा ही प्रदान की गई। इसी से संतुलन बनता है।

आपूर्ति-वक्र S_1 पूरी तरह लोचहीन है। अतः साधन को प्राप्त सारी आय ही लगान होगी। इसी को शुद्ध आर्थिक लगान कहा जाता है।

आपूर्ति-वक्र S_2 में कुछ लोचशीलता है। साधन आय का एक अच्छा खासा भाग अब हस्तांतरण आय बन जाता है। पर बहुत बड़ा अंश अब आभास लगान कहलाएगा। जैसे-जैसे हम आपूर्ति की दशाएँ सुधारते हैं। अर्थात् वक्र की लोच बढ़ती है, कुल साधन आय में से हस्तांतरण आय (TE)

का अंश बढ़ता जाता है और आभास लगान (QR) कम होता जाता है। जब आपूर्ति-वक्र पूर्णतः लोचशील होकर क्षैतिज अक्ष के समांतर हो जाती है तो आभास लगान शून्य हो जाता है। सारी साधन आय अब हस्तांतरण आय ही होती है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि जब मार्शल लगान को एक ही अतिरेक या आधिक्य के रूप में बताते थे तो उनका अभिप्रायः हस्तांतरण से अधिक राशि से ही होता था। इस प्रकार मार्शल का लगान का सिद्धांत रिकार्डो के सिद्धांत से बहुत ही भिन्न हो जाता है।

बोध प्रश्न 1

1) विस्तृत सीमा (extensive margin) की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

2) सघन सीमा (intensive margin) क्या है?

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3) लगान की एक अतिरेक के रूप में व्याख्या करें।

....

....

....

....

....

4) आभास लगान की अवधारणा समझाएँ।

....

....

....

....

....

....

12.3 पूँजी की सेवाओं के लिए पारिश्रमिक प्रतिफल : ब्याज

पूँजी एक मानव निर्मित उत्पादन साधन है। मनुष्य प्रकृति द्वारा प्रदान उपहारों से ऐसे औज़ार-उपकरण बना लेता है जिनसे उसे अपनी मनवाँछित वस्तुओं का निर्माण करने में सहायता मिलती है। जो समय वह उपकरणों के निर्माण में लगाता है, उसी समय का प्रयोग कर वह कुछ न कुछ उपभोग योग्य सामग्री भी तैयार कर सकता था। अतः उपकरण बनाने की प्रक्रिया में वह उपभोग वस्तुओं के उत्पादन करने के अवसर खो लेता है। लेकिन भविष्य में जब वह इन उपकरणों का उपयोग उत्पादन के लिए करता है तो कम समय में अधिक उपभोग वस्तुओं का उत्पादन कर पाता है। पूँजी से श्रम की उत्पादिता बढ़ती है और इस प्रकार उत्त्पादन प्रक्रिया में सहायक होती है। इसीलिए इसे भी उत्पादन का साधन ही माना जाता है। हमने धीरे-धीरे पूँजी की अवधारणा का और विकास कर इसमें उत्पादन प्रक्रियाओं में सहायक सभी प्रकार की मशीनों, भवनों एवं सुविधाओं को भी सम्मिलित कर लिया है। यहाँ तक कि व्यवस्था के सुचारू रूप से कार्य करने के लिए आवश्यक धनराशि को भी हम कामचलाऊ पूँजी ही कहते हैं। इसमें कच्चे माल तथा विनिर्मित उत्पादन के कुछ भण्डार भी सम्मिलित होते हैं। कच्चे माल के भण्डार उत्पादन कार्य को सुचारू रूप से चलाने में सहायक होते हैं तो कुछ विनिर्मित वस्तुओं के भण्डार ग्राहकों को नियमित आपूर्ति सुनिश्चित करते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि यद्यपि प्रारंभ में पूँजी का विचार यंत्रों-उपकरणों से ही जुड़ा था पर अब तो इसमें उन यंत्रों की कार्य-स्थली (फैक्ट्री का भवन) तथा आवश्यक कच्चे माल; एवं उत्पादन भण्डार और धनराशि आदि वे सभी चीज़ें सम्मिलित हो गई हैं जिनसे व्यवसाय सुचारू रूप से चलता रहता है। पूँजी की सेवाओं के प्रतिफल को ब्याज कहा जाता है।

12.3.1 ब्याज की विभिन्न अवधारणाएँ

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

यह आप ऊपर जान ही चुके हैं कि पूँजी उस समय अस्तित्व में आती है जब कोई व्यक्ति उपभोग न करके बचत करता है। यह अपनी बचत का स्वयं प्रयोग कर सकता है अथवा किसी अन्य को इसके प्रयोग की अनुमति प्रदान कर सकता है। पर वह उस उपयोगकर्ता से यह अपेक्षा करता है कि उस सुविधा के बदले में उसे कुछ प्रतिदान अवश्य दें। इसी प्रतिदान को हम पूँजी का प्रतिफल अर्थात् ब्याज कहते हैं। यह प्रतिफल वस्तु रूप में भी हो सकता है। उदाहरण के लिए यदि किसान किसी पड़ौसी से कुछ अनाज उधार लेता है तो वह अपनी फसल की कटाई के बाद उससे कहीं अधिक मात्रा अनाज ही लौटा देता है।

अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रकों में कुछ व्यक्ति अपनी चालू आय से अधिक व्यय करना चाहते हैं। वे उन लोगों से रुपया उधार ले लेते हैं जो अपनी सारी आय खर्च नहीं करना चाहते। उधार लेने वाले व्यक्ति कुछ समय तक उस राशि का प्रयोग कर उस मूलधन के साथ-साथ ही कुछ अतिरिक्त राशि भी ऋणदाता को लौटा देते हैं। यह अतिरिक्त राशि ही ब्याज है। ऋण या उधार की कीमत को प्रतिशत के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है तथा यह कीमत प्रयोग की समयावधि के साथ जुड़ी रहती है। सामान्यतः ब्याज दर प्रतिवर्ष बताई जाती है। उदाहरण के लिए कहा जा सकता है कि ब्याज दर 10 प्रतिशत प्रतिवर्ष है। इसका अर्थ है कि सौ रुपये उधार लेने वाला व्यक्ति एक वर्ष के अंतर पर 100+10 (100 का 10 प्रतिशत) राशि ऋणदाता को लौटाएगा। अतः यह ब्याज की राशि होगी 10 रुपये। ब्याज की दरों के कई प्रकार होते हैं– अर्थात् ब्याज की दर का आकलन कई तरह से किया जाता है उनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं :

साधारण एवं चक्रवर्ती ब्याज

जब कोई व्यक्ति धन की 'P' इकाइयाँ "n" समय के लिए r (प्रतिशत) ब्याज की दर पर उधार लेता

है तो I-अर्थात् ब्याज की राशि इन तीनों, अर्थात् n, r तथा P के मानों पर निर्भर करेगी। आपने अवश्य ही माध्यमिक विद्यालय स्तर पर ब्याज का आकलन कुछ इस प्रकार किया होगा :

यदि एक हजार रुपये की राशि वर्ष की अवधि के लिए 10 प्रतिशत की दर पर उधार ली गई हो तो ब्याज होगा :

$$\text{ब्याज} = \frac{\text{मूलधन} \times r \times n}{100} \text{ or } I = \frac{P \times r \times n}{100}$$

$$\frac{1000 \times 10 \times 1}{100} = 100 \text{ रुपये}$$

यदि ऋण 10 वर्ष के लिए लिया जाए तो ब्याज होगा :

$$\frac{1000 \times 10 \times 10}{100} = 1000 \text{ रुपये}$$

इस तरह से आकलित ब्याज को हम साधारण ब्याज कहते हैं।

कई बार, प्रत्येक लेखा अवधि के अंत पर देय ब्याज की राशि को मूलधन में जोड़ दिया जाता है। अगली अवधि के लिए मूलधन की राशि पिछले मूलधन और उस आकलित ब्याज का योगफल बन जाती है। इसप्रकार अगली लेखा अवधियों में पिछले ब्याज पर भी ब्याज लगना आरंभ हो जाता है। इसी को हम चक्रवर्ती ब्याज कहते हैं। अंतिम रूप से भुगतान की राशि A इस प्रकार ज्ञात की जाती है :

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

$A = P \times (1+r)$ यहाँ r ब्याज की प्रतिशत दर ही है।

हम आपको यह बता देना आवश्यक समझते हैं कि वास्तविक जीवन चक्रवर्ती ब्याज के उदाहरण मिलना दुर्लभ नहीं है– भारत में किसी भी बैंक में सामान्य बचत खाते को ही लीजिए। बैंक इस पर 5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से ब्याज देता है। पर, प्रत्येक छमाही के अंत पर ब्याज का आकलन कर उसे खाते में जमा राशि में जोड़ दिया जाता है। अतः यदि खाताधारी अपनी रकम बैंक से निकाल न ले तो अगली छमाही में पिछले जमा ब्याज पर भी उसी दर से ब्याज का आकलन होगा। अतः हम कह सकते हैं कि भारत में सामान्य बचत खातों पर पाँच प्रतिशत वार्षिक की दर से छमाही आधार पर जुड़ने वाला चक्रवर्ती ब्याज दिया जाता है।

ब्याज और मुद्रा

सामान्यतः लोग ब्याज के विचार को मौद्रिक लेन-देन के साथ जुड़ा हुआ मानते हैं पर वस्तु-विनिमय व्यवस्था में भी ब्याज का अस्तित्व रहा है। एक किसान का उदाहरण ही लीजिए जिसने अपने पड़ौसी से कुछ अनाज उधार लिया तथा फसल कटने पर उधार ली गई मात्रा से कुछ अधिक अनाज उसे लौटा दिया। यहाँ हम सामान्यतः तो उस अतिरिक्त अनाज को ब्याज ही मानेंगे। पर यह कहा जा सकता है कि किसान द्वारा लौटाई गई मात्रा का मूल्यांकन तो फसल की क़टाई के समय प्रचलित कीमतों पर होना चाहिए। ये कीमतें जिस समय उधार ली गई थी, उसकी तुलना में कहीं कम होती है। इस प्रकार यदि उधार दी गई तथा लौटाई गई अनाज की मात्राओं का उनकी अपनी कीमतों पर मूल्यांकन किया जाए तो ब्याज की अवधारणा कुछ अस्पष्ट हो सकती है। किंतु किसी ऐसी अर्थव्यवस्था में जहाँ अभी मुद्रा का प्रचलन ही नहीं हुआ हो और इसी कारण वस्तु विनिमय द्वारा ही

समाज का सारा लेन-देन सम्पन्न होता हो, वहाँ अलग-अलग समय पर किसी वस्तु की बाज़ार कीमतों में अंतर की बात करना भी अटपटा सा ही प्रतीत होगा। मुद्रा का प्रयोग करने वाली अर्थव्यवस्थाओं में भी किसानों द्वारा किसी पड़ौसी से अनाज उधार लेकर फसल आने पर कुछ ज़्यादा मात्रा लौटाना बहुत ही सामान्य की बात है। इसे अन्न के रूप में ब्याज की दर या अन्न ब्याज दर की संज्ञा दी जाती है।

एक अर्थशास्त्री विकसैल (Wicksell) ने इसी अन्न ब्याज दर से मिलती जुलती प्राकृतिक ब्याज की दर (natural rate of interest) का विचार हमें प्रदान किया है। उनका कथन कुछ इस प्रकार है : एक वन स्वामी कुछ वृक्षों को काटकर लकड़ी बेचकर प्राप्त राशि को ब्याज दर पर चढ़ा सकता है। विकल्पतः वह वृक्षों को एक वर्ष बढ़ने दे सकता है। इस दौरान वे वृक्ष कुछ और मोटे तथा लम्बे हो सकते हैं। अतः उनकी कटाई से प्राप्त लकड़ी की मात्रा भी अधिक होगी। अब इन्हें काटकर बेचने से प्राप्त राशि की पिछले वर्ष प्राप्त राशि से तुलना की जा सकती है। अगर इस अवधि में लकड़ी की कीमत स्थिर ही रहने दें तो वर्ष के अंत में प्राप्त अधिक धनराशि तथा शुरू में प्राप्त हो सकने वाली राशि का अंतर ही प्राकृतिक दर से अर्जित ब्याज कहलाएगी। यदि समाज में प्रचलित मौद्रिक ब्याज की दर इस दर के समान ही हो तो विकसैल के मतानुसार समाज में ब्याज की दर प्राकृतिक ब्याज दर होगी।

उधार पर तथा किश्तों में खरीददारी

कई बार हम अनेक उपकरणों की खरीद करते समय सारी कीमत एक साथ ही नहीं चुकाते। हम कई महीनों तक किश्तों का भुगतान करते हैं। पर इस तरह चुकाई गई सारी राशि वस्तु की मूल कीमत से कहीं अधिक होती है। यह अंतर एक प्रकार का ब्याज ही है। एक तरह से हम विक्रेता से रुपया उधार लेकर उसे वस्तु की कीमत अदा करते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

आजकल तो विक्रेता किसी न किसी अन्य कम्पनी से टिकाऊ वस्तुओं के खरीदारों के लिए वित्त की सुविधा भी जुटा देते हैं। उदाहरण के लिए कितने ही ग्राहक जब किसी कंपनी से कार खरीदते हैं तो उस कंपनी को कीमत का भुगतान किसी बैंक से मिलता है। बाद में पूर्वनिर्धारित अवधि तक ग्राहक बैंक की किश्तें भरता रहता है।

मितिकाटा (Discount)

यह एक चालाकी भरा तरीका है। उधार लेने वाले से तय की गई दर से ब्याज अग्रिम रूप से ही ले लिया जाता है। उदाहरण : मान लीजिए कि ब्याज की दर 10 प्रतिशत तय की गई है। अब 100 रुपये उधार लेने वाले से ब्याज के दस रुपये पहले ही काटकर उसे 90 रुपये नकद दिए जाते हैं एक वर्ष बाद यह व्यक्ति 100 रुपये चुकाकर ऋण मुक्त हो जाता है। ऐसी कार्यविधि से ब्याज की प्रभावी दर अधिक हो जाती है। उधार लेने वाले को वास्तव में 90 रुपये ही मिले और उसने इन पर 10 रुपये ब्याज भरा। अतः उसने वास्तव में तो 11 प्रतिशत से अधिक ब्याज दिया, जबकि घोषित दर 10 प्रतिशत ही रही।

ब्याज की सपाट दर (Flat rate of interest)

आजकल वित्त कंपनियों के विज्ञापनों में ब्याज दर का एक अन्य ही स्वरूप दिखाई पड़ता है। ये कंपनियाँ ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए बहुत ही कम ब्याज दर का प्रचार करती हैं। इसे ही वे सपाट दर का नाम देती हैं। उनकी कार्य पद्धति कुछ इस प्रकार है :

ग्राहक 10 प्रतिशत सपाट ब्याज दर पर 100 रुपये उधार लेता है तथा वह राशि 10 समान वार्षिक किश्तों में चुकाना तय करता है। वित्तदाता सारी राशि पर 10 प्रतिशत से 10 वर्ष का ब्याज आकलित कर उसे मूलधन में जोड़ देता है तथा इस योगफल को 10 से भाग देकर वार्षिक किश्त का निर्धारण कर देता है। इस विधि में रहस्य की बात यही है कि प्रत्येक किश्त के साथ मूलधन का भी एक अंश लौटा दिया जाता है। अतः उधार लेने वाला उस राशि पर भी ब्याज भरता रहता है जिसे वे पहले ही वापिस कर चुका होता है। इस प्रकार प्रभावी ब्याज दर विज्ञापित कम दर से कम से कम दोगुनी तो हो ही जाती है।

जोखिम तथा अनिश्चितता

सामान्य क्रय-विक्रय में तो विक्रेता को अपने माल की पूरी कीमत तुरंत मिल जाती है। पर रुपये के लेन-देन में ग्राहक ऋणदाता को रुपये लौटाने का वचन ही देता है। यहाँ दो प्रकार का जोखिम है:

1) **आय जोखिम :** हो सकता है ऋणी ब्याज न चुका पाए।

2) **पूँजी जोखिम :** हो सकता है कि ऋणी व्यक्ति मूल भी न लौटा पाए।

ये जोखिम ऋण की राशि, अवधि तथा ऋणी की विश्वसनीयता पर भी निर्भर करते हैं। कई बार तो जिस कार्य के लिए उधार दिया गया है, उस कार्य की प्रकृति भी अनिश्चितता एवं जोखिम का कारण बन सकती है। ऋणदाताओं द्वारा ऋण की जमानत के रूप में स्वर्ण या किसी अन्य अचल सम्पत्ति की माँग करना भी एक सामान्य सी ही बात है। यदि ऋणी भुगतान करने में असमर्थ रहे तो ऋणदाता जमानत के रूप में सम्पत्ति को बेचकर अपनी रकम की भरपाई करने का अधिकारी हो जाता है।

12.3.2 पूँजी, निवेश तथा ब्याज

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

हम सामान्यतः कहते हैं कि पूँजी की सेवाओं का प्रतिफल ही ब्याज है तो फिर प्रश्न उठता है कि ब्याज की दर में परिवर्तन का पूँजी की आपूर्ति पर किस प्रकार का प्रभाव पड़ेगा? इस प्रश्न से अनेक संभावनाएँ पैदा होती हैं। एक तो हमें किसी भी निश्चित समय बिंदु पर पूँजी के विद्यमान स्टॉक तथा उसकी और आपूर्ति करने का प्रयास में भेद समझना होगा। पूँजी की उपलब्धि को बढ़ाने के प्रयास को ही हम निवेश अथवा पूँजी निर्माण कहते हैं। यह निवेश मूलतः एक प्रवाह है। यदि किसी अर्थव्यवस्था में और अधिक पूँजी निर्माण हो रहा हो तो हम कहेंगे कि यह अर्थव्यवस्था अपने पूँजी भण्डार (स्टॉक) में वृद्धि कर रही हैं। ब्याज की दर पूँजी निर्माण अथवा निवेश के माध्यम से पूँजी की आपूर्ति में वृद्धि को किस प्रकार प्रभावित करती है? आइए एक उदाहरण की सहायता से इसे समझने का प्रयास करें :

उदाहरण : निवेश तथा ब्याज की दर में संबंध

इस व्यवसाय प्रस्ताव पर गौर करिए : आप एक लाख रुपये लगाकर एक मशीन खरीदते हैं। मान लीजिए कि इस मशीन से प्रतिवर्ष दस हजार रुपये की आय हो सकती है। पर दस वर्ष के पश्चात् यह मशीन कबाड़ में बेचनी पड़ेगी। यह कबाड़ी मूल्य भी 10,000 रुपये ही हैं। तो हम कह सकते हैं :

मशीन की वर्तमान लागत = 100,000 रुपये

दस वर्षों तक आय प्रवाह = 10,000 + 10,000 + ... = 100,000 रुपये

घिसी-पिटी मशीन का कबाड़ी मूल्य 10,000 रुपये।

अतः कुल आगम = 110,000 रुपये।

हमारा प्रश्न है कि क्या निवेश किया जाना चाहिए? क्या इस मशीन की खरीददारी व्यावसायिक दृष्टि से उचित होगी? कुछ प्रश्न भी यहाँ उठ खड़े हुए हैं :

क्या हम भविष्य में पैदा होने वाली आयों को सीधे ही एक साथ जोड़ सकते हैं? क्या यह कहा जा सकता है कि अगले वर्ष के अंत पर 10,000 रुपये मिलने की संभावना और आज ही 10,000 रुपये की नकद राशि में कोई अंतर नहीं हैं? हमारा उत्तर 'हाँ' में तो नहीं ही होगा। पर ऐसा क्यों होता है? यदि आज हम 10,000 रुपये उधार दें तो एक वर्ष बाद कुल राशि दस हजार से तो कुछ न कुछ अधिक ही हो जाएगी। दूसरे वर्ष के अंत तक कुल राशि और अधिक हो जाएगी तथा जैसे-जैसे वर्ष बीतेंगे यह राशि बढ़ती ही रहेगी। हम चक्रवर्ती ब्याज का सूत्र तो जानते ही हैं। उसकी सहायता से हम भविष्य में होने वाली आय का मूल्य ज्ञात कर सकते हैं।

मान लीजिए कि हम वर्ष 1997 में निवेश करते हैं। पहला आय प्रवाह सृजन 1998 में ही संभव हो जाता है। अतः यह जानना होगा कि 1998 में मिलने वाले 10,000 रुपयों का 1997 में वास्तविक महत्त्व या मूल्यमान क्या होगा। चक्रवर्ती ब्याज सूत्र के अनुसार :

$$10,000 = (1+r)\,P$$

जहाँ कि P वह राशि होगी जो एक वर्ष में r प्रतिशत ब्याज की दर से बढ़कर 10,000 रुपये हो जाएगी। अतः 1998 में प्राप्य 10,000 रुपयों को वर्ष 1997 में मूल्यमान होगा 10,000 (1+r)। इसी तरह से वर्ष 1999 के आय प्रवाह को दो बार, तथा वर्ष 2000 के प्रवाह को तीन बार मितिकाटा (डिस्काउंट) किया जाएगा। इस प्रकार प्राप्त की गई राशियों का योग करके पूरी परियोजना का वर्तमान मूल्य (PV) ज्ञात हो जाता है :

DIKSHANT IAS

$$PV = \frac{10000}{(1+r)} + \frac{10000}{(1+r)^2} + \frac{10000}{(1+r)^3} + \dots\dots + \frac{10000}{(1+r)^{10}} + \frac{10000}{(1+r)^{10}}$$

Call us @7428092240

ध्यान दें कि अंतिम दोनों राशियाँ एक समान हैं। वस्तुतः 10 वर्ष की अवधि समाप्त होने पर मशीन के कबाड़ी मूल्य को भी एक अतिरिक्त आगम के समान मानकर उसी प्रकार इस योगफल में सम्मिलित किया गया है।

इस वर्तमान मूल्य की ही वर्तमान लागत अर्थात् एक लाख रुपये से तुलना करना तर्क संगत होगा। उसी तुलना के आधार पर यह निश्चित हो सकता है कि यह परियोजना में हाथ लेने योग्य है या नहीं। यदि हम PV के उपर्युक्त सूत्र में 'r' का मान बढ़ा दें तो दाहिनी ओर की प्रत्येक राशि का मान कम हो जाएगा। अतः उनका योगफल भी कम रह जाएगा। इसके विपरीत 'r' का मान कम करने पर सभी राशियों तथा उसके परिणामस्वरूप वर्तमान मूल्य में वृद्धि होगी। अतः परियोजना की वर्तमान लागत (PC) तथा संभावित आय प्रवाह ज्ञात होने के बाद वास्तविक निवेश निर्णय इस बात पर निर्भर करेगा कि ब्याज की दर 'r' कितनी है। यदि प्रारंभ में PV=PC, तो हम कह सकते हैं कि यह परियोजना हाथ में ली जा सकती है। ब्याज की दर में कमी इस परियोजना को और आकर्षक या लाभप्रद बना सकती है। दूसरी ओर ब्याज दर बढ़ने पर यह परियोजना भी घाटे का सौदा बन सकती है। अतः हम कह सकते हैं कि निवेश ब्याज की दर पर निर्भर करता है। जब कोई व्यक्ति निवेश करता है तो उसे उस निवेश से कुछ प्रतिफल की आशा होती हैं। किंतु समय के साथ-साथ और ज़्यादा निवेश होने पर यह प्रतिफल बदल सकता है। ऐसी स्थिति को हम चित्र 15.5 में दर्शा रहे हैं :

वास्तविक बाज़ार की कीमत

चित्र 12.5

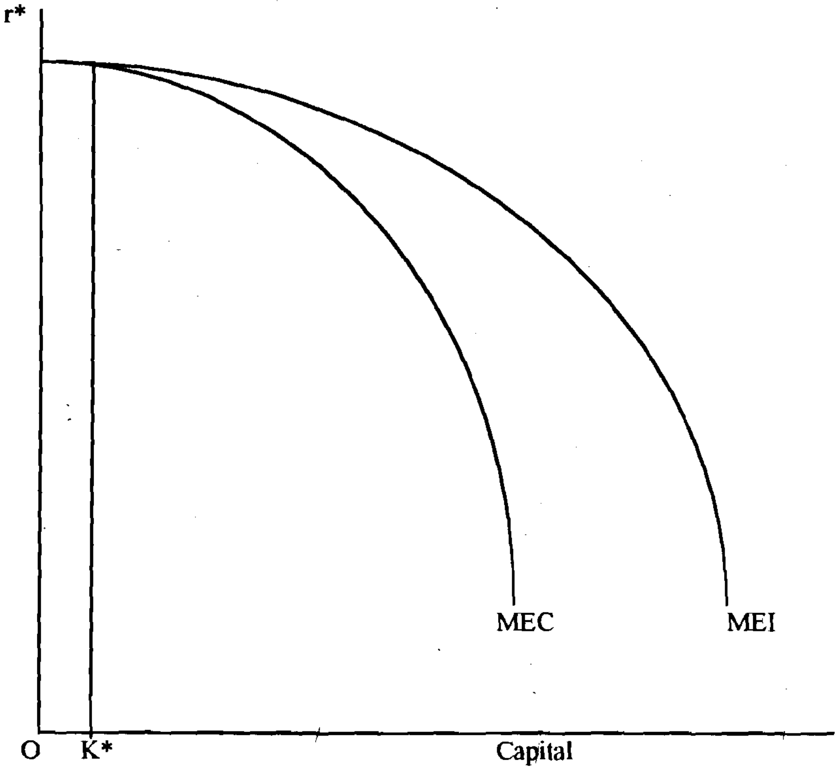

चित्र 12.5 पूँजी का प्रारम्भिक स्टॉक K* है जिस पर प्रतिफल की दर r* है। इससे प्रेरित होकर व्यवसायी निवेश करते हैं। पर निवेश के कारण पूँजी भण्डार में वृद्धि होती है। इससे, अन्य साधनों के स्थिर रहने पर, पूँजी की सीमांत उत्पादिता गिरने लगती हैं। इस प्रकार पूँजी की सीमांत कुशलता (MEC) गिरने लगती है। इसके गिरने का मूल कारण निवेश ही है। अतः हम कहते हैं कि निवेश की सीमांत कुशलता (MEI) ह्रासमान होती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जब तक पूँजी का स्टॉक **K*** रहता है, उत्पादक आय दर 'r' होती है। यदि यह दर अधिक निवेश करने के लिए प्रेरणा प्रदान करें तो क्या होगा? अतिरिक्त निवेश के कारण पूँजी का स्टॉक बढ़ जाएगा। जैसे-जैसे पूँजी भण्डार बढ़ेगा, नई पूँजी का प्रयोग बढ़ाने से इसकी सीमांत उत्पादिता में गिरावट शुरू हो जाती है। इसी को पूँजी की ह्रासमान सीमांत कुशलता (MEC) का नाम दिया जाता है। जैसे ही निवेश पूँजी के स्टॉक को K* से आगे बढ़ाता है, MEC में गिरावट आने लगती है। अतः हम यह भी कह सकते हैं कि पूँजी के स्टॉक में वृद्धि होने पर निवेश की अतिरिक्त आय सृजन में कुशलता या निवेश की सीमांत दक्षता (MEC) कम होने लगती है।

अब हमारे निवेशक को एक समस्या का सामना करना पड़ता है। यह जानता है कि पूँजी पर किसी दर विशेष से प्रतिफल मिल रहा है। यदि वह और निवेश करता है तो पूँजी की मात्रा बढ़ जाती है और प्रतिफल की दर गिरने लगती है। अतः वह अपने निवेश निर्णय में प्रतिफल की गिरती हुई दर तथा बाज़ार में पूँजी की लागत की तुलना करने को बाध्य हो जाता है। यह लागत वस्तुतः निवेश की अवसर लागत ही होती है। अतः वह पूँजी पर प्रतिफल की दर को बाज़ार में प्रचलित ब्याज की दर के समान करने का प्रयास करेगा। वह उसी सीमा तक निवेश करेगा। जब तक कि निवेश पर प्रतिफल की दर बाज़ार की ब्याज दर से कम होने की संभावना नहीं हो अर्थात् यदि प्रतिफल दर r* हो तथा बाज़ार ब्याज दर r हो तो निवेश तभी तक ज़ारी रहेगा जब तक कि $r^* \geq r$।

उपर्युक्त विचारों की कुछ भिन्न व्याख्या भी संभव है। पूँजी की सीमांत दक्षता (MEC) को ही आंतरिक प्रतिफल दर (internal rate of Return) यानि IRR का नाम भी दिया जाता है। अतः निवेश तभी तक ज़ारी रहता है जब तक कि IRR>r जहाँ r बाज़ार में प्रचलित ब्याज दर है।

हम MEI वक्र को पूँजी की माँग फलन भी कह सकते हैं। पूँजी की आपूर्ति-वक्र निवेश की अवसर लागत-वक्र ही होगी। अतः यह आपूर्ति-वक्र हमारी MEI की ही दर्पण प्रतिछवि मात्र होगी। बाज़ार में संतुलन वहीं होगा जहाँ MEI पूँजी की लागत के समान हो। चित्र 12.6 में हम बाज़ार का ऐसा ही संतुलन दिखा रहे हैं।

चित्र 12.6

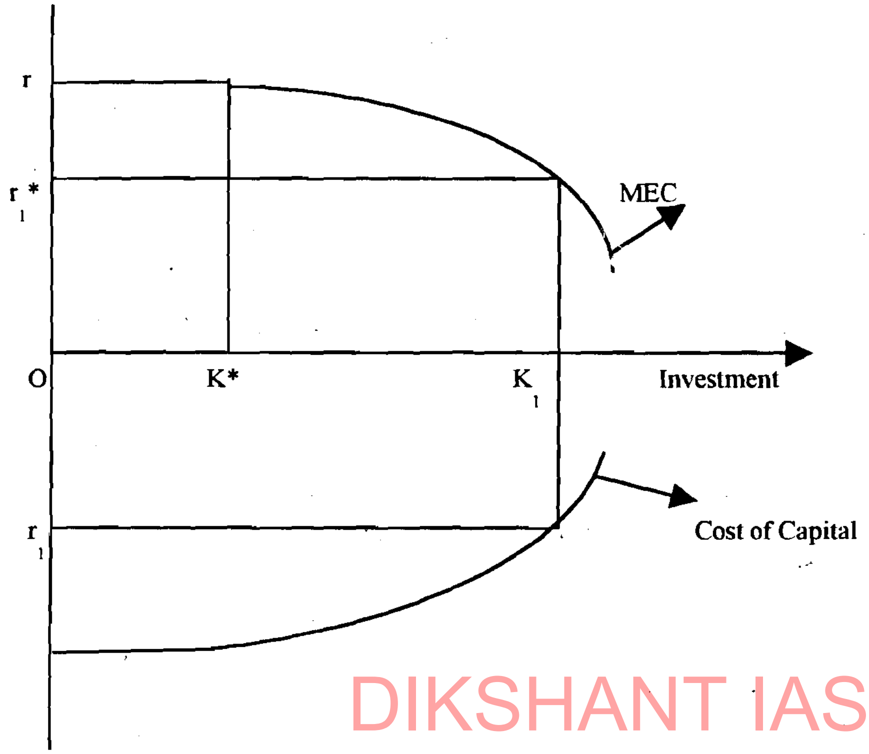

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 12.6 के ऊपरी भाग में हमने MEI वक्र को दिखाया है। ध्यान दें कि यह वक्र K* पूँजी स्तर से आगे ही ढलवाँ होता है, और उस बिंदु पर पूँजी पर प्रतिफल की दर r* है। जैसे-जैसे निवेश के कारण पूँजी का स्टॉक K* से आगे बढ़ता है, MEI कम होने लगती है। चित्र के निचले भाग में हमने पूँजी की लागत-वक्र दिखाई है। यह निवेश की अवसर लागत-वक्र है तथा वस्तुतः MEI वक्र की ही दर्पण प्रतिछवि मात्र है। बाज़ार का संतुलन K_1 जैसे किसी बिंदु पर दर्शाया जा सकता है जहाँ IRR यानि r_1* यानि बाज़ार में प्रचलित ब्याज दर r_1 के समान होता है। ऐसी स्थिति में निवेश का आकार OK_1–OK* होगा।

निवेश के कारण पूँजी का स्टॉक K* से बढ़कर K_1 हो जाता है अर्थात् निवेश = OK_1 – OK*। चित्र के निचले भाग में पूँजी की लागत-वक्र है। संतुलन की स्थिति में बाज़ार की ब्याज की दर है तथा r_1* निवेश के इस स्तर (K^*K_1) पर आंतरिक प्रतिफल दर (IRR) है।

12.3.3 वास्तविक तथा मौद्रिक ब्याज दर

अभी हमें एक और समस्या का हल ढूँढना है। आपने अपने किसी मित्र को कुछ राशि पाँच वर्ष के लिए उधार दी। उसने ठीक समय पर ब्याज सहित सारी रकम लौटा दी। पर बीच में कीमतों का स्तर यदि बहुत ऊँचा उठ गया तो आपकी उस राशि की क्रय-शक्ति के विषय में क्या प्रतिक्रिया होगी? आइए इस उदाहरण को स्पष्ट करें। आपने अपने मित्र को 10,000/- रुपये उधार दिए। उसने 5 प्रतिशत ब्याज सहित वह राशी 5 वर्ष बाद लौटाने का वचन दिया। पर उस अवधि में कीमतें 12 प्रतिशत वार्षिक की दर से बढ़ती रही। अतः मित्र से भुगतान प्राप्ति के बाद की स्थिति कुछ इस प्रकार होगी :

आपको कुल राशि मिली 10,000 + 2500 = 12,500 रुपये। पर इसी अवधि में 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष बढ़कर कीमतें तो दुगुनी हो जाती हैं। आप पाते हो कि अब 12,500 रुपयों से भी आप उतनी वस्तुएँ नहीं खरीद सकते, जिसे पाँच वर्ष पूर्व केवल 10,000 रुपयों में पा सकते थे वस्तुतः अब आपको उतनी ही मात्रा में वस्तुओं को खरीदने के लिए 20,000/- रुपयों की आवश्यकता होगी।

अतः ये 5 प्रतिशत ब्याज की दर आपकी क्रय-शक्ति में कमी की क्षतिपूर्ति नहीं कर पाती। ऐसी ब्याज दर सांकेतिक ब्याज दर **(nominal rate of interest)** कहलाती है। पाँच वर्ष की प्रतीक्षा की भरपाई तो तभी होगी जब आप कीमत वृद्धि दर से अधिक ब्याज वसूल सकें। अतः मुद्रा स्फीति दर से ऊँची ब्याज दर ही वास्तविक ब्याज दर कहलाएगी। हमारे इस उदाहरण में 5 प्रतिशत वार्षिक वास्तविक ब्याज दर का अर्थ होगा कि इस 17 प्रतिशत वार्षिक सांकेतिक ब्याज दर की वसूली करें।

बोध प्रश्न 2

1) साधारण ब्याज की दर क्या होती है?

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) चक्रवर्ती ब्याज की दर का विचार समझाइए।

....

....

....

....

....

3) निवेश की सीमांत कुशलता की अवधारणा समझाइए?

....

....

....

....

....

....

....

4) वर्तमान मूल्य की अवधारणा की व्याख्या करें।

....

....

....

....

....

5) मितिकाटा (discount) दर क्या होती है?

....

....

....

....

....

....

6) वास्तविक तथा सांकेतिक ब्याज की दरों में भेद समझाइए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

....

....

12.3.4 ब्याज संबंधी सिद्धांत या अवधारणाएँ

ब्याज की दर के निर्धारण से जुड़े अनेक सिद्धांत हैं। ये सभी अलग-अलग चरों के आधार पर ब्याज के निर्धारण की व्याख्या करते हैं।

क) **ऋणयोग्य निधि सिद्धांत (Loanable Funds Theory) :** इस अवधारणा में ऋण की माँग तथा ऋण योग्य निधि द्वारा उस दर का निर्धारण होता है जिस पर लेन-देन होता है। किसी भी समय में कुछ व्यक्ति अपनी तात्कालिक आय के कम व्यय करना चाहते होंगे तो कुछ व्यक्ति आय से अधिक व्यय करने के इच्छुक होंगे। इनमें से प्रथम वर्ग को ऋण योग्य निधि का स्रोत माना जा सकता है तो दूसरा वर्ग इस ऋण योग्य निधि का माँगकर्ता होगा। जहाँ इनकी माँग एवं आपूर्ति-वक्र एक-दूसरे को काटती है, वहीं ब्याज की दर का निर्धारण होता है। इसी स्थिति को चित्र 12.7 में दर्शाया गया है। यहाँ **re** ब्याज दर पर **Qe** राशि का लेन-देन होता है।

चित्र 12.7

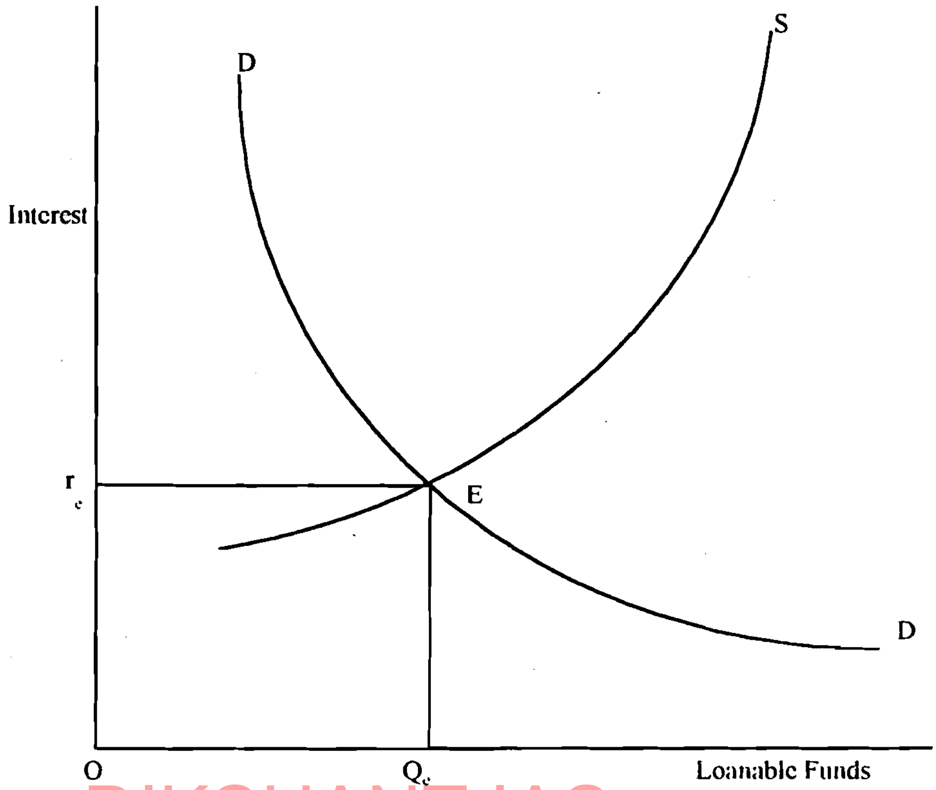

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 12.7 : ऋण चाहने वाले व्यक्ति कम ब्याज दर पर अधिक तथा उच्च दर पर कम राशि उधार लेना चाहेंगे। दूसरी ओर ऋणदाता का व्यवहार इसके विपरीत होगा। वह उच्च ब्याज पर अधिक राशि उधार देगा। पर निम्न दर पर कम राशि देने को तैयार होगा। इस तरह से हमें ऋण योग्य निधियों के लिए सामान्य माँग एवं आपूर्ति-वक्र प्राप्त होते हैं। अर्थात्, माँग-वक्र दाहिनी और ढलवाँ होता है और पूर्ति-वक्र उठता हुआ। ये दोनों E बिंदु पर काटते हैं। अतः बाज़ार में संतुलन की स्थिति का निर्धारण हो जाता है— re ब्याज दर पर OQe धनराशि का लेन-देन होता है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि उधार की माँग इन तीनों में से किसी भी कारण से पैदा हो सकती है :

i) निवेश माँग, (ii) उपभोग माँग, तथा (iii) वित्तीय माँग।

यह संभावना काफी अधिक होती है कि ये माँग का ही मिश्रित स्वरूप हो।

इसी प्रकार ऋण योग्य निधि की आपूर्ति भी तीन प्रकार के स्रोत हो सकते हैं : नई बचतें, पुरानी बचतों का विनिवेश तथा नई मुद्रा का सृजन (सामान्यतः साख निर्माण) होना।

ख) **तरलता-अभियान सिद्धांत (Liquidity Preference Theory)** : इस विषय में इकाई16 में मुद्रा बाज़ार के संतुलन के अंतर्गत इस सिद्धांत पर विशेष चर्चा की गई है। यह सिद्धांत केन्ज़ की देन है। उन्होंने मुद्रा की माँग तथा ब्याज की दर को समाज के आय के स्तर के साथ जोड़ने का प्रयास किया। उनकी नकदी की माँग किसी भी आय स्तर पर सामान्य लेन-देन, पूर्वोपाय या फिर सट्टेबाजी के उद्देश्यों से प्रेरित हो सकती है। किंतु उन्होंने मुद्रा की आपूर्ति को एक नीति-अस्त्र के रूप में प्रतिष्ठित किया। इस प्रकार ब्याज की दर का निर्धारण माँग फलन और सदी गयी मुद्रा आपूर्ति द्वारा निर्धारित होता है।

ग) **समय सिद्धांत (Time Preference Theory)** : इस सिद्धांत का सूत्रपात इर्विंग फिशर **(Irving Fisher)** ने किया । उनका विचार था कि उपभोक्ता वर्तमान एवं भविष्य में संभव उपभोग स्तरों की तुलना करता है । जिस दर पर भविष्य का उपभोग वर्तमान उपभोग का स्थान ले सके उसे वर्तमान एवं संभावी उपभोग की सीमांत प्रतिस्थापन दर कहा जाएगा । इसी को काल अधिमान दर का नाम भी दिया गया है । यह दर वर्तमान एवं संभावी उपभोग के बीच अधिमान वक्र के ढाल **(slope of indefference curve)** के समान ही होगी ।

बोध प्रश्न 3

1) ऋण योग्य निधि सिद्धांत की व्याख्या करें । (शब्द सीमा 50)

....

....

....

....

....

2) समय अधिमान सिद्धांत समझाइए । (शब्द सीमा 50)

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

12.4 उद्यम वृत्ति का पुरस्कार : लाभ

कुछ आधारभूत अवधारणाएँ

हम उद्यमवृत्ति को चौथा उत्पादन साधन मानते हैं । एक उद्यमी ही भूमि, पूँजी एवं श्रम को एक साथ काम पर जुटाता है । इसीसे उत्पादन संभव हो पाता है । यही तथ्य उत्पादन प्रक्रिया में उद्यमी की भूमिका एवं महत्त्व को स्पष्ट कर देता है । यदि वह अन्य साधनों को इकट्ठा नहीं करता तो उत्पादन संभव ही नहीं हो पाएगा । पूँजीवादी व्यवस्था में तो लाभ की संभावना ही इस बात की कसौटी बन जाती है कि किसी कार्य को किया जाएगा, या नहीं । यहाँ तक कि ग़ैर-पूँजीवादी व्यवस्थाओं में भी लाभ किसी फर्म की कुशलता, नवीन प्रयोग या तकनीकी परिवर्तन की कुशलता की परख के लिए एक प्रकार का मानक बन सकता है । अत: यह स्पष्ट है कि यदि कोई फर्म अपने ही जैसी अन्य फर्मों की तुलना में अधिक लाभ कमाती हो तो उसे अधिक कुशल माना ही जाएगा । या फिर कहेंगे कि वह संसाधनों का बेहतर प्रयोग कर रही है अथवा वह बेहतर तकनीकों को इस्तेमाल कर रही है । किंतु बेहतर तकनीकों के प्रयोग आदि में कुछ न कुछ जोखिम भी होती ही है । इसीलिए हम लाभ को अनिश्चितता एवं जोखिम के साथ भी जुड़ा हुआ पाते हैं । विश्लेषण को अधिक व्यापक बनाने की दृष्टि से हम उद्यमी के कार्यों को दो वर्गों में बाँटते हैं :

क) **संगठन :** इससे अभिप्राय व्यावसायिक संस्थान की गतिविधियों के संचालन से है। इसी को प्रबंधन भी कहते हैं। आज कल तो अधिकतर कंपनियों का प्रबंध कार्य व्यावसायिक प्रबंधक ही करते हैं जिन्हें वेतन एवं भत्ते-सुविधाएँ आदि दिए जाते हैं। इस तरह से उद्यमी का एक अंश तो श्रम के समान ही हो जाता है।

ख) **जोखिम उठाना :** प्रत्येक व्यवसाय में बाज़ार में असफलता का कुछ न कुछ ख़तरा तो रहता ही है। इस जोखिम के कारण बाज़ार की अनिश्चितताओं, प्राकृतिक आपदाओं तथा राजनीतिक घटना-चक्र आदि में खोजे जा सकते हैं। यदि व्यवसाय असफल रहती है तो उद्यमी अपने निवेश का काफी भाग खो देता है। इस प्रकार हानि की जोखिम सदैव बनी रहता है। फिर, नए उत्पादन बाज़ार में लाने, या नई उत्पादक तकनीकों का प्रयोग करने आदि में तो असफलता की जोखिम और भी बढ़ जाती है। अतः इन कार्यों में यदि प्रतिफल अधिक नहीं हुआ तो फिर इन्हें करने को कोई भी तैयार नहीं होगा।

इसीलिए कहा जाता है कि लाभ तो जोखिम उठाने का ही प्रतिफल है।

12.4.1 लेखा-लाभ तथा आर्थिक लाभ

एक लेखाकार वर्ष भर में कुल आगम तथा मूल्यह्रास सहित सभी लागतों के अंतर को लाभ कहता है। इन लागतों में कच्चे माल, ईंधन, मज़दूरी, वेतन, भाड़ा, बीमा तथा ब्याज आदि के निमित्त किए गए सभी भुगतान सम्मिलित होते हैं। पूँजी की घिसावट का प्रावधान ही मूल्य-ह्रास कहा जाता है। अतः लेखाकार इन सभी खर्चों को पूरा करने के बाद जो कुछ बच रहता है, उसी आधिक्य को लाभ मानते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

किंतु इस प्रकार के लेखांकन में कुछ निहित लागतें प्रायः छूट जाती हैं। एक तो अपने व्यवयास में स्वयं कार्यरत व्यापारी को वेतन दिया जाए या नहीं। सामान्यतः कंपनियाँ धीरे-धीरे अपने पास अच्छी खासी रकम (बचाकर) संग्रहित कर लेती हैं और उसे अपने व्यापार कार्य में प्रयोग करती हैं। उस रकम पर ब्याज क्या लागत में जुड़ना चाहिए? परंतु आर्थिक दृष्टि से लाभ का आकलन इन निहित लागतों को भी ध्यान में रखकर ही किया जाता है। अतः आर्थिक लाभ के आँकड़े हम लेखा लाभ में से सभी निहित लागतों को घटाकर ज्ञात करते हैं।

12.4.2 लाभ के सिद्धांत

अर्थशास्त्रियों ने समय-समय पर लाभ के अनेक सिद्धांत विकसित किए हैं। शुम्पीटर ने लाभ का मुख्य आधार नवीन प्रक्रियाओं (innovation) के व्यवहारिक प्रयोग को माना, तो फ्रैंक नाइट ने अनिश्चितता को लाभ का मुख्य स्रोत माना।

क) **लाभ : नव प्रवर्तन (innovations) का पुरस्कार** : शुम्पीटर (Schumpeter) का विचार है कि लाभ तो एक गतिशील अर्थव्यवस्था में ही पैदा होते हैं। उन्होंने ऐसे पाँच प्रकार के परिवर्तनों की पहचान की जो आर्थिक विकास लाते हैं और समान को गतिशील बनाते हैं : ये परिवर्तन हैं :

i) नए उत्पादनों को बाज़ार में लाना
ii) उत्पादन की नई तकनीकों को प्रयोग करना
iii) नए कच्चे माल की खोज
iv) नए बाज़ारों की पहचान तथा
v) संगठन के नए स्वरूपों का विकास।

नई-नई बातों का व्यवसाय में प्रयोग में लाना नव प्रवर्तन कहलाता है । यह आवश्यक नहीं है कि एक नव प्रवर्तक आविष्कारक भी हो । लेकिन वह अवश्य ही किसी आविष्कार का प्रयोग उत्पाद-फलन अर्थात् आगतों और उत्पादन के संबंध को बदलने के लिए करता है । यह नव प्रवर्तन उत्पादन की नई तकनीक का रूप ले सकता है, नए-नए बाज़ारों तक पहुँच, या फिर विपणन से संबंधित कोई गतिविधि ।

शुम्पीटर का मत है कि जो कोई नव प्रवर्तन करता है उसे अधिक लाभ भी मिलता है और वह (उससे) उत्साहित होकर और आगे नव प्रवर्तन के प्रयास करता है । पर शीघ्र ही उसके नव प्रवर्तनों की नकल होनी चालू हो जाएगी । अन्य व्यवसायी भी इन्हें अपनाने लगेंगे । अब उसे व्यवसाय में आगे-आगे रहने के लिए और प्रयास करना होगा । अतः नव प्रवर्तन से लाभ होता है और लाभ एक प्रेरणा के रूप में नव प्रवर्तन को संभव बनाता है ।

ख) **अनिश्चितता एवं लाभ :** फ्रैंक नाइट (**Frank Knight**) ने लाभ को विक्रय मूल्य एवं लागत का अंतर माना । यहाँ लाभ एक अवशिष्ट है । विक्रय मूल्य तथा लागतें अनेक कारकों पर निर्भर करते हैं । इनमें से कुछ को जोखिम में भी सम्मिलित माना जा सकता है । ऐसी जोखिमों का पूर्वानुमान संभव हैं तथा इनके लिए लागतों की संरचना में ही प्रावधान किया जा सकता है । सभी पूर्वानुमान्य जोखिमों का बीमा भी संभव होता है । कंपनी एक उपयुक्त बीमा पॉलिसी लेकर ऐसी जोखिमों के प्रति आश्वस्त हो सकती है । बीमे की किश्त की राशि लागतों में जुड़ जाती है । इन प्रकार के जोखिमों का पूरी तरह पूर्वानुमान लगाया जा सकता है तथा उनके लिए पहले ही प्रावधान हो सकता है । ऐसे में उत्पादन करना पूर्णतया निश्चित दशाओं में उत्पादन करने के समान ही है ।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

परंतु नाइट तो अनिश्चितता के एक और ही पहलु की ओर इंगित करते हैं । उनका कहना है कि उत्पादक उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं की आवश्यकताओं और पंसदों का पूर्वानुमान लगाने में निरंतर लगा रहता है । यह आवश्यक भी है, तभी तो वह समय रहते उन वस्तुओं के उत्पादन की व्यवस्था कर पाएगा जिनसे उन आवश्यकताओं की पूर्ति संभव होगी । इसका मुख्य कारण यही है कि माँ के पूर्वानुमान, उत्पादन तथा वस्तुओं को उपभोक्ता तक पहुँचाने के बीच कुछ न कुछ वक्त तो लगता ही है । इन सबके परिणाम क्या होंगे इसमें एक निश्चितता आ जाती है । साथ-साथ यह भी संभव है कि व्यवसाय के प्रबंधक कुछ गलती कर बैठें । यहाँ उसे उत्पादन साधनों की आय को बाज़ार के उतार-चढ़ाव से बचाकर रखने से जुड़ी अनिश्चितता एवं जोखिम का वहन भी करना पड़ता है । इस तरह से उद्यमी की आय के दो भाग हो सकते हैं : एक तो अनुबांधिक वेतन मज़दूरी तथा दूसरा एक अतिरेक, जो कि बाज़ार की दशाओं के साथ-साथ घटता-बढ़ता रहता है । कुछ अर्थशास्त्री इस दूसरे अंश को ही लाभ मानते हैं । अतः हम देखते हैं कि लाभ अन्य साधन प्रतिफलों से भिन्न है । मज़दूरी ब्याज तथा भाड़ा आदि की दरों को पहले से ही तय किया जा सकता है पर लाभ को पहले ही निश्चित कर लेना संभव ही नहीं है । अनिश्चितता के कारण आगम तथा लागतों में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं । ये उतार-चढ़ाव परस्पर संतुलित नहीं हो पाते । इससे अंततः सभी पूर्वानुबंधित भुगतान दायित्त्वों की पूर्ती के बाद जो कुछ बच रहता है, उसी को लाभ कहा जाता है ।

ग) **लाभ तथा बाज़ार की संरचना :** कुछ अर्थशास्त्रियों का मत है कि लाभ अंततः बाज़ार की अपूर्णताओं के कारण ही पैदा होता है । यदि पूर्ण प्रतियोगिता हर ओर व्याप्त हो तो किसी भी वस्तु का प्रत्येक उत्पादक एक जैसी तकनीक का प्रयोग करेगा, उसे उत्पादन, लागत तथा बाज़ार की दशाओं की पूर्ण जानकारी होगी । ऐसी व्यवस्था में सभी उत्पादक न्यूनतम संभव लागत स्तर पर ही उत्पादन करेंगे । वे सभी बाज़ार कीमत पर ही अपना उत्पादन बेचेंगे । लागतों और आगम के सभी निर्धारक तत्त्व सभी को पूरी तरह ज्ञात होंगे । अतः उद्यम वृत्ति तो केवल

व्यवसाय की देखभाल मात्र ही रह जाती है। अतः लाभ का स्तर भी इस देखभाल के लिए न्यूनतम आवश्यक प्रतिफल तक ही सीमित रहना चाहिए।

किंतु यदि बाज़ार में पूर्ण प्रतियोगिता का अभाव हो तो फिर प्रत्येक फर्म इस प्रकार कीमत निर्धारित करती है कि उसका अपना हित अधिक से अधिक पूरा हो और जिससे उसका अतिरेक बढ़े। इसमें पूर्ण प्रतियोगिता की खुली जानकारी की शर्त का उल्लंघन भी हो सकता है। फर्म अपने नव प्रवर्तन को प्रतियोगियों से छुपाकर रखने का प्रयास कर सकती है। जब तक यह प्रयास सफल रहता है; वह अधिक लाभ भी कमा सकती है।

ए.पी. लर्नर **(A.P. Lerner)** ने लाभ पर एकाधिकारी शक्ति के प्रभाव को मापने का प्रयास किया है। हम जानते हैं कि किसी भी फर्म के संतुलन की आवश्यक शर्त सीमांत लागत और सीमांत आगम की समानता है। पूर्ण प्रतियोगिता में तो औसत आगम भी सीमांत आगम के समान होती है। जब बाज़ार पूर्ण प्रतियोगिता से दूर होने लगता है तभी औसत आगम (कीमत) भी सीमांत आगम तो दूर होने लगती है। अतः कीमत एवं सीमांत आगम (=सीमांत लागत) का अंतर, अर्थात् **P–MR** (अथवा **P-MC**) बाज़ार पर फर्म के नियंत्रण का माप बन जाता है। इसी को कीमत के अनुपात के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है। अतः एकाधिकार स्तर =**(P-MC)/P** । यह अनुपात जितना अधिक होगा, फर्म उतना ही अधिक लाभ कमाएगी।

बोध प्रश्न 4

1) किसी उद्यमी के मुख्य कार्य क्या हैं?

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

2) पूर्ण प्रतियोगिता में लाभ 'न्यूनतम' अथवा सामान्य क्यों हो जाते हैं?

....

....

....

....

....

3) पूर्ण प्रतियोगिता में अतिरेक के रूप में लाभ शून्य क्यों हो जाता है?

....

....

....

....

....

12.5 सारांश

वर्तमान इकाई के तीन अलग-अलग अनुच्छेद हैं। हमने भाग 12.2 में भूमि के प्रतिफल के निर्धारण की चर्चा की है। इसमें रिकार्डो, मार्शल तथा आधुनिक लगान के सिद्धांतों पर विचार किया गया। यहीं हमने आभास लगान के बारे में भी बातचीत की। यह आभास लगान का विचार तो वस्तुतः सभी साधनों पर समान रूप से लागू हो सकता है, बस उस साधन की अल्पकालिक पूर्ति में कुछ लोचहीनता होनी चाहिए। भाग 12.3 में ब्याज संबंधी विचार कर चर्चा की गई है। हमने इसके कई सामान्य स्वरूपों तथा ब्याज के कारणों/या इसकी व्याख्याओं पर भी विचार किया है। ब्याज को पूँजी एवं निवेश से जोड़ते हुए इस विषय से जुड़े प्रमुख सिद्धांतों पर भी चर्चा की गई है। उद्यमवृत्ति के प्रतिफल के विषय में आपको भाग 12.4 में जानकारी दी गई है। यहीं पर उद्यम के कार्य, अनिश्चितता के प्रभाव और लाभ संबंधी मुख्य-मुख्य अवधारणाओं पर भी संक्षेप में विचार हुआ है।

12.6 शब्दावली

अनुबांधिक लगान : एक साधन के स्वामी और उसके प्रयोगकर्ता के बीच प्रयोग के निमित्त परस्पर तय की गई राशी।

साख/उधार : किसी को बिना तत्काल भुगतान किए वस्तुओं/सेवाओं के प्रयोग की अनुमति देना।

मितिकाटा : किसी परिसंपत्ति के अंकित मूल्य में से कम की गई राशि।

आर्थिक लाभ : लेखालाभ में से सभी निहित लागतें घटाकर प्राप्त राशि।

निहित लागतें : उन कारकों की लागत जिसका उत्पादक किसी को भुगतान नहीं करता, ये कारक उसके अपने हो सकते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

नव प्रवर्तन : किसी आविष्कार का व्यवहारिक प्रयोग। यह सामान्यतः नई तकनीक, आदान, बाज़ार या उसका स्वरूप/ संगठन हो सकता है।

सामान्य लाभ : उद्यमी के पुरस्कार स्वरूप न्यूनतम भुगतान ताकि वह व्यवसाय में बना रहे।

आभास लागत : किसी साधन को उसकी औसत लागत से अधिक भुगतान-यह सामान्यतः अल्पकाल में ही संभव है।

हस्तांतरण आय : किसी साधन को उसके वर्तमान रोज़गार में रोके रखने के लिए न्यूनतम आवश्यक भुगतान। यह उस राशि के समान होता है जो कि उस साधन को किसी अन्य वैकल्पिक रोज़गार से प्राप्त हो सकती है।

12.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Stonier A.W. and Hague D.C. 1980 : *A Text Book of Economic Theory*, MacMillan, London

Lipsey. R.G. *An Introduction to Positive Economics*, 6th Edition, ELBS and Weidented and Nicolsen, London

12.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

1) भाग 12.2.1 देखें।

2) भाग 12.2.1 देखें।

3) भाग 12.2.1 देखें।

4) भाग 12.2.2 देखें।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 12.3.1 देखें।

2) भाग 12.3.1 देखें।

3) भाग 12.3.2 देखें।

4) भाग 12.3.1 देखें।

5) भाग 12.3.1 का (घ) देखें।

6) भाग 12.3.3 देखें।

बोध प्रश्न 3

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1) भाग 12.3.4 देखें।

2) भाग 12.3.4 देखें।

बोध प्रश्न 4

1) भाग 12.4.1 देखें।

2) भाग 12.4.2 का (ग) देखें।

3) भाग 12.4.2 का (ग) देखें।

इकाई 13 राष्ट्रीय आय का चक्रीय प्रवाह

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 चक्रीय प्रवाह की अवधारणा
- 13.2.1 मुद्रा प्रवाह और वास्तविक प्रवाह में अंतर
- 13.2.2 उद्यमों तथा गृहस्थों के बीच प्रवाह
- 13.2.3 उद्यमों, गृहस्थों तथा पूँजी क्षेत्रों के बीच प्रवाह
- 13.2.4 उद्यमों, गृहस्थों, सरकारी क्षेत्रों के बीच प्रवाह
- 13.2.5 एक खुली अर्थव्यवस्था में प्रवाह

13.3 चक्रीय प्रवाह तथा राष्ट्रीय आय
- 13.3.1 वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाह के रूप में राष्ट्रीय आय
- 13.3.2 साधन आयों के प्रवाह के रूप में राष्ट्रीय आय
- 13.3.3 अंतिम व्ययों के प्रवाह के रूप में राष्ट्रीय आय
- 13.3.4 उत्पादन, आय तथा व्यय के प्रवाहों के रूप में राष्ट्रीय आय

13.4 राष्ट्रीय आय समूह
- 13.4.1 राष्ट्रीय आय तथा विभिन्न संबंधित अवधारणाएँ
- 13.4.2 विभिन्न समष्टिगत आर्थिक समूहों के बीच अंतर्संबंध

13.5 सारांश
13.6 शब्दावली
13.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें
13.8 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

13.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप समझ पाएँगे :

- चक्रीय प्रवाह से क्या अभिप्राय है;
- मुद्रा प्रवाहों और वास्तविक प्रवाहों में अंतर;
- चक्रीय प्रवाहों से राष्ट्रीय आय का मापन;
- उत्पादन, आय-सृजन तथा व्यय प्रवाहों का अर्थ; तथा
- विभिन्न समष्टिगत आर्थिक समूहों के बीच संबंध।

13.1 प्रस्तावना

यह इकाई चक्रीय प्रवाह एवं राष्ट्रीय आय से संबंधित है। एक अर्थव्यवस्था विभिन्न आर्थिक एजेंटों जैसे उत्पादक, उपभोक्ता, सरकार, पूँजी तथा शेष-विश्व की मदद से कार्य करती है। ये आर्थिक एजेंट उत्पादन, आय-सृजन, पूँजी-निर्माण तथा शेष-विश्व के साथ लेन-देन जैसी विभिन्न प्रकार की गतिविधियाँ करते हैं। इन आर्थिक गतिविधियों को करते हुए विभिन्न आर्थिक एजेंटों के बीच प्रवाह होते हैं। इन प्रवाहों से हम राष्ट्रीय आय, सकल घरेलू उत्पाद इत्यादि प्राप्त कर सकते हैं।

राष्ट्रीय आय, रोज़गार कीमत स्तर इत्यादि के निर्धारण के लिए समष्टिगत आर्थिक सिद्धांतों को समझने के लिए इन चक्रीय आय तथा उसके अन्य संबंधित आर्थिक समूहों को समझना आवश्यक है।

13.2 चक्रीय प्रवाह की अवधारणा

चक्रीय प्रवाह की अवधारणा एक आर्थिक इकाई से दूसरी आर्थिक इकाई के बीच वास्तविक लेन-देन या मौद्रिक लेन-देन से संबंधित है। यह प्रवाह एक-तरफा नहीं है बल्कि दो-तरफा है। इसलिए इसे चक्रीय प्रवाह कहा जाता है। मान लीजिए कि व्यक्ति "क" व्यक्ति "ख" को गेहूँ देता है, और बदले में व्यक्ति "ख" व्यक्ति "क" को चावल देता है तो इस लेन-देन को चक्रीय प्रवाह कहा जाएगा। इस बात को निम्न तरीके से दिखाया जा सकता है।

चित्र 13.1

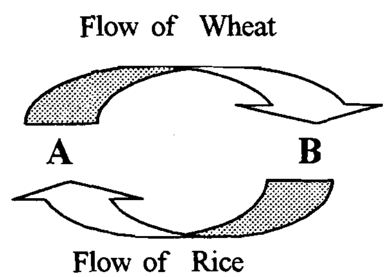

तीर की दिशा दिखाती है कि कौन प्राप्त कर रहा है। उदाहरण के लिए जब "ख" व्यक्ति, "क" व्यक्ति से गेहूँ प्राप्त करता है तो तीर का निशान व्यक्ति "ख" की तरफ होता है। उसी तरह जब व्यक्ति "क" व्यक्ति "ख" से चावल प्राप्त करता है तो तीर का निशान व्यक्ति "क" की तरफ होता है। उपरोक्त उदाहरण में चूँकि वस्तुओं का विनिमय हो रहा है इसलिए इन प्रवाहों को वास्तविक प्रवाह कहा जाएगा। यदि वस्तुओं के स्थान पर मुद्रा का विनिमय होता है तो इसमें वास्तविक प्रवाह के साथ-साथ मुद्रा-प्रवाह भी आ जाते हैं। मान लीजिए कि उपरोक्त उदाहरण में व्यक्ति "ख" व्यक्ति "क" से गेहूँ प्राप्त करता है और बदले में "ख" व्यक्ति "क" को मुद्रा देता है तो बाद वाला प्रवाह मुद्रा-प्रवाह है। उसी प्रकार से यदि व्यक्ति "क" व्यक्ति "ख" को चावल की खरीद के बदले मुद्रा प्रदान करता है तो भी यह बाद वाला प्रवाह मुद्रा-प्रवाह है। इन मुद्रा प्रवाहों को निम्न प्रकार से दिखाया जा सकता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 13.2

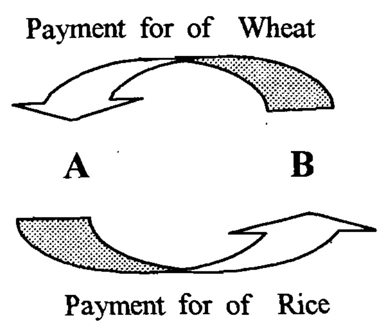

यदि हम 13.1 एवं चित्र 13.2 की तुलना करें तो पाते हैं कि वास्तविक प्रवाह सीधी दिशा में यानी बाईं से दाईं ओर चलता है। दूसरी तरफ, मौद्रिक प्रवाह उल्टी दिशा यानी दाईं से बाईं ओर चलता है।

13.2.1 मुद्रा प्रवाह और वास्तविक प्रवाह में अंतर

मौद्रिक एवं वास्तविक प्रवाहों के अंतर को स्पष्ट रूप से समझना होगा। वास्तविक प्रवाह से अभिप्राय वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाह से है। वास्तविक प्रवाहों का मापन कठिन होता है क्योंकि इन्हें अलग-अलग वस्तुओं और सेवाओं को अलग-अलग इकाइयों में व्यक्त करते

हैं जैसे किलोग्राम, लीटर आदि। ऐसी इकाइयों को जोड़ नहीं सकते। यही कारण है कि हम वास्तविक प्रवाहों को मौद्रिक प्रवाहों में व्यक्त करके उनका मापन करते हैं। जैसा कि नाम से स्पष्ट है कि मौद्रिक प्रवाह से अभिप्राय मुद्रा के लेन-देन से है। "क", "ख" को कोई वस्तु बेचता है तो यह एक वास्तविक प्रवाह है। इसके बदले में "ख", "क" को जो भुगतान करता है, वह मौद्रिक प्रवाह है। इसी प्रकार यदि "ख", "क" को श्रम सेवाएँ देता है तो यह एक वास्तविक प्रवाह होगा। "क" इन साधन सेवाओं के बदले जो कुछ भुगतान करता है वह मौद्रिक प्रवाह है।

मौद्रिक तथा वास्तविक प्रवाहों के बीच अंतर एवं उनके आपसी संबंधों को निम्न चित्र की सहायता से समझाया जा सकता है। इसमें "क" को एक उत्पादक तथा "ख" को एक गृहस्थ के रूप में दर्शाया गया है:

चित्र 13.3

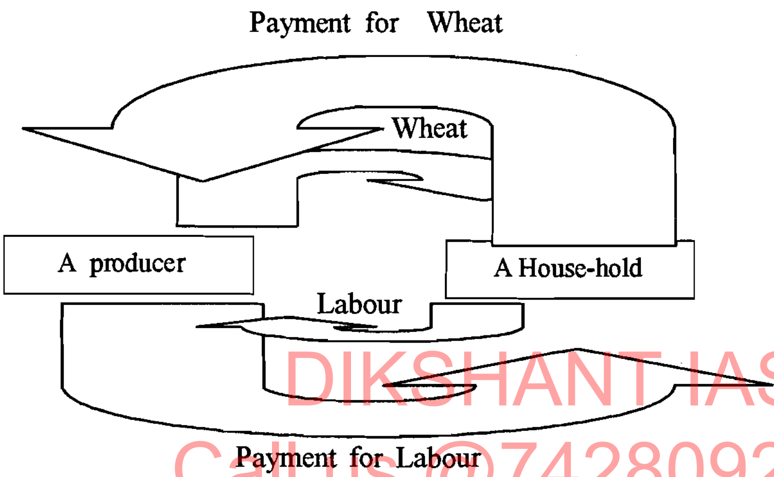

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उपरोक्त चित्र 13.3 में एक उत्पादक वस्तुओं का उत्पादन करता है तथा एक गृहस्थ को उनकी आपूर्ति करता है। तीर की दिशा वस्तुओं को प्राप्त करने वालों की ओर इंगित करती है। उसी प्रकार से एक गृहस्थ एक उत्पादक को साधन सेवाएँ प्रदान करता है जैसा कि तीर से दर्शाया गया है। उदाहरण के तौर पर, एक उत्पादक द्वारा एक उपभोक्ता को वस्तुओं की आपूर्ति के बदले मुद्रा के रूप में उपभोक्ता द्वारा किया गया भुगतान उपभोग व्यय के रूप में दर्शाया गया है। उसी प्रकार से उपभोक्ता से उत्पादक को प्रदान की जाने वाली साधन सेवाओं के बदले में उत्पादक द्वारा साधन भुगतान किए जाते हैं। यहाँ यह समझना होगा कि एक वस्तु-विनिमय अर्थव्यवस्था में वस्तुओं के बदले वस्तु देकर विनिमय किया जाता है। इसलिए ऐसी अर्थव्यवस्था में केवल वास्तविक प्रवाह ही होंगे। दूसरी ओर, एक अर्थव्यवस्था जहाँ वस्तुओं (सेवाओं) का विनिमय मुद्रा के द्वारा किया जाता है। उसमें वास्तविक एवं मौद्रिक प्रवाह दोनों होते हैं। यह भी संभव है कि आधुनिक अर्थव्यवस्था में कुछ प्रवाह केवल मौद्रिक ही हों जिससे सम्बद्ध वास्तविक प्रवाह न हो। उदाहरण के लिए, पिता द्वारा पुत्र को दिए जाने वाले जेबखर्च से सम्बद्ध कोई वास्तविक प्रवाह नहीं होता क्योंकि पुत्र द्वारा इसके बदले में कुछ प्रदान नहीं किया जाता। इस प्रकार से चक्रीय प्रवाह पूर्ण नहीं होगा। हम कुछ ऐसे उदाहरण सोच सकते हैं जिसमें चक्रीय चलन को पूर्ण करता है।

13.2.2 उद्यमों तथा गृहस्थों के बीच प्रवाह

विभिन्न आर्थिक इकाइयों के बीच परस्पर लेन-देन को प्रवाहों के रूप में रखकर ठीक प्रकार से समझा जा सकता है।

एक उद्यम एक आर्थिक इकाई में होती है जो गृहस्थों द्वारा दी गई साधन सेवाओं को लगाकर वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन करता है। यह उत्पादन या यह अन्य फर्मों को

बेचता है जिसे मध्यवर्ती उपभोग कहा जाता है, या फिर उपभोक्ताओं को बेचता है जिसे अंतिम उपभोग कहते हैं, और या फिर मशीन अथवा उपकरणों के रूप में निवेशकर्ताओं को बेचता है, जिसे निवेश कहते हैं। उपभोक्ता वस्तुओं तथा निवेश वस्तुओं को सम्मिलित रूप से 'अंतिम वस्तुएँ' कहा जाता है जो 'मध्यवर्ती वस्तुओं' से भिन्न होती हैं।

जब एक अर्थव्यवस्था में सभी फर्मों को एक समूह के रूप में लिया जाता है तो इस समूह के भीतर एक उद्यम द्वारा दूसरे उद्यम से खरीदी गई वस्तुएँ और सेवाएँ गिनी नहीं जातीं।

एक गृहस्थ उद्यमों को साधन सेवा (भूमि, श्रम, पूँजी तथा उद्यमशीलता) प्रदान करते हैं और उद्यमों द्वारा उत्पादित उपभोक्ता वस्तुओं और सेवाओं का उपभोग करते हैं। एक अर्थव्यवस्था में सभी गृहस्थों को एक समूह के रूप से लेने पर एक गृहस्थ से दूसरे गृहस्थ के बीच होने वाले आपसी लेन-देन स्वाभाविक रूप से गिने नहीं जाते हैं।

गृहस्थों एवं उत्पादकों के बीच अंतर व्यक्तियों को एक या दूसरी श्रेणी में रखने पर आधारित नहीं है; बल्कि एक व्यक्ति उपभोक्ता होने के साथ-साथ उत्पादक भी हो सकता है। उदाहरण के लिए, एक अध्यापक जब अध्यापन सेवाएँ उत्पादित करता है तो वह एक उत्पादक कहलाएगा और जब वह अन्य उत्पादकों द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं का उपभोग करता है तो वह गृहस्थ होगा। इस प्रकार से कह सकते हैं कि गृहस्थ एवं उत्पादकों के बीच अंतर व्यक्तियों के आधार पर नहीं बल्कि कार्यों के आधार पर हैं।

उद्यमों और गृहस्थों के बीच प्रवाहों को चित्र 13.4 की सहायता से दर्शाया जा सकता है :

चित्र 13.4

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

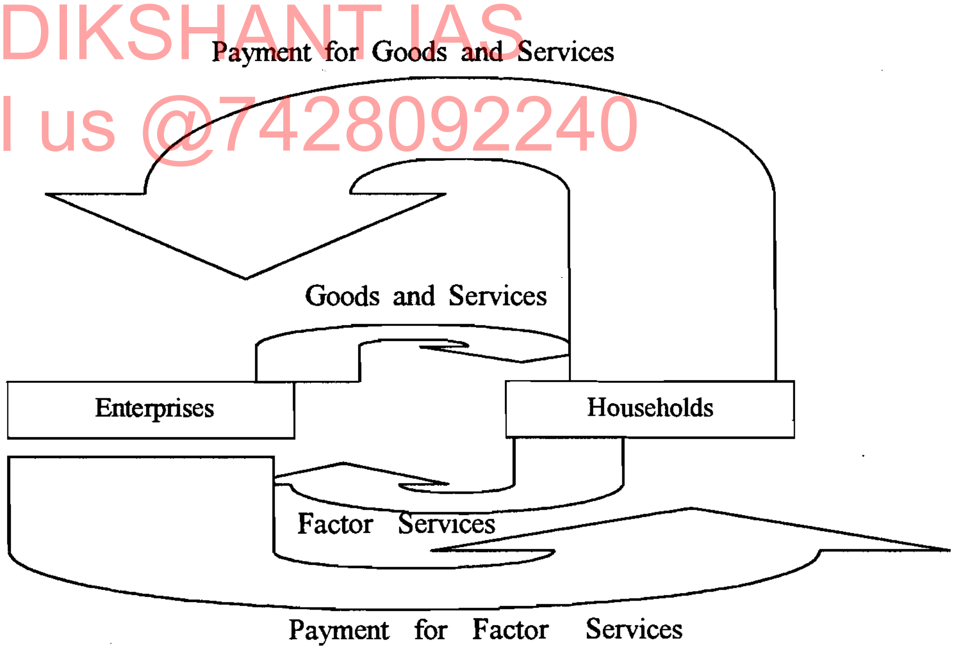

उपरोक्त चित्र में वास्तविक एवं मौद्रिक प्रवाहों को दर्शाया गया है, जहाँ उद्यम से गृहस्थों की ओर उपभोक्ता वस्तुओं तथा सेवाओं का प्रवाह तथा गृहस्थों से उद्यमों की ओर साधन सेवाओं का प्रवाह वास्तविक प्रवाह है। उसी प्रकार से उपभोग व्यय के रूप में उपभोक्ताओं से उत्पादकों की ओर प्रवाह और उद्यमों की ओर से साधन आयों के रूप में गृहस्थों की ओर प्रवाह मौद्रिक प्रवाह हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि मौद्रिक प्रवाह, वास्तविक प्रवाहों के प्रतिरूप हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि चित्र 13.4, चित्र 13.3 से अधिक भिन्न नहीं है। चित्र 13.4 में सभी उत्पादकों एवं सभी उपभोक्ताओं के सम्मिलित रूप में, समूह बनाए गए हैं।

13.2.3 उद्यमों, गृहस्थों तथा पूँजी क्षेत्रों के बीच प्रवाह

अभी तक हमने जिन परिस्थितियों में प्रवाहों की चर्चा की है, उसमें कोई बचत तथा निवेश नहीं होते। बचत और निवेश की अपनी चर्चा में सम्मिलित करने के लिए उद्यमों एवं गृहस्थों के साथ पूँजी क्षेत्र को सम्मिलित करना आवश्यक है।

पूँजी क्षेत्र वह क्षेत्र है जो अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों से बचत एकत्र करता है और उस बचत को निवेश (पूँजीगत वस्तुओं में) के उद्देश्य से उद्यमों को ऋण देता है। उद्यमों एवं गृहस्थों के साथ पूँजी क्षेत्र को सम्मिलित करते हुए, चित्र 13.5 में दर्शाया गया है :

चित्र 13.5

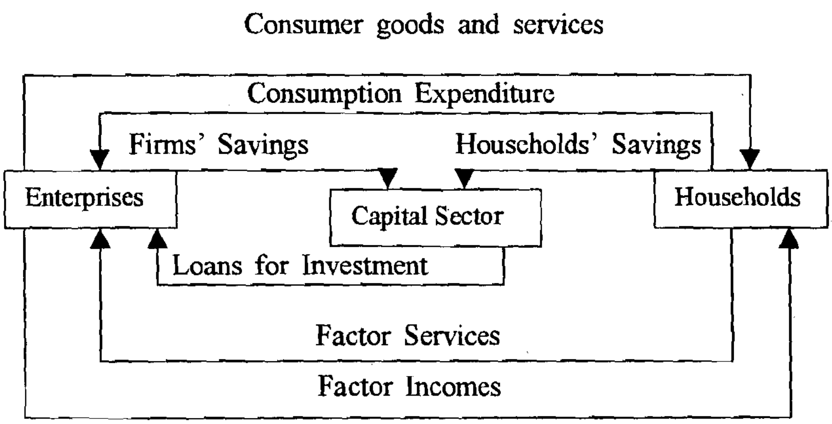

उपरोक्त चित्र 13.4 की भाँति उद्यमों एवं गृहस्थों के बीच प्रवाहों को दर्शाया गया है तथा इनके अतिरिक्त गृहस्थों एवं पूँजी क्षेत्र के बीच तथा उद्यमों एवं पूँजी क्षेत्र के बीच भी प्रवाहों को भी दर्शाया गया है। गृहस्थ अपनी साधन आय पूरी तरह उपभोग पर व्यय करें यह आवश्यक नहीं है। आयों का कुछ भाग बचा कर बैंकों में जमा किया जा सकता है या शेयर अथवा जीवन बीमा पर किसी खरीदने के लिए उपयोग किया जा सकता है। ये सभी पूँजी क्षेत्र के भाग माने जाते हैं। इस प्रकार, गृहस्थों से पूँजी क्षेत्र की ओर तीर का निशान गृहस्थों से पूँजी क्षेत्र को बचत के प्रवाह की ओर इंगित करता है। यह बचतें पूँजी क्षेत्र गृहस्थों से, उद्यमों से अवितरित लाभों (जो भविष्य में विस्तार कार्यों हेतु रखे जाते हैं) के रूप में तथा घिसावट कोश (जो मशीन बदलने के निमित्त निवेश के लिए प्रयुक्त होते हैं) के रूप में बचतों को इकट्ठा करता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

पूँजी क्षेत्र इन बचतों को निवेश के लिए उद्यमों को उधार देता है। इस प्रवाह को पूँजी क्षेत्र से उद्यमों की ओर तीर के निशान के द्वारा दर्शाया गया है।

राष्ट्रीय आय लेखा में बचत को निवेश के समान माना जाता है।

13.2.4 उद्यमों, गृहस्थों, सरकारी क्षेत्रों के बीच प्रवाह

उद्यमों, गृहस्थों तथा पूँजी क्षेत्र के बीच प्रवाहों को चित्र 13.5 में दर्शाया गया है। अब हम इसमें सरकारी क्षेत्र के प्रवाहों को सम्मिलित करते हैं।

सरकारी क्षेत्र को दो प्रकार से देखा जा सकता है : (1) एक उत्पादक के रूप में; और (2) आय के एक पुनर्वितरक के रूप में। इस रूप में सरकार एक वर्ग पर कर लगाती है और इससे प्राप्त राशि को उद्यमों को नकद रूप में या फिर गृहस्थों को दीर्घ आयु पेंशन अथवा बेरोज़गारी भत्ता के रूप में आर्थिक सहायता देती है। सरकार की उत्पादन गतिविधियों को 'सामान्य सरकार' तथा 'सरकारी उद्यम' दो रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है। सामान्य सरकार के रूप में सरकार सामूहिक उपभोग हेतु सेवाओं का उत्पादन करती

है। ये सेवाएँ पुलिस सेवाओं अथवा प्रतिरक्षा-सेवाओं के रूप में हो सकती हैं। ये वे सेवाएँ हैं जो साधारणतया बाज़ार में नहीं बेची जाती। सरकार लोगों को सामूहिक रूप से उपभोग के लिए उपलब्ध करवाती है। सरकार के विभागीय अथवा गैर-विभागीय उद्यमों के कार्य को सरकारी उद्यम की श्रेणी में रखा जाता है। मुद्रा-प्रवाह में ये उद्यम का एक भाग है। इसलिए सरकार के आयों के पुनर्वितरक की भूमिका के कार्यों को ही, जिसमें सरकार सामूहिक उपभोग के लिए सेवाओं का उत्पादन करती है, अर्थव्यवस्था में प्रवाहों को समझने हेतु अन्य क्षेत्रों के साथ अलग से लिया जाता है। अन्य क्षेत्रों के बीच प्रवाहों की पहले ही चर्चा की जा चुकी है। प्रवाहों के चार्ट में सरकार को सम्मिलित करके, चित्र 13.6 में दर्शाया गया है :

चित्र 13.6

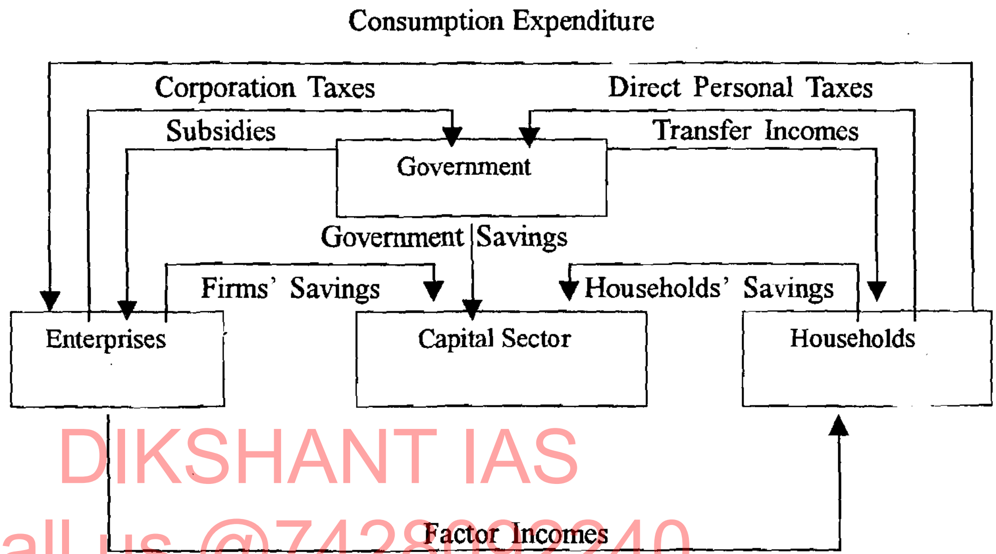

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 13.6 में, चित्र 13.5 की भाँति उद्यमों, गृहस्थों तथा पूँजी क्षेत्र के साथ एक अतिरिक्त क्षेत्र यानी सरकार को सम्मिलित किया गया है। इस चित्र में सरकार की ओर से एक अतिरिक्त प्रवाह पूँजी क्षेत्र को बचत के रूप में जाता है। यह बचत धनात्मक अथवा ऋणात्मक हो सकती है। यह ऋणात्मक होगी यदि सरकार द्वारा व्यय सरकार द्वारा प्राप्त राजस्व से अधिक हो। यदि सरकार का व्यय उसके राजस्व से कम होता है तो सरकारी बचत धनात्मक होगी।

जब हम अन्य क्षेत्रों के साथ सरकारी क्षेत्र को भी चित्र 13.6 में सम्मिलित करते हैं तो पाते हैं कि गृहस्थों द्वारा साधन सेवाओं के बदले उद्यमों से प्राप्त आयों को आवश्यक रूप से उद्यमों द्वारा उत्पादित उपभोग वस्तुओं पर ही खर्च करना आवश्यक नहीं है। साधन आयों का एक भाग सरकार को प्रत्यक्ष वैयक्तिक करों के रूप में दिया जा सकता है। इसको गृहस्थों से सरकार की ओर तीर निशान द्वारा दिखाया गया है। दूसरी ओर, सरकार गृहस्थों को आय हस्तांतरण कर सकती हैं, जिसे सरकार से गृहस्थों की ओर तीर निशान से दिखाया गया है। उसी प्रकार से उद्यम भी अपनी प्राप्तियों का कुछ भाग सरकार का अप्रत्यक्ष करों और निगम करों के रूप में दे सकते हैं, जिसे उद्यम से सरकार की ओर तीर निशान द्वारा दिखाया गया है। सरकार भी अपने कर राजस्व का कुछ भाग उद्यमों को आर्थिक सहायता के रूप में दे सकती है। यह सरकार से उद्यम की ओर तीर निशान द्वारा दिखाया गया है।

13.2.5 एक खुली अर्थव्यवस्था में प्रवाह

चित्र 13.6 में एक बंद अर्थव्यवस्था (एक अर्थव्यवस्था जिसकी शेष विश्व के साथ आयात-निर्यात इत्यादि के रूप में किसी भी प्रकार का आर्थिक लेन-देन न हो) के प्रवाहों को

दिखाया गया है। अब अंत में हम एक खुली अर्थव्यवस्था जिसके शेष विश्व के साथ आर्थिक संबंध हैं) के विश्व के अन्य देशों (जिसे शेष विश्व कहेंगे) के साथ लेन-देन के प्रवाहों को सम्मिलित करते हैं।

जब एक अर्थव्यवस्था खुली अर्थव्यवस्था हो तो निम्नलिखित लेन-देन को भी अर्थव्यवस्था के प्रवाहों में सम्मिलित किया जाएगा :

1) उद्यमों के उत्पादन का कुछ भाग उपभोग अथवा निवेश कार्यों के लिए छोड़कर शेष भाग को शेष विश्व को निर्यात किया जा सकता है। इस निर्यात के बदले में शेष विश्व द्वारा उद्यमों को भुगतान किया जाता है।

2) गृहस्थों द्वारा उपभोग व्यय मात्र अर्थव्यवस्था में ही उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं पर न होकर, शेष विश्व से आयातित वस्तुओं और सेवाओं पर भी हो सकता है। इस आयात के लिए गृहस्थ उद्यमों से शेष विश्व को भुगतान करते हैं।

3) गृहस्थ मात्र घरेलू उद्यमों से ही नहीं बल्कि शेष विश्व से भी साधन आय प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार, शेष विश्व भी दी गई अर्थव्यवस्था से साधन आय प्राप्त कर सकता है। विदेशों से प्राप्त साधन आय में से शेष विश्व को दी गई साधन आय कम कर देने पर विदेशों से प्राप्त 'शुद्ध साधन आय' प्राप्त होती है जो धनात्मक हो सकती है और ऋणात्मक भी। यह धनात्मक होगी जब देश के शेष विश्व से अर्जित साधन आय, शेष विश्व को दी गई अर्जित साधन आय से अधिक हो।

4) एक अन्य तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए कि बचतें जो पूँजी क्षेत्र में एकत्र होती हैं, केवल गृहस्थ, उद्यमों तथा सरकार से ही प्राप्त नहीं होती, बल्कि कुछ बचतें शेष विश्व से भी प्राप्त हो सकती हैं जिसे शेष विश्व से निवल पूँजी प्रवाह कहा जाता है। यह धनात्मक अथवा ऋणात्मक दोनों हो सकता है। जब शेष विश्व से प्राप्त ऋण, शेष विश्व को दिए गए ऋण से अधिक हो तो शेष विश्व से निवल पूँजी प्रवाह धनात्मक होगा। यदि शेष विश्व से ऋण शेष विश्व को ऋण से कम हो तो शेष विश्व से निवल पूँजी प्रवाह ऋणात्मक होगा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

5) एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि अर्थव्यवस्था में सृजित बचतों तथा शेष विश्व से प्राप्त बचतों का उपयोग केवल सकल घरेलू पूँजी निर्माण (निवेश जमा निवल घरेलू पूँजी निर्माण) के लिए ही नहीं बल्कि निवल विदेशी निवेश के लिए भी किया जा सकता है। 'निवल विदेशी निवेश' धनात्मक अथवा ऋणात्मक, दोनों हो सकता है। यह धनात्मक होगा जबकि इस अर्थव्यवस्था द्वारा शेष विश्व में किया गया निवेश, शेष-विश्व द्वारा इस अर्थव्यवस्था में किए गए निवेश से अधिक हो। यह ऋणात्मक होगा जबकि इस अर्थव्यवस्था द्वारा शेष विश्व में किया गया निवेश, शेष विश्व द्वारा इस अर्थव्यवस्था में किए गए निवेश से कम हो।

6) जैसे कि एक अर्थव्यवस्था के भीतर भी कुछ एक-तरफा हस्तांतरण हो सकते हैं। उसी प्रकार से एक अर्थव्यवस्था से शेष विश्व को और शेष विश्व से इस अर्थव्यवस्था की ओर भी एक-तरफा हस्तांतरण हो सकते हैं। इसका योग शेष विश्व से प्राप्त शुद्ध चालू-चालू हस्तांतरण कहलाता है। यह भी धनात्मक तथा ऋणात्मक दोनों हो सकता है। यह धनात्मक होगा यदि शेष-विश्व से इस अर्थव्यवस्था को चालू हस्तांतरण, इस अर्थव्यवस्था से शेष-विश्व को चालू हस्तांतरण अधिक हों। यह ऋणात्मक होगा जबकि शेष विश्व से इस अर्थव्यवस्था को चालू हस्तांतरण, इस अर्थव्यवस्था द्वारा शेष विश्व को चालू हस्तांतरण से कम हों।

चित्र 13.6 में एक बंद अर्थव्यवस्था के प्रवाहों को दर्शाया गया है जबकि चित्र 13.7 में उन प्रवाहों को भी शामिल किया गया है जो बंद अर्थव्यवस्था के खुलने से सृजित होते हैं।

चित्र 13.7

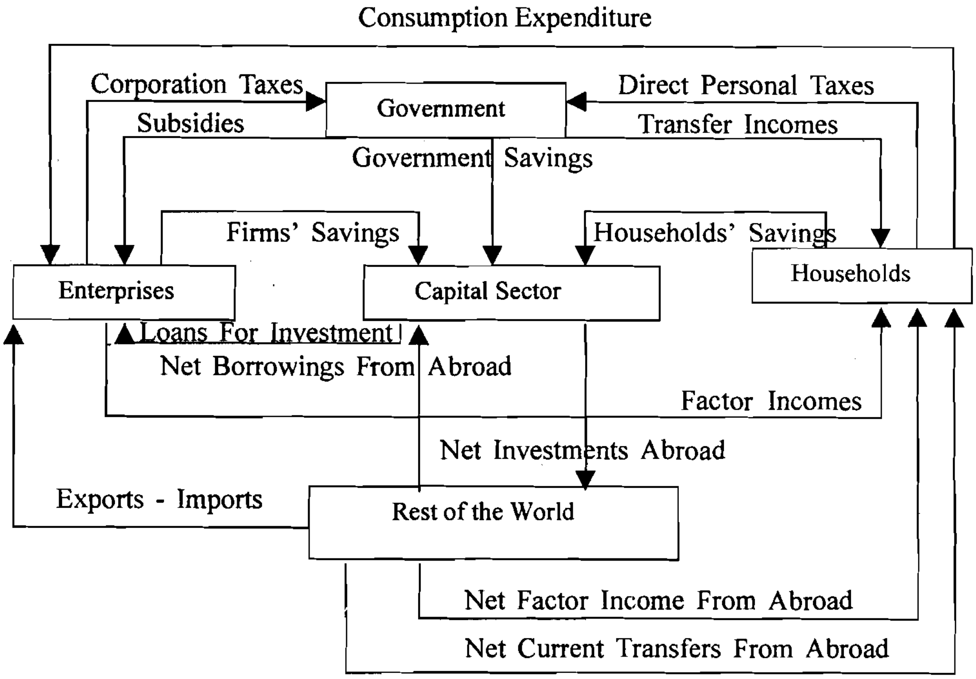

अर्थव्यवस्था के खुलने के कारण पैदा होने वाले प्रवाह चित्र 13.6 में दर्शाए गए एक बंद अर्थव्यवस्था के प्रवाहों से काफी भिन्न हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उद्यमों को गृहस्थों द्वारा उपभोग व्यय से ही मुद्रा प्राप्त नहीं होती बल्कि वस्तुओं और सेवाओं के शुद्ध निर्यात से भी प्राप्त होती है। शुद्ध निर्यात, निर्यात और आयात के अंतर से प्राप्त होता है। यह धनात्मक अथवा ऋणात्मक दोनों हो सकता है। जब निर्यात, आयातों से अधिक हों तो यह धनात्मक होगा और जब निर्यात आयातों से कम हों तो यह ऋणात्मक होगा। निर्यातों से प्राप्तियों के प्रवाह को शेष-विश्व से प्रारंभ होकर उद्यमों की ओर तीर के निशान से दिखाया गया है और आयातों के भुगतान को उद्यमों से प्रारंभ करके शेष विश्व की ओर तीर के निशान से दिखाया गया है।

इसी प्रकार से 'विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय' शेष विश्व से गृहस्थों की ओर तीर के निशान से दिखाया गया है।

यही बात विदेशों से प्राप्त शुद्ध चालू हस्तांतरण पर भी लागू होती है, जहाँ तीर का निशान शेष विश्व से गृहस्थों की ओर इंगित किया गया है।

शेष विश्व से प्राप्त ऋणों को शेष विश्व से पूँजी क्षेत्र की ओर तीर के निशान से इंगित किया गया है।

इस प्रकार से चित्र 13.7 में एक अर्थव्यवस्था में होने वाले प्रवाहों का पूरा नियंत्रण है, जिसमें उद्यम, गृहस्थ सरकार, पूँजी क्षेत्र तथा शेष विश्व क्षेत्र नामों से पाँच क्षेत्र हैं। यदि इन क्षेत्रों को और अधिक छोटे भागों में विभाजित किया जाए तो प्रवाह दिखाना और अधिक जटिल हो जाएगा। उदाहरण के लिए, गृहस्थ क्षेत्र को व्यक्तियों में; पूँजी क्षेत्र को बैंकों, जीवन बीमा निगम, साधारण बीमा निगम, शेयर बाज़ार आदि में; सरकार को केंद्र, राज्य एवं स्थानीय निकायों में; और शेष विश्व को विभिन्न देशों में बाँटा जाए तो प्रवाहों की जटिलता की कल्पना की जा सकती है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि ऐसी स्थिति में विभिन्न क्षेत्रों के अंतरंग लेन-देनों को भी दर्शाना पड़ेगा।

बोध प्रश्न 1

1) उपयुक्त उदाहरणों की सहायता से मुद्रा तथा वास्तविक प्रवाहों के बीच अंतर स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

2) किसी अर्थव्यवस्था के चक्रीय प्रवाह के अध्ययन में प्रयुक्त विभिन्न आर्थिक लेन-देनों के बारे में बताइए।

....

....

....

....

....

3) यह बताइए कि किस प्रकार से चक्रीय प्रवाह जटिल होता है जब उद्यमों एवं गृहस्थ क्षेत्र के साथ पूँजी क्षेत्र को सम्मिलित किया जाता है?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

....

13.3 चक्रीय प्रवाह तथा राष्ट्रीय आय

भाग 13.2 में प्रस्तुत चक्रीय प्रवाह, एक अर्थव्यवस्था के कार्यों को समझने के उद्देश्य के लिए आवश्यक है। इन प्रवाहों के अध्ययन से हम कई समष्टिगत आर्थिक समूहों को ज्ञात कर सकते हैं जो अर्थव्यवस्था के आर्थिक स्वास्थ्य की ओर इंगित करते हैं। ऐसे कुछ समष्टिगत आर्थिक समूह हैं— सकल घरेलू उत्पाद (Gross Domestic Product), शुद्ध घरेलू उत्पाद (Net Domestic Product), सकल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Product), शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (Net National Product), और राष्ट्रीय आय (National Income)। भाग 13.3 के आगामी उप-भागों में हम इन समूहों, विशेषतौर पर राष्ट्रीय आय को चक्रीय प्रवाहों से ज्ञात करने का प्रयास करेंगे। हम चित्र 13.7 का उपयोग करते हुए हम राष्ट्रीय आय को उसके तीन दृष्टिकोणों से ज्ञात करेंगे। यह तीन दृष्टिकोण हैं— (1) वस्तुओं और सेवाओं का प्रवाह, (2) साधन आयों का प्रवाह, और (3) अंतिम व्ययों का प्रवाह।

13.3.1 वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाह के रूप में राष्ट्रीय आय

अब हम चित्र 13.7 पर ताज़ा दृष्टि डालेंगे और राष्ट्रीय आय को उद्यम के छोर पर देखेंगे। यदि हम एक वर्ष में उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाह के मौद्रिक मूल्य को बिना दोहरी गणना के जमा करें और स्थिर पूँजी के उपभोग हेतु प्रावधान करते हुए, विदेशों से प्राप्त कुल साधन आयों को जमा करें तो अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीय आय प्राप्त की जा

सकती है। आइए इस बात को विस्तार से समझते हैं। उद्यम उपभोक्ता वस्तुओं (C) तथा शुद्ध घरेलू पूँजी निर्माण (I) का उत्पादन करते हैं। यदि हम इसमें विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय (X) को जमा करें तो हमें एक अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीय आय प्राप्त होगी। इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि $Y = C + I + X$ जहाँ Y, राष्ट्रीय आय है और C, I तथा X को ऊपर परिभाषित किया गया है। इस परिभाषा में हमें यह ध्यान में रखना होगा कि वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य साधन लागत (factor cost यानि FC) पर लिया जाए, न कि बाज़ार कीमत पर (market price यानि MP) जहाँ $MP = FC + NIT$, जहाँ NIT निवल अप्रत्यक्ष कर है, जहाँ निवल अप्रत्यक्ष कर = अप्रत्यक्ष कर– आर्थिक सहायताएँ। यहाँ यह भी देखना होगा कि जो वस्तुएँ और सेवाएँ एक उद्यम द्वारा दूसरे उद्यम से मध्यवर्ती उपयोग के लिए खरीदी जाती हैं (जो कच्चा माल एक उद्यम द्वारा दूसरे से खरीदा जाए) का उन वस्तुओं और सेवाओं के साथ नहीं जोड़ना चाहिए जो गृहस्थ द्वारा उनके अंतिम उपभोग के लिए अथवा अर्थव्यवस्था के कुल पूँजी स्टॉक में वृद्धि के लिए प्रयुक्त हो रही हों। ऐसा दोहरी गणना से बचने के लिए किया जाता है। उदाहरण के लिए, यदि हम गेहूँ के कुल उत्पादन को ब्रेड के कुल उत्पादन के साथ जोड़ें तो हम दोहरी गणना करेंगे क्योंकि ब्रेड के मूल्य में गेहूँ का मूल्य भी पहले से सम्मिलित है।

राष्ट्रीय आय के मापन की यह विधि उत्पादन विधि अथवा उत्पाद विधि कहलाती है। आगे हम देखेंगे कि उत्पादन विधि को मूल्य वश्द्धि विधि भी कहते हैं।

13.3.2 साधन आयों के प्रवाह के रूप में राष्ट्रीय आय

हम चित्र 13.7 पर पुनः दृष्टि डालते हैं, जहाँ हम राष्ट्रीय आय समूह को गृहस्थ छोर पर रखते हैं। गृहस्थ उद्यमों को वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन के लिए साधन सेवाएँ प्रदान करते हैं। ये साधन सेवाएँ चार प्रकार के उत्पादन के साधनों द्वारा प्रदान की जाती हैं। ये हैं– श्रम, भूमि, पूँजी तथा उद्यमशीलता। ये उत्पादन के साधन सीमित होते हैं। इसलिए इन उत्पादन के साधनों के आपूर्तिकर्ताओं को उनकी साधन सेवाओं के लिए मज़दूरी, किराया, ब्याज तथा लाभ के रूप में पारितोषिक दिया जाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस प्रकार यदि हम मज़दूरी, किराया, ब्याज तथा लाभ के साथ विदेशों से प्राप्त साधन आयों को जमा करें तो हमें अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीय आय प्राप्त होती है। यानि $Y = W + R + In + P + X$, जहाँ Y राष्ट्रीय आय है जो मज़दूरी (W), किराया (R), ब्याज (In) तथा लाभ (P) एवं विदेशों से प्राप्त कुल साधन आय का जोड़ है। जहाँ पर साधन सेवाएँ प्रदान करने के बदले गृहस्थों को प्राप्त सभी साधन आयों को जोड़ दिया गया है।

अवधारणात्मक रूप से अंतिम वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाह के रूप में राष्ट्रीय आय, उत्पादन प्रक्रिया के दौरान आयों के रूप में राष्ट्रीय आय के समान है।

कई बार साधन आयों को W, R, In तथा P के वर्गों में रखकर भिन्न प्रकार से वर्गीकृत किया जाता है। जैसे श्रमिकों का मुआवज़ा (Compensation of employees), प्रचालन अधिशेष (CE), तथा स्व-रोज़गार में लगे हुओं की मिश्रित आय (MY)। इस प्रकार से $Y = CE + OS + MY + X$ जहाँ CE श्रम को उसकी श्रम सेवाओं के बदले पारितोषिक है, OS सम्पत्ति के स्वामित्व तथा प्रबंधन के बदले मिलने वाली साधन आय है, MY साधन आय का वह भाग है जिसका CE तथा OS के रूप में विभेद नहीं हो सकता है और X विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय है (पहले से परिभाषित)। जबकि CE तथा OS को तो आसानी से समझा जा सकता है, MY के लिए थोड़ा विवेचन आवश्यक है। MY स्वरोज़गार में लगे हुओं की आय है। उदाहरण के लिए, हम एक छोटे दुकानदार को लें जो अपने घर में दुकान चलाता है, अपने एवं अपने परिवार के श्रम का प्रयोग करता है, स्वयं दुकान का प्रबंधन करता है और ज़ोखिम उठाता है। इसकी आय को विभिन्न आय वर्गों में वर्गीकरण करना संभव नहीं होता। ऐसी साधन आय को वैकल्पिक रूप से स्व-

रोज़गार युक्तों की मिश्रित आय की श्रेणी में रखा जाता है क्योंकि इस आय को CE और OS में नहीं बाँटा जा सकता।

13.3.3 अंतिम व्ययों के प्रवाह के रूप में राष्ट्रीय आय

हम चित्र 13.7 का उपयोग राष्ट्रीय आय को एक अर्थव्यवस्था के विभिन्न वर्गों के अंतिम व्ययों के जोड़ के रूप में देखने के लिए भी कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में हम अब वस्तुओं और सेवाओं को उनके उत्पादन की दृष्टि से न देखकर उनके उपयोग की ओर देखेंगे। अंतिम व्यय के कई स्रोत हो सकते हैं जैसे उपभोक्ताओं द्वारा अंतिम उपभोग व्यय (C_h), सरकार द्वारा अंतिम उपभोग व्यय (C_g), फर्मों द्वारा शुद्ध घरेलू पूँजी निर्माण के लिए पूँजीगत वस्तुओं की खरीद पर व्यय (NDKF) तथा स्टॉक में परिवर्तन (K) या शेष-विश्व द्वारा शुद्ध निर्यातों (NE) के रूप में।

'स्टॉक' में परिवर्तन' को वर्ष के अंत में तैयार वस्तुओं तथा कच्चे माल/अर्ध-निर्मित वस्तुओं के स्टॉक में से इन वस्तुओं के वर्ष के प्रारंभ के स्टॉक में से घटाकर प्राप्त करते हैं। स्टॉक में परिवर्तन धनात्मक होगा। यदि वर्ष के अंत का स्टॉक वर्ष के प्रारंभ के स्टॉक से अधिक हो और दूसरी ओर यह ऋणात्मक होगा यदि वर्ष के अंत का स्टॉक वर्ष के प्रारंभ के स्टॉक से कम हो। यदि शुद्ध घरेलू पूँजी निर्माण (NDFKF) में स्टॉक में परिवर्तन (K) को जोड़ दिया जाए तो इसे शुद्ध घरेलू पूँजी निर्माण (NDKF) कहेंगे।

शुद्ध निर्यात (NE) धनात्मक होंगे यदि निर्यात, आयातों की अपेक्षा अधिक हों और वे ऋणात्मक होंगे यदि निर्यात, आयातों की अपेक्षा कम हों।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

हम सब अंतिम व्ययों के प्रवाह के रूप में, राष्ट्रीय आय को देख सकते हैं। $Y = C_h + C_g + NDKF + NF + X$। उपरोक्त समीकरण में प्रयुक्त सभी तत्वों को पहले से ही परिभाषित किया जा चुका है। चूँकि राष्ट्रीय आय साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद के रूप में परिभाषित है इसलिए उपरोक्त समीकरण में से शुद्ध अप्रत्यक्ष करों (NIT) को घटाना होगा। ऐसा इसलिए आवश्यक है क्योंकि C_h, C_g, NDKF तथा NE सभी साधारणतया बाज़ार कीमत पर दर्शाए जाते हैं, और इन सभी को साधन लागत पर दिखाने के लिए उनमें से शुद्ध अप्रत्यक्ष (NIT) घटाना आवश्यक है।

अंततः व्ययों के प्रवाह के रूप में राष्ट्रीय आय के समीकरण का स्वरूप इस प्रकार से होगा :

$$Y = C_h + C_g + NDFKP + X - NIT$$

(इसमें प्रयुक्त सभी तत्त्वों की परिभाषा पहले से ही की जा चुकी है।)

13.3.4 उत्पादन, आय तथा व्यय के प्रवाहों के रूप में राष्ट्रीय आय

अब हम बताने की स्थिति तक पहुँच चुके हैं कि भाग 13.3.1, 13.3.2, 13.3.3 के अनुसार राष्ट्रीय आय को हम उत्पादन, आय तथा व्यय प्रवाहों से प्राप्त कर सकते हैं। वस्तुओं ओर सेवाओं के उत्पादन के लिए साधन सेवाओं की आवश्यकता होती है, और इस प्रकार से साधन आयों का सृजन होता है। इस प्रकार से प्राप्त साधन आयों को अंतिम उपभोग अथवा बचत के लिए प्रयोग किया जाता है। अंततः बचतों को देश में पूँजी निर्माण अथवा शुद्ध विदेशी निवेश के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

यदि सभी आवश्यक सांख्यिकी आँकड़े उपलब्ध हों तो राष्ट्रीय आय ज्ञात करने के ये तीनों मार्ग एक ही मूल्य देंगे। यथार्थ में भारत जैसे अल्प-विकसित देश में यह सभी आवश्यक

आँकड़े उपलब्ध नहीं होते। इसलिए हमें इन तीनों विधियों को मिला-जुलाकर उपयोग करने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

राष्ट्रीय आय के मापन हेतु सबसे पहला कार्य, अर्थव्यवस्था का विभिन्न औद्योगिक क्षेत्र में वर्गीकरण है, जैसे कृषि, खनन विनिर्माण, संपदा, सरकारी सेवाएँ, परिवहन सेवाएँ, वाणिज्य सेवाएँ इत्यादि। इसके बाद सूचनाओं एवं आँकड़ों की उपलब्धता के आधार पर, विधि का चयन किया जाता है। उदाहरण के लिए, कृषि एवं विनिर्माण क्षेत्र के लिए उत्पादन आँकड़े आसानी से उपलब्ध होते हैं। इसलिए हम इन क्षेत्रों का उत्पादन अथवा मूल्य वृद्धि विधि से ज्ञात करते हैं। निर्माण क्षेत्र के लिए व्यय के आँकड़े आसानी से उपलब्ध होते हैं, इसलिए राष्ट्रीय आय में इसके योगदान को ज्ञात करने के लिए व्यय विधि का उपयोग होता है। अंततः सेवा क्षेत्र के लिए आय सृजन के आँकड़े आसानी से उपलब्ध होते हैं, इसलिए इसके राष्ट्रीय आय में योगदान को ज्ञात करने के लिए आय विधि का उपयोग अनिवार्य हो जाता है।

बोध प्रश्न 2

1) दिखाइए कि एक अर्थव्यवस्था में किस प्रकार से उत्पादन प्रवाह, आय प्रवाह तथा व्यय प्रवाह एक-दूसरे से संबंधित हैं।

....

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) राष्ट्रीय आय के मुख्य घटक कौन से हैं?

i) वस्तुओं और सेवाओं का चालू उत्पादन

....

....

....

....

....

....

ii) साधन आयों का चालू सृजन

....

....

....

....

....

3) भारत में राष्ट्रीय आय के मापन के लिए उत्पादन, आय और व्यय विधि का मिला-जुला उपयोग क्यों किया जाता है?

....

....

....

....

....

13.4 राष्ट्रीय आय समूह

राष्ट्रीय आय एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण समष्टिगत आर्थिक समूह है जो कुछ शर्तों के पूरा होने पर अर्थव्यवस्था की आर्थिक प्रगति का परिचायक है। इसी से संबंधित कई अन्य अवधारणाएँ हैं जिनका शामिल करना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, विभिन्न समष्टिगत आर्थिक समूहों के बीच अंतर्संबंधों का स्पष्टता भी अत्यंत आवश्यक है। इन समूहों का विस्तृत उपयोग खंड 7 में किया जाएगा।

13.4.1 राष्ट्रीय आय तथा विभिन्न संबंधित अवधारणाएँ

राष्ट्रीय आय से संबंधित अवधारणाओं में से कुछ प्रमुख इस प्रकार से हैं :

1) बाज़ार मूल्य पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Product at Market Price - GNP_{MP}) : यह एक वर्ष एक अर्थव्यवस्था के साधारण निवासियों द्वारा, दोहरी गणना न करते हुए, वस्तुओं और सेवाओं के चालू उत्पादन का मूल्य है। इसमें घिसावट शामिल होती है और वस्तुओं एवं सेवाओं को बाज़ार कीमतों पर लिया जाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) **साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Product at Factor Cost - GNP_{FC})** : यह एक वर्ष में एक अर्थव्यवस्था के साधारण निवासियों द्वारा दोहरी गणना न करते हुए वस्तुओं और सेवाओं के चालू उत्पादन का मूल्य है जिसमें घिसावट शामिल होती है और वस्तुओं एवं सेवाओं को साधन लागत (बाज़ार मूल्य—निवल अप्रत्यक्ष कर) पर लिया जाता है।

3) **बाज़ार मूल्यों पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (Net National Product at Market Price - NNP_{MP})** : यह एक वर्ष में एक अर्थव्यवस्था के साधारण निवासियों द्वारा दोहरी गणना न करते हुए वस्तुओं और सेवाओं के चालू उत्पादन का मूल्य है जिसमें से घिसावट को घटा दिया जाता है और वस्तुओं एवं सेवाओं को बाज़ार मूल्यों पर लिया जाता है।

4) **साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (Net National Product at Factor Cost - NNP_{FC})** : यह एक वर्ष में एक अर्थव्यवस्था के साधारण निवासियों द्वारा, दोहरी गणना न करते हुए, वस्तुओं और सेवाओं के चालू उत्पादन का मूल्य है। इसमें से घिसावट को घटा दिया जाता है और वस्तुओं को साधन लागत (बाज़ार मूल्य— शुद्ध अप्रत्यक्ष कर) पर लिया जाता है।

5) **राष्ट्रीय आय (National Income - NY)** : यह साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद के समान ही है।

6) **बाज़ार मूल्यों पर सकल घरेलू उत्पाद (Gross Domestic Product at Market Price - GDP_{MP})** : यह एक अर्थव्यवस्था के घरेलू क्षेत्र के अंतर्गत, दोहरी गणना न करते

हुए वस्तुओं और सेवाओं के चालू उत्पादन का मूल्य है जिसमें घिसावट शामिल रहती है और वस्तुओं एवं सेवाओं को बाज़ार पर लिया जाता है।

7) **साधन लागत पर सकल घरेलू उत्पाद (Gross Domestic Product at Factor Cost - GDP_{FC})** : यह एक अर्थव्यवस्था के घरेलू क्षेत्र के अंतर्गत, दोहरी गणना न करते हुए, वस्तुओं और सेवाओं के चालू उत्पादन का मूल्य है जिसमें घिसावट शामिल रहती है और वस्तुओं एवं सेवाओं को साधन लागत (बाज़ार मूल्य—शुद्ध प्रत्यक्ष कर) पर लिया जाता है।

8) **बाज़ार मूल्यों पर शुद्ध राष्ट्रीय आय (Net Domestic Product at Market Price - NDP_{MP})** : यह एक अर्थव्यवस्था के घरेलू क्षेत्र के अंतर्गत, दोहरी गणना न करते हुए, वस्तुओं और सेवाओं के चालू उत्पादन का मूल्य है जिसमें घिसावट घटा दी जाती है और वस्तुओं एवं सेवाओं को बाज़ार मूल्य पर लिया जाता है।

9) **साधन लागत पर निवल घरेलू उत्पाद (Net Nomestic Product at Factor Cost - NDP_{FC})** : यह एक अर्थव्यवस्था के घरेलू क्षेत्र के अंतर्गत, दोहरी गणना न करते हुए, वस्तुओं और सेवाओं के चालू उत्पादन का मूल्य है जिसमें से घिसावट को घटा दिया जाता है। वस्तुओं और सेवाओं को साधन लागत (बाज़ार मूल्य— शुद्ध अप्रत्यक्ष कर) पर लिया जाता है।

10) **शुद्ध राष्ट्रीय प्रयोज्य आय (Net Disposable Income - NNDY)** : यह अर्थव्यवस्था के साधारण निवासियों द्वारा एक वर्ष में अर्जित आय और हस्तांतरण आय का योग है जिसमें शुद्ध अप्रत्यक्ष कर शामिल होते हैं। यह बाज़ार मूल्यों पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद में शेष विश्व से प्राप्त शुद्ध चालू हस्तांतरणों के योग से प्राप्त होती है। (NNPMP +Net Current transfer from Rest of the World)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

11) **घरेलू उत्पाद से निजी क्षेत्र को प्राप्त आय (Income from Domestic Product accruing to Private Sector/Z)** : यह एक वर्ष में एक अर्थव्यवस्था के गृहस्थों और निजी निगम क्षेत्र को प्राप्त साधन आय है।

12) **निजी आय (Private Income - PY)** : इसमें एक अर्थव्यवस्था के साधारण निवासियों द्वारा एक वर्ष में अर्थव्यवस्था के अंतर्गत प्राप्त साधन आय तथा चालू हस्तांतरण आयों के अतिरिक्त विदेशों से प्राप्त हस्तांतरण आय भी शामिल है।

13) **वैयक्तिक आय (Personal Income)** : इसमें एक अर्थव्यवस्था के साधारण निवासी गृहस्थों द्वारा प्राप्त एक वर्ष मे साधन आय तथा चालू हस्तांतरणों के अतिरिक्त विदेशों से प्राप्त हस्तांतरण आय शामिल हैं।

14) **वैयक्तिक प्रयोज्य आय (Personal Disposable Income - PDY)** : इसमें एक अर्थव्यवस्था के साधारण निवासी गृहस्थों द्वारा प्राप्त एक वर्ष में साधन तथा चालू हस्तांतरणों के अतिरिक्त विदेशों से प्राप्त स्थानांतरण आयों में से वैयक्तिक कर तथा अन्य प्रशासनिक भुगतान घटाए जाते हैं।

15) **वैयक्तिक उपभोग व्यय (Personal Consumption Expenditure - Ca)** : यह वैयक्तिक प्रयोज्य आय में से वैयक्तिक बचतों (यदि गृहस्थों की बचतें) को घटाकर प्राप्त होती है।

13.4.2 विभिन्न समष्टिगत आर्थिक समूहों के बीच अंतर्संबंध

भाग 13.4.1 में राष्ट्रीय आय तथा संबंधित अवधारणाओं से आपको परिचित कराया गया है। इस भाग में हम इन विभिन्न समूहों के बीच संबंधों का विवेचन कर रहे हैं।

- बाज़ार मूल्यों पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद – शुद्ध अप्रत्यक्ष कर = साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद

  {GNP_{MP} – Net Indirect Taxes (NIT) = GNP_{FC}}

- साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद – घिसावट = साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद

  {GNP_{FC} – Depreciation (D) = NNP_{FC}}

- साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद– विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय = लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद

  {NNP_{FC} – Net factor income from abroad (X) = NDP_{FC}}

- साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद + शुद्ध अप्रत्यक्ष कर + विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय + शेष विश्व से प्राप्त शुद्ध चालू हस्तांतरण = शुद्ध राष्ट्रीय प्रयोज्य आय

  (NDP_{FC} + NIT + X + Net current transfers from rest of the world = NNDY)

- शुद्ध राष्ट्रीय प्रयोज्य आय – विदेशों से प्राप्त शुद्ध आय – शेष विश्व से प्राप्त शुद्ध चालू हस्तांतरण – शुद्ध अप्रत्यक्ष कर = साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद

  (NNDY – X – from ROW – NIT = NDP_{FC})

- साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद – घरेलू उत्पाद से सरकारी प्रशासनिक विभागों को प्राप्त आय – गैर-विभागीय उद्यमों की बचतें = घरेलू उत्पाद से निजी क्षेत्र को प्राप्त आय (Z)

  (NDP_{FC} -Income from Domestic Product accuring to government administrative departments - savings of non-departmental enterprises = Income from Domestic Product accuring to Private Sector (Z)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

- घरेलू उत्पाद से निजी क्षेत्र को प्राप्त आय + विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय + राष्ट्रीय ऋण पर ब्याज + सरकारी प्रशासनिक विभागों से हस्तांतरण भुगतान + शेष विश्व से शुद्ध चालू हस्तांतरण = निजी आय।

  (Z + X + National Debt Interest + Transfer Payments by government administrative departments + NCT from ROW = Private Income)

- निजी आय – निजी निगमित क्षेत्र के अवितरित लाभ – निगम कर = वैयक्तिक आय

  (Private Income - undistributed Profits of Private corporate sector - Corporation tax = Personal Income)

- वैयक्तिक आय – प्रत्यक्ष वैयक्तिक कर – सरकारी प्रशासनिक विभागों की विभिन्न प्राप्तियाँ = वैयक्तिक प्रयोज्य आय।

  (Personal Income - Direct Personal Taxes - Miscellaneous Receipts of governments administrative departments = PDY)

- वैयक्तिक प्रयोज्य आय – वैयक्तिक उपभोग व्यय = गृहस्थों की बचतें

  (Personal Disposable Income - Personal consumption Expenditure = Household savings)

- गृहस्थों की बचतें + निजी निगमों की बचतें + सरकारी बचतें + घिसावट = सकल घरेलू बचत

  (Household + Depeciation = Gross Domestic Saving)

- सकल घरेलू बचत/बाज़ार मूल्यों पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद × 100 = सकल घरेलू बचत दर

  (Gross Domestic Saving/GDP_{FC} × 100 = Rate of Gross Domestic Savings)

- सकल घरेलू पूँजी निर्माण = घिसावट + शुद्ध घरेलू स्थिर निर्माण + स्टॉक में परिवर्तन

  (Gross Domestic Capital Formation = Depreciation + Net Domestic Fixed Capital Formation + Change in stocks)

- सकल घरेलू पूँजी निर्माण/सकल घरेलू उत्पाद × 100 = सकल घरेलू पूँजी निर्माण दर

  (Gross Domestic Capital Formation/GDP_{MP} × 100 = Rate of Grass Domestic Capital Formation)

- शुद्ध घरेलू बचत/ बाज़ार मूल्यों पर शुद्ध घरेलू उत्पाद × 100 = शुद्ध घरेलू बचत दर

  (Net Domestic Savings/NDP_{MP} × 100 = Rate of Net Domestic Savings)

- सकल घरेलू पूँजी निर्माण – घिसावट = शुद्ध घरेलू पूँजी निर्माण

  (Gross Domestic Capital Formation - Depreciation = Net Domestic Capital Formation)

- शुद्ध घरेलू पूँजी निर्माण/बाज़ार मूल्यों पर शुद्ध घरेलू उत्पाद × 100 = शुद्ध घरेलू पूँजी निर्माण दर

DIKSHANT IAS

  (Net Domestic Capital Formation/NDP_{MP} × 100 = Rate of Net Domestice Capital Formation)

Call us @7428092240

- सकल घरेलू पूँजी निर्माण दर – सकल घरेलू बचत दर = शुद्ध विदेशी पूँजी अंतःप्रवाह की दर = शुद्ध घरेलू पूँजी निर्माण दर – शुद्ध घरेलू बचत दर

  (Rate of Gross Domestic Capital Foarmation - Rate of Gross)

  = Rate of Net Foreign Capita inflow

  = Rate of Net Domestic Capital Formation = Rate of Net Domestic Savings

बोध प्रश्न 3

1) निजी उपभोग व्यय से प्रारंभ होकर साधन लागत पर सकल घरेलू उत्पाद ज्ञात करें।

....

....

....

....

....

2) शुद्ध राष्ट्रीय प्रयोज्य आय और निजी प्रयोज्य आय में संबंध बताइए।

....

....

....

....

....

....

3) निम्नलिखित के बीच किस आधार पर अंतर किया जाता है :

i) सकल घरेलू उत्पाद तथा शुद्ध घरेलू उत्पाद

....

....

....

....

....

ii) सकल राष्ट्रीय उत्पाद तथा शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद

....

....

....

....

DIKSHANT IAS

iii) राष्ट्रीय आय तथा शुद्ध राष्ट्रीय प्रयोज्य आय

Call us @7428092240

....

....

....

....

....

iv) बाज़ार मूल्यों पर सकल घरेलू उत्पाद तथा साधन लागत पर सकल घरेलू उत्पाद

....

....

....

....

....

v) बाज़ार मूल्यों पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद तथा शुद्ध राष्ट्रीय प्रयोज्य आय

....

....

....

....

....

vi) वैयक्तिक आय तथा वैयक्तिक प्रयोज्य आय

....

....

....

....

....

13.5 सारांश

इस इकाई में हमने आपको चक्रीय प्रवाहों की अवधारणाओं के बारे में बताया। यह भी बताया कि इन चक्रीय प्रवाहों से किस प्रकार से एक अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीय आय ज्ञात की जा सकती है।

चक्रीय प्रवाही की अवधारणा का संबंध एक वर्ग से दूसरे के बीच वास्तविक एवं मुद्रा के लेन-देन से है। वास्तविक लेन-देनों के प्रवाह से हमें वास्तविक प्रवाह प्राप्त होते हैं तथा एक वर्ग से दूसरे वर्ग की ओर मुद्रा का प्रवाह हमें मौद्रिक प्रवाह प्रदान करता है।

उद्यमों और गृहस्थों के बीच वास्तविक एवं मौद्रिक प्रवाहों का अध्ययन किया जा सकता है। इस अध्ययन का विस्तार एक ऐसी अर्थव्यवस्था तक कर सकते हैं जहाँ उद्यम, गृहस्थ तथा पूँजी क्षेत्र होते हैं। इसी अध्ययन का आगे विस्तार करते हुए इसमें सरकारी क्षेत्र तथा शेष विश्व को भी शामिल किया जा सकता है। उद्यमों, गृहस्थों, पूँजी क्षेत्र, सरकारी क्षेत्र तथा शेष विश्व क्षेत्र– सभी को सम्मिलित करते हुए हम खुली अर्थव्यवस्था में प्रवाहों का अध्ययन करते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

राष्ट्रीय आय का तीन माध्यमों में अध्ययन किया जा सकता है। ये हैं : वस्तुओं और सेवाओं का प्रवाह के रूप में, साधन आयों के प्रवाह के रूप में; और अंततः अंतिम व्ययों के रूप में। राष्ट्रीय आय के इन तीनों आयामों से एक-समान राष्ट्रीय आय का योग प्राप्त होता है।

इस इकाई के अंतिम भाग में हमने राष्ट्रीय आय तथा विभिन्न संबंधित अवधारणाओं का अध्ययन किया और उन अवधारणाओं के बीच अंतर्संबंधों से परिचित करवाया।

जिन प्रमुख अवधारणाओं से परिचय कराया गया है, वे हैं : बाज़ार मूल्यों पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद (NNP_{MP}), बाज़ार मूल्यों पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (GNP_{MP}), शुद्ध राष्ट्रीय प्रयोज्य आय (NNDY), घरेलू उत्पाद से निजी क्षेत्र को प्राप्त आय (Income from Domestic Product accruing to Private Sector), निजी आय (Private Income), वैयक्तिक आय (Personal Income), वैयक्तिक प्रयोज्य आय (Personal Disposable Income), वैयक्तिक बचतें (Personal savings), सकल एवं निवल घरेलू पूँजी निर्माण दरें (Rate of Gross and Net Domestic Capital Formation), सकल एवं शुद्ध घरेलू बचत की दरें (Rate of Gross and Net Domestic Savings), और शुद्ध विदेशी पूँजी प्राप्तियाँ (Net Foreign Capital Inflow)।

इन अवधारणाओं के बीच अंतर्संबंधों को समझने का भी प्रयास किया गया है।

13.6 शब्दावली

पूँजीगत वस्तु : यह वह वस्तु है जो उपभोक्ता वस्तु, मध्यवर्ती वस्तु अथवा मशीनों के उत्पादन में सहयोग करती है।

पूँजी क्षेत्र : यह विनिमयकर्ताओं का वह वर्ग है जो विभिन्न क्षेत्रों से बचतों को एकत्र करता है और इस बचत को पूँजीगत वस्तुओं (अथवा निवेश) के लिए उपलब्ध कराता है।

स्टॉक में परिवर्तन : स्टॉक से हमारा अभिप्राय निर्मित/अर्धनिर्मित/मध्यवर्ती वस्तुओं के स्टॉक से है। स्टॉक में परिवर्तन से हमारा अभिप्राय है एक अर्थव्यवस्था में वर्ष के अंत में कुल स्टॉक *घटा* (–) वर्ष के प्रारंभ में कुल स्टॉक।

चक्रीय प्रवाह : इससे हमारा अभिप्राय लेन-देनकर्ताओं के बीच वस्तुओं और सेवाओं एवं मुद्रा के प्रवाह से है।

घिसावट : सामान्यतः टूट-फूट और अपेक्षित रूप से पुराने होने के कारण पूँजीगत परिसम्पत्ति के मूल्य में होने वाली कमी।

कर्मचारियों का मुआवज़ा : उद्यमों द्वारा गृहस्थों को उनकी श्रम सेवाओं के लिए दिया जाने वाला पारितोषिक।

विभागीय उद्यम : यह सरकारी क्षेत्र का भाग है। ये वे उद्यम हैं जो सरकार के विभाग के रूप में चलाए जाते हैं और वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन करते हैं जैसे रेलवे, डाक एवं तार विभाग आदि।

प्रत्यक्ष वैयक्तिक कर : यह गृहस्थों पर लगाए जाने वाले कर हैं जैसे आय कर, सम्पत्ति कर इत्यादि। ये कर जिन पर लगाए जाते हैं उनका भुगतान भी उन्हीं के द्वारा होता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

आर्थिक एजेंट : आर्थिक लेन-देन, जैसे उत्पादन/आय सृजन/पूँजी निर्माण के कार्य में संलग्न समूह। आर्थिक एजेंटों का वर्गीकरण उत्पादक, गृहस्थ, पूँजी-क्षेत्र, सरकारी क्षेत्र एवं शेष विश्व के बीच किया जा सकता है।

आर्थिक लेन-देन : उत्पादन, आय सृजन तथा पूँजी निर्माण संबंधी लेन-देन।

उद्यम : ये एक अर्थव्यवस्था में साधन सेवाओं का उपयोग वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन करते हैं।

साधन सेवाएँ : ये उत्पादन के साधनों — भूमि, श्रम, पूँजी और उद्यमशीलता — द्वारा प्रदान सेवाएँ हैं।

अंतिम व्यय : यह उपभोग वस्तुओं, पूँजीगत वस्तुओं तथा शुद्ध निर्यातों पर क्रमशः गृहस्थों, उद्यमों तथा शेष विश्व द्वारा किया गया व्यय है।

साधन लागत : यह उत्पादन साधनों के लगाने की गई कुल लागत है जिससे अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं का प्रवाह उत्पन्न होता है। यह वस्तुओं और सेवाओं के बाज़ार मूल्य से शुद्ध अप्रत्यक्ष करों को घटाकर प्राप्त होता है।

सकल घरेलू उत्पाद : यह एक वर्ष में एक अर्थव्यवस्था के घरेलू क्षेत्र में, बिना दोहरी गणनों के, उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य है।

सकल राष्ट्रीय उत्पाद : यह एक वर्ष में एक अर्थव्यवस्था के साधारण निवासियों द्वारा उत्पादित, बिना दोहरी गणना के, वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य है।

सरकारी अंतिम उपभोग व्यय : यह अर्थव्यवस्था के सामूहिक उपभोग पर किया गया व्यय है। सरकार ये सेवाएँ मुफ्त देती हैं।

गृहस्थ : यह क्षेत्र उत्पादकों अथवा उद्यमों को साधन सेवाएँ प्रदान करता है। प्राप्त साधन आयों से उनकी अंतिम उपभोग आवश्यकताओं की पूर्ति है और शेष की बचत की जाती है जो पूँजी क्षेत्र को उपलब्ध करवाया जाता है।

घरेलू उत्पाद से निजी क्षेत्र को प्राप्त आय : निजी क्षेत्र को एक वर्ष में प्राप्त साधन आय।

मध्यवर्ती उपभोग : यह वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन हेतु एक फर्म द्वारा दूसरी फर्मों से खरीदी गई वस्तुएँ एवं सेवाएँ हैं।

निवेश : यह एक वर्ष एक अर्थव्यवस्था में पूँजीगत वस्तुओं का उत्पादन है।

समष्टिगत अर्थशास्त्र : यह एक अर्थव्यवस्था में समूहों जैसे रोज़गार, मुद्रा-स्फीति, भुगतान-शेष, राष्ट्रीय आय से संबंधित अर्थशास्त्र की शाखा है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

मौद्रिक लेन-देन : वर्गों के बीच मुद्रा का लेन-देन।

मौद्रिक प्रवाह : वर्गों के बीच मुद्रा का प्रवाह।

बाज़ार मूल्य : यह वह मूल्य है जिसपर कोई वस्तु अथवा सेवा गृहस्थ अथवा फर्म द्वारा वास्तविक रूप से खरीदी जाती है।

स्वरोज़गार-युक्तों की मिश्रित आय : असंगठित क्षेत्र के उद्यमों द्वारा सृजित वह साधन आय है जिसमें हम कर्मचारियों का मुआवज़ा तथा व्यवसाय से प्राप्ति के बीच अंतर नहीं कर सकते।

निवल घरेलू पूँजी निर्माण : यह एक अर्थव्यवस्था में एक वर्ष में पूँजीगत के कुल उत्पादन तथा स्टॉक में वृद्धि का वह भाग है जो उस अर्थव्यवस्था के कुल पूँजी स्टॉक में वृद्धि के लिए प्रयुक्त होता है।

शेष विश्व से शुद्ध हस्तांतरण: यह एक वर्ष में शेष विश्व से अर्थव्यवस्था का एकतरफा हस्तांतरण में से उस अर्थव्यवस्था द्वारा एकतरफा हस्तांतरणों को घटाकर प्राप्त होता है।

शुद्ध निर्यात : यह एक वर्ष में निर्यातों के कुल मूल्य में से आयातों के कुल मूल्य को घटा कर प्राप्त होता है।

विदेशों से शुद्ध साधन आय : यह अर्थव्यवस्था के साधारण निवासियों जो अस्थायी रूप से विदेशों में रहते हैं द्वारा अर्जित साधन आय में से शेष विश्व के निवासियों जो इस अस्थायी रूप से इस देश में रह रहे हैं, द्वारा अर्जित आय का अंतर है।

शुद्ध घरेलू उत्पाद : यह बिना दोहरी गणना के एक अर्थव्यवस्था के घरेलू क्षेत्र में एक वर्ष में उत्पादित वस्तुओं तथा सेवाओं का मूल्य है जिसमें से घिसावट को घटा दिया गया है। यह अवधारणा घरेलू क्षेत्र की अवधारणा से संबंधित है।

राष्ट्रीय आय : यह साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद के समान है।

शुद्ध अप्रत्यक्ष कर : यह अप्रत्यक्ष करों तथा आर्थिक सहायताओं के बीच अंतर है।

शुद्ध राष्ट्रीय प्रयोज्य आय : यह साधन आय तथा शेष विश्व से हस्तांतरण आयों से प्राप्त एक राष्ट्र के पास कुल आय है। यह बाज़ार मूल्यों पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद जमा शेष विश्व से शुद्ध चालू हस्तांतरण के समान है।

ग़ैर-विभागीय उद्यम : ये वे सरकारी उद्यम हैं जिनके लिए स्वायत्त निगमों की स्थापना की जाती है। इन उद्यमों द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं की कीमत पर बेचा जाता है। ये सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित लाभ कमाने वाले उद्यम हैं।

सामान्य निवासी : ये वे गृहस्थ अथवा संस्थाएँ हैं जिनके हितों का केंद्र तो अर्थव्यवस्था में होता है लेकिन उनमें से कुछ अस्थायी रूप से विदेशों में होते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

खुली अर्थव्यवस्था : यह वह अर्थव्यवस्था है जिसके द्वारा शेष विश्व में लेन-देन होता है।

प्रचालन अधिशेष : यह वह साधन आय हैं जो सम्पत्ति के स्वामित्व तथा प्रबंधन के कारण उत्पन्न होती है। इसमें किराया, ब्याज तथा लाभ शामिल होते हैं।

वैयक्तिक आय : यह एक वर्ष में एक अर्थव्यवस्था के गृहस्थों को प्राप्त साधन आय तथा हस्तांतरण आय का योग है।

निजी आय : यह एक वर्ष में एक अर्थव्यवस्था के गृहस्थों तथा निजी क्षेत्र के उद्यमों द्वारा प्राप्त साधन आय तथा हस्तांतरण आय है।

वैयक्तिक प्रयोज्य आय : यह वैयक्तिक आय में से वैयक्तिक आय-कर तथा सरकारी प्रशासनिक विभागों के विभिन्न भुगतान करने के पश्चात् शेष वह साधन आय तथा हस्तांतरण आय है जो गृहस्थों के पास बच जाती है।

निजी अंतिम उपभोग व्यय : यह अंतिम उपभोग हेतु एक अर्थव्यवस्था के गृहस्थों द्वारा एक वर्ष में वस्तुओं तथा सेवाओं की खरीद पर किया गया व्यय है।

तत् प्रति तत् : जब एक विनिमयकर्ता द्वारा जब कुछ प्राप्त होने पर उसके बदले में कुछ दिया जाए तो उसे तत् प्रति तत् कहा जाता है।

वास्तविक लेन-देन : एक वर्ग से दूसरे वर्ग की ओर वस्तुओं और सेवाओं का प्रवाह।

शेष विश्व क्षेत्र : यह पूँजीगत वस्तुओं के कुल चालू उत्पादन का वह भाग है जो उत्पादन प्रक्रिया के दौरान सामान्य टूट-फूट तथा पुरानेपन के कारण पूँजीगत वस्तुओं के मूल्य में अपेक्षित कमी के कारण पूँजीगत वस्तुओं के स्टॉक को बदलने के लिए प्रयुक्त होता है।

सकल घरेलू पूँजी निर्माण दर : यह सकल घरेलू पूँजी निर्माण को बाज़ार कीमतों पर सकल घरेलू उत्पाद से भाग करते हुए 100 से गुणा करने पर प्राप्त होती है।

शुद्ध घरेलू पूँजी निर्माण : यह हमें शुद्ध घरेलू पूँजी निर्माण को बाज़ार मूल्यों पर निवल घरेलू उत्पाद से भाग करते हुए 100 से गुणा करने पर प्राप्त होती है।

सकल घरेलू बचत दर : यह हमें सकल घरेलू बचत को बाज़ार मूल्यों पर सकल घरेलू उत्पाद को भाग करते हुए 100 से गुणा करके प्राप्त होती है।

शुद्ध घरेलू बचत दर : यह हमें शुद्ध घरेलू बचत को बाज़ार मूल्यों पर शुद्ध घरेलू उत्पाद को भाग करते हुए 100 से गुणा करके प्राप्त होती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

शुद्ध विदेशी पूँजी प्रवाह दर : यह सकल घरेलू पूँजी निर्माण दर और सकल घरेलू बचत के बीच का अंतर होती है।

13.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Studenski, Paul, : (1972) *Income of Nations.* (Ch. 11-12) Macmillan, New Delhi

Beckeman, Wilred, : (1980) *National Income Analysis* (Ch.1-3), Wiedenfield and Nicolso, London

C.S.O., *National Accounts Statistics* (relevant pages), Ministry of Statistics and Programme Implementation, Govt. of India, New Delhi

13.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) मौद्रिक प्रवाह वे होते हैं जो एक विनिमयकर्ता से दूसरे विनिमयकर्ता के बीच अथवा के एक वर्ग से दूसरे के बीच मुद्रा के रूप में होते हैं। उदाहरण के लिए उत्पादक वस्तुओं का उत्पादन करते हैं और उन्हें गृहस्थों को देते हैं, जिसके बदले में उत्पादकों को मुद्रा के रूप में भुगतान किया जाता है। दूसरी ओर, गृहस्थ उत्पादकों को साधन सेवाएँ प्रदान करते हैं और उत्पादक उनको पारितोषिक (साधन आय) प्रदान करते हैं। दूसरी ओर, वास्तविक प्रवाह है— वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादकों से गृहस्थों की ओर प्रवाह और गृहस्थों की ओर साधन सेवाओं का प्रवाह।

2) आर्थिक लेन-देनों की उत्पादन, आय सृजन, पूँजी स्टॉक में वृद्धि और शेष विश्व के साथ

लेन-देन में वर्गीकृत किया जा सकता है। लेन-देनकर्ता उद्यम, गृहस्थ सरकार पूँजी क्षेत्र एवं शेष विश्व में विभाजित किए जाते हैं।

3) जब उद्यम और गृहस्थ क्षेत्र के साथ पूँजी क्षेत्र को भी चक्रीय प्रवाह में शामिल किया जाता है तो वह जटिल हो जाता है। यह जटिलता इसलिए होती है, वह उद्यमों द्वारा उत्पादित उपभोक्ता वस्तुओं और सेवाओं पर खर्च कर दी जाए। उसका एक भाग गृहस्थों द्वारा बचत करके पूँजी क्षेत्र की ओर हस्तांतरित कर दिया जाता है। उसी प्रकार से उद्यम अपनी प्राप्तियों (जो उपभोक्ता वस्तुओं और सेवाओं की बिक्री से प्राप्त होती है) का एक भाग घिसावट को एवं अवितरित लाभों के रूप में बचत के रूप में रखें।

वे बचतें जो गृहस्थों एवं फर्मों से पूँजी क्षेत्र को प्राप्त होती है, उनको उद्यमों को ऋण के रूप में प्रदान किया जाता है जिसका उपभाग वे पूँजीगत वस्तुओं (स्थिर पूँजीगत वस्तुएँ अथवा स्टॉक में परिवर्तन) के निवेश में लगा दें। इस प्रकार से बचत और निवेश को भी चक्रीय प्रवाह में शामिल किया जाता है।

बोध प्रश्न 2

1) उत्पादन प्रवाह से हमारा अभिप्राय है, एक वर्ष में एक अर्थव्यवस्था में वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन। वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन के लिए हमें साधन सेवाओं की आवश्यकता होती है जो उत्पादन के साधनों के प्रयोग से साधन आय यानि आय प्रवाह सृजित होता है। साधन सेवाओं के बदले में गृहस्थों को प्राप्त साधन आयों को या तो उद्यमों द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं को खरीदने पर खर्च किया जाता है या बचत की जाती है। जो भी बचत होती है, वह बाद में अर्थव्यवस्था में पूँजी स्टॉक में वृद्धि (अथवा निवेश) के लिए प्रयुक्त होती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस प्रकार उत्पादन प्रवाह, आय प्रवाह सृजित करता है और आय प्रवाह व्यय प्रवाह अथवा पूँजी स्टॉक में वृद्धि प्रवाह को सृजित करता है। यह प्रक्रिया सतत् रूप से चलती है क्योंकि उपभोग व्यय तथा पूँजीगत व्यय, उद्यमों को प्राप्त होते हैं। तथा फिर से उत्पादन प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है।

2) i) वर्तमान में उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं को उपभोक्ता और सेवाओं एवं पूँजीगत अथवा निवेश वस्तुओं में वर्गीकृत किया जा सकता है। उत्पादित वस्तुएँ एवं सेवाएँ मध्यवर्ती प्रकृति की भी हो सकती है लेकिन वे ऊपर के दो वर्गों में नहीं रखी जाती क्योंकि ऐसे में एक अर्थव्यवस्था के सकल घरेलू उत्पाद में दोहरी गणना हो जाएगी।

ii) एक वर्ष में सृजित आयों को प्रचालन अधिशेष, कर्मचारियों का मुआवजा और स्व-रोज़गार युक्त लोगों की मिश्रित आय में वर्गीकृत किया जा सकता है। प्रचालन अधिशेष में किराया, ब्याज एवं लाभ शामिल होते हैं। स्व-रोज़गार युक्त लोगों की मिश्रित आय साधन आयों का वह प्रकार है जहाँ प्रचालन अधिशेष तथा कर्मचारियों के मुआवज़े के बीच भेद करना संभव नहीं होता। एक अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीय आय प्राप्त करने के लिए घरेलू तौर पर साधन आयों के विदेशों से निवल साधन आयों को भी जोड़ना होगा।

iii) चालू रूप से सृजित व्ययों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है— (क) निजी अंतिम उपभोग व्यय (ख) सरकारी अंतिम उपभोग व्यय (ग) सकल घरेलू पूँजी निर्माण (घ) शेष विश्व को शुद्ध निर्यात।

उपरोक्त (क), (ख), (ग) एवं (घ) में से निवल अप्रत्यक्ष कर एवं घिसावट को घटाकर तथा विदेशों से शुद्ध साधन आय जमा करके हम एक अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीय आय प्राप्त करते हैं।

3) किसी अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीय आय के मापन के लिए उत्पाद, आय एवं व्यय तीन तरीके

हैं। इन तीनों विधियों से प्राप्त राष्ट्रीय आय का योग एक समान है। भारत में राष्ट्रीय आय के मापन के लिए हम इन तीनों विधियों को मिला-जुलाकर उपयोग करते हैं। हम कृषि इत्यादि के लिए उत्पादन विधि, सेवा क्षेत्र के लिए आय विधि तथा निर्माण क्षेत्र के लिए व्यय विधि का उपयोग करते हैं।

हम इन तीनों विधियों का उपयोग इसलिए करते हैं क्योंकि विभिन्न क्षेत्रों में उपलब्ध आँकड़े भिन्न.भिन्न हैं। ऐसे क्षेत्र जहाँ उत्पादन आँकड़े आसानी से उपलब्ध हैं, वहाँ हम उत्पादन विधि का उपयोग करते हैं। ऐसे क्षेत्र जैसे सेवाओं में सृजित आय के आँकड़े आसानी से उपलब्ध होते हैं, इसलिए वहाँ राष्ट्रीय आय में उनके योगदान के लिए आय विधि का उपयोग होता है। निर्माण क्षेत्र में व्यय विधि का उपयोग होता है क्योंकि वहाँ व्यय के आँकड़े आसानी से उपलब्ध होते हैं।

बोध प्रश्न 3

1)
- वैयक्तिक उपभोग व्यय + वैयक्तिक बचतें – वैयक्तिक प्रयोज्य आय
- वैयक्तिक प्रयोज्य आय + प्रत्यक्ष वैयक्तिक कर + सरकारी प्रशासकीय विभागों की छिटपुट प्राप्तियाँ = वैयक्तिक आय
- वैयक्तिक आय + निजी निगमों के अवितरित लाभ + निगम कर = निजी आय
- निजी आय — विदेशों से प्राप्त निवल साधन आय — राष्ट्रीय ऋण पर ब्याज — सरकार से हस्तांतरण = घरेलू उत्पाद से निजी क्षेत्र को प्राप्त आय
- घरेलू उत्पाद से निजी क्षेत्र को प्राप्त आय + ग़ैर-विभागीय सरकारी उद्यमों की बचतें + सरकारी प्रशासकीय विभागों को घरेलू उत्पाद से प्राप्त आय = साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद
- साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद (NDP_{FC}) + घिसावट = साधन लागत पर सकल घरेलू उत्पाद

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) शुद्ध राष्ट्रीय प्रयोज्य आय — शुद्ध अप्रत्यक्ष कर — घरेलू उत्पाद से सरकारी प्रशासकीय विभागों को प्राप्त आय — ग़ैर.विभागीय उद्यमों की बचत + राष्ट्रीय ऋण पर ब्याज + सरकार से चालू हस्तांतरण —अवितरित लाभ — निगम कर — प्रत्यक्ष वैयक्तिक कर — सरकारी प्रशासकीय विभागों की छिटपुट प्राप्तियाँ = वैयक्तिक प्रयोज्य आय

3) i) घिसावट

ii) विदेशों से शुद्ध साधन आय

iii) शुद्ध अप्रत्यक्ष कर + विदेशों से शुद्ध चालू हस्तांतरण

iv) शुद्ध अप्रत्यक्ष कर

v) विदेशों से शुद्ध चालू हस्तांतरण

vi) प्रत्यक्ष वैयक्तिक कर + सरकारी प्रशासकीय विभागों की छिटपुट प्राप्तियाँ।

इकाई 14 राष्ट्रीय आय का मापन

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना
14.2 राष्ट्रीय आय
 14.2.1 राष्ट्रीय आय के मापन की विधियाँ
 14.2.2 उत्पादन विधि
 14.2.3 आय विधि
 14.2.4 व्यय विधि
 14.2.5 राष्ट्रीय आय के तीनों मानदण्डों का समंजन
14.3 भारत में राष्ट्रीय आय का मापन
 14.3.1 भारतीय अर्थव्यवस्था के उपक्षेत्र
 14.3.2 कृषि क्षेत्र में प्रयुक्त विधि
 14.3.3 पंजीकृत विनिर्माण क्षेत्र में प्रयुक्त विधि
 14.3.4 निर्माण क्षेत्र में प्रयुक्त विधि
 14.3.5 भारत में राष्ट्रीय आय के मापन में कठिनाइयाँ
14.4 सारांश
14.5 शब्दावली
14.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें
14.7 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

14.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप समझ पाएँगे :

- राष्ट्रीय आय के मापन की माँग विधियाँ;
- राष्ट्रीय आय के तीन आयामों के घटक यानि उत्पादन, आय तथा व्यय के घटक;
- राष्ट्रीय आय के मापन हेतू भारतीय अर्थव्यवस्था का विभिन्न क्षेत्रों में वर्गीकरण;
- उपरोक्त सभी क्षेत्रों में राष्ट्रीय आय के मापन की विधियों का प्रयोग; तथा
- भारत में राष्ट्रीय आय के मापन के कार्य में समस्याएँ और कठिनाइयाँ।

14.1 प्रस्तावना

राष्ट्रीय आय एक महत्त्वपूर्ण समष्टिगत आर्थिक समूह है। कुछ योग्यताओं के साथ इसे आर्थिक उत्पादन, आर्थिक संवृद्धि, आर्थिक विकास तथा आर्थिक कल्याण का द्योतक समझा जा सकता है। इस प्रकार इसके मापन का अत्यधिक महत्त्व है। राष्ट्रीय आय सही मापन न होने के दूरगामी प्रभाव हो सकते हैं। इस इकाई के एक बड़े भाग में हम किसी अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय के मापन की विधियों का वर्णन करेंगे।

14.2 राष्ट्रीय आय

उत्पादन के प्रवाह, आय के सृजन तथा व्यय की अवधारणाओं का परिचय पहले ही इकाई 13 में किया गया है। यह भी बताया गया कि किस प्रकार से उत्पादन का प्रवाह आय का सृजन करता है जो तदनुसार व्यय के प्रवाह का कारण बनता है। व्यय का प्रवाह

पुनः उत्पादन के प्रवाह को जन्म देता है और इस प्रकार से उत्पादन, आय सृजन तथा व्यय की प्रक्रिया निरंतर एक के बाद दूसरे काल में अनवरत चलती रहती है। अर्थव्यवस्था के सामान्य निवासियों के संदर्भ में इन तीन प्रवाहों का मापन, हमें राष्ट्रीय आय में मापन की तीन विधियाँ प्रदान करता है।

14.2.1 राष्ट्रीय आय के मापन की विधियाँ

राष्ट्रीय आय के मापन की तीन विधियाँ हैं :

1) उत्पादन विधि अथवा मूल्य वृद्धि विधि

2) आय विधि

3) व्यय विधि

तीनों में से प्रत्येक विधि अर्थव्यवस्था में एक प्रवाह से संबंधित है। वास्तव में ये तीन विधियाँ राष्ट्रीय आय को देखने के तीन दृष्टिकोण है। इन तीनों विधियों में से प्रत्येक में प्रयुक्त सांख्यिकी आँकड़े तथा उपकरण भिन्न-भिन्न है, लेकिन अवधारणात्मक रूप से इन तीनों विधियों से मापित राष्ट्रीय आय का मूल्य एक ही होगा। यदि ये विधियाँ, मूलतः राष्ट्रीय आय का एक मूल्य नहीं देतीं तो ऐसा राष्ट्रीय आय के मापन के लिए आँकड़ों की कमी के कारण होगा। इन तीनों विधियों में से प्रत्येक में राष्ट्रीय आय के मापन में आने वाली कठिनाइयाँ काफी भिन्न हैं।

14.2.2 उत्पादन विधि

DIKSHANT IAS

किसी अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीय आय के मापन के लिए उत्पादन विधि के प्रयोग के लिए मूलतः तीन चरण हैं। वे इस प्रकार है :

Call us @7428092240

1) उत्पादक उद्यमों की सही पहचान करना और उनका औद्योगिक क्षेत्रों में वर्गीकरण करना।

2) एक अर्थव्यवस्था के घरेलू क्षेत्र में प्रत्येक उत्पादक उद्यम तथा प्रत्येक औद्योगिक क्षेत्र के द्वारा साधन लागत पर शुद्ध मूल्य वृद्धि का मापन तथा सभी औद्योगिक क्षेत्रों द्वारा शुद्ध मूल्य वृद्धि को जमा करते हुए शुद्ध उत्पाद प्राप्त करना।

3) विदेशों से शुद्ध साधन आय मापन जिसे साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद में जमा करते हैं : अर्थव्यवस्था के शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद यानि राष्ट्रीय आय को प्राप्त करना।

औद्योगिक क्षेत्रों का वर्गीकरण

मोटे तौर पर औद्योगिक क्षेत्रों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है :

क) प्राथमिक क्षेत्र

ख) द्वितीयक क्षेत्र

ग) तश्तीयक अथवा सेवा क्षेत्र

प्राथमिक क्षेत्र

इसमें कृषि तथा संबंधित कार्यों वन, मत्स्य आखेट, खनन् तथा उत्खनन् को सम्मिलित किया जाता है। यह क्षेत्र प्राकृतिक संसाधनों का शोषण कर उत्पादन करता है। इसमें कोयला, लोह अयस्क तथा अन्य खनिजों का उत्पादन होता है। भारत में प्राथमिक क्षेत्र को तीन

भागों में विभाजित किया जाता है : (i) कृषि, (ii) वानिकी एवं लट्ठा बनाना, (iii) मत्स्यन तथा (iv) खनन् एवं उत्खनन्।

द्वितीयक क्षेत्र

इसमें विनिर्माण क्षेत्र को सम्मिलित किया जाता है जहाँ एक प्रकार के उत्पाद का दूसरे प्रकार के उत्पाद में परिवर्तन होता है। भारत में द्वितीयक क्षेत्र को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जाता है :

(i) पंजीकृत विनिर्माण; (ii) गैर पंजीकृत विनिर्माण; (iii) विद्युत, गैस तथा जल आपूर्ति।

तृतीयक क्षेत्र

इसमें सेवा क्षेत्र को सम्मिलित किया जाना है क्योंकि इस क्षेत्र उद्यमों के द्वारा मात्र सेवाएँ ही उत्पादित की जाती हैं। भारत में इस क्षेत्र में शामिल हैं : (i) रेलवे, (ii) अन्य साधनों द्वारा परिवहन तथा भंडारण, (iii) संचार, (iv) व्यापार होटल तथा जलपान गृह, (v) बैंकिंग तथा बीमा, (vi) स्थावर संपदा, आवासों का स्वामित्व एवं व्यावसायिक सेवाएँ, (vii) लोक प्रशासन तथा रक्षा तथा (viii) अन्य सेवाएँ।

शुद्ध मूल्य वृद्धि का मापन

एक अर्थव्यवस्था के उत्पादक क्षेत्रों को पहचान के बाद, अगला कदम है, प्रत्येक उत्पादन क्षेत्र के द्वारा मूल्य वृद्धि का मापन। एक उत्पादन मूल्य तथा मध्यवर्ती आगतों की लागत का अंतर मूल्य वृद्धि कहलाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

आइए, अब हम मूल्य वृद्धि की अवधारणा को एक उदाहरण की सहायता से समझते हैं। मान लीजिए कि एक उत्पादक इकाई 'X' है जो एक वर्ष में 48000 रुपये की वस्तुओं की बिक्री करती है तथा वस्तुओं के भण्डार में 2100 रुपये की वृद्धि करती है। इस प्रकार से इस उत्पादक इकाई 'X' के उत्पादन का मूल्य है 50,000 रुपये है (48000 रुपये + 2000 रुपये)। मान लीजिए कि यह उत्पादक इकाई 'X' अर्थव्यवस्था की अन्य उत्पादक इकाइयों से 7000 रुपये का कच्चा माल तथा सेवाएँ खरीदतें हैं। हम समझते हैं कि 'X' द्वारा मूल्य वृद्धि को, उत्पादन के मूल्य में से अन्य उत्पादक इकाइयों से प्राप्त कच्चे माल तथा सेवाओं के मूल्य घटाकर प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार से इस वर्ष में इस उत्पादक इकाई 'X' द्वारा मूल्य वृद्धि 43000 रुपये (यानि 50,000 रुपये 7000 रुपये) होगी। एक अर्थव्यवस्था में सकल घरेलू उत्पाद, उस अर्थव्यवस्था की घरेलू क्षेत्र की सभी उत्पादक इकाइयों द्वारा मूल्य वृद्धि को जमा करके प्राप्त किया जाता है। मूल्य वृद्धि की यह अवधारणा को एक अन्य उदाहरण द्वारा भी समझाई जा सकती है।

मान लीजिए कि एक अर्थव्यवस्था में केवल तीन उत्पादक इकाइयाँ हैं :

(क) वृक्ष काटने में संलग्न एक उद्यम, (ख) पहले उद्यम द्वारा काटे गए वृक्षों का लट्ठों में परिवर्तित करने के कार्य में संलग्न एक उद्यम, (ग) दूसरे उद्यम द्वारा उत्पादित लट्ठों से मेज बनाने के कार्य में संलग्न एक उद्यम। माना कि पहले उद्यम को वृक्ष काटने के कार्य में किसी भी प्रकार के कच्चे माल की आवश्यकता नहीं। इस प्रकार से उपरोक्त तीन उद्यमों द्वारा एक वर्ष में मूल्य वृद्धि के व उत्पादन मूल्य को निम्न तालिका संख्या 14.2.2.1 की सहायता से दिखाया जा सकता है।

तालिका 14.2.2.1 उद्यमों द्वारा मूल्य वृद्धि

उद्यम	उत्पादित उत्पाद	उत्पादन का मूल्य (000 रुपयों में)	मध्यवर्ती उपभोग का मूल्य (000 रुपयों में)	मूल्य वृद्धि (000 रुपयों में)
1.	लकड़ी	50	शून्य	50
2.	लट्ठे	80	50	30
3.	मेजें	150	80	70
	कुल	**280**	**130**	**150**

तालिका 14.2.2.1 से स्पष्ट है कि (वृक्ष काटने से) उत्पादित लकड़ी का मूल्य 50,000 रुपये है और दूसरे उद्यम के द्वारा उस लकड़ी से बने लट्ठों का मूल्य 80,000 रुपये है और लट्ठों से बनी मेजों का मूल्य 150,000 रुपये है। इन तीनों उद्यमों के द्वारा कुल उत्पादन (150,000 रुपये) है। इसे सकल घरेलू उत्पाद नहीं कहा जा सकता क्यों इसमें दो बार दोहरी गणना हुई है। एक लकड़ी के मूल्य की लट्ठों के मूल्य में दूसरे लट्ठों के मूल्य की मेजों के मूल्य में। इस दोहरी गणना से बचने के दो उपाय हैं— (क) केवल अंतिम उत्पाद के मूल्य लेना और कच्चे माल आदि उत्पादों के मूल्यों को छोड़कर यह विधि अपनाना कठिन है क्योंकि यह निर्णय करना कि कौन-सा उत्पाद कच्चामाल है और कौन-सा अंतिम उत्पाद है, एक कठिन कार्य है। उदाहरण के लिए यदि लकड़ी का उपयोग लट्ठे बनाने के लिए हों तो वह कच्चामाल मानी जाएगी और यदि इसे ईंधन के रूप में उपयोग किया जाए तो इसे अंतिम उत्पाद माना जाएगा। इसलिए सकल घरेलू उत्पाद में दोहरी गणना से बचने के लिए इस विधि का उपयोग नहीं किया जाता। उपरोक्त उदाहरण में तीसरे उद्यम के उत्पादन का मूल्य यानि 150,000 रुपये ही सकल घरेलू उत्पाद है जो कि अर्थव्यवस्था का सकल घरेलू उत्पाद है। पहली और दोनों विधियों के अनुसार सकल घरेलू उत्पाद 150,000 रुपये प्राप्त होता है। पहली विधि की अपेक्षा दूसरी विधि को अपनाना आसान है। यही कारण है कि एक अर्थव्यवस्था के सकल घरेलू उत्पाद अथवा राष्ट्रीय आय के मापन की उत्पादन विधि को मूल्य वृद्धि विधि भी कहा जाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस संदर्भ में ध्यान देने योग्य है कि :

i) समस्त उत्पादक द्वारा बाज़ार पर सकल मूल्य वृद्धि का योग हमें बाज़ार मूल्य पर सकल घरेलू उत्पाद प्रदान करता है;

ii) साधन लागत पर मूल्य वृद्धि का योग हमें साधन लागत पर सकल घरेलू उत्पाद प्रदान करता है;

iii) साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद हमें साधन लागत पर अर्थव्यवस्था की सभी उत्पादक इकाइयों द्वारा शुद्ध मूल्य वृद्धि के योग से प्राप्त होता है।

विदेशों से शुद्ध साधन आय :

विदेशों से शुद्ध साधन आय की अवधारणा इसलिए आवश्यक हो जाती है क्योंकि साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद में विदेशों से शुद्ध साधन आय जोड़ने से ही हमें राष्ट्रीय आय प्राप्त होती है। इसमें शामिल है :

1) विदेशों से प्राप्त कर्मचारियों का पारिश्रमिक (शुद्ध);

2) सम्पत्ति एवं उद्यम से प्राप्त निबल आय;

3) विदेशों में निवासी निगमों द्वारा विदेशों से प्राप्त आय का शुद्ध अवितरित अंश।

कर्मचारियों को विदेशों से प्राप्त पारिश्रमिक (शुद्ध)

इसका अनुमान हमें अपने विदेशों में कार्य कर रहे निवासियों को (जो अस्थायी रूप से देश से बाहर हों) मिली आमदनी में से अपने देश में कार्यरत अनिवासियों को किए गए भुगतान को घटाकर प्राप्त होता है। अस्थायी रूप से विदेशों में कार्य करने से हमारा अभिप्राय उन्हीं निवासियों से है जो एक वर्ष से कम अवधि के लिए देश से बाहर कार्य कर रहे हों। यदि वे एक वर्ष से अधिक समय किसी अन्य देश में कार्य करते हैं तो उन्हें वहाँ का निवासी माना जाता है तथा उनकी आय उनके कार्य क्षेत्र देश की राष्ट्रीय आय में शामिल की जाती है। हाँ, यदि वह अपने परिजनों को कुछ धनराशि आदि भेजते हैं तो उसे हम विदेशों से प्राप्त चालू खाते के अन्तरणों में शामिल कर लेते हैं। पर ऐसे अन्तरण राष्ट्रीय आय का घटक नहीं कहलाते हैं। अतः कर्मचारियों को प्राप्त शुद्ध पारिश्रमिक धनात्मक अथवा ऋणात्मक दोनों हो सकता है।

विदेशों में संपत्ति एवं उद्यम से प्राप्त शुद्ध आय

हमारे देश के निवासी उत्पादकों द्वारा विदेशों से प्राप्त ब्याज भाड़ा लाभांश तथा लाभ में से इन मदों में से अनिवासियों को किए गए भुगतान घटाकर हमें विदेशी संपत्ति एवं उद्यम से प्राप्त शुद्ध आय के आँकड़े मिलते हैं। इसमें सरकार को विदेशी ऋणों से प्राप्त शुद्ध ब्याज भी शामिल रहता है।

निवासी के निगमों द्वारा विदेशों से प्राप्त आय का अंश

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

यह राशि हमारी उन कंपनियों की विदेशी उत्पादक गतिविधियों से प्राप्त लाभ का अवितरित अंश है जो किसी अन्य देश में कार्य कर रही है। यह अवितरित लाभ सामान्यतः पुनः निवेश आदि के काम लाया जाता है। इसी प्रकार विदेशी कंपनियाँ और उनकी शाखाएँ भी अपने कार्य क्षेत्र के देशों में अर्जित लाभ का एक हिस्सा बचा रखती हैं। अतः इस मद में शुद्ध राशि विदेशों में कार्य कर रही हमारी कंपनियों/शाखाओं के अवितरित लाभ में से भारत में काम रही विदेशी कंपनियों के द्वारा इसी प्रकार बचाकर रखी गई राशियों का अन्तर ही शामिल होता है।

इस प्रकार से विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय होगी = विदेशों से कर्मचारियों को प्राप्य शुद्ध पारिश्रमिक जमा विदेशों से संपत्ति एवं उद्यम प्राप्ति जमा हमारी कंपनियों द्वारा विदेशों में बचाकर रखी गई अवितरित राशि।

विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय का अनुमान प्रयोग कर हम बाज़ार कीमतों पर सकल राष्ट्रीय, उत्पाद, साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद, बाज़ार कीमतों पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद तथा साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (राष्ट्रीय आय) का प्राक्कलन करते हैं। तथा

क) बाज़ार कीमतों पर सकल घरेलू उत्पाद + विदेशों से शुद्ध साधन = बाज़ार कीमतों पर सकल राष्ट्रीय आय

ख) साधन लागत पर सकल घरेलू उत्पाद + विदेशों से शुद्ध साधन आय = साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद

ग) बाज़ार कीमत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद + विदेशों से शुद्ध साधन आय = बाज़ार कीमत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद

घ) साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद + विदेशों से शुद्ध साधन आय = साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (राष्ट्रीय आय)

सामान्यतः हम पहले घरेलू उत्पाद के सकल या शुद्ध बाज़ार कीमत या साधन लागत अनुमान पहले आकलित करते हैं। फिर इनमें विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय जोड़कर ही राष्ट्रीय आय के तदनुरूप अनुमान तैयार किए जाते हैं।

किसी अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीय आय का उत्पादन विधि से अनुमान लगाते समय इन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है :

किसी अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीय आय का उत्पादन विधि से अनुमान लगाते समय इन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है :

1) अपने सहयोग के लिए उत्पादित सामग्री उत्पादन में जोड़नी चाहिए। अतः भौतिक उत्पादन को बाज़ार कीमत से गुणाकर स्वयं उपयुक्त सामग्री के मूल्य का अनुमान लगाया जाता है।

2) अपने निवास के काम आ रहे भवनों के भाड़े का अनुमान लगाकर उन भवनों की सेवाओं को राष्ट्रीय उत्पादन में जोड़ा जाता है।

3) सरकार, निजी उद्यमों तथा गृहस्थों के लिए उत्पादित वस्तुओं आदि का मूल्य भी अनुमानित किया जाना आवश्यक है।

4) पुरानी वस्तुओं के क्रय-विक्रय से राष्ट्रीय आय नहीं बढ़ती पर यदि इस विनिमय में किसी की दलाली मिलती है तो उस दलाली की रकम को दलाल की सेवाओं के मूल्य के रूप में राष्ट्रीय आय में जोड़ना आवश्यक हो जाता है। दलालों की सेवाओं का मूल्य उन्हें प्राप्त कमीशन या दलाली से अनुमानित होता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

14.2.3 आय विधि

किसी उत्पादन इकाई द्वारा साधन लागत पर शुद्ध मूल्य वृद्धि उस इकाई में सृजित साधन आय अर्थात् कर्मचारियों का पारिश्रमिक, प्रचालन अधिशेष तथा स्वनियोजितों की मिश्रित आय, के समान होती है। अतः किसी उत्पादक इकाई का योगदान ज्ञात करने के लिए हम कर्मचारियों का पारिश्रमिक, प्रचालन अधिशेष व मिश्रित आय को जोड़ लेते हैं। यदि अर्थव्यवस्था की कमी सभी उत्पादक इकाइयों द्वारा सृजित साधन आय जोड़ ली जाए तो हमें शुद्ध घरेलू उत्पाद की साधन लागत ज्ञात हो जाती है। इसमें विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय जोड़कर हम साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद या राष्ट्रीय आय जान सकते हैं।

साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद में मूल्यह्रास का प्रावधान जोड़कर हमें साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पादन ज्ञात होता है। इसमें शुद्ध अप्रत्यक्ष करों की राशि जोड़ने पर हमें बाज़ार कीमतों पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद मिलता है।

इसी तरह साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद तथा मूल्यह्रास प्रावधान का योग हमें साधन लागत पर घरेलू उत्पाद देता है।

आय विधि से राष्ट्रीय आय का आकलन कुछ इस प्रकार होता है :

1) पहले साधन सेवाएँ प्रयोग करने वाली उत्पादक इकाइयों की पहचान की जाती है;

2) विभिन्न साधन-भुगतानों का वर्गीकरण किया जाता है;

3) साधन भुगतान के घटकों का अनुमान लगाया जाता है;

4) विदेशों से प्राप्त साधन आय का अनुमान लगाते हैं। इसी साधन लागत पर घरेलू उत्पाद

में जोड़कर हम शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद की साधन लागत अथवा राष्ट्रीय आय का अनुमान प्राप्त करते हैं।

उत्पादन विधि के लिए प्रयुक्त उत्पादक इकाइयों के वर्गीकरण का आय विधि के लिए भी प्रयोग हो सकता है।

साधन आयों को इन वर्गों में बाँटा जाता है :

क) कर्मचारियों का पारिश्रमिक

ख) किराया

ग) ब्याज,

घ) लाभ तथा

ङ) स्वनियोजितों की मिश्रित आय

साधन आय का मोटा-मोटा वर्गीकरण कुछ इस तरह से भी हो सकता है :

अ) कर्मचारियों का पारिश्रमिक

ब) प्रचालन अधिवेश तथा

स) स्वनियोजितों की मिश्रित आय।

DIKSHANT IAS

आय विधि से राष्ट्रीय आय के आकलन में इन बातों पर ध्यान देना आवश्यक होता है :

Call us @7428092240

1) साधन आय तथा हस्तांतरण का भेद अच्छी तरह समझना चाहिए। साधन आय उत्पादन के निमित्त प्रदत्त साधन सेवाओं के बदले में मिला प्रतिफल है पर हस्तांतरण आय किसी तरह के साधन प्रयास के बिना ही मिली प्राप्ति है। केवल साधन आय ही राष्ट्रीय आय है। हस्तांतरण को हम राष्ट्रीय आय में नहीं जोड़ते।

2) स्वयं निवास के लिए प्रयुक्त भवनों का भाड़ा भी आँका जाता है। इस आकलित राशि में से रख-रखाव पर आया खर्च घटाकर शेष रकम उत्पादन विधि की ही भाँति राष्ट्रीय आय में जोड़ दी जाती है।

3) तस्करी, जुआ तथा लाटरी आदि से हुई अनायास प्राप्ति को भी हम राष्ट्रीय आय में नहीं जोड़ते।

4) पुरानी चीज़ों के विनिमय से भी अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीय आय अप्रभावित रहती है। इनकी बिक्री से प्राप्त राशि किसी साधन सेवा का प्रतिफल नहीं होती, अतः उसे राष्ट्रीय आय में स्थान भी नहीं मिलता।

14.2.4 व्यय विधि

उत्पादन की प्रक्रिया में सृजित आय उत्पादक साधनों को प्राप्त होती है। इन प्राप्तियों को हम दो वर्गों में बाँट सकते हैं : (क) कार्य के प्रतिफल स्वरूप प्राप्ति तथा (ख) सम्पत्ति के स्वामित्व और उद्यमवृत्ति से प्राप्ति। कार्य से प्राप्ति का लाभ श्रमिकों को प्राप्त होता है तथा पूँजी व उद्यम से प्राप्त आय उनके स्वामी प्रयोग करते हैं। भू-स्वामी भी यहाँ उद्यमी ही माने जाते हैं। उत्पादक साधन अपनी आय को या तो चालू उत्पादन में से उपभोग के विभिन्न खर्च कर सकते हैं या फिर वे इसका एक अंश बचाकर भी रख सकते हैं। इन बचतों से पूँजी का भण्डार समृद्ध होता है—यही निवेश है। यदि सभी इकाइयों (शेष

विश्व सहित) के अन्तिम उपभोग व्यय तथा सकल निवेश को जोड़ा जाए तो हमें बाज़ार कीमतों पर अर्थव्यवस्था का सकल घरेलू उत्पाद ज्ञात हो जाता है। इसी बाज़ार कीमत पर सकल घरेलू उत्पाद में से मूल्यह्रास तथा शुद्ध अप्रत्यक्ष कर घटाकर साधन कीमत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद के आँकड़े मिलते हैं। इनमें विदेशों से शुद्ध साधन आय जोड़ने से हमें साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन या राष्ट्रीय आय का अनुमान प्राप्त हो जाता है। बाज़ार कीमतों पर सकल घरेलू उत्पाद की घटक व्यय मदें इस प्रकार हैं :

1) निजी अंतिम उपभोग व्यय,

2) सरकारी का अंतिम उपभोग व्यय,

3) सकल घरेलू स्थिर पूँजी निर्माण,

4) स्टॉक में वृद्धि

5) वस्तुओं और सेवाओं का शुद्ध निर्यात।

निजी अंतिम उपभोग व्यय

घरेलू बाज़ार में निवासी तथा अनिवासी परिवारों द्वारा चालू खाते के व्यय को ही निजी क्षेत्र का अंतिम उपभोग व्यय माना जाता है। इसमें परिवारों को सेवा प्रदान कर रही पर लाभ न कमाने वाली संस्थाओं का व्यय भी शामिल है। इस व्यय में नए टिकाऊ व ग़ैर-टिकाऊ वस्तुओं पर किया गया व्यय शामिल है। पर भूमि पर हुआ व्यय नहीं। साथ ही, पुरानी चीज़ों, रद्दी व कबाड़ की बिक्री से हुई प्राप्तियाँ भी इस व्यय से निकाल दी जाती हैं। यह अवधारणा अर्थव्यवस्था की घरेलू सीमाओं में व्यय से जुड़ी है– यह राष्ट्रीय उत्पाद के विचार से कुछ दूर हट जाती है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि हमारे निवासियों द्वारा विदेशों से सीधी खरीदारी तथा अनिवासियों द्वारा हमारे देश में सीधी खरीदारी के आँकड़े एकत्र कर पाना सहज नहीं है। अतः केवल निवासियों के अंतिम उपभोग पर खर्च शामिल रहता है। हम स्वयं आवासित भवनों के किराए का भुगतान, स्वयं उपभोग के लिए उत्पादन का अनुमान तथा खाना कपड़ा व रहने की जगह के रूप गृहस्थों द्वारा अपने नौकरों को किए गए ग़ैरमौद्रिक भुगतानों का अनुमानित मूल्य भी जोड़ लेते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

निजी अंतिम उपभोग के आकलन के लिए हमें दो प्रकार के आँकड़ों की जरूरत पड़ती है : (क) बाज़ार में बिक्री हुई कुल मात्रा (ख) परिवारों द्वारा चुकाए गई खुदरा कीमतें। इस कुल मात्रा को खुदरा कीमतों द्वारा गुणा किया जाता है।

अपने उपभोग के लिए उत्पादन को उत्पादन का हिस्सा माना गया, वह आय का भी भाग है और उसका उपभोग तो होता ही है। अतः इस उत्पादन की मात्रा को भी बाज़ार में प्रचलित खुदरा कीमतों से गुणाकर मूल्य ज्ञात किया जाता। वे मकान जिससे मालिक स्वयं रहते हैं का संभावित किराया भी उत्पादन, आय तथा अंतिम उपभोग तीनों में जोड़ा जाता है।

सरकारी अंतिम उपभोग व्यय

सरकारी विभागों द्वारा अपनी सेवाएँ प्रदान करने हेतू खरीदी गई वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य में से इन सेवाओं की बिक्री की राशि घटाकर हमें सरकार का अंतिम उपभोग व्यय ज्ञात होता है। यहाँ हम बजट तथा ग़ैरबजटीय संसाधनों ने वित्तीय सामान्य प्रशासन के उन सभी अवयवों और घटकों की बात कर रहे हैं और केन्द्र, राज्य या स्थानीय निकायो द्वारा संचालित होते हैं। सार्वजनिक उद्यमों और विभागीय उपक्रमों को हम इस श्रेणी से बाहर ही रखते हैं।

सरकार के अंतिम उपभोग का मूल्य सार्वजनिक प्रयोग के निमित्त स्वास्थ्य, संस्कृति, शिक्षा प्रतिरक्षा व कानून और व्यवस्था आदि के क्षेत्रों में सरकारी सेवाओं के मूल्य के समान माना जाता है। इन सेवाओं की जनसामान्य को बिक्री नहीं की जाती, इसीलिए इनका मूल्यांकन इन पर आई लागत से ही होता है। इनकी लागत में ये खर्च शामिल किए जाते हैं :

क) मध्यवर्ती उपभोग

ख) कर्मचारियों का पारिश्रमिक

ग) सरकार द्वारा विदेशों में अपने दूतावासों आदि के प्रयोग के लिए प्रत्यक्ष खरीदारी तथा इनमें से

घ) सरकार द्वारा सेवाओं की पूर्ति से हुई प्राप्तियाँ घटा दी जाती है। इन प्राप्तियों के उदाहरणस्वरूप हम सरकारी अस्पतालों में गरीबों से प्राप्त परीक्षण शुल्क आदि तथा सरकारी प्रकाशनों की बिक्री से प्राप्ति आदि को शामिल कर सकते हैं।

सकल घरेलू स्थिर पूँजी निर्माण

उद्योगों, सरकारी सेवा प्रदाताओं तथा परिवारों को सेवा देने वाली ग़ैर-लाभकारी संस्थाओं द्वारा नए टिकाऊ पदार्थों पर व्यय में से पुराने पदार्थों के विक्रय मूल्य घटाकर हमें सकल घरेलू स्थिर पूँजी निर्माण का मान प्राप्त होता है। इसमें रक्षा सेवाओं के साज-सामान पर आया सरकारी खर्च शामिल नहीं होता। भूमि की गुणवत्ता सुधारने पर तथा एक वर्ष से अधिक समय लगने वाले वन संवर्धन कार्यों को इस पूँजी निर्माण का अंग माना जाता है। इसी प्रकार परिवारों द्वारा गृहनिर्माण व्यय भी इसका हिस्सा है। इस सकल पूँजी निर्माण में घिसावट का अलग लेखा नहीं होता पर मूल्यह्रास का प्रावधान घटाकर हम शुद्ध स्थिर पूँजी निर्माण ज्ञात कर सकते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

यह सकल पूँजी निर्माण का विचार देश की घरेलू सीमाओं से बँधा है। इसमें निवासी उद्योगों, राजकीय सेवाओं तथा परिवारों को सेवा प्रदान करने वाली ग़ैर-लाभकारी संस्थाओं द्वारा अधिग्रहित किए गए अचल परिसम्पत्ति भी शामिल है। भारत में संस्थागत आधार पर इस अचल पूँजी निर्माण का तीन श्रेणियों में विभाजन किया जाता है : सार्वजनिक, निजी एवं गृहस्थ क्षेत्र। दूसरी ओर, परिसम्पत्तियों के आधार पर यह निर्माण कार्यों तथा यंत्रों व उपकरणों में भी बाँटा जा सकता है। निर्माण कार्यों पर व्यय नए निर्माण पर निर्माण होने वाले व्ययों को जोड़कर या फिर इन पर लगने वाली आगतों के मूल्यों को जोड़कर जाना जा सकता है। ये सीमेंट, इस्पात ईंटें, लकड़ी तथा अन्यान्य उपस्करों के रूप में होते हैं। इन्हीं के साथ निर्माण कार्य में लगे श्रमिकों की मज़दूरी जोड़ना भी आवश्यक है, आगतों का मूल्य उनकी प्रयुक्त मात्रा तथा प्रति इकाई चुकाई गई कीमत के गुणन से प्राप्त होता है। इस प्रकार से निर्माण कार्य पर हुए व्यय के आकलन को वस्तु प्रवाह विधि कहा जाता है। आगतों के मूल्य में कर्मचारियों के प्रतिदान, ब्याज, भाड़ा व लाभ जोड़कर ही हम नए निर्माण का मूल्य ज्ञात कर पाते हैं। पुराने भवनों का व्यापक सुधार-बदलाव, उनमें नए कमरे जोड़ना, निर्माणाधीन भवन तथा अपने प्रयोग के निमित्त चल संपत्तियों का अधिग्रहण (उत्पादक क्षेत्रकों द्वारा) आदि को भी नव-निर्माण पर खर्च माना जाता है।

इसी प्रकार यंत्रों व उपकरणों पर अंतिम व्यय का मूल्यांकन उनकी मात्रा तथा खुदरा बाज़ार कीमतों के गुणन द्वारा होता है। उत्पादकों द्वारा आन्तरिक प्रयोग के लिए बनाई गई मशीनें आदि को भी इस व्यय में जोड़ा जाता है।

स्टॉक में परिवर्तन

स्टॉक में हम तैयार तथा कच्चा माल, निर्माणाधीन सामान (भवन नहीं) आदि को सम्मिलित करते हैं। खेतों में खड़ी फसलें और वनों में खड़े वृक्ष इसमें शामिल नहीं होते, पर वध

के लिए पाले गए पशु कटे हुए वृक्ष एवं काटी गई फसलें भण्डार का अंग होती हैं। इस प्रकार से स्टॉक में परिवर्तन हम उपरोक्त सभी मदों के वर्ष के आरंभ के मूल्यांकन की बजाय मूल्यांकन से तुलना द्वारा ज्ञात करते हैं।

स्टॉक का वर्गीकरण हम पदार्थों के स्वरूप और इनके स्वामियों की आर्थिक गतिविधियों के अनुसार किया जाता है। इसी तरह से हम वर्गीकरण में (क) नई उत्पादित और आयातित वस्तुओं का उनके निर्माता उद्योगवार वितरण, (ख) प्रकारानुसार पुरानी वस्तुओं तथा (ग) बेकार या नाक्कारा वस्तु आदि की श्रेणियाँ भी बना सकते हैं।

अन्ततः वस्तुओं/पदार्थों के भौतिक संग्रह में आए परिवर्तन को बाज़ार भावों से गुणा कर स्टॉक परिवर्तन का मूल्य किया जाता है।

वस्तुओं और सेवाओं का शुद्ध निर्यात

यह वर्ष भर में देश से निर्यात की गई वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य तथा देश में आयात मूल्य का अन्तर है। अतः राशि ऋणात्मक भी हो सकती है। इसका धनात्मक होना केवल यही दर्शाता है कि निर्यात आयात की अपेक्षा अधिक थे। यदि आयात अपेक्षाकृत अधिक रहे हों तो यह शुद्ध राशि ऋणात्मक हो जाती है।

भारत में हम देशवासियों द्वारा वस्तुओं का स्वामित्व विदेशियों को सौंपने तथा उनके प्रति दी गई सेवाओं को निर्यात कहते हैं। देश की सीमाओं से बाहर गए निर्यात तो सीमाशुल्क अधिकारियों के खातों में भी दर्ज हो जाते हैं पर बाहरी व्यक्तियों एवं संस्थाओं द्वारा हमारे देश की ही प्रयोग के लिए खरीदी गई वस्तुएँ भी निर्यात ही होती हैं। इनका मूल्यांकन हम F.O.B. अर्थात् बाहर जाने वाले बन्दरगाह तक का मूल्य जोड़कर करते हैं। इसके विपरीत विदेशों से प्राप्त की गई वस्तुओं और सेवाओं तथा अनिवासियों द्वारा भारतीयों के प्रति प्रदत्त सेवाओं के मूल्य जोड़कर हम कुल आयात का हिसाब लगाते हैं। सीमाशुल्क अधिकारी इन आयातों को देश की सीमा में प्रवेश के आधार पर दर्ज करते हैं। इनके साथ ही दूसरे देशों में ही प्रत्यक्षतः हासिल की गई वस्तुओं का मूल्य जोड़ लिया जाता है। मूल्यांकन का आधार हमारे देश की बन्दरगाह तक कुल लागत अर्थात् c.i.f. होता है। अर्थात् हम वस्तु की वास्तविक कीमत में बीमा तथा अन्तरराष्ट्रीय ढुलाई को जोड़कर कुल आयात कीमत को ही आयात का मूल्य मानते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अतः इस प्रकार से बाज़ार कीमत पर सकल घरेलु उत्पाद पर व्यय होगा : निजी अंतिम उपभोग व्यय **जमा** सरकारी अंतिम उपभोग व्यय **जमा** सकल पूँजी निर्माण **जमा** स्टॉक में वृद्धि शुद्ध निर्यात (अर्थात् वस्तु और सेवाओं के निर्यात मूल्य तथा उनके आयातों के मूल्य का अन्तर) बाज़ार कीमतों पर शुद्ध घरेलू उत्पाद को हम उपर्युक्त सकल घरेलू उत्पाद में से मूल्यह्रास घटाकर ज्ञात करते हैं। इसी तरह से साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद का मान जानने के लिए हम बाज़ार कीमत पर घरेलू उत्पाद में से शुद्ध अप्रत्यक्ष करों (अर्थात् अप्रत्यक्ष कर घटा आर्थिक सहायता) की राशि घटा देते हैं। अतः साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (राष्ट्रीय आय) होगी साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद **जमा** विदेशों से शुद्ध साधन आय।

कई बार यह प्रश्न उठाया जाता है कि सकल घरेलू उत्पाद जानने के लिए अन्य घटकों के साथ हम निर्यात को क्यों जोड़ते हैं तथा आयात को क्यों घटा देते हैं। निर्यात को जोड़ने का कारण अधिक आसानी से समझ आ सकता है : यह घरेलू क्षेत्र के उत्पादन का वह हिस्सा है जिसे अनिवासी या विदेशी खरीद कर लेते हैं। अतः घरेलू उत्पादन के संपूर्ण आकलन में इसे जोड़ा जाना अस्वाभाविक नहीं होगा। दूसरी ओर हमारे देश के निवासियों अर्थात् गृहस्थों; कंपनियों तथा सरकार द्वारा क्रमशः निजी उपभोग, सकल स्थिर पूँजी निर्माण और सरकारी उपभोग के लिए किए गए खर्च में से हम विदेशी वस्तुओं और सेवाओं पर हुआ व्यय घटा है। अतः यह कहना भ्रामक होगा कि घरेलू उत्पाद तथा शुद्ध

निर्यात का योगफल राष्ट्रीय उत्पाद होता है। राष्ट्रीय तथा घरेलू उत्पादन का संबंध तो केवल विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय द्वारा ही नियत होता है। अतः हम स्पष्ट शब्दों में कह सकते हैं कि राष्ट्रीय (सकल या शुद्ध, बाज़ार कीमतों पर या साधन लागत पर) उपयुक्त प्रकार के घरेलू उत्पाद तथा विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय का योग होता है। यही नहीं; उपर्युक्त घरेलू उत्पाद में वस्तुओं और सेवाओं का शुद्ध निर्यात भी शामिल रहता है।

व्यय विधि द्वारा राष्ट्रीय आय के आकलन में इन बातों का ध्यान रखना आवश्यक होता है :

1) सभी मध्यवर्ती वस्तुओं पर व्यय हमारे प्राक्कलन से बाहर रहता है– यद्यपि यह व्यय भी चालू खाते पर उत्पादित चीज़ों पर ही होता है। इस प्रकार हम दोहरी गणना के दोष से बच जाते हैं। कोई भी वह वस्तु जिसे उसका क्रेता आगे बेच दे या अपनी उत्पादन प्रक्रिया में प्रयोग कर ले, मध्यवर्ती वस्तु बन जाती है। अगर किसी वस्तु का निजी उपभोग, निवेश या फिर राजकीय उपभोग अथवा निर्यात के लिए विक्रय हो जाता है तो उसे हम अंतिम उत्पादन का नाम दे देते हैं। यह भेद केवल प्रयोग के स्वरूप पर आधारित है। व्यवहार में यह भेद करना कठिन हो जाता है कि कौन सी वस्तु मध्यवर्ती है और कौन-सी अंतिम है क्योंकि यह इस बात पर निर्भर होता है कि वह किसको बेचा गया किस उपयोग के लिए बेचा गया।

2) सरकार द्वारा हस्तांतरणों पर किया गया सारा व्यय हम राष्ट्रीय आय से बाहर रखते हैं। इसके उदाहरण हैं बेरोजगारी भत्ता, वृद्धावस्था पेन्शन तथा अध्ययन के लिए छात्र वृत्ति आदि। इन वृत्तियों और भत्तों को प्राप्त करने वालों से इनकी ऐवज में किसी प्रकार की सेवा अपेक्षा नहीं की जाती।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3) सभी पुरानी वस्तुओं पर खर्च को प्राक्कलन से बाहर रखने के कारण यही हैं कि यह खर्च चालू अवधि के उत्पादन पर हुआ खर्च नहीं माना जा सकता। इसी तरह से किसी व्यक्ति से पुराने अंशपत्र या ऋणपत्र या उत्पादक इकाइयों से नए अंश पत्र, ऋण पत्र या सरकार से बाण्डों की खरीदारी भी किसी तरह के नए उत्पादन की खरीदारी नहीं बल्कि संपत्ति का हस्तांतरण मात्र है। अतः इसे भी राष्ट्रीय आय में जोड़ना ठीक नहीं माना जाता।

14.2.5 राष्ट्रीय आय के तीनों मापों का समंजन

प्रत्येक अर्थव्यवस्था में उत्पादन, आय तथा व्यय के प्रवाह चलते रहते हैं। और इन्हीं के अनुरूप हमने राष्ट्रीय आय के प्राक्कलन की तीन विधियों की विवेचना की है। दूसरे शब्दों में, हम राष्ट्रीय आय का उत्पादन वितरण (आय) तथा व्यय किसी भी दृष्टिकोण से देख सकते हैं। अतः हम चाहे जिस दृष्टि से इस पर विचार करें; राष्ट्रीय आय का मान एक समान रहना चाहिए। यह समानता का विचार सिद्धांत रूप से सही है तथा इसकी सत्यता के लिए केवल एक ही आवश्यक शर्त है कि हमें उपयुक्त आँकड़े पूर्णतः उपलब्ध हों। इसमें संदेह रहता है इसी कारण से प्राक्कलन में कुछ त्रुटियाँ आ जाती हैं। तीनों विधियों से पृथक्-पृथक् अनुमान लगाकर हम राष्ट्रीय आय के आकलन को और अधिक विश्वस्त बना सकते हैं। पर वास्तव में शायद ही कभी केवल एक विधि का प्रयोग कर (अर्थात् उत्पादन आय का व्यय का आकलन कर) राष्ट्रीय आय की गणना की जाती हो। हम अर्थव्यवस्था को अनेक औद्योगिक क्षेत्रकों में बाँट देते हैं तथा इन क्षेत्रकों से अलग-अलग विधियों द्वारा राष्ट्रीय आय में उनका योगदान प्राक्कलित करते हैं। इसका कारण यही है कि प्रत्येक क्षेत्र से उत्पादन, आय तथा व्यय के एक जैसे विश्वास करने योग्य आँकड़े संग्रह कर पाना संभव नहीं होता। वस्तु उत्पादक क्षेत्रकों में हम उत्पादन या मूल्य वृद्धि विधि अपनाते हैं तो सेवा क्षेत्र में आय विधि का प्रयोग करते हैं और निर्माण आदि क्षेत्रकों में व्यय और वस्तु प्रवाह विधियों द्वारा मिल-मिलाकर कुछ आकलन का प्रयास किया जाता है। अतः तीनों विधियों से राष्ट्रीय आय ज्ञात करने के विचार को व्यवहारिक समन्वयन या समंजन के

बाद हम तालिका 14.2 के अनुरूप प्रस्तुत कर सकते हैं।

तालिका 14.2 : राष्ट्रीय आय मापने की तीनों विधियों का समंजन

उत्पादन विधि	आय विधि	व्यय विधि
प्राथमिक क्षेत्र में साधन लागत पर मूल्य वृद्धि	कर्मचारियों का पारिश्रमिक	निजी अंतिम/उपभोग व्यय + सरकारी अंतिम उपभोग व्यय + सकल घरेलू स्थिर पूँजी निर्माण
+	+	+
द्वितीयक क्षेत्र में साधन लागत पर मूल्य वृद्धि	प्रचालन अधिशेष	भण्डार (स्टॉक) में परिवर्तन
+	+	+
तृतीयक क्षेत्र में साधन लागत पर मूल्य वृद्धि	स्वनियोजित की मिश्रित	आयवस्तुओं सेवाओं का शुद्ध निर्यात घटा शुद्ध अप्रत्यक्ष कर घटा पूँजी का मूल्यह्रास
+	+	+
शेष विश्व में शुद्ध साधन आय	शेष विश्व से शुद्ध साधन आय	शेष विश्व से शुद्ध साधन आय

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 1

1) इनमें भेद करें :

क) सकल तथा शुद्ध निवेश

....

....

....

....

ख) विदेशों से शुद्ध साधन आय तथा शुद्ध निर्यात

....

....

....

....

ग) सकल एवं शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद

....

....

....

....

घ) सकल एवं शुद्ध घरेलू उत्पाद

....

....

....

....

2) विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय के घटकों का निरूपण करें। इस मद से शुद्ध प्राप्ति ऋणात्मक भी हो सकती है? क्यों?

....

....

....

....

....

3) निम्नांकित विधियों का प्रयोग कर बाज़ार कीमतों पर सकल घरेलू उत्पादन के घटकों का ब्यौरा दें :

(क) उत्पादन विधि, (ख) आय विधि, (ग) व्यय विधि

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

14.3 भारत में राष्ट्रीय आय का आकलन

हमारे देश में राष्ट्रीय आय आकलन उत्पादन, आय तथा विधियों के मिले-जुले प्रयोग के माध्यम से किया जाता है। अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रकों में उपलब्ध आँकड़ों के आधार पर उनके लिए उपयुक्त विधि का चयन होता है। कृषि तथा विनिर्माण जैसे क्षेत्र को जहाँ भौतिक पदार्थों का उत्पादन होता है, उत्पाद विधि का प्रयोग करना सहज रहता है क्योंकि उत्पादन के आँकड़े आसानी से मिल जाते हैं। दूसरी ओर, सरकारी क्षेत्र से आय के आँकड़े सहज सुलभ होते हैं। अतः वहाँ आय विधि का प्रयोग होता है। पर निर्माण क्षेत्र में तो उसके प्रकल्पों पर होने वाले व्यय के आँकड़ों का ही सहारा लेकर राष्ट्रीय आय में उसके योगदान का अनुमान किया जाता है।

ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि

स्वतंत्रता से पूर्व राष्ट्रीय आय का अनुमान

भारत की आज़ादी से पूर्व राष्ट्रीय आय के अनुमान कुछ प्रमुख अर्थशास्त्रियों के व्यक्तिगत प्रयासों के परिणाम ही थे। सर्वप्रथम राष्ट्रीय आय का अनुमान दादाभाई नौरोजी ने लगाया था। उन्होंने सन् 1867-68 में भारत की राष्ट्रीय आय 340 करोड़ रुपये आँकी थी और प्रतिव्यक्ति आय का अनुमान मात्र 20 रुपये था। बाद में विलियम डिग्नी ने सन् 1897-98 में राष्ट्रीय आय 390 करोड़ रुपये आँकी पर इस बीच प्रतिव्यक्ति आय घटकर मात्र

17 रुपये रह गयी। फिंडले शिर्राज ने 1911 में कुल आय 1942 करोड़ तथा प्रति व्यक्ति आय 80 रुपये बताई। जाने माने विशेषज्ञ डॉ. बी.के.आर.वी. राव ने 1925-29 की अवधि में (औसत) राष्ट्रीय आय 2301 करोड़ आँकी तथा उनका अनुमान था कि इस अवधि में प्रति व्यक्ति आय 78 रुपये रही। आर.सी. देसाई ने इन्हें 1930-31 में क्रमशः 2809 करोड़ तथा 72 रुपये आँका। ये सभी अनुमान बहुत महत्त्वपूर्ण तो थे पर इनमें अनेक त्रुटियाँ भी थी। एक तो ये बहुत सीमित आँकड़ों पर आधारित थे, दूसरे इनकी विधियाँ तथा आकलन के आधार क्षेत्र भी तुलनीय नहीं थे। किन्तु इन त्रुटियों के बाद भी ये अनुमान स्वतंत्रता पूर्व भारत की गरीबी तथा आर्थिक पिछड़े की झलक तो दिखा ही देते हैं।

स्वतंत्रता पश्चात् राष्ट्रीय आय का प्राक्कथन

सन् 1947 में आज़ादी के बाद से ही सरकारी तौर पर राष्ट्रीय आय के प्राक्कलन का क्रम आरम्भ हुआ। 4 अगस्त 1949 को प्रो. पी.सी. महलनवीस की अध्यक्षता में राष्ट्रीय आय प्राक्कलन समिति (National Income Committee) का गठन हुआ। प्रो. वी.के.आर.वी. राव तथा प्रो. डी.आर. गाडगिल इसके सदस्य थे। समिति की पहली रिर्पोट 1951 में तथा अंतिम रिर्पोट 1954 में आई। पहली रिर्पोट में समिति ने राष्ट्रीय आय के आकलन की अवधारणा पृष्ठभूमि के निरूपण के साथ-साथ 1948-1949 के लिए राष्ट्रीय आय के अनुमान भी प्रस्तुत किए। अंतिम रिपोर्ट में उन्होंने 1948-49 व 1950-51 के चालू बाज़ार भावों व स्थिर (1948-49) भावों पर राष्ट्रीय आय के ताजा अनुमान भी प्रस्तुत किए। समिति ने राष्ट्रीय आय के आकलन के लिए विधियों के सुझाव भी दिए।

सन् 1950 में इस समिति की सिफारिश के आधार पर ही राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण (National Sample Sarvey) की स्थापना की गई थी। इसे ही राष्ट्रीय आय के अनुमान के लिए नियमित आधार पर आँकड़े संग्रह करने का कार्य सौंपा गया था।

DIKSHANT IAS

केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन (C.S.O.)

Call us @7428092240

वर्ष 1954 में केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन की स्थापना पर इसे राष्ट्रीय आय का संगठन सौंप दिया गया। इसने 1956 में अपना पहला श्वेत-पत्र जारी किया तथा उसके बाद से हर वर्ष यह राष्ट्रीय लेखा अनुमानों के नाम से राष्ट्रीय आय के वार्षिक अधिकृत आँकड़े प्रस्तुत करता आ रहा है। यह संगठन भारत सरकार के योजना मंत्रालय में सांख्यिकी विभाग के अंतर्गत कार्य करता है। राष्ट्रीय आय के अनुमान चालू व स्थिर भावों पर अन्यान्य समष्टिगत् आँकड़ों के साथ तैयार किए जाते हैं। राष्ट्रीय आय की विस्तृत विधि बताने के लिए यह संगठन समय-समय पर राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी स्रोत एवं विधियाँ (National Income Statistics Sources and Methods) भी प्रकाशित करता रहा है। इसका अंतिम संस्करण फरवरी 1988 में छपा और इसके बाद अभी तक कोई संस्करण नहीं छपा।

अपनी स्थापना के बाद से केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन ने अभी तक वर्ष 1948-49, 1960-61, 1970-71 तथा 1980-81 की स्थिर कीमतों पर राष्ट्रीय आय के अनुमान प्रस्तुत किए हैं। हाल ही में आधार वर्ष 1993-94 हो गया है। इन्हीं के अनुरूप पर राष्ट्रीय आय के अनुमान प्रस्तुत किए हैं। इन्हीं के अनुरूप चार राष्ट्रीय आय अनुमान शृंखलाएँ तैयार हुई हैं। ये हैं : (क) परंपरित शृंखला, (ख) संशोधित शृंखला, (ग) नई शृंखला तथा (घ) परंपरागत लेखा अनुमानों की नई शृंखला।

14.3.1 भारतीय अर्थव्यवस्था के उपक्षेत्रक

केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन में भारतीय अर्थव्यवस्था को 13 उपक्षेत्रकों में विभाजित किया है। इनके अलावा एक चौदहवाँ क्षेत्रक भी है– बाह्य लेन-देन। ये क्षेत्रक इस प्रकार हैं :

1) कृषि, वानिकी तथा मत्स्यन

(क) कृषि, (ख) वानिकी एवं लट्ठा कटाई, (ग) मत्स्यन

2) खनन् एवं उत्खनन्

3) विनिर्माण

(क) पंजीकृत, (ख) अपंजीकृत

4) विद्युत, गैस एवं जल आपूर्ति

5) निर्माण

6) व्यापार, होटल एवं जलपानगश्ह

(क) व्यापार, (ख) होटल तथा जलपानगश्ह

7) परिवहन भण्डारण एवं संचार

(क) रेलवे, (ख) अन्य परिवहन, (ग) भण्डारण, (घ) संचार

8) वित्तीयन, बीमा, स्थावर संपदा एवं व्यावसायिक सेवाएँ

(क) बैंकिंग तथा बीमा, (ख) स्थावर सम्पदा, आवासों का स्वामित्व एवं व्यवसायिक सेवाएँ

9) सामुदायिक, सामाजिक एवं वैयक्तिक सेवाएँ

(क) सार्वनिक प्रशासन एवं प्रतिरक्षा, (ख) अन्य सेवाएँ।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

राष्ट्रीय आय के आकलन के लिए प्रयुक्त विधियाँ

राष्ट्रीय आय के आकलन की तीनों प्रमुख विधियों—उत्पादन आय तथा व्यय विधियों—पर हम पहले ही 14.2 में पर्याप्त विस्तार से विचार कर चुके हैं। सैद्धांतिक दशष्टि से यदि पर्याप्त आँकड़े उपलब्ध हों तो तीनों विधियों से स्तवंत्र रूप पर ही पहुँचेंगे। पर व्यावहारिक दशष्टि से अर्थव्यवस्था के सभी अवयवों पर एक ही विधि का प्रयोग कर राष्ट्रीय आय में इसके योगदान को मापना संभव नहीं हो पाता। सौभाग्यवश, इन विधियों को मिले-जुले प्रयोग द्वारा अलग-अलग क्षेत्रों के योगदान आकलन से भी काम चल जाता है। कहाँ किस विधि का प्रयोग होता है यह बात पर्याप्त एवं विश्वास योग्य आँकड़ों की उपलब्धि पर निर्भर है। भारत के घरेलू उत्पाद के अनुमान के लिए केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन उत्पादन, आय, व्यय तथा वस्तु प्रवाह विधियों के मिले-जुले प्रयोग का सहारा लेता है। आँकड़ों की उपलब्धि में सुधार के साथ-साथ उत्पादन विधि का प्रयोग कर रहे क्षेत्रकों में वृद्ध होती रही है।

आजकल इन क्षेत्रकों में उत्पादन विधि का अनुसरण होता है :

(1) कृषि, (2) वानिकी एवं लट्ठा बनाना, (3) मत्स्यन, (4) खनन् एवं उत्खनन् तथा, (5) पंजीकृत विनिर्माण

आय विधि का अनुसरण इन क्षेत्रकों में होता है :

(1) अपंजीकृत विनिर्माण, (2) विद्युत, गैस, जल आपूर्ति, 3) परिवहन भण्डारण एवं संचार, (4) व्यापार होटल एवं जलपानगृह, (5) बैंकिंग व बीमा, (6) स्थावन सम्पदा, आवासों का स्वामित्व एवं व्यवसायिक सेवा, (7) लोक प्रशासन एवं रक्षा और (8) अन्य सेवाएँ।

निर्माण क्षेत्र में व्यय तथा वस्तु प्रवाह विधियों को मिलाकर उसका योगदान आँका जाता है। ग्रामीण क्षेत्र में व्यय तथा बाहरी तथा शहरी क्षेत्र के निर्माण कार्यों में वस्तु प्रवाह विधि प्रयोग होती है।

केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन प्रत्येक क्षेत्र के लिए उपयुक्त आँकड़े एकत्र कर बाज़ार भावों पर राष्ट्रीय आय से उनके योगदान का अनुमान लगाती है। मूल्यह्रास तथा जहाँ आवश्यक हो शुद्ध अप्रत्यक्ष करों की राशियाँ ही हम सभी क्षेत्रकों द्वारा साधन लागत पर शुद्ध घरेलू मूल्य वृद्धि मानते हैं। इसमें विदेशों से शुद्ध साधन आय जोड़कर साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद या राष्ट्रीय आय का अनुमान प्राप्त होता है।

14.3.2 कृषि क्षेत्र में प्रयुक्त विधि

कृषि एवं संबंधित कार्य

सरकारी सिंचाई परियोजनाओं को छोड़कर कृषि एवं उससे जुड़ी पशुपालन आदि जैसे सभी कार्यों का योगदान उत्पादन विधि द्वारा मापा जाता क्योंकि इन सभी में कुल उत्पादन का मूल्य, सहायक उत्पादनों व कच्चे माल आदि के मूल्यांकन एवं पूँजी के ह्रास का आकलन आदि के माध्यम से ही मूल्यवृद्धि का अनुमान संभव हो पाता है। सिंचाई में आय प्रवाह विधि का प्रयोग कर इस क्षेत्र का योगदान मापा जाता है। कृषि फसलों तथा पशुपालन के कुल उत्पादनों का मूल्यांकन अलग-अलग किया जाता है। पर मूल्य वृद्धि का अनुमान पूरे क्षेत्र के लिए संयुक्त रूप से ही लगाया जाता है।

प्रत्येक प्रमुख फसल के उत्पादन के अनुमान के लिए यादृच्छिक प्रतिचयन (Random Sampling) विधि का सहारा लेते हैं। जहाँ-जहाँ सह फसल उगाई जाती है उन जिलों में कुछ खेत चुने जाते हैं। एक हैक्टर क्षेत्रफल की फसल की कटाई कराकर उत्पादन को उस जिले के उस मौसम के औसत थोक कीमत से गुणा किया जाता है। इस तरह से एक हैक्टर फसल का बाज़ार मूल्य पता लग जाता है। इसको जिले भर में जितने हैक्टर क्षेत्रफल में यह फसल लगी हो उसे गुणा कर जिले के उत्पादन का मूल्य प्राप्त होता है। किसी राज्य के सभी जिलों के उत्पादन का जोड़ उस राज्य के उत्पादन का योग बन जाता है। भारत में राज्य सरकार इस प्रकार के वार्षिक फसल-कटाई के यादृच्छिक प्रतिचयन 36 मुख्य फसलों के लिए करती है। अन्य छोटी-छोटी फसलों के उत्पादन का मूल्यांकन अन्य स्रोतों से प्राप्त जानकारी से किया जाता है। पशुधन के उत्पादन जैसे दूध, एवं दूध उत्पाद, मांस तथा अंडों, मुर्गों का मूल्यांकन पूर्णगणना (Census) विधि द्वारा होता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

कृषि तथा संबंधित कार्यों में मूल्य वृद्धि के अनुमान के लिए उत्पादन मूल्य में से आदानों की लागत के रूप में घटाएँ हैं : (क) बीजों का मूल्य, (ख) खाद, उर्वरक, (ग) यंत्रों तथा स्थायी संसाधनों की मुरम्मत तथा संचालन पर खर्च, (घ) पशुचारा, (च) सरकार को देय सिंचाई शुल्क, (छ) बाज़ार के खर्च, (ज) बिजली का खर्च, (झ) कीटनाशक आदि तथा (त) डीजल तेल पर हुआ खर्च।

कृषि क्षेत्र में इन परिसंपत्तियों के लिए पूँजीगत मूल्यह्रास का आकलन होता है।

क) कृषि यंत्र उपकरण एवं परिवहन संसाधन

ख) खेत में बने घर तथा पशुओं के बाड़े

ग) बाग व बगीचे

घ) बँधे तथा उच्च भूमि से जुड़े सुधार कार्य

ङ) कुएँ तथा सिंचाई के माध्यम

च) मांस आदि के विक्रय स्थल

इस क्षेत्र उत्पादन के कुल मूल्य से मूल्यहास घटाकर हम शुद्ध मूल्य ज्ञात करते हैं। सन् 1990-91 में भारत में कृषि क्षेत्र में मूल्य वृद्धि इस प्रकार रही :

	चालू बाज़ार भावों पर, करोड़ रुपये
कृषि उत्पादन का मूल्य	**228544**
पशुधन उत्पादन का मूल्य	78683
कृषि एवं पशुधन उत्पादन मूल्य	307227
घटाइए आगतें	-59011
कुल मूल्य वृद्धि	248216
सिंचाई व्यवस्था का संचालन	5932
कृषि उत्पादन की कुल मूल्य वृद्धि	254148
घटाइए स्थिर पूँजी का उपभोग	-13073
शुद्ध मूल्य वृद्धि	**241075**

स्रोत : NAS, 1999

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

14.3.3 पंजीकृत विनिर्माण क्षेत्र में प्रयुक्त विधि

यह भारतीय फैक्ट्रीज अधिनियम 1948 के अंतर्गत पंजीकृत उत्पादक इकाइयों का क्षेत्रक है। इससे सभी बड़े पैमाने के उद्योग हैं। हर वर्ष राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन इस क्षेत्रक से व्यापक गणना एवं प्रतिदर्श के रूप में जानकारी संग्रह करता है। जिसे वार्षिक औद्योगिक सर्वेक्षण (Annual Survey of Industries) कहा जाता है। इस जानकारी के आधार पर उत्पादन का मूल्य आँका जाता है। इससे मध्यवर्ती उपभोग-अर्थात् कच्चा माल, ईंधन, बिजली सेवाएँ, आदि के व्यय और पूँजी ह्रास घटाकर शुद्ध मूल्य वृद्धि ज्ञात की जाती है। उदाहरण के लिए हम 1986-87 में भारतीय पंजीकृत विनिर्माण क्षेत्र में मूल्य वृद्धि का आकलन इस प्रकार दिखा सकते हैं।

	(करोड़ रुपये)
कुल उत्पादन का मूल्य	**545981**
घटाइए मध्यवर्ती लागतें	417244
कुल मूल्य वृद्धि, बैंक देयता सहित	128737
बैंक देयता अनुमान	–11901
कुल मूल्य वृद्धि	116836
घटाइए स्थिर पूँजी ह्रास	–24184
शुद्ध मूल्य वृद्धि	**92652**

स्रोत : NAS, 1999

14.3.4 निर्माण क्षेत्र में प्रयुक्त विधि

इस क्षेत्रक में व्यय तथा वस्तु प्रवाह विधियों का प्रयोग होता है। सारे निर्माण कार्यों को हम दो वर्गों (क) कच्चे निर्माण और (ख) पक्के निर्माणों में बाँट देते हैं।

कच्चा निर्माण कार्य सामान्यतः आस-पास से बिना खर्च किए सामग्री संग्रह कर श्रम तकनीक द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में हुआ निर्माण है— जैसे झोंपड़ी बनाना या कच्चा बाड़ा तैयार करना आदि। इन कार्यों में जो कुछ थोड़ा बहुत नकद भुगतान होता है वही इस क्षेत्र में हुए खर्च का अनुमान होता है। सर्वेक्षण संगठन इस बारे में जानकारी एकत्र करता है।

पक्के निर्माण कार्यों में वस्तु प्रवाह विधि का प्रयोग होता है। शहरी क्षेत्र में महँगी निर्माण सामग्री, उपकरण तथा आधुनिक तकनीकों से होने वाले इन निर्माण कार्यों में ईंटें, सीमेण्ट इस्पात, बिजली व सैनीटरी आदि के उपकरणों व साज सामान का व्यापक प्रयोग होता है। इन सब के आँकड़े वार्षिक औद्योगिक सर्वेक्षण, सरकारी संस्थानों तथा निर्माण सामग्री विक्रेताओं से प्राप्त किए जाते हैं। मध्यवर्ती उपभोग, पूँजी ह्रास आदि घटाकर प्रत्येक उपक्षेत्रक की शुद्ध मूल्य वृद्धि का आकलन किया जाता है। भारत में 1986-1987 में निर्माण क्षेत्र की मूल्य वृद्धि का आकलन कुछ इस प्रकार रहा :

		करोड़ रुपये
उत्पादन का मूल्य		**123544**
(क) नवनिर्माण	100399	
(ख) मरम्मत रख-रखाव	23145	
घटाइए मध्यवर्ती उपभोग		76162
सकल मूल्य वृद्धि		47382
घटाइए स्थिर पूँजी ह्रास		–2308
शुद्ध मूल्य वृद्धि		**45074**

स्रोत : NAS, 1999

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

14.3.5 भारत में राष्ट्रीय आय के आकलन में कठिनाइयाँ

भारत में राष्ट्रीय आय के मापने में आने वाली कठिनाइयों को दो श्रेणियों में बाँटा जाता है .

(क) अवधारणागत कठिनाइयाँ तथा सांख्यिकीय कठिनाइयाँ।

अवधारणा कठिनाइयाँ

विकसित तथा अविकसित, सभी देशों में राष्ट्रीय आय लेखांकन में कुछ सैद्धांतिक समस्याओं का निराकरण जरूरी होता है। अर्थशास्त्री इस बात पर सहमत नहीं हो पाते कि आखिर राष्ट्रीय आय है क्या। इन कठिनाइयों के उदाहरण इस प्रकार हैं :

- राष्ट्रीय आय की सर्वसम्मत परिभाषा का अभाव
- अन्तिम एवं मध्यवर्ती वस्तुओं में भेद
- हस्तांतरण भुगतान
- निःशुल्क सेवाएँ आदि

- टिकाऊ उपभोग वस्तुएँ आदि।

सांख्यिकीय कठिनाइयाँ

अपर्याप्त एवं अविश्वसनीय आँकड़े

अक्सर उपलब्ध आँकड़े अधूरे तथा अपर्याप्त रहते हैं। भारत में विनिर्माण क्षेत्र से तो फिर जैसे-तैसे आँकड़े मिल जाते हैं पर कृषि, कुटीर उद्योग तथा देशीय बैंकरों (महाजनों) आदि से उत्पादन की जानकारी के विषय में जो कुछ न कहा जाए वही बेहतर है। उत्पादन का असंगठित क्षेत्र को बहुत ही बिखरा हुआ भी है।

अमोद्रिक क्षेत्र की समस्या

कृषि तथा कुटीर उद्योग क्षेत्र में उत्पादन का काफी भाग वस्तु विनिमय का रूप लेता है। ऐसा उत्पादन जो बाज़ार तक पहुँचाती ही नहीं, उसकी कीमतों और परिभाषा की कोई सही जानकारी एकत्र नहीं हो पाती।

अपने उपभोग के लिए उत्पादन

भारत में आधे से ज्यादा कृषक तो मात्र अपने परिवार के लिए अनाज उगा पाते हैं। यह उत्पादन भी बाज़ार का मुँह नहीं देखता। यहाँ भी उत्पादन का मूल्य अटकल बाजी से ज्यादा कुछ नहीं होता।

अशिक्षा तथा अज्ञान

भारत की आधी से अधिक आबादी या आर्थिक इकाइयाँ अशिक्षा व अज्ञान में फँसी है। वे न अपनी आय की जानकारी रख पाते हैं और न ही खर्च का हिसाब। उन्हें स्वयं इस बारे में कुछ नहीं पता होता तो वह आँकड़े किसे और कैसे दे पाएँगे? विकसित देशों में प्रयुक्त लागत लेखांकन का तो उन्होंने नाम भी नहीं सुना होता।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

स्पष्ट व्यावसायिक वर्गीकरण का अभाव

भारत में अधिकतर लोगों की आय मिली-जुली ही होती है। किसान फालतू समय में किसी न किसी दस्तकारों में या फिर छोटे उद्योग-धंधे में भी काम करते हैं। इसमें आय के मुख्य स्रोत का निर्णय कर पाना संभव नहीं होता और आय का अच्छा खासा हिस्सा राष्ट्रीय आय के लेखे में शामिल होने से छूट जाता है।

नई वस्तुओं की स्थिर कीमतों का मूल्यांकन

जब कोई वस्तु पहली बार उत्पादित होकर बाज़ार में आती है तो हम उसकी वर्तमान कीमत ही जान पाते हैं पर उनकी स्थिर कीमतों की बात ही अनुपयुक्त होती है। भारत में 1970-71 की कीमतों पर रंगीन टेलीविजन का मूल्यांकन इसीलिए संभव नहीं हो पाता क्योंकि उनका उस वर्ष तक उत्पादन ही नहीं शुरू हुआ था।

स्थिर पूँजी का ह्रास

सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) में से स्थिर पूँजी की छीजन का अनुमान घटाकर हमें शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद के आँकड़े प्राप्त होते हैं। परन्तु वर्ष भर के स्थिर पूँजी-अर्थात् मशीनों, भवनों आदि की छीजन का अनुमान लगा पाना सहज नहीं होता। इसी कारण इसमें कुछ न कुछ अस्पष्टता घर कर जाती है।

बोध प्रश्न 2

1) भारत का राष्ट्रीय आय में योगदान आकलित करने में उत्पादन विधि का प्रयोग किन-किन क्षेत्रकों में किया जाता है?

....

....

....

....

....

2) भारत में कृषि क्षेत्र में शुद्ध मूल्य वृद्धि का प्रयोग किस प्रकार होता है।

....

....

....

....

....

3) भारत में राष्ट्रीय आय के आकलन में किस प्रकार की सैद्धांतिक कठिनाइयाँ आती हैं?

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

14.4 सारांश

इस इकाई में हमने राष्ट्रीय आय के आकलन की तीन विधियों से आपको परिचित कराया है। ये विधियाँ हैं : उत्पादन अथवा मूल्य वृद्धि विधि, आय विधि और व्यय विधि। इन विधियों की व्याख्या करते समय जो मुद्दे उठाए गए हैं उन पर इन विधियों का प्रयोग करते समय ध्यान देना आवश्यक रहता है।

इस बात पर भी चर्चा की गई है कि तीनों विधियों का समंजन किस प्रकार किया जाता है। भारत में राष्ट्रीय आय के आकलन का वर्णन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में किया जाता है। केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन द्वारा बनाए गए उप-क्षेत्रकों की व्याख्या भी की गई है। कृषि, पंजीकृत विनिर्माण तथा निर्माण क्षेत्रकों के उदाहरणों द्वारा आय में योगदान मापन की विभिन्न विधियों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। अन्त में, भारत में राष्ट्रीय आय के आकलन में आने वाली सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक कठिनाइयों पर चर्चा की गई है।

14.5 शब्दावली

कर्मचारियों के प्रतिफल : उत्पादन की प्रक्रिया में श्रम सेवाओं द्वारा सृजित साधन आय। इसे कार्य से प्राप्त आय भी कहते हैं। इसमें मज़दूरी वेतन, सामाजिक सुरक्षा के निमित्त रोज़गार दाता का योगदान, कमीशन तथा वस्तु भुगतान शामिल रहते हैं।

स्टॉक/भण्डार में परिवर्तन : वर्ष में अन्त एवं आरंभ में तैयार, अर्द्ध तैयार एवं कच्चे माल के भण्डार का अंतर।

केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन (C.S.O.) : यह केन्द्रीय संगठन भारत में प्रति वार्षिक आधार पर 'राष्ट्रीय लेखा' तैयार करता है और संकलित राष्ट्रीय आय आदि समष्टि सूचक आँकड़ों का आकलन-प्रकाशन करता है।

दोहरी गणना : यदि किसी वस्तु का मूल्य एक बार अपने आप में तथा दूसरी बार उन वस्तुओं के रूप में जुड़ जाए जिनके उत्पादन में वस्तु का प्रयोग किया जाना है तो यह दोहरी गणना होगी। देश के समग्र घरेलू उत्पादन के आकलन में इस दोहरी गणना से बचना चाहिए।

मूल्यह्रास का प्रावधान : राष्ट्रीय पूँजी भण्डार के सामान्य क्षरण/छीजन की भरपाई के लिए रखी गई जमा निधि।

आन्तरिक क्षेत्रक : देश की अर्थव्यवस्था भौगोलिक अथवा राजनैतिक स्वरूप। अन्तरराष्ट्रीय जलमार्गों में हमारे जहाज एवं अन्य देशों में हमारे दूतावास भी आन्तरिक क्षेत्रक का ही अंग होते हैं।

प्रत्यक्ष कर : व्यक्तियों एवं संस्थाओं पर लगने वाले वह कर जिनका भार उन्हें स्वयं ही वहन करना पड़ता है— अर्थात् जिसका भार वह किसी अन्य पर स्थानान्तरित नहीं कर पाते।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

मृत्यु कर : किसी की मृत्यु पर उसकी संपत्ति का उत्तराधिकार में पाने वाले द्वारा देय कर।

टिकाऊ वस्तुएँ : ऐसी वस्तुएँ जिनका बारंबार प्रयोग संभव होता है—जैसे फर्नीचर, मशीन आदि।

आर्थिक संवृद्धि : किसी अर्थव्यवस्था की वास्तविक प्रतिव्यक्ति आय (राष्ट्रीय आय/जनसंख्या) की वृद्धि की दर।

आर्थिक विकास : जब आर्थिक संवृद्धि का हम उन कारकों के साथ देखते हैं जिसके कारण संवृद्धि पर्याप्त कालावधि तक चलती रह पाती है। तो इसे आर्थिक विकास का नाम दिया जाता है।

आर्थिक कल्याण : अर्थव्यवस्था के समग्र कल्याण का वह अंश जो वस्तुओं और सेवाओं के उपयोग से जुड़ा है।

व्यय विधि : अर्थव्यवस्था की उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं पर सभी आर्थिक इकाइयों द्वारा किए गए व्यय का मापन।

अंतिम उत्पाद : अर्थव्यवस्था के उत्पादन का वह भाग जो निजी या सार्वजनिक अंतिम उपयोग अथवा निवेश के काम आ सके।

साधन आय : एक अर्थव्यवस्था में वर्ष भर में वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में भाग लेने के लिए साधन सेवाओं (श्रम, भूमि, पूँजी, उद्यम) की आपूर्ति करने वालों को दिया गया प्रतिफल।

बाज़ार कीमतों पर सकल मूल्य वृद्धि : किसी उत्पादक इकाई द्वारा उत्पादित माल के बाज़ार मूल्य तथा उस द्वारा प्रयुक्त कच्चे माल व अन्य उत्पादकों से प्राप्त सेवाओं पर और लागत का अन्तर।

स्वयं रोज़गारियों की मिली-जुली आय : यह स्वनियोजितों की साधन आय (कर्मचारियों का पारिश्रमिक + प्रचालन अधिशेष) है।

साधन लागत पर सकल मूल्य वृद्धि : बाज़ार भावों पर सकल मूल्य वृद्धि घटा उत्पादक इकाई द्वारा चुकाए गए अप्रत्यक्ष कर।

आय विधि : एक वर्ष में सृजित साधन आयों के योग तथा विदेशों से शुद्ध साधन आय को जोड़कर राष्ट्रीय आय के आकलन की विधि।

मध्यवर्ती आगतें : एक फर्म द्वारा अन्य फर्मों से खरीदी गई वे वस्तुएँ एवं सेवाएँ जो उसी वर्ष के उत्पादन में पूरी तरह प्रयोग में आ जाती हैं।

औद्योगिक क्षेत्र : राष्ट्रीय आय की गणना के लिए आर्थिक गतिविधियों के समूह या वर्ग।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अनुमानित किराया : ऐसे भवन के संभावित किराए का अनुमान जिसमें भवन के स्वामी स्वयं रहता है।

मध्यवर्ती उपभोग : किसी उत्पादक इकाई द्वारा मध्यवर्ती आगतों का प्रयोग।

मध्यवर्ती उपभोग : किसी उत्पादक इकाई द्वारा मध्यवर्ती आगतों का प्रयोग।

विदेशों से शुद्ध साधन आय : किसी देश के निवासियों द्वारा अन्य देशों से प्राप्त साधन आय (कर्मचारियों का पारिश्रमिक, संपत्ति तथा उद्यम से आय) तथा अनिवासियों द्वारा उस देश से इन्हीं मदों में प्राप्त राशियों का अन्तर।

साधन लागत पर शुद्ध मूल्य वृद्धि : साधन लागत पर सकल मूल्य वृद्धि *घटा* पूँजी ह्रास।

बाज़ार भावों पर शुद्ध मूल्य वृद्धि : साधन लागत पर शुद्ध मूल्य वृद्धि *जमा* शुद्ध अप्रत्यक्ष कर।

ग़ैर-टिकाऊ वस्तुएँ : ऐसी चीजे जिनका एक बार ही प्रयोग हो पाता है।

शुद्ध निर्यात : किसी देश के निर्यात मूल्य तथा आयात मूल्य का अन्तर।

उत्पादन : वर्ष भर में वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन का मूल्य।

स्वामी के अपने निवासाधीन मकान : ऐसे घर जिनमें उनके मालिक रहते हैं।

अपने प्रयोग के लिए उत्पादन	:	परिवारों या संस्थाओं द्वारा अपने प्रयोग के लिए उत्पादन।
प्रचालन अधिशेष	:	पूँजी के स्वामित्व और प्रबंधन से पैदा हुई। किराया, ब्याज व लाभ की मिली-जुली साधन आय।
प्राथमिक क्षेत्रक	:	अर्थव्यवस्था का वह क्षेत्र जिसमें कृषि वान्यिकी, लट्ठा कटाई, मत्स्य पालन, खनन् एवं उत्खनन् शामिल है।
द्वितीयक क्षेत्रक	:	निर्माण एवं विनिर्माण क्षेत्र (पंजीकृत एवं अपंजीकृत) तथा विद्युत, गैस और जल आपूर्ति।
तश्तीयक क्षेत्रक	:	सेवा क्षेत्र, इसमें व्यापार, होटल एवं रेस्तरां, परिवहन, भण्डारण, संचार, वित्त, बीमा, आवासों का स्वामित्व, व्यावसायिक, सामुदायिक, सामाजिक तथा वैयक्तिक सेवाएँ शामिल हैं।
हस्तांतरण आय	:	यह आय किसी साधन सेवा के प्रतिफलस्वरूप नहीं मिलती बल्कि एक आर्थिक इकाई किसी अन्य को ग़ैर आर्थिक कारणों दान-उपहार स्वरूप प्रदान करती है। इसे राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं की जाती।

14.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

C.S.O. : *National Account Statistics* (Latest), Ministry of Planning, Govt. of India, New Delhi

Hicks J.R. M. Mukherjee and S.K. Gosh, 1984 : *The Framework of the Indian Economy-An Introduction to Economics*, OUP, Delhi (Ch. 11, 12, 13)

C.S.O.: *National Account Statistics—Sources and Methods*, Ministry of Planning, Government of India, New Delhi April 1989.

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

14.7 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

बोध प्रश्न 1

1) (क) सकल निवेश — पूँजी का मूल्य ह्रास = शुद्ध निवेश

   ख) विदेशों से शुद्ध साधन आय – विदेशों से शुद्ध कर्मचारियों का पारिश्रमिक = विदेशों से संपत्ति एवं उद्यम से शुद्ध प्राप्ति।

   शुद्ध निर्यात = निर्यात मूल्य — आयात मूल्य

   ग) सकल राष्ट्रीय उत्पाद — मूल्यह्रास = शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद

   घ) सकल घरेलू उत्पाद — मूल्यह्रास = शुद्ध घरेलू उत्पाद

2) विदेशों से शुद्ध साधन आय के घटक हैं :

   क) विदेशों से कर्मचारियों को शुद्ध पारिश्रमिक

   ख) विदेशों से संपत्ति तथा उद्यम से शुद्ध प्राप्तियाँ

ग) स्थानीय कंपनियों द्वारा विदेशों में बचाकर रखे गए अवितरित लाभ।

यह शुद्ध साधन आय ऋणात्मक भी हो सकती है मगर विदेशियों को रखी मदों पर हुए भुगतान विदेशों से प्राप्ति से कम हो।

3) (क) बाज़ार भाव पर सकल घरेलू उत्पाद = बाज़ार भाव पर सकल मूल्य वृद्धि (अर्थव्यवस्था की सभी इकाइयाँ द्वारा)

ख) बाज़ार भाव पर सकल घरेलू उत्पाद = कर्मचारियों का पारिश्रमिक + प्रचालन अधिशेष + स्व-नियोजितों की मिश्रित आय + शुद्ध अप्रत्यक्ष कर + विदेशों से शुद्ध साधन आय + मूल्यह्रास

ग) बाज़ार भाव पर सकल घरेलू उत्पाद = परिवारों को अन्तिम उपभोग व्यय + सरकार का अन्तिम उपभोग व्यय + सकल घरेलू पूँजी निर्माण + निर्यात आयात।

बोध प्रश्न 2

1) कृषि एवं संबंधित कार्य, मत्स्यन पालन, खनन्, उत्खनन्, एवं लट्ठा बनाना।

2) (क) : फसलों का चयन

ख) : प्रत्येक फसल का क्षेत्रफल मापना

ग) : (ख) को प्रतिहैक्टर उत्पाद से गुणा करना

घ) : (ग) को औसत कीमत से गुणा करना

DIKSHANT IAS

ङ) : (घ) में से कृषि एवं संबंधित कार्यों की मध्यवर्तीलागतें घटाना

Call us @7428092240

च) : (ङ) में सिंचाई व्यवस्था संचलन का जोड़ना।

छ) : (च) में से स्थिर पूँजी ह्रास घटाना।

ज) : (छ) में प्राप्त राशि ही कृषि क्षेत्रक में हुई मूल्य वृद्धि है।

3) अवधारणागत कठिनाइयाँ इस प्रकार हैं :

क) अपर्याप्त एवं अविश्वसनीय आँकड़े,

ख) अंतिम एवं मध्यवर्ती वस्तुओं में भेद

ग) हस्तांतरण भुगतान

घ) निःशुल्क सेवाएँ आदि तथा

ङ) टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुएँ आदि

सांख्यिकीय कठिनाइयाँ इस प्रकार हैं :

क) अपर्याप्त एवं अविश्वसनीय आँकड़े,

ख) ग़ैर मौद्रिक क्षेत्र

ग) अपने उपभोग के लिए ही उत्पादन

घ) अशिक्षा एवं अज्ञान

ङ) अस्पष्ट व्यवसायिक वर्गीकरण

च) नए पदार्थों स्थिर कीमतों पर मूल्यांकन और

छ) स्थिर पूँजी के मूल्य ह्रास का अनुमाना आदि।

इकाई 15 वस्तु बाज़ार में संतुलन

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 वस्तु बाज़ार
15.3 परिभाषाएँ/पूर्वधारणाएँ
15.4 आय के संतुलन स्तर का निर्धारण
 15.4.1 आय प्रवाह में भरण एवं रिसाव की अवधारणाएँ
 15.4.2 45° रेखा का महत्त्व
 15.4.3 उपभोग फलन
 15.4.4 निवेश फलन
 15.4.5 उपभोग फलन, निवेश फलन एवं 45° रेखा
 15.4.6 बचत–निवेश समानता एवं वस्तु बाजार में संतुलन
 15.4.7 वस्तु बाजार संतुलन में सरकार का समावेश
 15.4.8 वस्तु बाजार सतुलन में शेष विश्व का समावेश
15.5 आय के संतुलन स्तर मे परिवर्तन
 15.5.1 परिवर्तन किन कारणो से?
 15.5.2 निवेश गुणक
 15.5.3 सरकारी व्यय गुणक
 15.5.4 कर गुणक
 15.5.5 संतुलित बजट गुणक
 15.5.6 निर्यात गुणक
15.6 ब्याज दर, आय स्तर तथा वस्तु बाज़ार में संतुलन
 15.6.1 IS वक्र की व्यूत्पत्ति तथा चार भाग वाला रेखा चित्र
 15.6.2 IS वक्र द्वारा वस्तु बाजार की कमी एवं आधिक्य
15.7 सारांश
15.8 शब्दावली
15.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें
15.10 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा–संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

15.0 उद्देश्य

इस इकाई में चर्चा करेंगे :

क) वस्तु बाज़ार क्या है?

ख) राष्ट्रीय आय का स्तर अधिक या कम क्यों?

ग) राष्ट्रीय आय में वृद्धि अथवा कमी के कारण क्या होते हैं?

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इन प्रश्नों के उत्तर देने के लिए तैयार होंगे :

- वस्तु बाज़ार;
- वस्तु बाज़ार में संतुलन;
- उपभोग और बचत का आय के साथ अंतर्सम्बंध;
- राष्ट्रीय आय के स्तर में वृद्धि लाने में उपभोग एवं स्वतंत्र निवेश की भूमिका;

- ऐसा क्यों होता है कि वस्तु बाज़ार में संतुलित स्थिति में भी राष्ट्रीय आय पूर्ण रोज़गार का स्तर प्राप्त नहीं करती और सरकार के द्वारा प्रयत्नों की आवश्यकता होती है।

ये सभी समष्टिगत अर्थशास्त्र के विषय हैं। जिसे अर्थव्यवस्था की सामूहिक स्तर पर कार्यकलापों का अध्ययन करता है जिसका मापन सकल राष्ट्रीय उत्पाद एवं सामान्य कीमत स्तर द्वारा होता है। आप यह भी समझेंगे कि वस्तु बाज़ार अर्थव्यवस्था के संतुलन को इंगित नहीं करता जब तक मुद्रा बाज़ार का संतुलन नहीं होता। इस विषय का अध्ययन इकाई 16 में होगा। इस इकाई में प्रयुक्त अवधारणाओं की व्याख्या खंड 6 की इकाई 13 और 14 में की गई है।

15.1 प्रस्तावना

पिछले खंड में राष्ट्रीय आय एवं उसके मापन की अवधारणा की चर्चा की गई थी। यह प्रदर्शित किया गया कि राष्ट्रीय आय को तीन प्रकार से मापा जा सकता है; उत्पादन, आय तथा व्यय के द्वारा। इससे केवल राष्ट्रीय आय की अवधारणा को विभिन्न आयामों से समझा जा सका। दूसरे शब्दों में, हम एक वर्ष में से अर्जित राष्ट्रीय आय के मापन को समझने से संबंधित थे। अभी तक हमने 15.0 में दिए गए प्रश्नों पर चर्चा नहीं की। इन प्रश्नों के उत्तर के लिए आय के निर्धारण तथा वस्तु बाज़ार एवं उसके संतुलन के सिद्धांत की आवश्यकता है। प्रारंभ में इस सिद्धांत की स्थापना के लिए हम जे.एम. कीन्स के आय निर्धारण को उसके सरलतम रूप में लेंगे। वस्तु बाज़ार के साथ मुद्रा बाज़ार के संतुलन की चर्चा इकाई 16 में होगी जिससे हमें अर्थव्यवस्था के संतुलन को समझने में मदद मिलेगी।

15.2 वस्तु बाज़ार

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

राष्ट्रीय आय एवं उससे संबंधित अन्य चरों को वास्तविक चरों के रूप में जाना जाता है क्योंकि वे सभी वस्तु/सेवाओं के प्रवाह में सहयोगी हैं तथा यह मुद्रा उत्पादन को प्राथमिक उत्पादों की सेवाओं को उपलब्ध कराता है। यथा क्षेत्र, श्रमिक, पूँजी, उत्पादन संस्थान (फैक्ट्रियाँ)। ये सभी मुद्रा के प्रवाह से अलग किए जाने चाहिए क्योंकि जिस कारण से वस्तु बाज़ार को वास्तविक बाज़ार कहते हैं, वह मुद्रा बाज़ार से भिन्न है। एक अर्थव्यवस्था में संतुलन होने के लिए वस्तु बाज़ार और पूँजी बाज़ार में एक साथ संतुलन रहना ज़रूरी है।

मुद्दे, जैसे ब्याज दर को प्रभावित करते हैं। निस्संदेह रूप से यह संभव है कि ब्याज दर का स्तर एवं राष्ट्रीय आय जो कि वास्तविक बाज़ार को संतुलित रख सकती है, मुद्रा बाज़ार को संतुलित रखने के लिए समान आचरण न करे।

इस कारण व्यवस्थित रखने की प्रक्रिया द्वारा हमें एक विशेष स्तर की ब्याज दर एवं राष्ट्रीय आय निश्चित करनी होती है। ऐसे में मुद्रा बाज़ार और वास्तविक बाज़ार दोनों में संतुलिन रखते हैं। संतुलन को स्थिर तब माना जाता है जब वह अपने केंद्र से स्थानान्तरित होने पर स्वयं शक्ति पैदा करके वहाँ वापस आता है। अर्थव्यवस्था में संतुलन की प्रक्रिया इकाई 17 में वर्णित की जाएगी।

पुनः वस्तु बाज़ार पर आते हैं। वस्तुओं/सेवाओं का प्रवाह, साधन आयों के सृजन का प्रवाह, गृहस्थों अथवा उपभोक्ताओं का उपभोग, सरकार का उपभोग, सरकार द्वारा लगाए गए कर, सरकार द्वारा दी गई हस्तांतरण आय, अर्थव्यवस्था के निर्यात आय से प्रभावित होते हैं और कुछ ब्याज दर से। यह भी सत्य है कि कीमत स्तर तथा विदेशी विनिमय दर भी समान महत्त्व के है। इस इकाई में हम जे.एम. कीन्स के अनुसार अल्पकालीन संतुलन की चर्चा कर रहे हैं और यह मानकर चलते हैं कि कीमत स्तर एवं विदेशी विनिमय दर दी गई है जिसमें परिवर्तन नहीं होता। इसलिए हम वस्तु बाज़ार के चरों को राष्ट्रीय आय के संतुलन

की बात करें तो कीमत स्तर, विदेशी विनिमय दर और साथ ही ब्याज दर सभी परिवर्तनशील चर होंगे। लेकिन इस इकाई में हम अर्थव्यवस्था के दीर्घकालीन संतुलन की बात नहीं करेंगे।

15.3 परिभाषाएँ/पूर्वधारणाएँ

आगे बढ़ने से पूर्व आइए हम राष्ट्रीय आय के संतुलन स्तर के विश्लेषण के लिए आवश्यक पूर्वधारणाओं एवं परिभाषाओं पर एक दृष्टि डालेंगे। एक साथ समझने की अपेक्षा जटिल वास्तविकताओं को एक–एक करके समझाना आसान है। इसलिए हम आसान कदमों की एक कड़ी के रूप में आगे बढ़ते हैं। हम सर्वप्रथम दिए गए कीमत स्तर एवं ब्याज दर की साधारण पूर्वधारणाओं के अंतर्गत राष्ट्रीय आय की निर्धारक शक्तियों को लेते हैं। हम यह भी 'पूर्वधारणा' लेते हैं कि अर्थव्यवस्थाओं में केवल दो ही क्षेत्र हैं गृहस्थ एवं फर्में। इसको हम आय निर्धारण का सरल मॉडल कहेंगे। बाद में हम सरकार तथा उसके उपरांत शेष विश्व क्षेत्र को सम्मिलित करेंगे।

परिभाषाएँ

राष्ट्रीय आय को निर्धारण के सरल मॉडल को विकसित करते हुए हम राष्ट्रीय आय, संतुलन स्वायत्त एवं प्रेरित व्यय, आयका चक्रीय प्रवाह, चर, फलन समीकरण एवं रेखाचित्र जैसी अवधारणाओं का सामान्य रूप से उपयोग करेंगे। चरों, समीकरणों, राष्ट्रीय आय तथा चक्रीय प्रवाहों की चर्चा पहले ही पिछले खंड में की गई थी। इस इकाई में हम स्थिर कीमतों पर ही राष्ट्रीय आय के बारे में चर्चा करेंगे।

1) राष्ट्रीय आय का संतुलन

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

साम्य की यह अवधारणा आराम की स्थिति से संबद्ध है। यह माँग एवं पूर्ति की परस्पर विपरीत शक्तियों के संतुलन द्वारा प्राप्त की जाती है। राष्ट्रीय आय का संतुलन तब माना जाता है, जब अल्पकाल में इसमें वृद्धि अथवा कमी की प्रवृत्ति नहीं होती। संतुलन की स्थिति में प्रायः आय के वास्तविक स्तर को ही संतुलित राष्ट्रीय आय कहते हैं।

2) स्वतंत्र एवं प्रेरित व्यय (Autonomous and Induced Expenditures)

कोई व्यय जो स्थिर है और अन्य चरों से प्रभावित नहीं होता उसे स्वतंत्र व्यय कहते हैं। दूसरी ओर एक व्यय जो अन्य चरों से प्रभावित होता है। उसे प्रेरित व्यय कहते हैं।

3) फलन (Functions)

एक आश्रित चर (dependent variable) एवं स्वतंत्र चर (independent variable) के बीच संबंध को एक फलन द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि उपयोग का स्तर आय के स्तर पर निर्भर करता है तो इसे निम्न फलन की सहायता से प्रदर्शित किया जाएगा :

$C = f(y)$ जहाँ C उपयोग के स्तर को प्रदर्शित करता है और Y आय के स्तर को।

यह संबंध सामान्य रूप में बताया गया है। इसको हम संबंध की प्रकृति के अनुसार विशिष्ट स्वरूप भी दे सकते हैं। उदाहरण के लिए $C = a + by$ इसे सरल रेखीय (linear) संबंध कहा जाएगा। C तथा Y के बारे में पहले ही बताया जा चुका है 'a' शून्य आय के स्तर पर उपभोग को प्रदर्शित करता है तथा 'b' आय के बढ़ने से उपभोग के बढ़ने की दर है।

पूर्वधारणाएँ

1) अल्पकाल में संभावित आय समान रहती है

एक अर्थव्यवस्था की उत्पादक क्षमता प्राकृतिक एवं व्यक्ति निर्मित संसाधनों पर निर्भर करती

है। इसलिए यह उत्पादन क्षमता अल्पकाल में नहीं धीरे–धीरे परिवर्तित होती है। इसलिए यह पूर्वधारणा कि अल्पकाल में एक व्यवस्था की उत्पादक क्षमता के आधार पर संभावित आय स्थिर रहती है। यह संभावित आय, पूर्णरोज़गार के स्तर की आय ही है। इस पूर्वधारणा के साथ अल्पकाल में राष्ट्रीय आय के निर्धारक तत्त्वों को अलग कर सकते हैं।

2) उत्पादन की साधनों की अप्रयुक्त मात्रा

इस पूर्वधारणा से अभिप्राय यह है कि उत्पादन के साधनों कि अप्रयुक्त मात्रा के प्रयोग से उत्पाद को स्थिर लागत के आधार पर बढ़ाया जा सकता है।

3) स्थिर कीमत स्तर

यह पूर्वधारणा क्रमांक (2) की ही एक उत्पत्ति है, जो अतिरिक्त क्षमता का द्योतक है। वर्तमान कीमतों पर फर्में अधिक बेचना चाहेंगी तथा श्रमिक वर्तमान मज़दूरी दर पर अधिक काम करना चाहेंगे। इन परिस्थितियों में अल्पकाल में उतार–चढ़ाव के फलस्वरूप उत्पाद तथा साधन बाज़ार में कीमतों का नहीं बल्कि मात्राओं का समायोजन होता है। फर्मों के पूर्ति वक्रों तथा तदनुसार सामूहिक पूर्ति के संदर्भ में स्तर तक आय तक सामूहिक पूर्ति वक्र सपाट होगा। यानि उस स्तर तक स्थिर कीमतों पर उत्पादन में वृद्धि होगी।

4) अल्पकाल विश्लेषण

हम केवल अल्पकाल संतुलन से ही संबद्ध है और इसके बाद के स्तर की चर्चा नहीं करते।

15.4 राष्ट्रीय आय के संतुलन स्तर का निर्धारण

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

हमारी अर्थव्यवस्था में खर्च करने वाली दो प्रकार की इकाइयाँ हैं– परिवार एवं फर्में। अर्थव्यवस्था में दो प्रकार की वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन होता है यानि उपभोक्ता वस्तुओं एवं सेवाओं व निवेश वस्तुएँ। उपभोक्ता वस्तुओं एवं सेवाएँ फर्मों द्वारा परिवारों को और निवेश वस्तुएँ उत्पादकों द्वारा अन्य फर्मों को बेची जाती है। निवेश वस्तुओं को आगे और उत्पादन करने के लिए प्रयोग किया जाता है। समग्र व्यय (माँग) इस प्रकार निर्धारित होती है। अभी हम यह पूर्वधारणा करते हैं कि अर्थव्यवस्था में कोई सरकार तथा विदेशी व्यापार नहीं है। इस प्रकार से यदि उत्पादन (पूर्ति) समग्र माँग के बराबर हो जाती है। तो हमें आय के संतुलन स्तर को प्राप्त करते हैं। ये तत्त्व जो समग्र पूर्ति को निर्धारित करते हैं, वे समग्र माँग को निर्धारित करने वाले तत्त्वों से भिन्न होते हैं।

हमें परिवारों के उपभोग व्यवहार तथा व्यापारिक फर्मों के निवेश व्यवहार को स्पष्ट रूप से बताना होगा। हम मानेंगे कि समग्र पूर्ति दी गई है। एक बिन्दु पर जहाँ समग्र पूर्ति समग्र माँग के समान होती है वहाँ आय के संतुलन स्तर का निर्धारण होगा। इससे पहले कि हम आय निर्धारण की प्रक्रिया पर चर्चा प्रारंभ करें, यह आवश्यक है कि हम 45^0 रेखा की अवधारणा के बारे में बताएँ जिसको आय निर्धारण की चर्चा में आमतौर पर प्रयोग किया जाएगा। इसके साथ ही हमें भरण एवं रिसाव की अवधारणाओं के बारे में भी स्पष्ट करना होगा।

15.4.1 आय प्रवाह में भरण और रिसाव की अवधारणाएँ (Injections and Leakages)

संतुलन आय के स्तर की अवधारणा को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि संतुलन आय का स्तर प्राप्त करने से पूर्व किस प्रकार से आय प्रवाह में भरण एवं रिसाव की प्रक्रिया का माध्यम से स्वायत्त चरों में परिवर्तन, आय में परिवर्तन का कारण बनता है।

15.4.1.1 भरण (Injections)

माना कि निवेश के स्तर अथवा सरकारी व्यय के स्तर में वृद्धि होती है (ये दोनों केवल आय के स्तर पर निर्भर नहीं होते), इससे अभिप्राय यह होगा कि प्रथम चक्र में उत्पादन साधनों और व्यापारिक फर्मों को और अधिक आय वितरित होगी।

यह अतिरिक्त आय अलग चक्र में ऐसी स्थिति का निर्माण करेगी कि इस आय में से एक भाग उपभोक्ता वस्तुओं एवं सेवाओं पर खर्च होगा और एक भाग की बचत होती। यह अगले चक्र में और अधिक आय का कारण बनेगा। इस संतुलन आय के स्तर के प्रकार से यह प्रक्रिया जारी रहेगी। इस प्रकार से निवेश एवं सरकारी व्यय आय प्रवाह में भरण के रूप में कार्य करते हैं।

15.4.1.2 रिसाव (Leakages)

किसी भी चरण से यह प्रश्न उठता है कि आय में परिवर्तन, कब तक जारी रहेगा? इस बात का उत्तर हमें रिसाव की अवधारणा से मिलता है। जब भरण आय में परिवर्तन करते हैं तो उसके साथ ही साथ रिसाव भी प्रारंभ हो जाती है। 15.4.1.1 में दिए गए उदाहरण को जारी रखते हुए हम देखते हैं कि पहले चक्र में आय के साथ उपभोग व्यय में वृद्धि होती है लेकिन उपभोग व्यय में वृद्धि होती है। वास्तव में बढ़ी हुई आय के भाग की बचत की जाती है, आय में वृद्धि की उतनी ही प्रक्रिया में रिसाव की तरह कार्य करती है। उसी प्रकार सरकारी व्यय में वृद्धि के फलस्वरूप आय में वृद्धि का एक भाग सरकार के पास ही अतिरिक्त कर राजस्व के रूप में वापिस चला जाता है। यह भी आय वृद्धि की प्रक्रिया में रिसाव के रूप में कार्य करता है।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि बचतें एवं कर आय वृद्धि प्रक्रिया में रिसाव की तरह काम करते हैं। आय में वृद्धि के फलस्वरूप उपभोग व्यय में वृद्धि की मात्रा उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति $\Delta C/\Delta Y$ पर निर्भर करती है जहाँ ΔC से अभिप्राय है उपभोग व्यय में परिवर्तन और ΔY आय में परिवर्तन को दर्शाता है। उसी प्रकार से बचत में कि वृद्धि, बचत की सीमांत प्रवृत्ति $\Delta S/\Delta Y$ पर निर्भर करती है। जहाँ ΔS से अभिप्राय है बचत में परिवर्तन, और ΔY आय में परिवर्तन दर्शाता है। कर राजस्व में वृद्धि कर की दर t पर निर्भर करती है, ty जहाँ कर और आय के अनुपात को दर्शाता है ty यानि कर राजस्व होगा जहाँ t कर और आय का अनुपात है और Y आय का स्तर है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

15.4.1.3 भरण और रिसाव एक साथ

हम भरण और रिसाव को आय में परिवर्तन की प्रक्रिया में इकट्ठा लेते हैं। उदाहरण के लिए यदि प्रारंभ में निवेश अथवा सरकारी व्यय में वृद्धि के रूप में 10 करोड़ रुपये की है जिसके कारण आय में वृद्धि की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। आगे के कई चक्रों में बचत कर राजस्व भी बढ़ता जाएगा। आय में वृद्धि की यह प्रक्रिया तब तक चलती रहेगी, जब तक बचत + कर राजस्व, 10 करोड़ के स्तर तक न पहुँच जाएँ। यहीं पर आय का संतुलन स्तर निर्धारित होता है।

इस प्रकार से भरण और रिसाव बराबर हो जाते हैं और यह संतुलन की आवश्यक शर्त है। हम इस प्रक्रिया को समझने के लिए और विस्तार से चर्चा करेंगे क्योंकि यही वह बिन्दु भी है जहाँ अर्थव्यवस्था में समग्र माँग, समग्र पूर्ति के बराबर हो जाती है।

15.4.2 45° रेखा और इसका महत्त्व

इस इकाई में हम कुछ चित्रों का उपयोग करेंगे जिनमें 45° रेखा होगा। इसलिए इस रेखा के महत्त्व के बारे में विवेचना करना आवश्यक है। आइए पहले हम 45° रेखा बनाते हैं :

चित्र 15.1

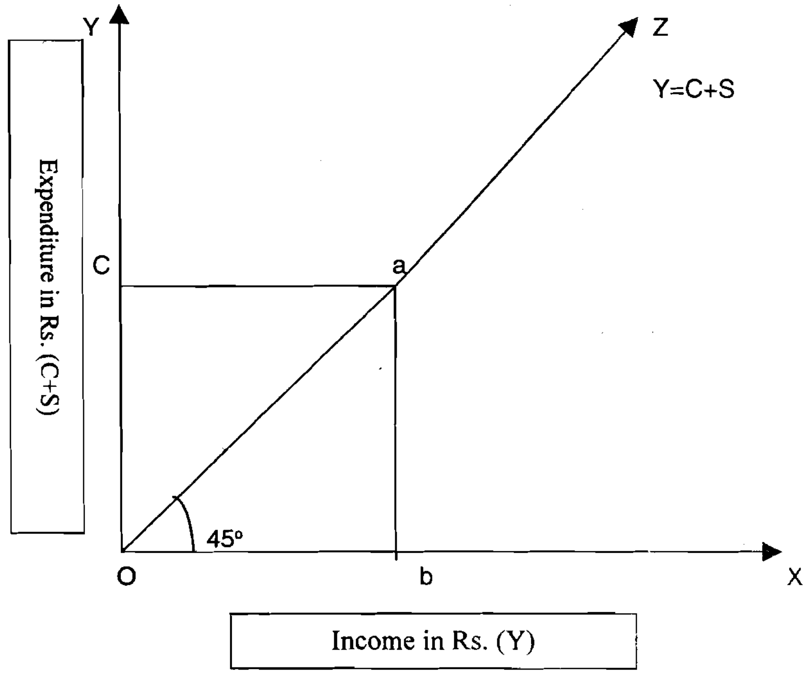

उपरोक्त चित्र में X–अक्ष पर हम आय को रखते हैं और Y–अक्ष पर व्यय को रखा जाता है। एक रेखा जो मूल बिन्दु से होती हुई XOZ एक 45° कोण बनाती है। इस 45° रेखा की यह विशेषता होती है कि यदि हम उसे रेखा के किसी भी बिन्दु 'a' से X–अक्ष पर एक लम्ब खींचते हैं अथवा Y–अक्ष पर लम्बवत् खींचते हैं तो दोनों की लम्बाई बराबर होगी। यही बात उस रेखा के किसी बिन्दु पर लागू होती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस रेखा का मतलब यह भी है कि यदि हमारी आय ob है तो वह ab द्वारा प्रदर्शित कर सकते हैं क्योंकि इस रेखा की परिभाषा के अनुसार ob= ab। दूसरे ढंग से कहा जाए तो यदि हमारी आय ob के बराबर है, जिसे हमें उपभोग और बचत के लिए प्रयोग करना है तो ob यह आय में से होगा। इस प्रकार से ob आय, ab व्यय के बराबर होगी। इसलिए 45° रेखा, आय और व्यय की समानता के रूप में भी जानी जाती है क्योंकि इस रेखा में सब बिन्दुओं पर यह समानता बनी रहेगी। यदि Y आय को तथा C उपभोग को और S बचत को प्रदर्शित करता है तो हम रेखा को Y = C+S रेखा भी कह सकते हैं। अब कितना उपभोग हुआ और कितनी बचत हुई यह 'C' रेखा द्वारा प्रदर्शित किया जाएगा (इसकी चर्चा 15.4.3 में होगी), एक बार एक आय स्तर पर उपभोग के स्तर को लेते हैं तो Y में से C को घटाकर हम बचत S प्राप्त कर सकते हैं।

15.4.3 उपभोग फलन (Consumption Function)

उपभोग अर्थव्यवस्था में उत्पादन की कुल माँग का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाग है। गृहस्थों द्वारा उपभोग मुख्य रूप से प्रयोज्य आय पर निर्भर करता है और प्रत्येक आय को कुल आय और प्रत्यक्ष कर देयता के अंतर के रूप में परिभाषित किया जाता है। संकेत रूप में C = f (Y) जहाँ 'C' गृहस्थों द्वारा उपभोग तथा 'Y' आय है।

उपभोग फलन

'C' एवं 'Y' के बीच संबंध को उपभोग फलन कहते हैं। कीन्स के अनुसार, उपभोग फलन एक मौलिक मनोवैज्ञानिक नियम दिखाता है कि जैसे आय में वृद्धि होती है 'C' से वृद्धि होगी। यानि 'C', 'Y' से संबंधित तो है लेकिन यह उतनी तेजी से नहीं बढ़ता जितनी तेजी से आय बढ़ती है। 'C' और आय के बीच संबंध को उपयोग की औसत प्रवृत्ति (APC)

एवं उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति (MPC) की सहायता से प्रदर्शित कर सकते हैं। कुल उपभोगात्मक को कुल आय से भाग करने पर उपभोग की औसत प्रवृत्ति (APC) प्राप्त होती है। यानि संकेत रूप में APC = C/Y जहाँ C = कुल उपभोग व्यय और Y = कुल आय।

आय में परिवर्तन के चल स्वरूप उपभोग में परिवर्तन को MPC की सहायता से दिखाया जाता है। आय में दिए गए परिवर्तन के फलस्वरूप उपभोग में परिवर्तन की दर MPC को कहते हैं। संकेत रूप में MPC = ΔC/ΔY जहाँ MPC उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति है। और ΔY आय में परिवर्तन प्रदर्शित करते हैं।

तालिका क्रमांक 15.4.3.1 में उपभोग फलन, APC एवं MPC को बताया गया है। 15.4.3.1 के कालम 1 और 2 में उपभोग फलन दिया गया है। देखा जा सकता है कि आय के शून्य स्तर पर भी उपभोक्ता 800 करोड़ रुपये का कुल उपभोग निर्वाह मात्र के लिए करते हैं। यह उपभोग व्यय अबचत द्वारा वित्त किया जाता है।

यदि परिवारों की आय में 1000 करोड़ रुपये की वृद्धि होती है तो उपभोग व्यय 1500 हो जाएगा। जहाँ 500 करोड़ रुपये की बचत होगी। लेकिन जब आय 2000 करोड़ के स्तर पर पहुँच जाती है तो उपभोग और आय एक समान हो जाएँगे यानि बचत शून्य हो गई (यानि अबचत भी शून्य होगी) उससे अधिक आय में वृद्धि से उपभोक्ता की आय उसके उपभोग से अधिक होगी तथा धनात्मक बचत होगी।

तालिका 15.4.3.1

परिवारों की उपभोग सूची

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

आय (Y) एक वर्ष में (करोड़ रुपये)	उपभोग व्यय (करोड़ रुपये)	APC=C/Y	MPC=ΔC/ΔY
0	800	–	–
1000	1500	1.50	0.70
2000	2000	1.00	0.50
3000	2400	0.80	0.40
4000	2700	0.67	0.30
5000	2900	0.58	0.20
6000	3000	0.50	0.10
7000	3050	0.43	0.05

उपरोक्त तालिका से पता चलता है कि जब गृहस्थों की आय शून्य से बढ़कर 1000 करोड़ हो जाती है। तो, उपभोग व्यय 800 करोड़ से बढ़कर 1500 करोड़ हो जाता है। उसके उपरांत आय 1000 करोड़ से 2000 करोड़ होने पर उपभोग व्यय 1500 करोड़ से बढ़कर 2000 करोड़ हो जाता है। इस प्रकार आय में 1000 करोड़ की वृद्धि करती है। इसके बाद आय में 1000 करोड़ की वृद्धि उपभोग व्यय में मात्र 700 करोड़ की वृद्धि करती है। इसके बाद आय में 1000 करोड़ की वृद्धि उपभोग व्यय में मात्र 500 करोड़ की वृद्धि करती है। उपभोग व्यय में परिवर्तन का यह कीन्स के उपभोग के मनोवैज्ञानिक सिद्धांत पर आधारित है जिसके अनुसार आय में बढ़ने के साथ उपभोग में वृद्धि तो होती है। लेकिन उपभोग में होने वाली वृद्धि आय में वृद्धि से कम होती है।

तालिका 15.4.3.1 के कालम 1 और 2 की सूचना को हम रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शित कर सकते हैं। इस प्रकार चित्र 15.4.3.1 में हमें उपभोग वक्र (CC_1) प्राप्त होता है। X–अक्ष

पर आय (करोड़ रुपयों में) दिखाई गई है और Y–अक्ष पर उपभोग व्यय दिखाया गया है। उपभोग वक्र Y–अक्ष के C बिन्दु से प्रारंभ होता है जो यह प्रदर्शित करता है कि शून्य आय पर उपभोग व्यय 800 करोड़ होगा। यह वक्र दाएँ और ऊपर की ओर ढाल वाला होता है। यह नीचे से अवतल (Concave) है।

तालिका क्रमांक 15.4.3.1 के कालम 3 में औसत उपभोग प्रवृत्ति (APC) को दिखाया गया है, जिसे कालम 2 में दी गई राशि को कालम 1 में दी गई राशि से भाग करके प्राप्त किया गया है। जब आय और उपभोग समान होते हैं तो यह 1 होगी और जब उपभोग व्यय आय से कम होता है तो यह 1 से कम होगी। यह कमी कीन्स के उपभोग के मनोवैज्ञानिक सिद्धांत द्वारा विवेचित है।

सीमांत उपभोग प्रवृत्ति (MPC) को तालिका क्रमांक 15.4.3.1 के कालम 4 में प्राप्त किया गया है। यह उपभोग में परिवर्तन को आय में परिवर्तन से भाग करके प्राप्त किया जाता है। ऐसा कालम 1 और 2 की सूचना के आधार पर किया गया है। उदाहरण के लिए जब आय शून्य से बढ़कर 1000 होती है। यानि $\Delta Y=1000$, उपभोग व्यय 800 करोड़ से बढ़कर 1500 करोड़ हो जाता है। यानि $\Delta C=700$ इस प्रकार $MPC=700/1000=0.7$। हमारे इस उदाहरण में MPC भी गिर रही है।

चित्र 15.2

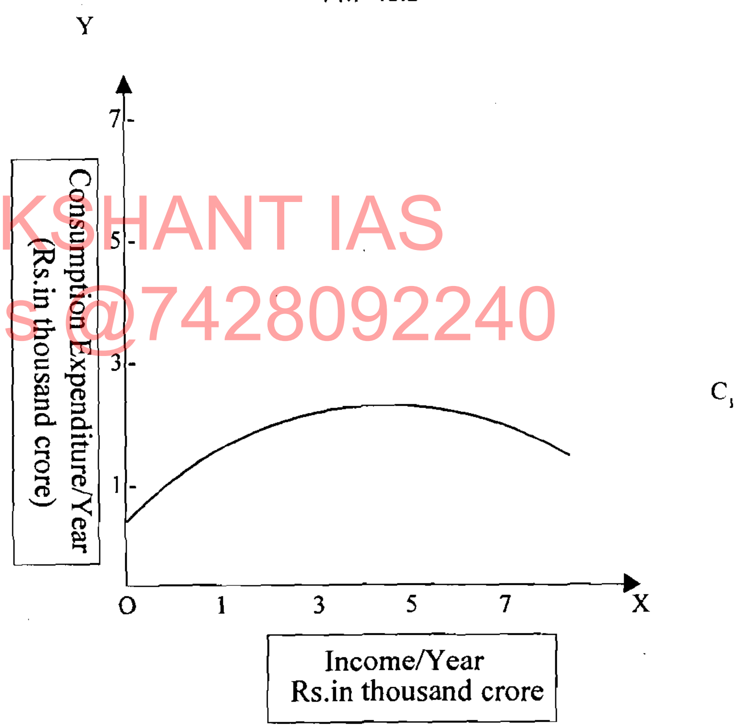

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बचत फलन

उपभोग प्रवृत्ति की अवधारणा के समान ही बचत प्रवृत्ति की अवधारणा होती है। वास्तव में आय को या तो व्यय किया जाता है या उनकी बचत की जाती है। Y=C+S यानि इसलिए आय के हर स्तर पर आय में से उपभोग को घटाकर, बचत प्राप्त की जा सकती है। यह तालिका क्रमांक 15.4.3.2 के कालम 5 में दिया गया है। आय के निम्न स्तर पर बचत ऋणात्मक है। लेकिन जैसे–जैसे आय बढ़ती है, बचत धनात्मक होती है और लगातार बढ़ती है। तालिका क्रमांक 15.4.3.2 में हम देखते हैं कि आय के शून्य स्तर पर बचत (-) 800 करोड़ है। जब आय बढ़कर 2000 करोड़ हो जाती है तो बचत शून्य होती है। यह लाभ–अलाभ (Break-even) बिन्दु है। जैसे ही आय 2000 करोड़ के स्तर से ऊपर होती है, बचत धनात्मक हो जाती है। आय बचत के बीच संबंध का विश्लेषण हम बचत की औसत प्रवृत्ति (APS) और बचत की सीमांत प्रवृत्ति (MPS) की सहायता से कर सकते हैं।

APS और MPS को क्रमशः कालम 6 और 7 में दिखाया गया है। यह देखा गया कि आय में वृद्धि के साथ–साथ APS में भी वृद्धि होती है। MPS में भी वृद्धि होती है।

तालिका 15.4.3.2

गृहस्थ की उपभोग एवं बचत सूची

आय प्रतिवर्ष (करोड़ रुपये)	उपभोग व्यय प्रतिवर्ष (करोड़ रुपये)	APC C/Y	MPC ΔC/ΔY	बचत (करोड़ रुपये)	APC S/Y	MPC ΔS/ΔY
1	2	3	4	5	6	7
0	800	–	–	–800	–	–
1000	1500	1.50	0.70	–500	–0.50	0.30
2000	2000	1.00	0.50	0	0.00	0.50
3000	2400	0.80	0.40	600	0.20	0.60
4000	2700	0.67	0.30	1300	0.33	0.70
5000	2900	0.58	0.20	2100	0.42	0.80
6000	3000	0.50	0.10	3000	0.50	0.90
7000	3050	0.43	0.05	3950	0.57	0.95

APC और APS का योग 1 है। यह इसलिए है क्योंकि

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

C+S=Y

या

C/Y+S/Y=Y/Y (दोनों पक्षों को से Y भाग करके)

APC + APS =1

इसी प्रकार, MPC और MPS का योग 1 एक है।

प्रमाण :

C+S=Y

ΔC+ΔS= ΔY

ΔC/ΔY+ΔS/ΔY = ΔY/ΔY (दोनों पक्षों को से Y भाग करके)

MPC+MPS=1

बचत फलन को चित्र की सहायता से दिखाने तथा उपभोग फलन के साथ इसके संबंध का प्रदर्शित करने के लिए आइए हम चित्र 15.2 के उपभोग फलन का चित्र 15.3 में प्रदर्शित करते हैं और 45^0 रेखा बनाते हैं। आय को X–अक्ष पर और उपभोग एवं बचत को Y–अक्ष पर दिखाया गया है। 45^0 रेखा जो मूल बिन्दु से प्रारंभ होती है, दोनों अक्षों से समान दूरी पर है, X और Y अक्षों पर आय की एक समान इकाई होने पर 45^0 रेखा हर आय स्तर पर उपभोग एवं बचत तथा आय के बीच समानता को प्रदर्शित करती है। दूसरे शब्दों

में 45° रेखा के हर बिन्दु पर C+S=Y इसलिए 45⁰ रेखा हम C+S=Y रेखा भी कह सकते हैं। चित्र 15.3 में उपभोग फलन (CC_1) तथा 45⁰ रेखा C+S=Y की सहायता से बचत फलन SS_1 प्राप्त किया गया है।

उपभोग वक्र OY' अक्ष पर बिन्दु S से आरंभ होकर X–अक्ष को 2000 करोड़ की आय स्तर पर काटता है और दाएँ ऊपर की ढाल रखता है। चूँकि S=Y-C हर आय स्तर पर (SS_1) और X–अक्ष के बीच की दूरी CC वक्र और के बीच की दूरी के समान है। बचत वक्र (SSI) ऊपर से अवतल (Concave) है।

चित्र 15.3

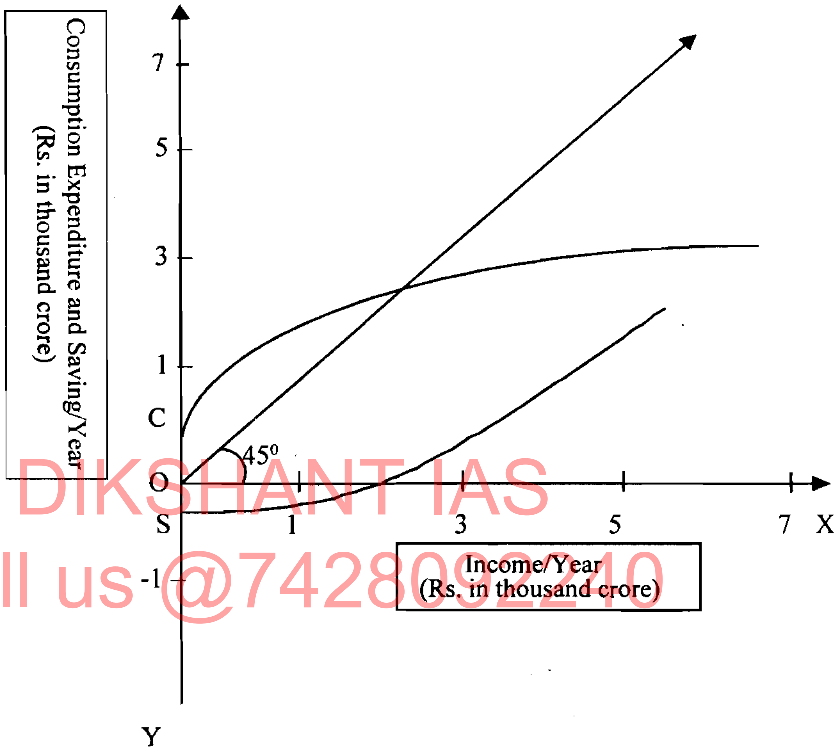

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

आमतौर पर विवेचना की सुविधा के लिए उपभोग एवं बचत फलनों को सरल रेखाओं की सहायता से दिखाया गया है। इससे अभिप्राय यह होता है कि MPC और MPS स्थिर है। इसका मतलब है कि आय में होने वाले समान परिवर्तन से उपभोग में और बचत के परिवर्तन की दर समान रहती है। यह तालिका क्रमांक 15.4.3.3 में दिखाया गया है।

आय में हर 1000 करोड़ रुपये की वृद्धि से उपभोग व्यय 800 करोड़ रुपये बढ़ता है तथा बचत 200 करोड़ रुपये बढ़ती है। तालिका क्रमांक 15.4.3.3 की सूचना के आधार पर प्राप्त उपभोग एवं बचत वक्र सरल रेखाएँ हैं। यह चित्र 15.4 में दिखाया गया है।

उपभोग एवं बचत फलन, कोई सांख्यिकी तथ्य नहीं है। वे आय एवं उपभोग तथा आय बचत के बीच नियोजित या अपेक्षित (अथवा exante) संबंध है, नियोजित अथवा अपेक्षित संबंधों की तरह, वे आय के विभिन्न स्तरों पर अपेक्षित तथा बचत बताते हैं।

चित्र 15.4

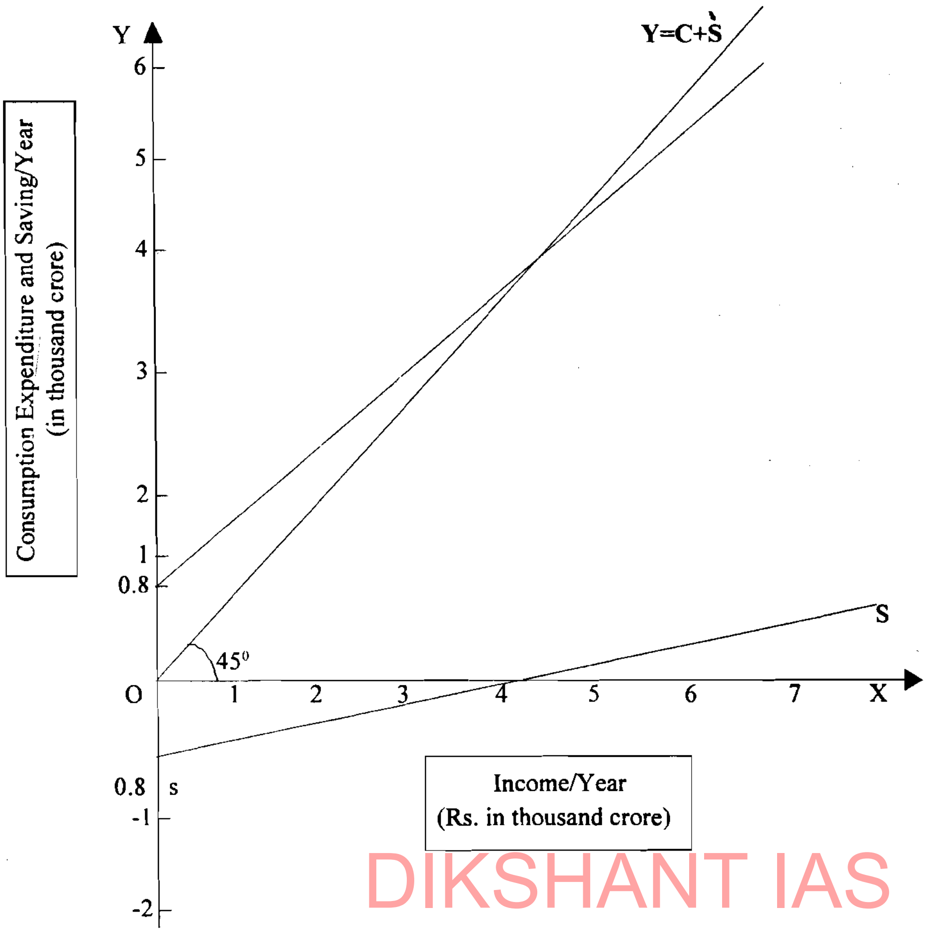

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

तालिका 15.4.3.3

गृहस्थों की आय तथा बचत सूची

आय प्रतिवर्ष (करोड़ रुपये)	उपभोग व्यय प्रतिवर्ष (करोड़ रुपये)	APC C/Y	MPC ΔC/ΔY	बचत (करोड़ रुपये)	APC S/Y	MPC ΔS/ΔY
1	2	3	4	5	6	7
0	800	-	-	(-) 800	-	-
1000	1600	1.60	0.80	(-) 600	(-) 0.60	(-) 0.2
2000	2400	1.20	0.80	(-) 400	(-) 0.20	(-) 0.2
3000	3200	1.07	0.8	(-) 200	(-) 0.07	(-) 0.2
4000	4000	1.00	0.8	0	0	0
5000	4800	0.96	0.8	(+) 200	.04	0.2
6000	5600	0.93	0.8	(+) 400	.07	0.2
7000	6400	0.91	0.8	(+) 600	.09	0.2

उपभोग एवं बचत फलनों को प्रभावित करने वाले कारक

आय के अतिरिक्त, उपभोग एवं बचत फलन कई तत्त्वों पर निर्भर करते हैं जैसे आय का वितरण लोगों के पास संपत्ति, ऊँचे उपभोग का प्रदर्शनकारी प्रभाव, अर्थव्यवस्था में कीमत

स्तर और उनमें अपेक्षित प्रवृत्ति, सरकार की कर नीति, पारिवारिक संबंध इत्यादि। चूँकि धनी लोग अधिक बचत करते हैं इसलिए निर्धनों के पक्ष में आय का पुनर्वितरण बचत को कम करेगा। उसी प्रकार से अपने धनी पड़ौसी के 300 उपभोग स्तर की नकल से भी गृहस्थ की बचत कम हो सकती है। जनसंख्या में परिवर्तन, कीमतें तथा सरकार द्वारा लगाए जाने वाले कर, आय के स्तर, उपभोग व्यय तथा बचत को प्रभावित करता है। सुदृढ़ पारिवारिक संबंध, अपने बच्चों के लिए पर्याप्त धन उपलब्ध करवाने की इच्छा इत्यादि लोगों को बचत के लिए प्रेरित करता है।

चूँकि उपभोग तथा बचत को प्रभावित करने वाले तत्त्व भिन्न प्रकार के हैं। इसलिए जब तक उनके के बारे में कोई निश्चित पूर्वधारणाएँ न रखी जाएँ एवं बचत फलन पर उनके कुल प्रभाव का ज्ञान कठिन है।

15.4.4 निवेश फलन (Investment Function)

कुल माँग का दूसरा महत्त्वपूर्ण भाग निजी निवेश माँग है। आपको याद होगा कि अर्थशास्त्र में निवेश को मानव निर्मित वास्तविक परिसंपत्तियों जैसे मशीन, उपकरण, भवन, वस्तुओं के स्टॉक इत्यादि पर व्यय के रूप में परिभाषित किया गया है। चूँकि एक अर्थव्यवस्था में निवेश व्यय उसकी उत्पादक क्षमता में वृद्धि करने में सहायक होता है, इसलिए वह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। यही कारण है कि अल्पविकसित अर्थव्यवस्था, अपने–अपने देश में निवेश व्यय को बढ़ाने का प्रयास करती है।

प्रेरित निवेश एवं स्वतंत्र निवेश : (Induced Investment and Autonomous Investment)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

निवेश व्यय दो प्रकार का होता है (क) प्रेरित निवेश, और (ख) स्वतंत्र निवेश। प्रेरित निवेश आय का फलन है। जैसे–जैसे आय बढ़ती है लोग उपभोक्ता वस्तुओं पर अधिक खर्च करते हैं इसमें उन वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए निवेश करना आवश्यक होता। इस प्रकार आय में वृद्धि निवेश को प्रेरित करती है। चित्र 15.5 प्रेरित निवेश की अवधारणा को चित्रित किया गया है।

चित्र 15.5

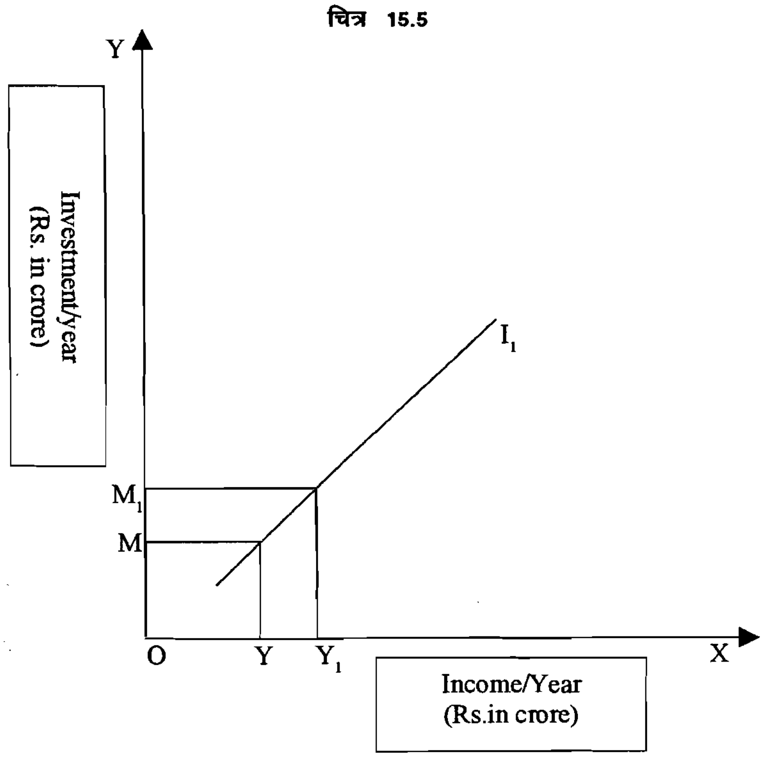

चित्र में आय को X–अक्ष पर और निवेश को Y–अक्ष पर दिखाया गया है। प्रेरित निवेश वक्र II_1 की ढाल बाएँ से दाएँ ऊपर की ओर होती है। यह दिखाता है कि जैसे आय से OY, OY_1 तक बढ़ती है के निवेश व्यय OM से OM_1 तक बढ़ जाता है। दूसरे शब्दों में आय में YY_1 की वृद्धि निवेश में MM_1 की वृद्धि को प्रेरित करता है।

स्वतंत्र निवेश कई बाह्य तत्त्वों जैसे जनसंख्या वृद्धि, तकनीकी परिवर्तन, नए संसाधनों की खोज इत्यादि पर निर्भर करता है। आय का स्तर तथा उपभोग व्यय इस प्रकार के निवेश को प्रभावित नहीं करता। यह II_1 वक्र की सहायता से चित्र 15.6 में चित्रित किया गया है। II_1 वक्र X–अक्ष के समानांतर रेखा है। यह प्रदर्शित करता है कि निवेश व्यय OI करोड़ रुपये के स्तर पर स्थिर रहता है। चाहे अर्थव्यवस्था में आय का स्तर कोई भी हो (OY या OY_1)

चित्र 15.6

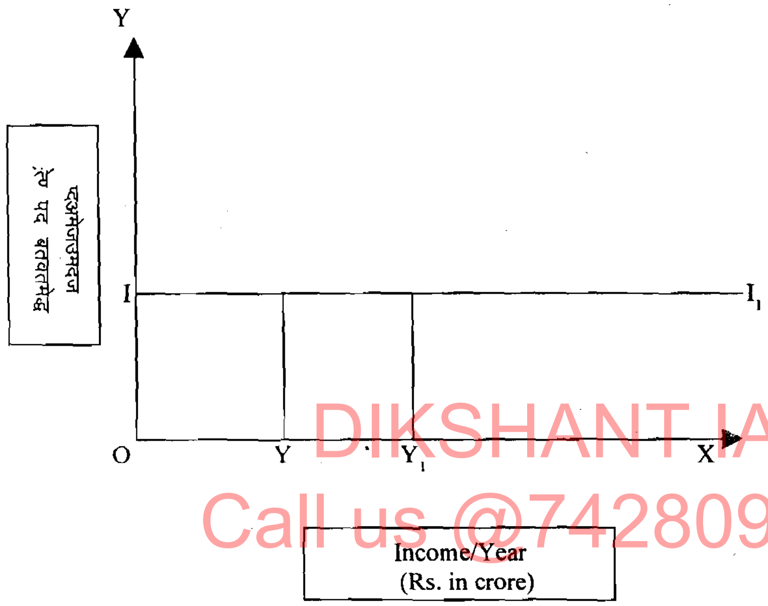

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

निवेश को निर्धारित करने वाले तत्त्व

निवेश चाहे स्वायत्त हो अथवा प्रेरित, यह लाभ के उद्देश्य से होता है। निजी उद्यमी चाहे नई मशीन लगा रहे हों अथवा फैक्ट्री, लाभ को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं। वे निवेश से अपेक्षित आय की उसकी लागत के साथ तुलना करके लाभ को निर्धारित करते हैं। निवेश से अपेक्षित आय को पूँजी की सीमांत क्षमता की अवधारणा से मापा जाता है। जबकि ब्याज दर निवेश की लागत को निर्धारित करती है।

एक उद्यमी एक पूँजीगत परिसंपत्ति को इसलिए खरीदता है क्योंकि यह अपने जीवन काल में आय का एक प्रवाह सृजित करती है। इसमें आयों की एक श्रृंखला होती है। यह आय उस परिसंपत्ति की अपेक्षित उत्पादकता एवं उसके द्वारा उत्पादित वस्तुओं की कीमतों एवं उन वस्तुओं के उत्पादन की लागत पर निर्भर करती है। हम अपेक्षित वार्षिक आयों को अपेक्षित बिक्री में से प्राप्त राशि में से अपेक्षित उत्पादन लागत घटाने से प्राप्त करते हैं। माना कि अपेक्षित वार्षिक आय R_1, R_2, R_3, ... R_n है। जहाँ R आय अथवा प्राप्ति प्रदर्शित करता है। तथा 1, 2, 3, ... n वर्ष बताता है जिनमें पूँजीगत परिसंपत्ति से आय प्राप्त होती है।

यह निश्चित करने हेतु कि पूँजीगत परिसंपत्ति में निवेश लाभप्रद है अथवा नहीं, उद्यमी को अपेक्षित आय की वित्तीयन की लागत से तुलना करनी पड़ती है। वित्तीयन उद्यमी द्वारा बाज़ार से उधार लेकर अथवा अपने की बचत से किया जा सकता है। किसी भी स्थिति में ब्याज दर निवेश की वित्तीयन की लागत की ओर इंगित करती है।

अपेक्षित आय की ब्याज दर से तुलना करने के लिए कीन्स ने पूँजी की सीमांत दक्षता (Marginal Efficiency of Capital यानि MEC) की अवधारणा का उपयोग किया गया है। कीन्स ने पूँजी की सीमांत दक्षता को एक ऐसी बट्टादार ब्याज दर के रूप में परिभाषित किया है जो भविष्य में आय की शृंखला के वर्तमान मूल्य को उसकी पूर्ति कीमत के बराबर कर देते हैं। पूर्ति कीमत, पूँजीगत परिसंपत्ति की लागत है। यह उस कीमत की ओर इंगित करता है जिसपर पूँजीगत परिसंपत्ति प्राप्त की गई है। इस प्रकार पूँजी की सीमांत दक्षता वह बट्टादार है जो पूँजीगत परिसंपत्ति जीवन काल में उसके उपयोग द्वारा अपेक्षित आय को उसकी पूर्ति कीमत के बराबर कर देता है।

पूँजी की सीमांत दक्षता निम्न समीकरण की सहायता से मापी जा सकती है।

$$C = \frac{R_1}{(1+e)^1} + \frac{R_1}{(1+e)^2} + \frac{R_1}{(1+e)^3} + \ldots\ldots + \frac{R_n}{(1+e)^n}$$

जहाँ C = पूँजीगत परिसंपत्ति पूर्ति कीमत है यानि लागत जिसपर पूँजीगत परिसंपत्ति को खरीदा गया है।

R_1, R_2, R_3 .... R_n = परिसंपत्ति के जीवनकाल में अपेक्षित आय।

और e = बट्टादार अथवा MEC है जो भविष्य की आय के वर्तमान मूल्य को C के बराबर करता है।

उपरोक्त समीकरण को एक सरल गणितीय उदाहरण की सहायता से प्रदर्शित किया जा सकता है। माना कि एक पूँजीगत परिसंपत्ति की पूर्ति कीमत 4200 रुपये है, और दो वर्ष के जीवनकाल में उससे अपेक्षित आय 2420 रुपये प्रतिवर्ष है। MEC सूत्र लगाने पर :

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उपरोक्त समीकरण को हल करने पर हमें e के लिए 1/10 मूल्य प्राप्त होता है। अतः MEC 10% है। निवेश के बारे में निर्णय लेने हेतु MEC के सूत्र मूल्य की ब्याज दर से तुलना करनी होगी। स्वाभाविक ही है

$$4200 = \frac{2420}{(1+e)^1} + \frac{2420}{(1+e)^2}$$

कि यदि ब्याज दर 10% से अधिक है तो पूँजीगत परिसंपत्तियों में निवेश आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद नहीं है। ब्याज दर 10% होने पर, पूँजीगत परिसंपत्ति से कोई लाभ अथवा हानि नहीं होगी।

किसी पूँजीगत परिसंपत्ति से लाभप्रदता की जाँच के लिए एक अन्य विधि का भी प्रयोग हो सकता है। उसके अनुसार पूँजीगत परिसंपत्ति की भविष्य में अपेक्षित वार्षिक आयों के प्रकार का बाज़ार ब्याज दर से बट्टा किया जाता है। इसको V द्वारा इंगित किया जाता है। इस प्रकार से

जहाँ V = पूँजीगत परिसंपत्ति के जीवन काल में अपेक्षित आयों का वर्तमान मूल्य

R_1, R_2, R_3 .... R_n परिसंपत्ति के जीवन काल में अपेक्षित आय प्रवाह और r = ब्याज दर

$$V = \frac{R_1}{(1+r)^1} + \frac{R_1}{(1+r)^2} + \frac{R_1}{(1+r)^3} + \ldots\ldots\ldots\ldots + \frac{R_n}{(1+r)^n}$$

इस विधि के प्रयोग की विवेचना हेतु एक उदाहरण लेते हैं। माना कि पूँजीगत परिसंपत्ति के दो वर्ष के जीवन काल में अपेक्षित आय 2420 रुपये प्रतिवर्ष है और ब्याज दर 10% है।

$$4200 = \frac{2420}{(1+10/100)^1} + \frac{2420}{(1+10/100)^2}$$

= 2200 + 2000 = 4200

चूँकि पूँजीगत परिसंपत्ति के जीवन काल में अपेक्षित आय का वर्तमान मूल्य 4200 रुपये है। यदि परिसंपत्ति की लागत 4200 से कम हो तो इसमें निवेश लाभप्रद होगा। यदि इसकी लागत 4200 से अधिक हो तो उद्यमी को हानि होगी और यदि 4200 हो तो उद्यमी को हानि/लाभ नहीं होगा।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि एक उद्यमी तब तक निवेश करता रहेगा जब तक MEC ब्याज दर के समान न हो जाए या भविष्य में अपेक्षित आयों के प्रवाह का वर्तमान मूल्य उसकी लागत के बराबर न हो जाए। यदि MEC ब्याज दर से कम रहे जाए अथवा अपेक्षित आयों का वर्तमान मूल्य पूर्ति कीमत से कम हो जाए तो फर्म के लिए निवेश करना लाभप्रद न होगा।

MEC निवेश का घटता हुआ फलन है यानि जैसे–जैसे निवेश बढता है, MEC घटती है। यह दो कारणों से होता है। एक जब निवेश की मात्रा बढ़ती है जो घटते प्रतिफलों के सिद्धांत के कारण अपेक्षित उत्पादन कम हो जाता है और साथ ही कीमत में भी कमी की संभावना होती है क्योंकि उत्पादन अधिक हो जाता है। घटते हुए सीमांत उत्पाद को, नीची कीमत से गुणा करने पर आगम में कमी होगी। इस घटते हुए आगम में से हमें बढ़ती हुई उत्पादन लागत घटानी होगी, जिससे अपेक्षित प्रतिफल कम हो जाएगा। घटती MEC का दूसरा कारण यह है कि जैसे–जैसे पूँजीगत परिसंपत्ति की माँग बढती है, उसकी लागत भी बढ़ने लगती है, इन दोनों कारणों से घटते हुए प्रतिफल प्राप्त होते हैं। और पूँजीगत परिसंपत्ति की बढ़ती हुई कीमत MEC को कम करती है, इससे अभिप्राय यह है कि अधिक निवेश, MEC को कम करता है और इसलिए इसका औचित्य तभी होगा जबकि ब्याज दर हो जाए। एक फर्म के लिए जो सत्य है वही बात अन्य फर्मों पर भी लागू होगी। इस प्रकार से कुल निवेश माँग की ढाल नीचे की ओर होगी जैसा कि चित्र 15.7 में बताया गया है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 15.7

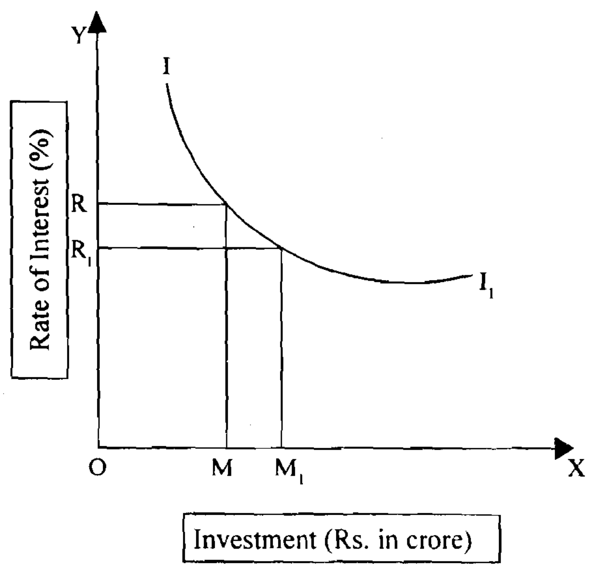

निवेश और ब्याज दर क्रमशः X–अक्ष ओर Y–अक्ष पर लिए गए हैं, सामूहिक निवेश वक्र हैं। यह ऋणात्मक ढाल वाला है और बताता है कि जैसे–जैसे ब्याज दर घटती है, निवेश की मात्रा बढ़ती है। उदाहरण के लिए ब्याज दर के OR से OR_1 घटाकर होने से निवेश OM से OM_1 तक बढ़ जाता है।

15.4.5 उपभोग फलन, निवेश फलन एवं 45° रेखा

15.4.5.1 समग्र माँग : (Aggregate Demand)

समग्र माँग इसके घटकों का योग करने से प्राप्त हो सकती है। विश्लेषण की सरलता के लिए निवल विदेशी माँग एवं सरकारी माँग को दृष्टिगत् करते हुए, समग्र माँग को प्राप्त करने की विधि नीचे समझाई गई है।

तालिका 15.4.5.1

समग्र माँग सूची

आय/प्रतिवर्ष (करोड़ रुपये)	उपभोग व्यय/प्रतिवर्ष (करोड़ रुपये)	निवेश/प्रतिवर्ष (करोड़ रुपये)	सामूहिक माँग/प्रतिवर्ष (करोड़ रुपये)
1	2	3	4
0	800	200	1000
1000	1600	200	1800
2000	2400	200	2600
3000	3200	200	3400
4000	4000	200	4200
5000	4800	200	5000
6000	5600	200	5800
7000	6400	200	6600

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

यह माना गया है कि निवेश 200 करोड़ रुपये प्रतिवर्ष पर स्थिर है। यह स्वतंत्र है और आय से प्रभावित नहीं होता है। आय के हर स्तर पर निवेश राशि 200 करोड़ रुपये को उपभोग व्यय में जोड़ने के पश्चात् हमें वास्तव में समग्र माँग प्राप्त होती है। यह कालम 4 में दिखाई गई है।

चित्र 15.8 में सामूहिक माँग C_1+I_1 प्राप्त की गई है जो हर आय स्तर निवेश में उपभोग व्यय के जमा करने पर प्राप्त होती है। चूँकि स्वतंत्र निवेश दिया हुआ है। C_1+I_1 वक्र CC_1 वक्र के समानांतर है।

15.4.5.2 समग्र पूर्ति (Aggregate Supply)

समग्र पूर्ति से अभिप्राय है एक अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं का कुल उत्पादन। दूसरे शब्दों में, इससे अभिप्राय है देश की कुल राष्ट्रीय आय अथवा राष्ट्रीय उत्पाद। राष्ट्रीय उत्पाद में भिन्न प्रकार की लागत है जैसे श्रम, किराया, ब्याज, लाभ और घिसावट तथा शुद्ध अप्रत्यक्ष कर इत्यादि शामिल होते हैं उत्पादकों को सभी लागतों की पूर्ति बिक्री की प्राप्तियों से करनी पड़ती है। इसलिए समग्र पूर्ति से अभिप्राय है अर्थव्यवस्था में कुल व्यय, जो उत्पाद की लागत की पूर्ति अवश्य कर सके।

चित्र 15.8

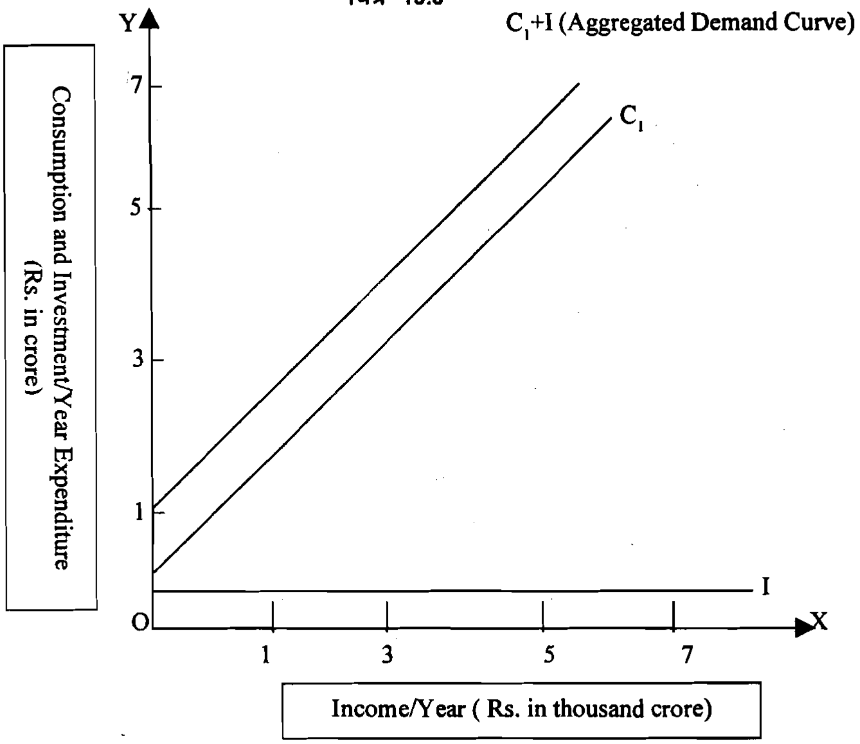

X–अक्ष पर आय और Y–अक्ष पर कुल व्यय दिखाया गया है। समग्र पूर्ति (AS) वक्र मूलबिन्दु से गुजरती हुई 45^0 रेखा द्वारा दिखाई गई। यदि समग्र पूर्ति शून्य हो तो राष्ट्रीय आय भी शून्य होगी और यदि समग्र पूर्ति 200 करोड़ रुपये हो तो राष्ट्रीय और कुल व्यय भी 200 करोड़ रुपये होगा। चूँकि Y = C+S इसलिए समग्र पूर्ति–वक्र की वक्र Y = C+S भी कहा जाता है। समग्र पूर्ति को चित्र 15.9 में दिखाया गया है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

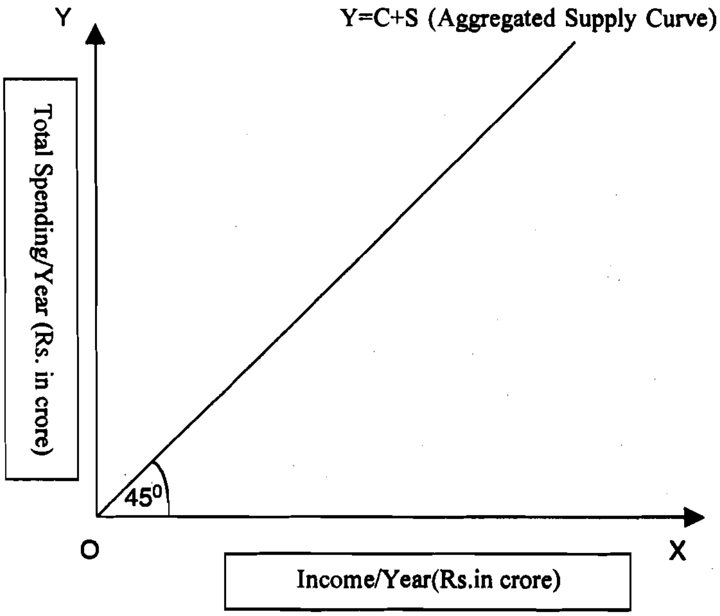

15.4.5.3 आय निर्धारण

समग्र माँग (AD) एवं पूर्ति एवं समग्र पूर्ति (AS) के अर्थ एवं घटकों की चर्चा के बाद, हम अब आय निर्धारण की प्रक्रिया को समझ सकते हैं। इसको हम एक सूची अथवा चित्र

की सहायता से समझा सकते हैं। तालिका क्रमांक 15.9 में समग्र माँग एवं समग्र पूर्ति को कालम 5 और 6 में दिखाया गया है।

5000 करोड़ के आय स्तर पर समग्र माँग एव समग्र पूर्ति समान है। इस समय स्तर पर उपभोग व्यय 4800 करोड़ रुपये तथा बचत 200 करोड़ रुपये है। स्वायत्त निवेश जो कालम 4 में दिखाया गया है, 200 करोड़ रुपये है जो समग्र माँग को 5000 करोड़ रुपये बनाता है। इस आय स्तर पर केवल समग्र माँग (AD) एवं समग्र पूर्ति (AI) ही समान नहीं है बल्कि बचत (S) एवं निवेश (I) भी समान है। वस्तुओं के स्टॉक में कोई परिवर्तन नहीं होता और संतुलन आय में परिवर्तन की कोई प्रवृत्ति नहीं होती। इस प्रकार से राष्ट्रीय आय का संतुलन स्तर 5000 करोड़ रुपये है।

तालिका 15.9

समग्र माँग एवं समग्र पूर्ति

आय प्रतिवर्ष	उपभोग व्यय प्रतिवर्ष	बचत प्रतिवर्ष	निवेश प्रतिवर्ष	समग्र माँग प्रतिवर्ष	समग्र पूति प्रतिवर्ष	स्टॉक में परिवर्तन	आय का व्यवहार
1	2	3	4	5	6	7	8
0	800	-800	200	1000	0	-1000	वृद्धि
1000	1600	-600	200	1800	1000	-800	वृद्धि
2000	2400	-400	200	2600	2000	-600	वृद्धि
3000	3200	-200	200	3400	3000	-400	वृद्धि
4000	4000	0	200	4200	4000	-200	वृद्धि
5000	4800	200	200	5000	5000	-200	संतुलन
6000	5600	400	200	5800	6000	200	कमी
7000	6400	600	200	6600	7000	400	कमी

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

आय स्तर साम्य यानि 5000 करोड़ रुपये से कम होने पर (AD), (AS) से अधिक हो जाएगा। उदाहरण के लिए यदि आय स्तर 3000 करोड़ रुपये होते, (AD) 3400 करोड़ रुपये होगी जबकि (AS) मात्र 3000 करोड़ रुपये होगी। समग्र माँग के समग्र पूर्ति से अधिक होने पर, उद्यमियों को अपने उत्पादन के लिए, लागत से अधिक कीमत प्राप्त होती है। इस प्रकार से आय में वृद्धि होगी, और जब तक AD और AS समान हो जाएँ, यह वृद्धि जारी रहेगी। तालिका क्रमांक 15.9 से देखा जा सकता है कि पूर्ण रोज़गार से कम आय होने पर (जैसे 3000 करोड़ रुपये) नियोजित निवेश (200 करोड़ रुपये) नियोजित बचत (200 करोड़ रुपये) से अधिक हे। यह आय में वृद्धि का कारण बनता है। जब तक S और I समान हों।

जब आय संतुलन आय से अधिक हो तो (AD), (AS) से कम हो जाएगी। उदाहरण के लिए, यदि आय का स्तर 6000 करोड़ हो तो समग्र माँग 5800 करोड़ रुपये जबकि समग्र पूर्ति 6000 करोड़ रुपये होगी। समग्र माँग की यह कमी, वस्तुओं के स्टॉक में वृद्धि करेगी। इसके परिणामस्वरूप उत्पादन एवं आय कम होगी। जब तक AD = AS बचत और निवेश के संबंध में आय के 6000 करोड़ रुपये के स्तर पर नियोजित बचत नियोजित निवेश से अधिक होगी। (S = 400 करोड़ रुपये और I = 200 करोड़ रुपये) समग्र माँग सभी उत्पादित

वस्तुओं को खरीदने में सक्षम नहीं है। इसके परिणामस्वरूप वस्तुओं स्टॉक बढ़ेगा और इसका प्रभाव आय को कम करेगा। जब तक S और I समान न हो जाए।

चित्र क्रमांक 15.10 की सहायता से आय निर्धारण को बताया गया है। इस चित्र में निर्धारित आय का स्तर E बिन्दु पर है जहाँ AD = AS यह 5000 करोड़ रुपये है, कम आय के स्तर जैसे 4000 करोड़ पर से अधिक हो जाएगा और आय में वृद्धि का कारण बनेगा। दूसरी ओर, आय के स्तर संतुलन से कम हो जाएगी। आय में वृद्धि अथवा कमी की प्रवृत्ति E बिन्दु पर समाप्त होती है, जहाँ AD और AS के बराबर हो जाते हैं।

चित्र 15.10

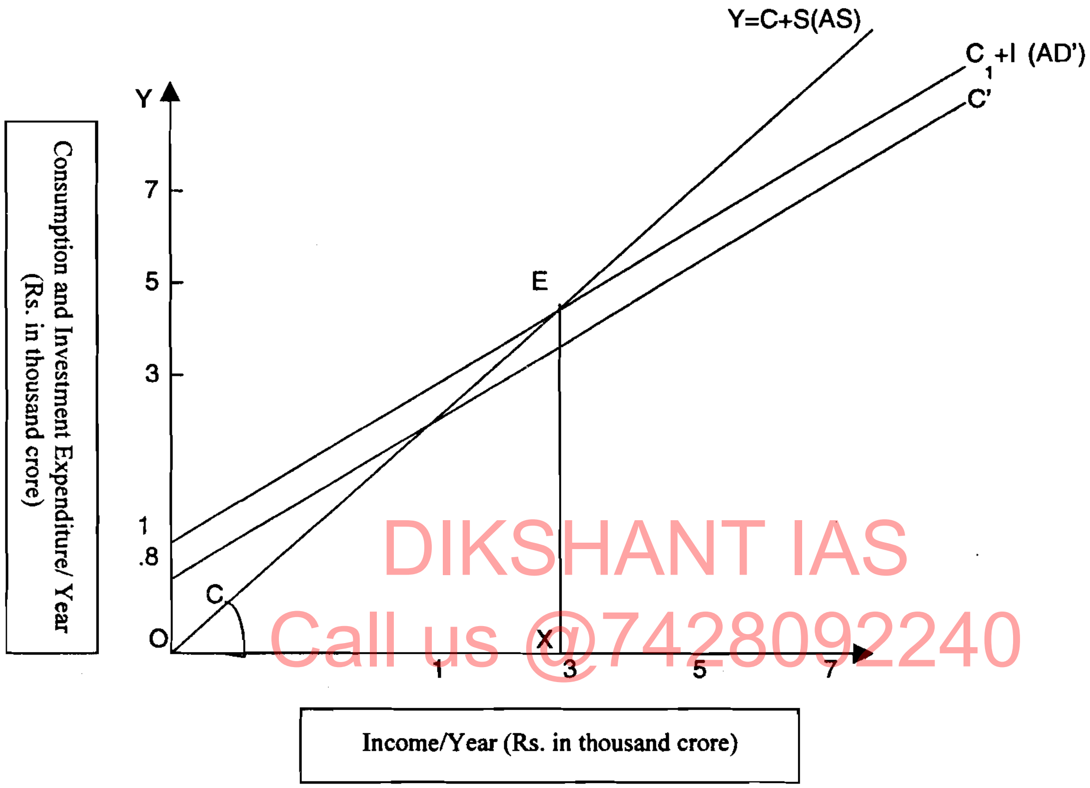

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

15.4.6 बचत एवं निवेश में समानता और वस्तु बाज़ार में संतुलन

चित्र 15.11

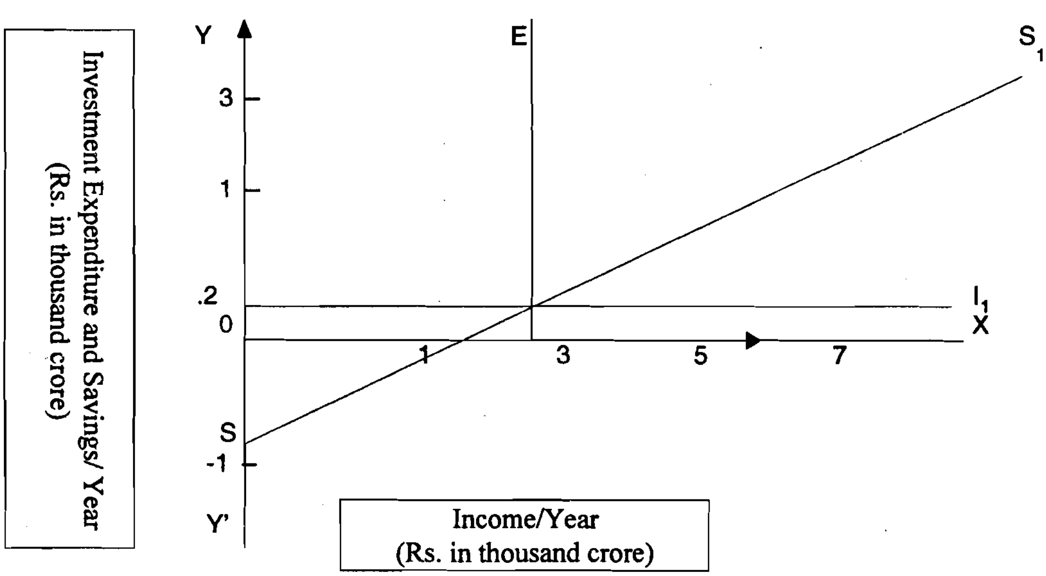

चित्र 15.11 में बचत और निवेश वक्रों की सहायता से संतुलन दिखाया गया है, बिन्दु E पर संतुलन निर्धारित होता है। आय के निम्न स्तर यानि 4000 करोड़ रुपये पर नियोजित निवेश, नियोजित बचत के अधिक होता है। यह आय के स्तर में वृद्धि करता है। और इसके बिल्कुल विपरीत होता है। जब आय का स्तर साम्य से अधिक हो जाता है। आय में परिवर्तन की प्रवृत्ति बिन्दु E पर समाप्त हो जाती है। जबकि S=1 इस प्रकार संतुलन की शर्त यह है कि नियोजित बचत और नियोजित निवेश के समान हो। संतुलन स्तर पर कुल या समग्र माँग की मात्रा को प्रभावी माँग (Effective Demand) भी कहते हैं। हमारे उदाहरण में यह 5000 करोड़ है।

15.4.7 वस्तु बाज़ार संतुलन में सरकार का समावेश

सरकारी माँग

समग्र माँग की तीसरा महत्त्वपूर्ण घटक है सरकारी माँग। आधुनिक कल्याणकारी राज्य में सरकार अपने विभिन्न कार्यों के लिए भारी मात्रा में उपभोक्ता एवं उत्पादक वस्तु खरीदती है। यह फर्नीचर, स्टेशनरी, कम्प्यूटर, वाहन, सार्वजनिक वितरण के लिए आवश्यक वस्तुएँ, हथियार एवं गोला बारूद एवं कई अन्य प्रकार की वस्तुएँ, समाज की आवश्यकता की पूर्ति के लिए खरीदती है, आमतौर पर सरकारी खरीद किन्हीं विशेष आर्थिक कारणों से संबद्ध नहीं होती। वे कई प्रकार से सामाजिक राजनीतिक कारणों अथवा विशिष्ट कारणों से निर्धारित होते हैं। सरकारी व्यय, देश के उत्पादन एवं रोज़गार की स्थिति एवं राजस्व से भी प्रभावित होता है। कई प्रकार के कारणों से प्रभावित होने के कारण, सरकारी माँग को किसी एक आर्थिक चर से संबद्ध नहीं किया जा सकता। चित्र 15.4.2 में सरकारी माँग को शामिल किया गया है। इसमें C_h रेखा के समानांतर एक और रेखा खींची गई है और हर समय स्तर पर और C_h रेखा के बीच की दूरी वास्तव में सरकारी उपभोग है। यह चित्र क्रमांक 15.12 में दिखाया गया है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 15.12

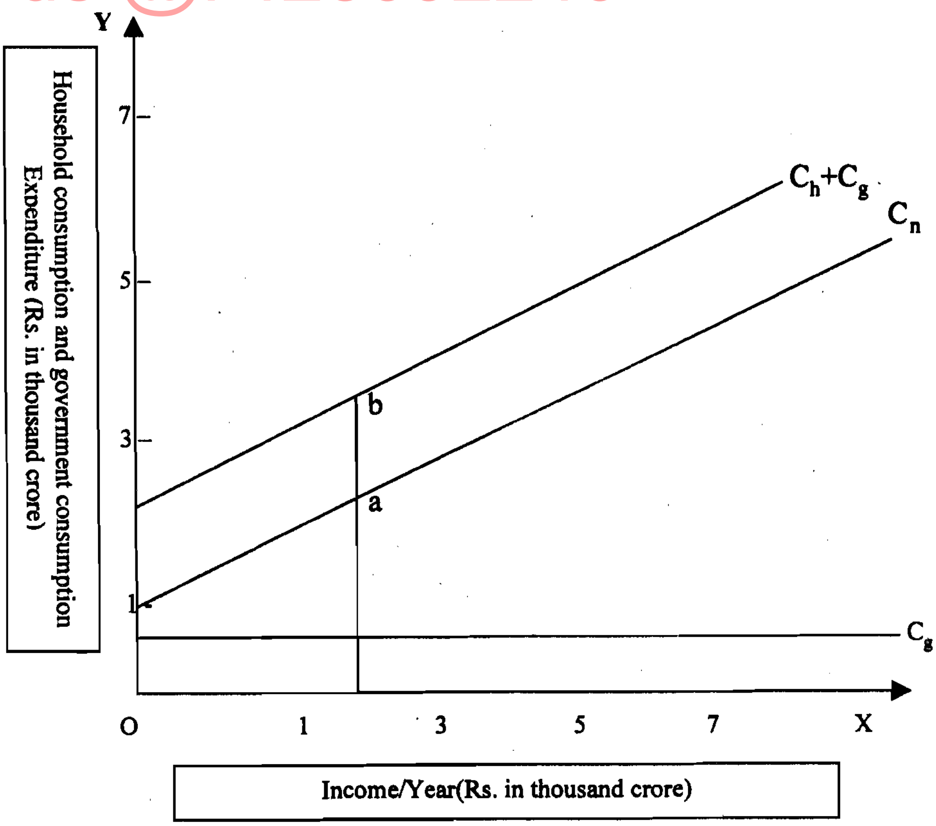

इस चित्र में, चित्र 15.11 के सामान ही C_h दिखाया गया है। लेकिन अब एक नई रेखा $C_h + C_g$ बनाई गई है। जिसमें परिवारों का उपभोग व्यय तथा सरकारी उपभोग व्यय दोनों शामिल हैं। उदाहरण के लिए आय स्तर के 2000 करोड़ रुपये के स्तर पर, पारिवारिक उपभोग 2000 करोड़ रुपये दिखाया गया है और सरकारी उपभोग ab के समान है। इस प्रकार से कुल उपभोग 2000 b है (=2000 a+ab) इसी प्रकार से हम विभिन्न स्तरों पर $C_h + C_g$ प्राप्त करते हुए $C_h + C_g$ रेखाओं के बीच की दूरी सरकारी व्यय प्रदर्शित करती है। $C_h + C_g$ रेखा C_h के समानांतर होने से अभिप्राय यह है कि सरकारी व्यय का स्तर स्थिर है तथा आय के स्तर में वृद्धि के साथ बदलता नहीं है।

अर्थव्यवस्था में कुल माँग $C_h + C_g + I$ है, जिसे चित्र 15.13 में दिखाया गया है। उपरोक्त चित्र में दिखाया गया है कि जब आय स्तर 2000 करोड़ रुपये हो तो उपभोग व्यय 2000 a है सरकारी व्यय ab है और निवेश bc है। इस प्रकार 2000 करोड़ रुपये के आय पर समग्र माँग 2000 a+ab+bc है यानि 2000c है।

पुनः $C_h + C_g + I$ रेखा, $C_h + C_g$ के समानांतर है क्योंकि निवेश को आय स्तर से स्वतंत्र माना गया है। आय निर्धारण में सरकारी उपभोग व्यय के प्रवेश का मतलब है कि बचत जो कि एक प्रकार का रिसाव है, वह निवेश तथा सरकारी उपभोग व्यय (जो कि दोनों भरण हैं) के योग के बराबर हो। यह बनाया नहीं गया है। पाठक स्वयं इसे एक अभ्यास के रूप में कर सकता है और संतुलन आय को समझाने वाला चित्र बनाकर इसकी विवेचना कर सकता है।

पाठक चित्र 15.11 में सरकारी यानि व्यय को शामिल करके, साम्य आय का स्तर प्राप्त करने का प्रयास कर सकता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 15.13

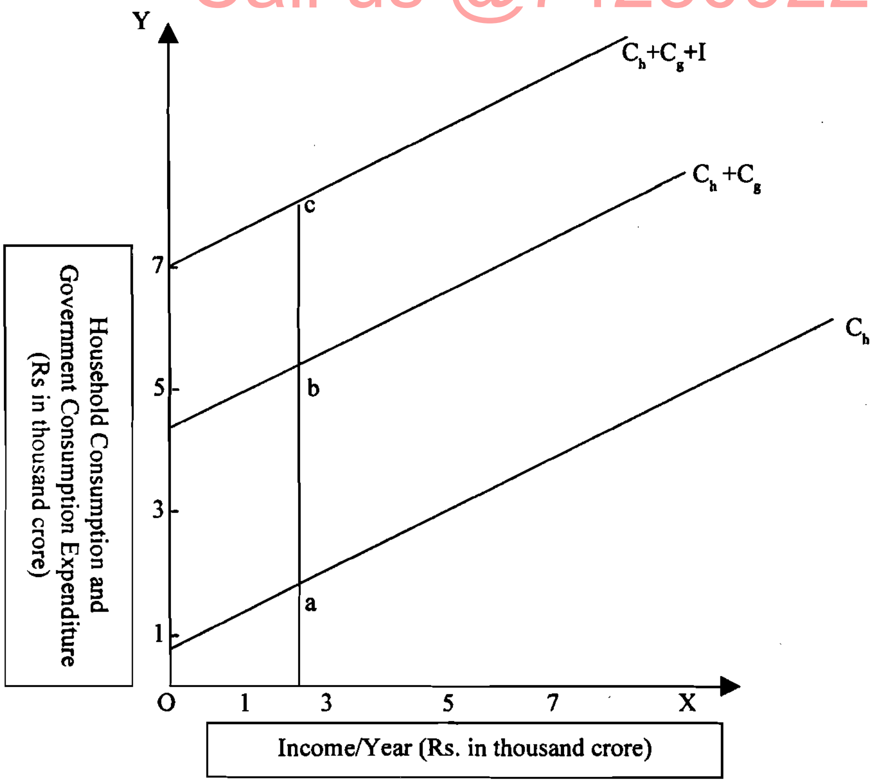

15.4.8 वस्तु बाज़ार संतुलन में शेष विश्व का प्रवेश

शुद्ध विदेशी माँग

आधुनिक अर्थव्यवस्थाएँ खुली अर्थव्यवस्थाएँ हैं। वे कई प्रकार की वस्तुओं और सेवाओं का आयात एवं निर्यात करती है। किसी भी देश के उत्पादों की विदेशियों द्वारा माँग, उसके निर्यात कहलाते हैं। जबकि विदेशी वस्तुओं की देश में माँग, आयात होते हैं। निर्यात एवं आयात का अंतर शुद्ध निर्यात होते हैं और वह देश के उत्पादों की विदेशों से शुद्ध माँग होती है। समग्र माँग का चौथा घटक उसकी विदेशी माँग है। यह कई तत्त्वों पर निर्भर करती है जैसे विभिन्न देशों में वस्तुओं की लागत की भिन्नता, लोगों की आय एवं उनकी रुचि, सरकार की व्यापारिक नीतियाँ, विदेशी विनिमय दर, पूँजी का अंतरराष्ट्रीय आवागमन इत्यादि। ये तत्त्व भिन्न प्रकार के हैं तथा आयात एवं निर्यात को जटिल प्रकार से प्रभावित करते हैं। इसके अतिरिक्त किसी भी देश का विदेशी व्यापार ग़ैर–आर्थिक कारणों से भी प्रकाशित हो सकता है। जैसे राजनीतिक समीकरण, व्यापार गुट की सदस्यता इत्यादि। सब कारणों से शुद्ध विदेशी माँग के व्यवहार का स्पष्ट रूप से अनुमान लगाना संभव नहीं होता।

किसी भी देश के निर्यात उस देश की आय पर निर्भर नहीं होते क्योंकि कितना होगा। वस्तुओं की गुणवत्ता एवं प्रतियोगात्मक कीमतें सहित कई अन्य बातों करते हैं। इसलिए निर्यात को बाहरी चर के रूप में लिया जा सकता है और आय के स्तर से अप्रभावित माना जाता है। दूसरी ओर आयात आय पर निर्भर होते हैं। हम कह सकते हैं। कि $M = mY$ जहाँ M आयात भी बढ़ाता है। यदि हम शुद्ध निर्यात की बात कर यानि निर्यात घटा आयात तो पाते हैं कि जैसे–जैसे आय बढ़ती है, आयात बढ़ते जाते हैं। और निर्यात दिए जाने पर शुद्ध निर्यात निरंतर घटते हैं। $C_h + C_g + I$ रेखा में शुद्ध निर्यात का सम्मिलित कर सकते हैं और इस प्रकार से समग्र माँग में शुद्ध निर्यात सम्मिलित होंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 15.14

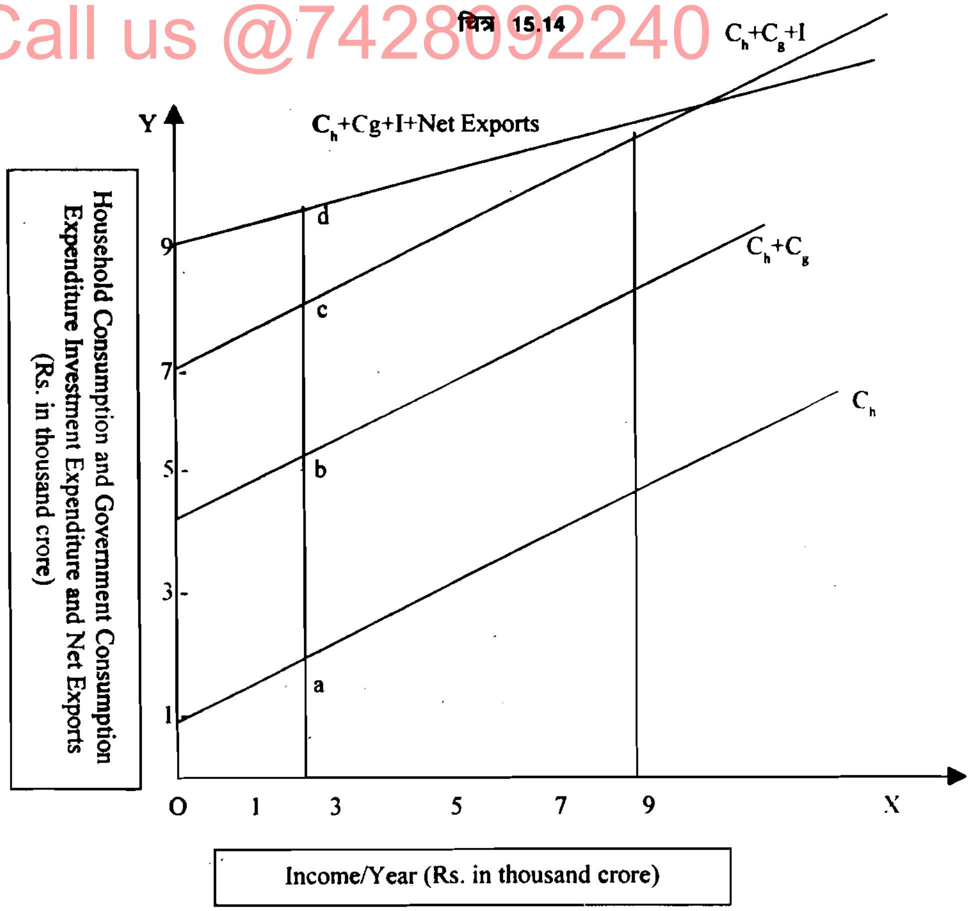

चित्र 15.14 को ध्यानपूर्वक देखने से पाते हैं कि बाकि सब दिय होने पर चित्र 15.13 में केवल एक नया तत्त्व शामिल किया गया है और वह है शुद्ध निर्यात। आय 2000 होने पर, परिवारों का उपभोग व्यय 2000a है, सरकारी उपभोग व्यय ab है और bc निवेश व्यय है। 2000 के माँग स्तर पर अर्थव्यवस्था की समग्र माँग होगी 2000 a + ab + bc + cd = 2000 d समग्र माँग-वक्र प्राप्त करने हेतु, ऐसा हमें हर आय स्तर पर करनाा होगा, जिसको $c_h + C_g + I$ रेखा द्वारा दिखा सकते हैं।

ध्यान देने योग्य है $\dot{C}_h + C_g + I$ की निर्यात रेखा एवं $C_h + C_g + I$ रेखा के बीच अंतर लगातार घटता है क्योंकि शुद्ध निर्यात व्यय आय के स्तर के बढ़ने के साथ-साथ घटता जाता है।

निर्यात भरण की भाँति कार्य करते हैं। जबकि आयात, रिसाव की तरह चूँकि आय के संतुलन स्तर को प्राप्त करने के लिए भरण एवं रिसाव बराबर होने चाहिए, हम पाते हैं कि परिवारों की उपभोग माँग व्यय + स्वतंत्र सरकारी उपभोग व्यय + स्वतंत्र निवेश व्यय + निर्यात व्यय (जो सभी के समान हो तो ही राष्ट्रीय आय संतुलन प्राप्त होगा।

पाठकों को राष्ट्रय आय का संतुलन प्राप्त करने हेतु शुद्ध निर्यात व्यय को सम्मिलित करने का प्रयास करना चाहिए।

बोध प्रश्न 1

1) (i) जहाँ माँग (केवल गृहस्थ उपभोग एवं सरकारी उपभोग) एवं 45° रेखा एक–दूसरे को काटती है वहाँ राष्ट्रीय आय का संतुलन क्यों निर्धारित होता है? संक्षेप में लिखिए।

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

ii) उपयुक्त चित्र बनाइए और प्रक्रिया दिखाइए कि जब बचत, निवेश से अधिक होती है तो आय कम होती है। (माना कि कोई सरकार अथवा विदेशी व्यापार नहीं है)

....

....

....

....

....

iii) जब शून्य आय स्तर पर, उपभोग भी शून्य हो तो और सीमांत उपभोग प्रवृत्ति स्थिर हो तो उपभोग वक्र किस प्रकार का होगा?

....

....

....

....

....

2) यदि उपभोग फलन, मूल बिन्दु से गुजरने वाली एक सरल रेखा हो तो बताइए कि आय उपभोग की औसत प्रवृत्ति एवं उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति किस प्रकार से प्रदर्शित करेंगे। क्या वे एक–दूसरे के समान होंगे?

....

....

....

....

....

....

3) यदि शून्य आय स्तर पर उपभोग में वृद्धि हो जाए और उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति स्थिर हो तो चित्र की सहायता से आय में वृद्धि दिखाई (माना कि कोई निवेश सरकारी व्यय एवं निर्यात व्यय नहीं है।)

....

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

15.5 आय के संतुलन में परिवर्तन

15.5.1 परिवर्तन किन कारणों से

समग्र माँग AD में वृद्धि अथवा कमी स्वाभाविक रूप से संतुलन आय को प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए समग्र माँग के में वृद्धि आय स्तर को बढ़ाएगी जबकि इसमें कमी का विपरीत प्रभाव होगा। समग्र माँग में परिवर्तन स्वतंत्र निवेश, सरकारी उपभोग व्यय एवं निर्यात व्यय में परिवर्तन के फलस्वरूप होता है।

15.5.2 निवेश गुणक (The Investment Multiplier)

समग्र माँग में वृद्धि के प्रभाव को हर आय स्तर पर समझने के लिए मान लीजिए कि स्वतंत्र निवेश 200 करोड़ से बढ़कर 400 करोड़ रुपये हो जाता है। समग्र माँग में परिवर्तन तालिका क्रमांक 15.5.2.1 में दिखाया गया है। समग्र माँग में वृद्धि होने पर संतुलन आय 5000 करोड़ रुपये से बढ़कर 6000 करोड़ हो जाती है। इस प्रकार से निवेश में 200 करोड़ रुपये की वृद्धि आय में 1000 करोड़ रुपये की वृद्धि करती है, अन्य शब्दों में निवेश में परिवर्तन का आय पर गुणकीय प्रभाव पड़ता है। इस गुणकीय प्रभाव को हम निवेश गुणक कहते हैं। हमारे उदाहरण में निवेश में 200 करोड़ रुपये की वृद्धि से आय में 1000 करोड़ रुपये की वृद्धि होती है जो 1000/200 = 5 का गुणक है।

तालिका 15.5.2.1

समग्र माँग एवं समग्र पूर्ति तालिका (करोड़ रुपये में)

आय (Y) प्रतिवर्ष	उपभोग (C) प्रतिवर्ष	बचत (S) प्रतिवर्ष	निवेश (I) प्रतिवर्ष	समग्र माँग प्रतिवर्ष	समग्र पूर्ति प्रतिवर्ष	स्टॉक व्यवहार	आय में परिवर्तन
1	2	3	4	5	6	7	8
0	800	–800	400	1200	0	–1200	वृद्धि
1000	1600	–600	400	2000	1000	–1000	वृद्धि
2000	2400	–400	400	2800	2000	–800	वृद्धि
3000	3200	–200	–400	3600	3000	–600	वृद्धि
4000	4000	0	400	4400	4000	–400	वृद्धि
5000	4800	200	400	5200	5000	–200	वृद्धि
6000	5600	400	400	6000	6000	0	संतुलन
7000	6400	600	400	6800	7000	200	कमी

यानि $\Delta I = \Delta Y - \Delta C$ एवं $K = \frac{\Delta Y}{\Delta I}$, अथवा $\frac{\Delta I}{\Delta Y} = \frac{\Delta Y}{\Delta Y} = \frac{\Delta C}{\Delta Y} = 1 - MPC$

DIKSHANT IAS

अथवा $K = \frac{1}{1 - MPC} \Rightarrow K = \frac{1}{MPS}$

Call us @7428092240

निवेश अथवा समग्र माँग में परिवर्तन एवं MPC अथवा MPS का मूल्य दिए जाने पर हम गुणक का आकार पता लगा सकते हैं। MPC का मूल्य अधिक अथवा MPS का मूल्य कम होने पर गुणक का आकार, अधिक होगा। जैसा कि तालिका 15.5.2.2 में दिखाया गया है।

जैसा तालिका में दिखाया गया है। समग्र माँग में वृद्धि आय में गुणकीय वृद्धि करती है, समग्र माँग में कमी से आय में गुणकीय कमी भी होती है। दूसरे शब्दों में गुणक समग्र माँग में वृद्धि या समग्र माँग में कमी होने की दिशाओं में काम करता है।

तालिका 15.5.2.2

निवेश गुणक या आकार

MPC	MPS	K
1	2	3
1.0	0	अनंत
0.9	0.1	1.0
0.8	0.2	5
0.7	0.3	10/3
0.6	0.4	2.5

0.5	0.5	2
0.4	0.6	10/6
0.3	0.7	10/7
0.2	0.8	10/8
0.1	0.9	10/9
0	1	1

समग्र माँग में दी गई वृद्धि आय में वृद्धि को चित्र में दिखाया गया है।

चित्र 15.15

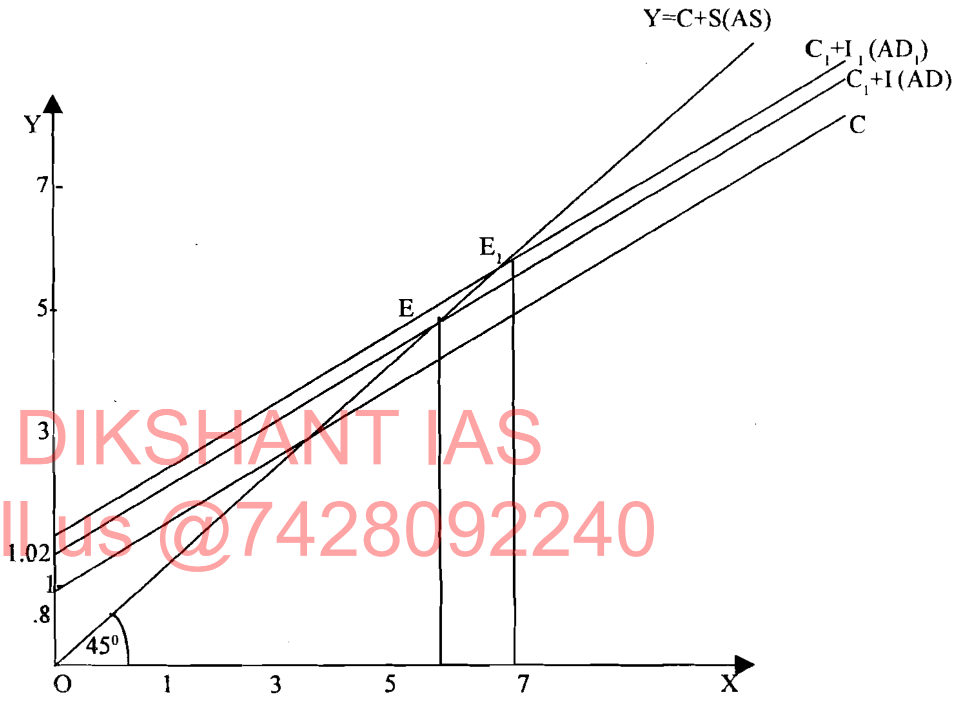

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

निवेश में वृद्धि से AD वक्र C_1+I से C_1+I_1 की ओर खिसक जाता है। संतुलन बिन्दु भी E से E_1 की ओर खिसकाता है और संतुलन आय 5000 करोड़ रुपये से बढ़कर 6000 करोड़ रुपये हो जाती है। K का आकार 1000/200 = 5 है।

उपरोक्त तालिका में दिखाया गया है कि निवेश गुणक K का आकार MPC अथवा MPS पर निर्भर करता

$$K = \frac{\Delta Y}{\Delta I}$$

जहाँ K = गुणक का आकार

ΔY = आय में वृद्धि

ΔI = निवेश में वृद्धि

K पहले से हो 1/1-MPC के बराबर दिखाया गया है। यदि MPC का मूल्य अधिक है। तो निवेश गुणक का मूल्य भी अधिक होगा। उदाहरण के लिए यदि MPC = .5, गुणक K, 2 होगा। और यानि MPC = .75, गुणक K 4 होगा।

K, $\frac{1}{MPS}$. X के समान भी है। यदि MPS का मूल्य अधिक है तो निवेश गुणक का मूल्य कम होगा। उदाहरण के लिए यदि MPS = .5, गुणक K, 2 होगा और यदि MPS =.75, गुणक K, 4/3 = 1.33 होगा।

निवेश गुणक को राष्ट्रीय आय के समीकरण का उपयोग करते हुए, अलग ढंग से भी निकाला जा सकता है। खंड 6 की चर्चा में आप जानते हैं कि Y = C+I जहाँ C उपभोग व्यय है, I निवेश व्यय है और Y राष्ट्रीय आय है। हम यहाँ कोई सरकार नहीं और न ही शेष विश्व में लेन–देन कोई होता है। उपभोग का स्तर आय पर निर्भर करता है। वास्तव में C और Y के बीच प्रत्यक्ष संबंध होता है। इस संबंध के C = cY के रूप में दिखाया जा सकता है। जहाँ c, MPC है और इस प्रकार से Y = cY+I जहाँ I आय के स्तर के असंबद्ध दिया गया है। या कह सकते हैं।

$Y - cY = I$

या $Y(1-c) = I$

या $Y = \frac{1}{(I-c)}I$ ....(i)

अब यदि में ΔI के बराबर वृद्धि होती है तो आय में वृद्धि ΔY के बराबर होगी। हम समीकरणों ΔI और ΔY को ला सकते हैं।

हमें प्राप्त होता है

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

$$= Y + \Delta Y = \frac{1}{(1-c)}(I + \Delta I)$$

$$Y = \frac{1}{1-c} \times I,$$

$$= \frac{1}{1-c}I + \frac{1}{1-c}\Delta I$$

परिभाषा के अनुसार

अतः

$Y = \frac{1}{I-c}I$ से कट जाएगा

और हमारे पास रहेगा।

$$\Delta Y = \frac{1}{1-c}\Delta I$$

या ΔY/ΔI = 1(1-c) = K

15.5.3 सरकारी व्यय गुणक (The Government Expenditure Multiplier)

निवेश गुणक की ही भाँति हम 15.5.2 में दी गई प्रक्रिया के अनुसार ही जानकारी व्यय गुणक भी निकाल सकते हैं। जिसे $\Delta Y/\Delta G$ के बराबर परिभाषित किया गया है। सरकारी व्यय गुणक के मूल्य निम्न प्रकार से निकाला जा सकता है।

$Y = C + I + G$ .... (i)

$C = cY$

$C = cY$ को (i) में लगाने पर

$Y = cY + I + G$

$Y - cY = I + G$

$Y(1 - c) = I + G$

$Y = 1/(1-c)\ [I + G]$ .... (ii)

G में ΔG से वृद्धि करने पर, हम पाते हैं,

$Y + \Delta Y = 1/(1-c)\ [I+G+\Delta G]$ .... (iii)

अथवा, $Y + \Delta Y = [1/(1-c)\ [I+G]] + \Delta G/(1-c)$

DIKSHANT IAS

$Y = 1/(1-c)\ [I + G]$, जैसा (ii) में दिखाया गया है। समीकरण में बाईं और Y दाईं ओर $1/(1-c)\ [I+G]$ आपस में कट जाएँगे और हमारे पास रहेगा,

Call us @7428092240

$\Delta Y = 1/(1-c)\ [\Delta G]$

$\Delta Y/\Delta G = 1/(1-c)$

देखा जा सकता है कि निवेश गुणक का मूल्य सरकारी व्यय गुणक के समान है। पाठक को चित्र की सहायता से सरकारी व्यय गुणक दिखाने का प्रयास करना चाहिए।

15.5.4 कर गुणक (Tax Multiplier)

अभी तक हमने राष्ट्रीय आय निर्धारण में करको सम्मिलित नहीं किया। कर लगाने का एक तरीका, एक मुश्त कर है। इसके अतिरिक्त आय के स्तर के अनुसार कर की दर लागू की जा सकती है। यानि तय किया जा सकता है कि आय का कितना प्रतिशत करके रूप में लिया जाएगा। उदाहरण के लिए यदि +.2 तो इससे अभिप्राय है कि आय का 20% कर के रूप में एकत्र किया जाएगा। कर राजस्व tY होगा।

यदि मानें कि एक मुश्त कर T लगाया गया है तो इससे अभिप्राय है गृहस्थों के पास अब $Y - T$ प्रयोज्य आय बचेगी जिसको उपभोग व्यय हेतु उपभोग कर सकते हैं। अथवा बचत कर सकते हैं। यदि C उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति हो तो उपभोग व्यय C, $C(Y - T)$ के बराबर होगा।

अब कर गुणक से $\Delta Y/\Delta T$ परिभाषित करते हैं। जहाँ ΔY आय में परिवर्तन और कर ΔT में परिवर्तन दिखाते हैं। स्पष्ट है कि कर लगाने पर लोगों के पास उपभोग प्रयोज्य आय

कम हो जाएगी। जब सीमांत उपभोग प्रवृत्ति दी गई हो तो कर गुणक को निम्न तरीके से निकाला जा सकता है—

$Y = C + I + G$ .... (i)

$C = c(Y - T)$

इसको समीकरण (i) में के मूल्य के लिए स्थानापन्न करते हुए—

$Y = c\ (Y - T) + I + G \Rightarrow$

$Y = cY - cT + I + G \Rightarrow$

$Y - cY = - cT + I + G \Rightarrow$

$Y\ (1-c) = -cT + I + G \Rightarrow$

$Y = [- cT+I + G]/\ (1 - c)$ ....(ii)

आइए अब T को हम ΔT से बढ़ाते हैं, जो आय को ΔY के बराबर घटाएगी। ΔT तथा ΔY को समीकरण में लाने पर

$Y + \Delta Y = 1^* [-c(T + \Delta T) + I + G]/(1-c) \Rightarrow$

$Y + \Delta Y = 1^* [-cT + -c\Delta T + I + G]/(1-c) \Rightarrow$

$Y + \Delta Y = 1^* [[-cT + I + G]\ \ (c\Delta T)]/1 - c)$

DIKSHANT IAS

चूँकि $Y = [-cT + I + G] / (1-c)$ जैसा (ii) में दिया गया है हम बाईं ओर की Y को दाईं ओर के $[-cT + I + G] / (1-c)$ से काट सकते हैं। हमारे पास बचता है—

Call us @7428092240

$\Delta Y = -c\Delta T/ (1-c) \Rightarrow$

$\Delta Y/\Delta T = -c/ (1-c)$ ....(iii)

अत्यधिक ध्यान देने योग्य है कि सरकारी व्यय गुणक का मूल्य कर गुणक के मूल्य से अधिक है। उदाहरणार्थ यदि c = .5 कर गुणक -1 है जबकि सरकारी व्यय गुणक 2 है। इसका अभिप्राय है स्पष्ट है कि यदि सरकार अपने व्यय को 10 करोड़ से बढ़ाती है तो राष्ट्रीय आय में 20 करोड़ (10×2) रुपये की वृद्धि होगी (जब उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति 0.5 है) लेकिन यदि सरकार 10 करोड़ रुपये का अतिरिक्त कर लगाए तो राष्ट्रीय आय 10 करोड़ (10×1) से कम होगी।

सरकारी व्यय गुणक से कर गुणक का मूल्य कम होने का कारण यह है कि जब कर लगाया जाता है तो सारा कर उपभोग को कम करके नहीं चुकाया जाता बल्कि इसको आंशिक रूप से उपभोग में कमी तथा आंशिक रूप से बचत में कमी करके चुकाया जाता है। जैसा कि हम जानते हैं कि बचत आय परिवर्तन प्रक्रिया में रिसाव की भाँति कार्य करती है। इसलिए राष्ट्रीय आय, कर लगाने पर कम घटती है जितना कि वह सरकारी व्यय बढ़ाने पर बढ़ती है।

15.5.5 संतुलित बजट गुणक (Balanced Budget Multiplier)

यदि आपने 15.5.4 को भली भाँति समझा हो तो आपको बजट गुणक प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। संतुलित बजट गुणक के अनुसार यदि सरकारी व्यय में कुछ वृद्धि, माना ΔG की वृद्धि होती है और इस वृद्धि को अतिरिक्त एक मुश्त कर ΔT लगाकर पूरा

किया जाता है। इस प्रकार $\Delta G = \Delta T$ तो संतुलित बजट गुणक के बराबर होगा। यह इस प्रकार से दिखाया जा सकता है :

$\Delta G = \Delta T$

परिभाषा के अनुसार

$Y = C + I + G$ ....(i)

$C = c\,(Y - T)$

(i) में का c मूल्य लगाने पर हम पाते हैं :

$Y = c\,(Y - T) + I + G \Rightarrow$

$Y = cY - cT + I + G \Rightarrow$

$Y - cY = -cT + I + G \Rightarrow$

$Y(1 - c) = -cT + I + G$ ....(ii)

अब हम G में ΔG की और T में की ΔT वृद्धि करते हैं और $\Delta T = \Delta G$ लेते हैं :

$Y + \Delta Y = [-c(T + \Delta T) + I + G + \Delta G] / (1-c)$

$Y + \Delta Y = [-c(T - c\Delta T + I + G + \Delta G] / (1-c) \Rightarrow$

$Y + \Delta Y = \{[-cT + I + G] / (1-c)\} - \{c\Delta T/(1-c)\} + \{\Delta G/(1-c)\}$

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चूँकि $\Delta T = \Delta G$ इसलिए हम ΔT के स्थान पर ΔG लिखते हैं।

$Y + \Delta Y = \{[-cT + I + G] / (1-c)\} - \{c\Delta G/(1-c)\} + \{\Delta G/(1-c)\}$

चूँकि (ii) से हमें ज्ञात है कि

$Y = [-cT + I + G]/(1-c)$

इसलिए हम बाएँ हाथ के Y को

$[-cT + I + G] / (1-c)]$ से काट सकते हैं और हमारे पास रह जाता है

$\Delta Y = \{-c\Delta G/(1-c)\} + \{\Delta G/(1-c)\} \Rightarrow$

$\Delta Y = [\Delta G/(1-c)]/(1-c)$

$\Delta Y/\Delta G = (1-c)\,/(1-c) = 1$ .... (iii)

इसी का हम संतुलित बजट गुणक कहते हैं। हम संतुलित बजट गुणक से स्पष्ट है कि यदि सरकार अपने व्यय को 10 करोड़ रुपये बढ़ाने और इस व्यय को 10 करोड़ रुपये एक मुश्त कर से पूरा करे तो राष्ट्रीय आय 10 करोड़ रुपये से बढ़ेगी। यदि सरकारी व्यय में यह वृद्धि अतिरिक्त कर लगाए बिना की जाए तो राष्ट्रीय आय में वृद्धि 10 करोड़ से अधिक होगी। राष्ट्रीय आय में वृद्धि की मात्रा, उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति पर निर्भर करेगी।

15.5.6 निर्यात गुणक (Export Multiplier)

अब हम निर्यात गुणक की चर्चा के लिए तैयार हो चुके हैं। जैसा कि 15.4.8 में बताया

गया कि निर्यात बाहरी रूप से दिए गए हैं और आयात राष्ट्रीय आय (Y) के बढ़ते हुए फलन हैं। आयात फलन को सरल रूप से M = mY के रूप में रखा जा सकता है। (जैसा कि 15.4.8 में बताया गया है)। आइए अब हम निर्यात गुणक को प्राप्त करने का प्रयास करें जो कि ΔY/Δε है, जिसमें ΔY आय में परिवर्तन एवं Δε निर्यात में परिवर्तन को इंगित करता है। इसको निम्न प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है।

$Y = C + I + G + \varepsilon - M$..................*(i)*

$C = c\,(Y-T)$

(i) में C एवं M के मूल्य लगाने प ये प्राप्त होता है :

$Y = c\,(Y-T) + I + G + \varepsilon - mY \;\Rightarrow$

$Y = cY - cT + I + G + \varepsilon - mY \;\Rightarrow$

$Y = cY - mY + -cT + I + G + \varepsilon \Rightarrow$

$Y = [-cT + I + G + \varepsilon]\ [1-c + m]$ ....*(ii)*

आइए अब हम ε का मूल्य Δε से बढ़ाते हैं, जो राष्ट्रीय आय में ΔY की वृद्धि करता है :

$Y + \Delta Y = [-cT + I + G + \varepsilon + \Delta\varepsilon] / [1-c + m] \;\Rightarrow$

$Y + \Delta Y = [(-cT + I + G + \varepsilon) / (1-c + m)] + \Delta\varepsilon / [1-c + m]$ .... *(iii)*

चूँकि $Y = [-cT + I + G + \varepsilon] / [1-c + m]$

DIKSHANT IAS

जैसा कि (ii) में बताया गया है, हम बाईं ओर Y को $[-cT + I + G + \varepsilon] / [1-c + m]$ से काट सकते हैं। हमें प्राप्त होता है :

Call us @7428092240

$\Delta Y = \Delta\varepsilon/[1-c + m] \quad\Rightarrow$

$\Delta Y/\Delta\varepsilon = 1/[1-c + m]$ .... *(iv)*

अब हम एक उदाहरण लेते हैं, जहाँ Δε, 10 करोड़ रुपये हैं, c का मूल्य .5 है और m का मूल्य .3 है तो गुणक होगा :

$1/(1 - .5 + .3) = 1/(1 - .2)$

$= 1/.8$

$= 1.25$

इससे अभिप्राय यह है कि निर्यात में 10 करोड़ रुपये की वृद्धि राष्ट्रीय आय में 12.50 करोड़ रुपये की वृद्धि करेगी। जैसा कि आप स्पष्ट रूप से देख सकते हैं कि निर्यात गुणक का मूल्य, निवेश गुणक एवं सरकारी व्यय गुणक दोनों से अधिक है।

बोध प्रश्न 2

1) (i) मान लीजिए कि निवेश व्यय 100 करोड़ रुपये बढ़ता है, और MPC = .33 तो राष्ट्रीय आय में कितनी वृद्धि होगी?

....

....

ii) यदि व्यय में 100 करोड़ रुपये और सरकारी व्यय में 100 करोड़ रुपये की वृद्धि हो और MPC=.33 तो राष्ट्रीय आय में कितनी वृद्धि होगी?

iii) यदि सरकारी व्यय में 100 करोड़ व्यय की समस्त वृद्धि को अतिरिक्त एक मुश्त कर लगाकर पूरा किया जाए राष्ट्रीय आय में कितनी वृद्धि होगी जबकि MPC=.33

2) निर्यात गुणक का मूल्य निवेश गुणक से कम क्यों होता है?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3) आप हस्तांतरण आय गुणक कैसे निकालेंगे, जबकि हस्तांतरण एक मुश्त दी जाए? (हस्तांतरण आय से हमारा अभिप्राय है सरकार द्वारा परिवारों को नकद धन प्रदान करना, जैसे वृद्धावस्था पैंशन।)

15.6 ब्याज दर, आय स्तर तथा वस्तु बाज़ार मे सतुलन

15.4.3 मे आपने देखा कि उपभोग व्यय आय का बढ़ता हुआ फलन है। (ब्याज दर जिसको हमने दिया हुआ माना वह भी उपभोग व्यय को प्रभावित कर सकता है)। उसी प्रकार से 15.4.4 में आपने देखा कि निवेश व्यय ब्याज दर का घटता हुआ फलन है (जबकि आय को दिया माना गया था, वह भी निवेश व्यय को प्रभावित कर सकती है)। उपभोग व्यय और निवेश दोनो मिलाकर समग्र मांग होती है, और इस प्रकार सामूहिक पूर्ति दिए जाने पर, राष्ट्रीय आय का सतुलन निर्धारित होता है। समग्र माँग के बारे में चर्चा करते हुए आइए अब हम सरकारी उपभोग व्यय एवं शुद्ध निर्यात व्यय को दिया गया मानते है, हालांकि उनको भी हम आसानी से अपने विश्लेषण मे सम्मिलित कर सकते हैं।

आइए अब हम ब्याज दर तथा राष्ट्रीय आय को स्वतंत्र चर मानते हुए वस्तु बाजार मे संतुलन को लेते

हैं। ऐसे कई बिन्दु होंगे जहाँ बचतें रिसाव, निवेश (भरण) के बराबर होंगी तथा इस प्रकार से वस्तु बाज़ार अथवा राष्ट्रीय आय के कई संतुलन हमें प्राप्त होंगे। हमें अर्थव्यवस्था का संतुलन तब तक प्राप्त नहीं हो सकता जब तक मुद्रा बाज़ार की संतुलन स्थिति को इस विश्लेषण में सम्मिलित नहीं किया जाता। मुद्रा बाज़ार के संतुलन को इकाई 16 में सम्मिलित किया जाएगा। इकाई 17 में मुद्रा बाज़ार की संतुलन स्थिति को इस विश्लेषण में सम्मिलित नहीं किया जाता। मुद्रा बाज़ार के संतुलन को इकाई 16 में सम्मिलित किया जाएगा। इकाई 17 में मुद्रा बाज़ार तथा वस्तु बाज़ार दोनों के संतुलन को लेते हुए अर्थव्यवस्था के संतुलन का विश्लेषण होगा। इससे पहले कि हम ब्याज दर एवं राष्ट्रीय आय के स्वतंत्र चर मानते हुए वस्तु बाज़ार के संतुलन को लें, यह आवश्यक है कि हम चार भाग वाले रेखा चित्र की विधिवत् चर्चा करें।

15.6.1 IS वक्र की व्युत्पत्ति तथा चार भाग वाला रेखाचित्र

इसमें हम चार भाग वाले रेखाचित्र का प्रयोग करते हैं। जो आपस में संबद्ध होते हैं। एक चर का मूल्यरेखा चित्र के एक भाग में प्राप्त होता है जिसे चित्र के दूसरे भाग में प्रयुक्त करते हुए, दूसरे चर का मूल्य प्राप्त किया जाता है और इसको अन्य भाग में प्रयुक्त किया जाता है। और अंततः हमें दो स्वतंत्र चरों के साथ संतुलन स्थिति प्राप्त होती है।

चित्र 15.16

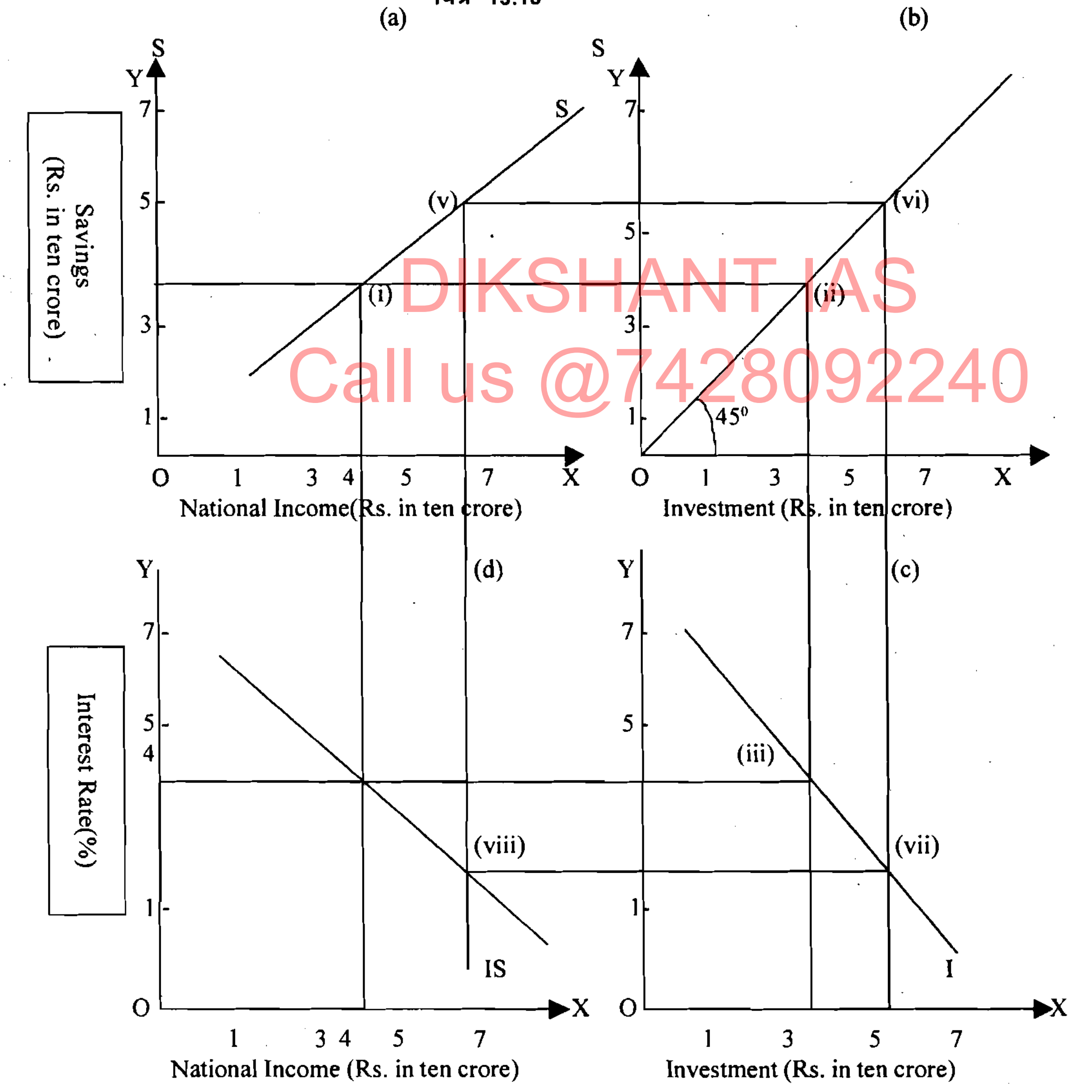

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 15.16 की व्याख्या

इस चित्र में भाग (a) बचत एवं राष्ट्रीय आय के वृद्धिमान संबंध को प्रदर्शित करता है जहाँ बचत को Y–अक्ष पर और राष्ट्रीय आय को X–अक्ष पर दिखाया गया है। बिन्दू (i) पर जबकि राष्ट्रीय आय 4000 करोड़ रुपये है, बचतें 30 करोड़ है, दूसरे भाग (b) में बचतों

को Y–अक्ष पर और निवेश को X–अक्ष पर दिखाया गया है। संतुलन के लिए आवश्यक शर्त यह है कि तभी संभव है जब हम मूलबिन्दु पर से 45° रेखा बनाएँ और बिंदु (ii) पर 30 करोड़ रुपये की बचतों को 30 करोड़ रुपये के निवेश के समान दिखाएँ। भाग (c) में निवेश को X–अक्ष पर और Y–अक्ष पर ब्याज दर दिखाई गई है। (15.4.4 में ब्याज दर निवेश निर्धारित करती है। इस 30 करोड़ के निवेश के लिए ब्याज दर का 4 प्रतिशत पर होना आवश्यक है जैसा बिन्दु (i) पर दिखाया गया है।

अंततः भाग (d) में ब्याज दर को Y–अक्ष पर जबकि राष्ट्रीय आय को X–अक्ष पर दिखाया गया है। भाग (c) से प्राप्त 4 प्रतिशत ब्याज दर और भाग (a) से 4000 करोड़ रुपये की राष्ट्रीय आय को बिन्दु (ii) से इंगित करता है। और इस बिंदु पर बचत और निवेश की समानता भी है। इस प्रकार हमें IS वक्र पर एक बिन्दु प्राप्त होता है, लेकिन अभी से हमें वक्र IS की ढाल का पता नहीं है। यानि यह ऊपर की और ढाल वाली है, नीचे की ओर ढाल वाली है अथवा X–अक्ष के समानांतर है अथवा Y–अक्ष के समानांतर है।

IS वक्र की ढाल को जानने के लिए हमें IS वक्र पर एक अन्य बिन्दु प्राप्त करना होगा यह 5000 करोड़ की राष्ट्रीय आय के स्तर पर भाग (a), (b), (c) और (d) में क्रमशः बिंदु (v), (vi), (vii), (viii) प्राप्त करके कर सकते हैं। इस प्रकार से हमें IS वक्र पर यानि भाग (d) में (vi) एवं (viii) दो बिन्दु प्राप्त हुए। इसी प्रकार हम IS वक्र पर अन्य बिन्दुओं की एक शृंखला प्राप्त कर सकते हैं। इन सब बिन्दुओं को मिलाकर हमें IS वक्र की रूपरेखा प्राप्त होती है।

हम देखते हैं कि IS वक्र उन बिंदुओं को प्रदर्शित करता है जहाँ एक अर्थव्यवस्थाओं में एवं राष्ट्रीय आय के विभिन्न योग हमें बचत एवं निवेश की समानता देते हैं। पूरे IS वक्र पर वस्तु बाज़ार संतुलन में होता है।

DIKSHANT IAS

15.6.2 IS वक्र द्वारा वस्तु बाज़ार की कमी एवं आधिक्य

Call us @7428092240

आइए अब हम IS वक्र की सहायता से एवं अतिरेक को देखें। यह चित्र 15.17 में किया गया है। IS वक्र की ढाल बचत वक्र एवं निवेश वक्र की ढाल पर निर्भर करती है। निवेश वक्र की ढाल दिए होने पर यदि बचत वक्र की ढाल अधिक है तो IS वक्र की ढाल अधिक होगी। उसी प्रकार बचत वक्र दिए होने पर निवेश वक्र की ढाल अधिक होने पर IS वक्र की ढाल अधिक होगी।

चित्र 15.17

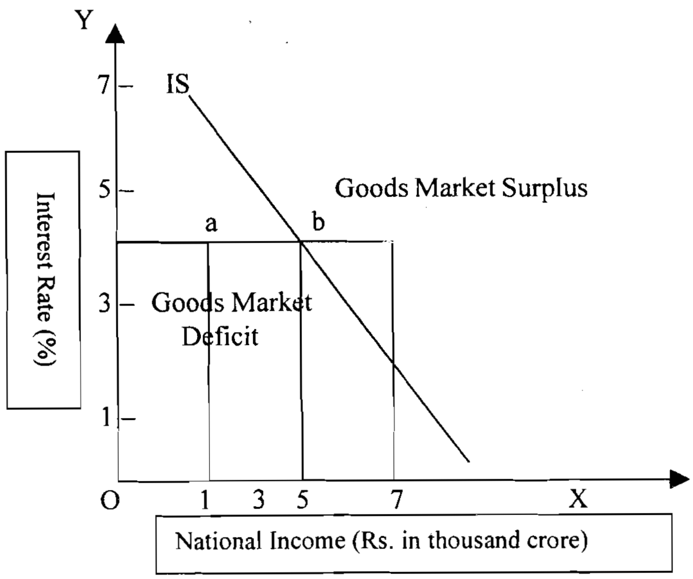

आइए अब हम चित्र 15.17 में बिन्दु (a) को लें। जैसाकि हमें मालूम है कि चित्र 15.16 में पूरे IS वक्र पर बचत एवं निवेश ब्याज दर एवं राष्ट्रीय आय के विभिन्न जोड़ों पर

बराबर है। बिंदु (a) पर ब्याज दर 4% है, जबकि राष्ट्रीय आय 5000 करोड़ रुपये है। लेकिन हमें पता है कि वस्तु बाज़ार के बिन्दु पर जबकि संतुलन के लिए आवश्यक आय 3000 करोड़ रुपये हो। इसलिए (a) अधिक होने पर, बचत अधिक होगी (जो कि आवश्यक निवेश से अधिक होगी)। चूँकि ब्याज दर 4% है इसलिए निवेश बदलता नहीं है जबकि बचत, निवेश से अधिक है। बचत का निवेश से अधिक होने से अभिप्राय यह भी है कि समग्र पूर्ति, समग्र माँग से अधिक है, इसलिए वस्तु बाज़ार में आधिक्य की स्थिति होगी। वास्तव में IS से ऊपर के बिंदु पर वस्तु बाज़ार में आधिक्य होगा।

इसी तर्क से बिंदु (b) पर राष्ट्रीय आय 1500 करोड़ रुपये है जो 3000 करोड़ रुपये से कम है, इसलिए बचतें निवेश से कम है, जिसका अभिप्राय यह है कि वस्तु बाज़ार में कमी की स्थिति है, क्योंकि सामूहिक माँग, सामूहिक पूर्ति से अधिक है। वास्तव में वक्र से नीचे के हर बिंदु बाज़ार में कमी की ओर इंगित करता है। केवल IS वक्र पर ही वस्तु बाज़ार में संतुलन होता है (यानि कमी न आधिक्य की स्थिति)।

15.6.3 IS वक्र में खिसकाव

यदि हम चित्र 15.16 का अध्ययन करें और भाग (a) में बचत वक्र को बाईं ओर खिसका दें जिसका अभिप्राय यह है कि हर राष्ट्रीय आय के स्तर पर अधिक बचत होगी, और यदि हम चार भाग वाले चित्र को प्रयोग करें हमें यह परिणाम प्राप्त होगा कि IS वक्र बाईं ओर खिसकेगा। उसी प्रकार यदि बचत वक्र दाईं ओर खिसकता तो IS वक्र भी दाईं ओर खिसकेगा। यहाँ स्वाभाविक मान्यता यह है कि निवेश वक्र में कोई परिवर्तन नहीं होता।

उसी प्रकार यदि हम भाग (c) में निवेश वक्र को दाईं ओर खिसकाएँ, जिससे अभिप्राय यह है कि ब्याज दर के हर स्तर पर अब अधिक निवेश होगा और फिर से चार भाग वाले चित्र का उपयोग करें तो IS वक्र दाईं ओर खिसकेगा। उसी तर्क से जब निवेश (I) वक्र भी बाईं ओर खिसकेगा। यहाँ स्वाभाविक मान्यता यह है कि बचत वक्र समान रहेगा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि IS वक्र की विधि के प्रयोग से यह इंगित किया गया है कि IS वक्र के दाईं ओर खिसकाव से, दिए गए ब्याज दर पर राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी और वृद्धि की सीमा इस निम्न सूत्र दी गई है :

$\Delta I \times 1/1 - MPC$

जहाँ ΔI निवेश में वृद्धि एवं MPC उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति की ओर इंगित करते हैं। हमें पहले से ज्ञात है कि 1/1-MPC निवेश में कमी जो IS वक्र के बाईं ओर खिसकाव से इंगित होता है, से राष्ट्रीय आय में कमी होगी और यह कमी भी $\Delta I \times 1/1-MPC$ द्वारा होगी।

बोध प्रश्न 3

1) बचत (S) वक्र और (IS) वक्र में क्या अंतर है?

....

....

....

....

....

....

2) (IS) वक्र कब Y–अक्ष के समानांतर होगा?

....

....

....

....

....

3) वस्तु बाज़ार में कमी ओर आधिक्य में वास्तव में क्या अभिप्राय है?

....

....

....

....

....

15.7 सारांश

इस इकाई में हमने आपको बताया कि किस प्रकार से राष्ट्रीय आय के संतुलन को निर्धारण होता है। राष्ट्रीय आय के संतुलन स्तर का निर्धारण और उसमें होने वाले परिवर्तनों को समझाते हुए सर्वप्रथम यह मान्यता रखी गई कि अर्थव्यवस्था में मात्र दो ही प्रकार की खर्च करने वाली इकाइयाँ–हैं परिवार एवं फर्में।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

आय प्रवाह में भरण एवं रिसाव की अवधारणाओं को आय के संतुलन को प्राप्त करने के लिए लिया गया। यह वस्तु बाज़ार के संदर्भ में किया गया और यह मान्यता रखी गई कि मुद्रा बाज़ार अस्तित्व में नहीं है।

समग्र माँग एवं समग्र पूर्ति की अवधारणा को सम्मिलित करके उन्हें भरण एवं रिसाव के साथ संबद्ध किया गया। उपभोग फलन एवं निवेश फलन के बारे में अलग से चर्चा 45^0 रेखा में संबद्ध करके आय के संतुलन को प्राप्त करने का प्रयास हुआ।

बाद में सरकार एवं शेष विश्व के लेन–देन को शामिल करके आय के संतुलन को प्राप्त करने का प्रयास हुआ। इसके बाद की माँग में आय के संतुलन में परिवर्तन पर चर्चा हुई इस संदर्भ में गुणक, सरकारी व्यय गुणक, कर गुणक, संतुलित बजट गुणक तथा निर्यात गुणक की अवधारणाओं की चर्चा हुई।

अंत में IS वक्र की व्युत्पत्ति के लिए चार भाग वाले चित्र पर चर्चा हुई। IS वक्र विधि द्वारा वस्तु बाज़ार में कमी एवं आधिक्य की अवधारणाओं को शामिल किया गया। IS वक्र की ढाल एवं खिसकाव को निर्धारित करने वाले तत्त्वों की भी चर्चा हुई।

15.8 शब्दावली

पूर्वधारणाएँ : जब हम किसी सिद्धांत का प्रतिपादन करते हैं तो उस सिद्धांत को आसानी से समझने के लिए कुछ चरों एवं परिस्थितियों को दिया गया मान लेते हैं। इनको पूर्वधारणाएँ कहते हैं। सिद्धांत को अधिक वास्तविक बनाने के लिए बाद में इन पूर्वधारणओं में ढील दी जाती है।

स्वतंत्र व्यय : परिवार उपभोग व्यय, सरकारी उपभोग व्यय अथवा निवेश व्यय जो आय के स्तर से संबद्ध नहीं हो, उसे हम स्वतंत्र व्यय कहते हैं।

समग्र माँग : यह पूरी अर्थव्यवस्था के मूल्य वस्तुओं एवं सेवाओं की माँग है। परिवारों, सरकार फर्म एवं शेष विश्व द्वारा माँग का जोड़ है। इस समग्र माँग के विभिन्न घटकों के निर्धारक तत्त्व भिन्न–भिन्न हैं।

समग्र पूर्ति : उत्पादन के साधनों के स्तर के दिए होने पर अर्थव्यवस्था का संभव उत्पादन क्षमता के प्रयोग से कुल उत्पादन का मूल्य।

उपभोग की औसत प्रवृत्ति : यह C/Y है जहाँ C से अभिप्राय है उपभोग व्यय का स्तर तथा Y से अभिप्राय है राष्ट्रीय आय का स्तर।

स्वतंत्र निवेश : यह निवेश का वह स्तर है जो आय के स्तर नहीं है। पूँजी की सीमांत दक्षता के दिए होने पर यह ब्याज दर से निर्धारित होता है।

उपभोग का निर्वाह स्तर : यह शून्य आय स्तर पर उपभोग व्यय का स्तर है।

संतुलित बजट गुणक : यह $\Delta Y/\Delta G$ है जहाँ ΔG सरकारी उपभोग में परिवर्तन है जो कर राजस्व में परिवर्तन के समान है और ΔY राष्ट्रीय आय में परिवर्तन है। यदि कर एक मुश्त है तो $\Delta Y/\Delta G = \Delta T$ का मूल्य 1 होगा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उपभोक्ता वस्तुएँ : ये वे वस्तुएँ हैं। जिनकी माँग गृहस्थों द्वारा अपनी इच्छाओं की प्रत्यक्ष पूर्ति के लिए होती है।

उपभोग फलन : यह उपभोग व्यय एव आय के स्तर के बीच संबध प्रदर्शित करता है यानि $C = f(Y)$ जहाँ C उपभोग है Y आय है और f उनके बीच फलनात्मक संबध प्रदर्शित करता है। $C = C_a + cY$ उपभोग फलन का एक सरल रूप है जहाँ Ca शून्य आय पर उपभोग का स्तर बताती है और cY उपभोग की सीमात प्रवृत्ति है।

आश्रित चर : यह वह चर है जिसका मूल्य स्वतंत्र चर के मूल्य पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए $C = f(Y)$ मे C उपभोग है जो Y यानि स्वतंत्र चर पर निर्भर करता है।

वस्तु बाज़ार में कमी : यह वह स्थिति है जब कीमत स्तर दिए जाने पर अर्थव्यवस्था में समग्र माँग, समग्र पूर्ति से अधिक होती है।

आय का संतुलन स्तर : यह वह आय स्तर है जहाँ भरण रिसाव के समान है या समग्र माँग और समग्र पूर्ति समान है।

अपेक्षित आय : वे आय जो एक मशीन में निवेश के द्वारा उसकी संभावित आयु में उत्पादित वस्तुओं के विक्रय होने अपेक्षित हों।

निर्यात : घरेलू उत्पादन का यह भाग जो शेष विश्व द्वारा खरीदा जाए।

वस्तु बाज़ार में संतुलन : यह वह परिस्थिति है जहाँ समग्र माँग, समग्र पूर्ति के समान है और आय प्रवाह में भरण रिसावों के समान है।

विनिमय दर : यह वह दर है जिस पर घरेलू मुद्रा का विदेशी मुद्रा का विनिमय होता है।

अतिरिक्त क्षमता : यह वह स्थिति है जब मशीन की लगाई गई क्षमता का पूरा उपयोग नहीं होता। यह मूल रूप से मशीन की लगाई गई क्षमता के उपयोग के लिए प्रभावी माँग की कमी अथवा पूरक संसाधनों की कमी के कारण होता है।

चार भाग वाला रेखाचित्र : यह चार रेखाचित्रों को एकत्र करके बनता है जहाँ एक रेखाचित्र में प्रयुक्त चर को दूसरे चित्र में भी उपयोग किया जाता है ताकि अर्थव्यवस्था में संतुलन प्राप्त किया जा सके।

पूर्ण रोज़गार आय स्तर : संसाधनों के पूर्ण उपयोग से वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन द्वारा सृजित आय का स्तर।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

संसाधन बाज़ार : यह वह बाज़ार है जहाँ उत्पादन के साधन भूमि, क्षम, पूँजी एवं उद्यम एक निश्चित कीमत पर खरीदें एवं बेचे जाते हैं।

फर्में : वे इकाइयाँ जो वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाह को बढ़ाती है और सेवाएँ प्रदान करती है।

सरकारी उपभोग व्यय : वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन एवं सामूहिक उपभोग के लिए सरकार द्वारा व्यय। इसमें कर्मचारियों का पारिश्रमिक तथा अन्य फर्मों से मध्यवर्ती वस्तुओं की खरीद शामिल होते हैं।

सरकारी व्यय गुणक : यह $\Delta Y/\Delta G$ है जहाँ ΔY राष्ट्रीय में परिवर्तन है एवं ΔG सरकारी व्यय में परिवर्तन को प्रदर्शित करते हैं। इसका मूल्य 1/1-MPC है जहाँ MPC सीमांत उपभोग प्रवृत्ति है।

वस्तु बाज़ार : वस्तुओं और सेवाओं की समग्र माँग एवं समग्र पूर्ति को दर्ज करने वाला बाज़ार।

परिवार : वे इकाइयाँ जो फर्मों द्वारा वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन के लिए साधन सेवाऐं प्रदान करती है।

आय-व्यय रेखा : यह 45^0 रेखा है जिसमें X–अक्ष प्रदर्शित आय और Y–अक्ष पर प्रदर्शित व्यय समान होती है।

प्रेरित निवेश : यह आय के स्तर अथवा उत्तर में परिवर्तन पर निर्भर निवेश का स्तर है।

आयोजित बचत : वे बचतें जो आय पर निर्भर करती है।

निवेश गुणक : यह $\Delta Y/\Delta I$ है जहाँ ΔY राष्ट्रीय आय तथा ΔI निवेश में परिवर्तन को प्रदर्शित करती है। यह 1/(1 - MPC) के समान है जहाँ MPC उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति है।

प्रेरित व्यय : आय के उत्तर तथा इसमें परिवर्तन से संबद्ध उपभोग एवं निवेश व्यय।

निवेश वस्तुएँ : एक अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं के अतिरिक्त प्रवाह को सृजित करने हेतु प्रयुक्त वस्तुएँ।

स्वतंत्र चर : वे चर जो दिए गए हों अथवा स्वतंत्र रूप से निर्धारित होते हैं।

स्वतंत्र भरण : स्वतंत्र चरांकों में परिवर्तन जो प्रवाह को सृजित करता है।

45^0 वक्र : यह ब्याज दर एवं आय स्तर के विभिन्न संयोजनों को प्रदर्शित करते हुए उन बिन्दुओं का समूह है जहाँ बचतें और निवेश समान होती है।

निवेश बचत : यह निवेश एवं मुख्यतः पूँजी की सीमांत दक्षता दिए जाने पर निर्धारक तत्वों के बीच फलनात्मक संबंध प्रदर्शित करता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

आयात फलन : $M = M_a + _mY$ जहाँ आयात को M द्वारा, आय के स्तर से संबद्ध आयात को Ma द्वारा तथा आयात की सीमांत प्रवृत्ति ($\Delta M / \Delta Y$) को द्वारा तथा राष्ट्रीय आय को Y द्वारा इंगित किया गया है।

रेखीय संबंध : स्वतंत्र तथा निर्भर चरों के बीच का वह संबंध जो एक सरल रेखा द्वारा दिखाया जा सके।

45^0 रेखा : अक्ष केन्द्र से 45^0 का कोण बनाने वाली रेखा। इस रेखा के सभी बिन्दुओं पर X–अक्ष के अन्तर Y–अक्ष के अन्तरों के समान रहते हैं।

रिसाव : राष्ट्रीय आय के परिवर्तन की प्रक्रिया को मन्द करने वाले कारण। ये हैं : बचत, आयात, कर आदि।

मुद्रा बाज़ार : वह बाज़ार जहाँ मुद्रा की माँग और पूर्ति हो।

पूँजी की सीमांत दक्षता : एक विशेष बट्टाकृत मूल्य : पूँजी की आपूर्ति कीमत पूँजी की बट्टाकृत कीमत के समान हो।

सीमांत उपभोग प्रदूषित : यह $\Delta C / \Delta Y$ द्वारा पारिभाषित है। ΔC उपभोग में परिवर्तन का सूचक है तथा ¢Y आय में परिवर्तन दर्शाता है।

शुद्ध विदेशी माँग : यह आयात तथा निर्यात का अन्तर है।

गुणक	:	राष्ट्रीय आय या किसी अन्य समष्टिकारी चरांक में परिवर्तन ज्ञात करने के लिए उपयुक्त स्वतंत्र चर को जिस अंक से गुणा किया जाता है उसे ही गुणक कहते हैं।
सीमांत आयात	:	आय में वृद्धि के कारण आयात बढ़ने की प्रवृत्ति। इसे $\Delta M / \Delta Y$ द्वारा दिखाया जाता है।
वर्तमान मूल्य	:	किसी चर के संभावित मानों का बट्टाकृत योग ही उसका वर्तमान मूल्य है।
उत्पादन बाज़ार	:	वह बाज़ार जहाँ वस्तुओं और सेवाओं का व्यापार हो— जहाँ इनकी माँग तथा पूर्ति होती है।
उत्पादन क्षमता	:	तकनीकी ज्ञान तथा उत्पादन साधनों के पूर्व निश्चित स्तर पर अर्थव्यवस्था की वस्तुओं और सेवाओं का प्रवाह सृजित करने की क्षमता।
वास्तविक बाज़ार	:	यह वस्तु बाज़ार का ही दूसरा नाम है।
अल्पकालिक विश्लेषण	:	वह विश्लेषण जिसमें दीर्घकाल में प्रभावी चरों को दृष्टिगत कर दिया जाता है।
बचत	:	इसे Y-C द्वारा दिखाते हैं, Y राष्ट्रीय आय है तथा C उपभोग व्यय।
बचत निवेश समानता	:	यह वास्तविक बाज़ार की संतुलन स्थिति है इसके प्रयोजित बचत का स्तर प्रयोजित निवेश के समान होता है।
वस्तु बाज़ार में अधिपूर्ति	:	अर्थव्यवस्था में वस्तुओं की आपूर्ति उनकी माँग से अधिक होना।
कर	:	अर्थव्यवस्था के विभिन्न अभिकर्ता सरकार को जो भुगतान करने को बाह्य होते हैं उन्हें कर कहते हैं।
करों की दर	:	सरकार को चुकाए गए करों का आय से अनुपात।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

15.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Shapiro, Edward, 1984, *Macro Economic Analysis* (5th Ed.), Galgotia Publication, New Delhi (Ch. 4-8)

Ackley, Gardner, 1987, *Macro Economics: Theory and Policy*, Macmillan Publication Co..., INc., New York (Chapt. 6-12)

Branson, William, H, 1979, *Macro Economic Theory and Policy*, (2nd Edition), Harper and Row Publication, New York (Ch.-3, 10, 11, 15)

15.10 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

बोध प्रश्न 1

1) i) राष्ट्रीय का संतुलन स्तर उसी बिंदु पर तय होता है जहाँ समग्र माँग–वक्र 45° रेखा को काटती है। इसका कारण यह है कि इसी बिन्दु पर प्रयोजित बचत भी प्रयोजित निवेश के समान हो जाती है। इस बिन्दु से आगे या पीछे हटने का परिणाम होगा वस्तुओं के स्टॉक स्तर में बदलाव–जिसके कारण राष्ट्रीय आय परिवर्तन होकर पुनः संतुलन स्तर पर पहुँच जाती है।

ii) बिन्दु a पर निवेश = bc तथा बचत = ac। अतः बचत निवेश से अधिक है। इसका अर्थ है वस्तु का उत्पादन माँग से अधिक है अतः अगले चक्र में उत्पादन तथा साधन आयों में गिरावट शुरू हो जाएगी। यह क्रम तब तक चलता रहेगा। जब तक कि अर्थव्यवस्था पुनः पुराने स्तर पर नहीं पहुँच जाती जहाँ बचत निवेश के समान होती है। यहाँ यह कहा जा रहा है कि कीमत स्तर अपरिवर्तित रहता है।

iii) उपभोग वक्र का आकार रेखाचित्र 15.2 के अनुसार होगा

उपभोग फलन अक्ष केन्द्र से गुजरेगी तथा कोण द्वारा सी.मांत उपभोग प्रकृति ज्ञान होगी–जो स्थिर रहती है।

2) प्रश्न 1(iii) के चित्र पर फिर ध्यान दें। उसमें सीमांत उपभोग प्रकृति का मान कोण द्वारा दिखाया गया था। यहाँ औसत सीमांत प्रवृत्ति भी कोण द्वारा ही ज्ञातव्य है। अतः सीमांत एवं औसत उपभोग प्रवृत्तियाँ एक–दूसरे के समान हैं।

3) उपभाग 15.4.5 पढें और उत्तर दें

बोध प्रश्न 2

1) i) $\Delta Y = \Delta I \times 1/1\ (1\text{-MPC})$

$= 100 \times 1/(1\text{-}.033) = 100 \times 1/(0.66) = 151.5$ करोड़ रुपये

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ii) राष्ट्रीय आय अब भी 15.15 करोड़ रूप से बढ़कर जाएगी।

$\Delta Y/\Delta G\ (=\Delta T) = 1$

या : $\Delta Y = \Delta G\ (=\Delta T) \times 1$

$\Delta Y =$ 100 करोड़ रुपये

राष्ट्रीय आय 100 करोड़ बढ़ जाएगी।

2) $\Delta Y/\Delta E$ निर्यात गुणक है। इसका मान $1/(1\text{-MPC} + m)$ द्वारा निर्धारित होता है। दूसरी ओर निवेश गुणक का निर्धारण केवल $1/(1\text{-MPC})$ से ही हो जाता है। दोनों में यही अन्तर है।

$Y = C + 1 + G$

पर $C = c\,[Y + T_r] + G$ अतः

$Y = c[Y + T_r] + I + G$

अथवा $Y = cT + cT_r + I + G$

अतः $Y - cY = c\,T_r + I + G$

अथवा $Y(1-c) = c\,T_r + I + G$

अथवा $Y = [cT_r + I + G] / (1-c)$

हस्तांतरण में ΔT_r की वृद्धि से राष्ट्रीय आय ΔY भी बढ़ जाएगी।

अतः $Y + \Delta Y = [c(T_r + \Delta T_r) + I + G] / (1-c) \quad \Rightarrow$

$Y + \Delta Y = [(T_r + I + G) / (1-c)] + [c.\Delta T_r / (1-c)]$

क्योंकि

$$Y = \frac{1}{1-c}[cTr+1+G]$$

हम प्रत्येक पक्ष से काट सकते हैं।

$\Delta Y = c / (1-c) \times \Delta T_r$ अथवा $\Delta Y / \Delta T_r = c / (1-c)$

बोध प्रश्न 3

1) IS वक्र राष्ट्रीय बचत तथा राष्ट्रीय आय का संबंध दिखाती है। जबकि IS वक्र उन बिन्दुओं को दिखाती है जिन पर ब्याज दर व राष्ट्रीय आय के विभिन्न संयोजनों पर बचत निवेश के समान होती है।

2) यदि निवेश पर ब्याज की दर का कोई प्रभाव न हो तो IS वक्र Y–अक्ष के समानान्तर होगी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3) वस्तु बाज़ार में आधिक्य का अर्थ है बचत का निवेश से अधिक होना या समग्र आपूर्ति का समग्र माँग से ज़्यादा होना। इसी प्रकार वस्तु बाज़ार में कमी का अर्थ होगा। बचतों का निवेश से कम रह जाना या समग्र आपूर्ति का समग्र माँग से कम रह जाना।

इकाई 16 मुद्रा बाज़ार का संतुलन

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य
16.1 प्रस्तावना
16.2 मुद्रा की भूमिका
16.3 मुद्रा की आपूर्ति
16.4 मुद्रा की माँग
16.5 मुद्रा बाज़ार
  16.5.1 मुद्रा बाज़ार का अर्थ
  16.5.2 मुद्रा का संतुलन
  16.5.3 L-M वक्र और इसकी व्युत्पत्ति
  16.5.4 L-M वक्र का ढाल तथा खिसकान
  16.5.5 मुद्रा बाज़ार में आधिक्य तथा अभाव
  16.5.6 राष्ट्रीय आय के संतुलन स्तर के निर्धारण में L-M वक्र का महत्त्व
16.6 सारांश
16.7 शब्दावली
16.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
16.9 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा–संकेत

16.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप निम्नलिखित समझ सकते हैं :

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

- मुद्रा की पूर्ति आखिर क्या होती है;
- मुद्रा की माँग किन कारणों से होती है;
- मुद्रा बाज़ार से क्या अभिप्राय है;
- मुद्रा बाज़ार में संतुलन का क्या अर्थ है;
- L-M वक्र क्या है;
- L-M वक्र का ढाल कैसे निर्धारित होता है; तथा
- वे कारक कौन से हैं जिनके कारण L-M वक्र में खिसकाव आता है?

16.1 प्रस्तावना

यह इकाई मुद्रा बाज़ार से संबंधित है। यह बाज़ार वस्तु–बाज़ार के साथ मिलकर आय के संतुलन स्तर और ब्याज की दर का निर्धारण करता है। इसी कारण इसका अध्ययन आवश्यक समझा जाता है। वस्तु विनिमय में निहित कठिनाइयों के कारण ही मुद्रा का चलन प्रारंभ हुआ था। मुद्रा की आपूर्ति तथा माँग से हम आपको परिचित कराएँगे क्योंकि इन्हीं से मुद्रा बाज़ार में संतुलन का निर्धारण होता है। मुद्रा बाज़ार के संतुलन के साथ ब्याज की दरें एवं राष्ट्रीय आय के अनेक संयोजन जुड़े हो सकते हैं। इन्हीं से हम L-M वक्र की व्युत्पत्ति करेंगे तथा फिर उसके ढाल एवं खिसकन को निर्धारित करने वाले कारकों का विवेचन करेंगे।

16.2 मुद्रा की भूमिका

कोई ऐसी चीज़ जो लेन–देन में भुगतान के रूप में सामान्यतः स्वीकार्य हो उसे मुद्रा कहते हैं। इसका विनिमय के माध्यम क्रय–शक्ति के हस्तांतरण के लिए आमतौर पर प्रयोग होता है। जब मुद्रा का चलन नहीं था तो लोग वस्तुओं का लेन–देन करते थे (देखिए इकाई 18, भाग 18.11)। वस्तु विनिमय प्रणाली की कमियों का विस्तृत विश्लेषण हमने खंड 8 की इकाई 18 में किया है।

16.3 मुद्रा की आपूर्ति

मुद्रा की आपूर्ति एक स्टॉक है जिसे समय के एक निश्चित बिंदु पर मापा जाता है। इसका निर्धारण स्वतंत्र रूप से (मौद्रिक अधिकारियों द्वारा) होता है।

मुद्रा की आपूर्ति के माप

मुद्रा का माप संभव है। एक बार यह सहमति हो जाने पर कि मुद्रा की सैद्धांतिक परिभाषा क्या होगी, हम अनुभव के आधार पर उन चीज़ों की भी पहचान कर पाएँगे जो मुद्रा के रूप में कार्य करती हैं। फिर किसी भी समय बिंदु पर अर्थव्यवस्था में विभिन्न प्रकार की मुद्राओं की मात्रा भी मापी जा सकेगी। अलग–अलग समय पर इस प्रकार के मुद्रा माप द्वारा हम मुद्रा आपूर्ति की काल श्रृंखला (Time series) भी बना सकते हैं। यही कालांतर ज्ञान के आधार पर हम इस जानकारी का प्रयोग कर यह भी जान सकते हैं कि मुद्रा की आपूर्ति के परिवर्तनों का आय, कीमत स्तर, मज़दूरी दर, रोज़गार स्तर, ब्याज की दर तथा भुगतान शेष जैसे अनेक महत्त्वपूर्ण आँकड़ों पर क्या प्रभाव पड़ते हैं। साथ ही, हम यह भी जान सकते हैं कि निश्चित नीतिगत उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मुद्रा की आपूर्ति में परिवर्तनों को किस प्रकार नियंत्रित किया जाए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

मुद्रा की आपूर्ति के किसी भी माप के विषय में दो बातें शुरू से ही स्पष्ट रहनी चाहिए–

1) मुद्रा की आपूर्ति किसी समय बिंदु पर मुद्रा की उपलब्ध मात्रा का ही नाम है। इसका कारण यही है कि मुद्रा एक स्टॉक मद है। इसकी तुलना में कुछ मदें प्रवाह मदें होती हैं जिन्हें समय की एक निश्चित अवधि में मापा जाता है जैसे वास्तविक आय। लेकिन मुद्रा के स्टॉक प्रति वर्ष में होने वाले परिवर्तन को "प्रवाह" माना जाता है।

2) मुद्रा के स्टॉक से हमारा अभिप्राय जन–सामान्य के पास मुद्रा के परिणाम से ही होता है। यह स्टॉक अर्थव्यवस्था में कुल मुद्रा स्टॉक से कम होता है। जन–सामान्य में हम सरकार तथा बैंक व्यवस्था, जोकि मुद्रा के उत्पादक या निर्माता हैं, को छोड़कर शेष सभी आर्थिक इकाइयों जैसे परिवार, फर्में तथा संस्थाओं को सम्मिलित करते हैं।

मुद्रा की परिभाषा की दृष्टि से "सरकार" शब्द में हम केंद्र तथा सभी राज्य सरकारों और बैंक व्यवस्था में रिज़र्व बैंक और जमाएँ स्वीकार करने वाले अन्य सभी बैंकों को सम्मिलित करते हैं। इसका अर्थ होगा कि जन–सामान्य में हम सभी स्थानीय निकायों, ग़ैर–बैंक वित्तीय संस्थानों, ग़ैर–विभागीय सार्वजनिक उपक्रमों (जैसे हिन्दुस्तान स्टील, इण्डियन एयर लाइन्स आदि) तथा विदेशी बैंकों, सरकारों एवं अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष आदि को शामिल करेंगे (क्योंकि ये ग़ैर–देशीय संस्थाएँ भी भारत में भारतीय मुद्रा का एक भाग रिज़र्व बैंक के पास जमाओं के रूप में रखते हैं)। अतः मुद्रा की आपूर्ति के मानक मान में सरकार एवं बैंकिंग प्रणाली के पास मुद्रा आपूर्ति में सम्मिलित नहीं किया जाता।

इस विभाजन के पीछे एक ही मंतव्य है कि मुद्रा के स्टॉक के निर्माताओं तथा माँगकर्ताओं का स्पष्ट वर्गीकरण हो सके। मौद्रिक विश्लेषण और नीति निर्धारण की दृष्टि से यह स्पष्ट विभाजन बहुत आवश्यक समझा जाता है।

मुद्रा की आपूर्ति का माप एक आँकड़ों का मामला है। हम इस संदर्भ में भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा प्रस्तुत मुद्रा की आपूर्ति के विभिन्न मानों का अध्ययन करेंगे। वर्ष 1967–68 तक रिज़र्व बैंक मुद्रा की आपूर्ति का केवल एक मान–M ही प्रकाशित करता था। इसे जनता द्वारा धारित करेंसी तथा माँग जमाओं का योग कहा जाता था। अब इस मान को मुद्रा का एक संकुचित मान कहा जाने लगा है। वर्ष 1967–68 से ही रिज़र्व बैंक ने एक और व्यापक मुद्रापूर्ति मान के आँकड़े भी प्रकाशित करने शुरू किए हैं। इन्हें "कुल मुद्रागत संसाधन (aggregate monetary resources) का नाम दिया गया है। इसमें उपरोक्त संकुचित मान में जनता के पास सावधि जमाओं को भी जोड़ दिया गया। अप्रैल, 1977 में तो एक और परिवर्तन हुआ। उसके बाद से रिज़र्व बैंक दो के स्थान पर मुद्रा आपूर्ति के चार मानों के आँकड़े प्रकाशित करने लगा है। ये मान M_1, M_2, M_3 तथा M_4 हैं। इनमें से अब का M_1 उपरोक्त M है; और M_2 उपरोक्त कुल मुद्रागत संसाधन (Aggregate Monetary Resources) हैं। इन चार मानों की परिभाषाएँ इस प्रकार हैं–

M अथवा $M_1 = C + DD + OD$

$M_2 = M_1 +$ डाक घर बचत बैंकों के पास बचत जमाएँ

$M_3 = M_1 +$ बैंकों के पास शुद्ध सावधि जमाएँ

तथा $M_4 = M_3 +$ डाकघर बचत संगठन के पास सभी जमा राशियाँ (राष्ट्रीय बचत पत्रों को छोड़कर)

इन परिभाषाओं में–

C = जनता के पास **करेंसी**

DIKSHANT IAS

DD = बैंकों के पास शुद्ध **माँग जमाएँ**

Call us @7428092240

OD = रिज़र्व बैंक के पास **''आय जमाएँ''**

आइए मुद्रा की आपूर्ति के इन चारों मानों के घटकों पर भी एक निगाह डालें।

करेंसी में हम कागज़ी नोटों तथा सिक्कों को शामिल करते हैं। भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा ज़ारी की गई मुद्रा में कागज़ी मुद्रा की ही भरमार है। ये नोट 2 रुपये, 5 रुपये, 10 रुपये, 20 रुपये, 50 रुपये, 100 रुपये तथा 500 रुपये के होते हैं। भारत सरकार भी थोड़े बहुत एक रुपये के नोट छापती है। ये एक रुपये के नोट कागज़ के बने होने के बावजूद सिक्कों में ही सम्मिलित माने जाते हैं। मुद्रा आपूर्ति के छोटे सिक्के वाले घटक में एक रुपये तथा इससे कम मूल्य के सिक्के शामिल होते हैं। ये सिक्के भारत सरकार की प्रत्यक्ष मौद्रिक देयता है। लेकिन इन्हें सरकार के एजेंट के रूप में रिज़र्व बैंक ही संचलन में लाता है। यह इस कार्य के निमित्त सरकार द्वारा ज़ारी मुद्रा का भण्डार अपने कोष में रखता है तथा देश की शेष करेंसी एवं इस मुद्रा के बीच पूर्ण परिवर्तनीयता बनाए रखता है।

बैंकों के पास कुल माँग जमाएँ तो नहीं, पर शुद्ध माँग जमाएँ मुद्रा की आपूर्ति में शामिल होती हैं। इसका कारण यह है कि हमने मुद्रा की परिभाषा– जनता के पास मुद्रा से की है जबकि कुल माँग जमाओं में जनता द्वारा जमाओं के साथ–साथ अंत बैंक जमाएँ भी सम्मिलित रहती हैं। अंत बैंक जमाएँ ऐसी जमाएँ हैं जो एक बैंक द्वारा किसी और बैंक के पास रखी गई हैं क्योंकि ये जमाएँ जनता के पास नहीं होती, शुद्ध माँग जमाएँ ज्ञात करने के लिए इन्हें कुल माँग जमाओं में से घटा दिया जाता है। यहाँ ये बात भी दोहरा देना उचित ही होगा कि माँग जमाओं में हम चालू खातों में जमा राशियाँ तथा बचत खातों की राशियों का केवल उतना ही अंश शामिल करते हैं जितना चैक द्वारा निकाला जा सकता है।

रिज़र्व बैंक के पास अन्य जमाएँ ऐसी राशियाँ हैं जो केन्द्र एवं राज्य सरकारों तथा बैंकों आदि द्वारा (रिज़र्व बैंक के पास) जमा रखीं गई राशियों से भिन्न हैं। इनमें भारतीय औद्योगिक विकास बैंक जैसी अर्द्ध–सरकारी संस्थाओं, विदेशी केंद्रीय बैंकों एवं सरकारों, विश्व बैंक तथा अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष आदि द्वारा जमा की गई राशियाँ सम्मिलित रहती हैं। यदि आँकड़ों पर दृष्टि डालें तो यह जानकारी मिलती है कि ये अन्य जमाएँ मुद्रा की कुल आपूर्ति का एक प्रतिशत से भी कम अंश ही होती हैं। अतः अगर हम आगे के विश्लेषण में इन अन्य जमाओं की अनदेखी भी करें तो कोई विशेष अंतर नहीं पड़ेगा।

आइए अब मुद्रा की आपूर्ति के नए तथा पुराने मानों की तुलना करें।

1) M_1 तो M का ही संशोधिति रूप है। यह संशोधन अवधारणात्मक नहीं है– केवल व्याप्ति (coverage) का ही अंतर है। M_1 सहकारी बैंकिंग क्षेत्र को बेहतर व्याप्ति देता है। पुरानी शृंखला (M) में केवल राज्य–स्तरीय सहकारी बैंकों की माँग जमाएँ ही शामिल होती थीं, पर आँकड़ों की कठिनांई के कारण अन्य सभी स्तरों के सहकारी बैंकों की जमाएँ शामिल करना संभव नहीं था। पर नई शृंखला (M_1) में केंद्रीय सहकारी, राज्य सहकारी तथा यहाँ तक कि प्राथमिक सहकारी बैंकों के एक वर्ग को भी स्थान मिला है। प्राथमिक बैंकों के इस वर्ग में दो उपवर्ग हैं– (i) शहरी सहकारी बैंक; तथा (ii) वेतनधारी कर्मचारियों की बचत समितियाँ। इसी तरह से M_3 भी पुराने AMR (समग्र मौद्रिक संसाधनों) का ही संशोधित रूप है जिसमें सहकारी बैंकिंग क्षेत्र की बढ़ी हुई व्याप्ति शामिल है।

2) M_2 तथा M_4 की नई शृंखला डाकघर जमाओं को मुद्रा आपूर्ति में स्थान देने के लिए प्रारंभ की गई हैं।

3) रिज़र्व बैंक इन चारों मानों को तरलता के विभिन्न मानों के रूप में प्रस्तुत करता है। M_1 सबसे अधिक तरल है। M_2 में कम, M_3 में और भी कम तथा इस प्रकार M_4 सबसे कम तरल है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

मुद्रा आपूर्ति के मानों में से किसे चुना जाए और क्यों? इस प्रश्न का उत्तर यहाँ हम देना नहीं चाहते क्योंकि इससे हम मौद्रिक सिद्धांतों, नीतियों तथा उनके आँकड़ों पर आधारित प्रश्नों में उलझ जाएँगे। यहाँ पर इतना कहना काफी रहेगा कि सामान्यतः M अथवा M_1 को ही मुद्रा की आपूर्ति का सबसे सामान्य माप माना जाता है।

वर्ष 1978 तक रिज़र्फ बैंक भी मुद्रा आपूर्ति के इसी संकुचित मान पर अपना सारा लेखा विश्लेषण केंद्रीत रखता था। पर अब यह बात नहीं है। अब बैंकों की बचत जमाओं को भी माँग जमाओं तथा सावधि जमाओं में विभाजित किया जाता है। अतः 1978 के बाद के M संबंधी आँकड़े उस वर्ष से पूर्व के आँकड़ों से सही तुलना नहीं की जा सकती। इसी कारण, अब रिज़र्व बैंक अपना मुद्रा आपूर्ति के लेखा विश्लेषण में M_3 का प्रयोग करता है।

हमारे पास न तो M (अथवा M_1) या AMR (अथवा M_3) में वृद्धि के स्रोतों को समझाने का कोई आधार है और न ही यह व्याख्या करने का आधार है कि यह वृद्धि सामाजिक दृष्टि से लाभप्रद है या हानिप्रद। परंतु ये प्रश्न मौद्रिक सिद्धांतों एवं नीतियों की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

16.4 मुद्रा की माँग

मुद्रा के परिणाम (स्टॉक) में परिवर्तन के प्रभावों को ठीक से समझने के लिए मुद्रा बाज़ार के संतुलन का अध्ययन आवश्यक है। मुद्रा सामान्य मुद्राधारकों के लिए एक परिसम्पत्ति है। स्वाभाविक है कि इनकी माँग भी होगी और पूर्ति भी तथा इसके लिए बाज़ार भी होगा। मुद्रा की माँग (मुद्रा निर्माण में लगी संस्थाओं को छोड़कर) जन–सामान्य करते हैं। इसकी

आपूर्ति मुद्रा निर्माता करते हैं, ये हैं— सरकार और बैंक व्यवस्था। इन मुद्रा निर्माताओं के लिए मुद्रा एक देयता होती है। अतः मुद्रा बाज़ार मुद्रा की माँग करने वाले तथा पूर्ति करने वालों का बाज़ार है।

मुद्रा की आपूर्ति का आकार मौद्रिक अधिकारी आय स्वतंत्र रूप से निर्धारित करते हैं। मुद्रा की माँग, जोकि मौद्रिक सिद्धांतों का आधार–स्तम्भ है, को ध्यानपूर्वक समझने की आवश्यकता है।

मुद्रा एक स्टॉक मद है। किसी भी समय के बिंदु पर इसकी मात्रा मापी जाती है। परिसम्पत्ति के रूप में इसकी माँग जनता द्वारा अपने पास मुद्रा रखने की माँग होती है, चाहे इसके पीछे कुछ भी उद्देश्य हो या वे कितने भी समय के लिए हो। खरीदारी करने के लिए जेब में नकदी रखने की माँग हो या मटके में भरकर कहीं दबाने के लिए, मुद्रा की माँग तो माँग है।

मौद्रिक विश्लेषण समग्र विश्लेषण है। अतः इस विश्लेषण में यह मुद्रा की माँग भी समस्त जन–सामान्य की माँग है। अर्थात् यह परिवारों तथा फर्मों की मुद्रा की माँगों का योग है।

मुद्रा की माँग का सिद्धांत इन प्रश्नों का समाधान खोजता है कि जन–सामान्य की मुद्रा धारा की माँग के निर्धारक तत्त्व क्या हैं तथा क्यों हैं? साथ ही यह प्रश्न भी जुड़ा है कि जन–सामान्य मुद्रा की माँग क्यों करते हैं? इनके समाधान के रूप में कई व्याख्याएँ दी जाती हैं। प्रत्येक व्याख्या में मुद्रा की पूर्ति के परिवर्तनों के आर्थिक प्रभावों को लेकर कुछ निहित अर्थ भी है। मुद्रा की माँग के सिद्धांत की जाँच अनुभव के आधार पर की गई है। परिणामस्वरूप इसके बारे में आँकड़ों के रूप में प्रमाण भी इकट्ठे हो गए हैं।

DIKSHANT IAS

मौद्रिक बनाम वास्तविक नकद शेष (Nominal Vs. Real Cash Balance)

Call us @7428092240

मौद्रिक तथा वास्तविक नकदी शेषों का अंतर समझना बहुत आवृयक है। नकदी शेष मुद्रा का ही दूसरा नाम है। मौद्रिक नकदी शेष मुद्रा की एक इकाई की (मान लीजिए एक रुपये की) वर्तमान क्रय–शक्ति बताता है। वास्तविक नकदी शेष कोष किसी आधार वर्ष की मुद्रा की क्रय–शक्ति बताता है। एक रुपये का सांकेतिक मूल्य तो एक रुपया ही है। परंतु सामान्य कीमत स्तर के परिवर्तनों के कारण इस रुपये की, वास्तविक वस्तुओं आदि के रूप में, क्रय–शक्ति में फेर–बदल आता रहता है। अतः यह कहा जा सकता है कि (सांकेतिक) रुपये का वास्तविक मूल्य (क्रय–शक्ति) समय के साथ–साथ बदलता रहता है।

इस वास्तविक मूल्य या क्रय–शक्ति की तुलना करने के लिए हमें पहले *एक आधार वर्ष* निश्चित करना पड़ता है। मान लीजिए कि हम वर्ष 1991–92 को आधार मानते हैं। अतः इस वर्ष का थोक कीमतों का सूचकांक 100 होगा। इस वर्ष में प्रचलित कीमतों पर एक रुपये की कुछ निश्चित क्रय–शक्ति थी। अब यह मानिए कि वर्ष 1994–95 में यह सूचकांक बढ़कर 400 हो गया। इसका अभिप्राय यह होगा कि वर्ष 1994–95 में जितनी वस्तुएँ एक रुपये में खरीदी जा सकती हैं उतनी ही चीज़ों पर 1991–92 में केवल 25 पैसे खर्च होते। अतः इस अवधि में कीमतें चार गुणा होने का अर्थ है रुपये की क्रय–शक्ति एक–चौथाई रह जाना। यदि हमने 1961–62 जैसे किसी ऐसे वर्ष को आधार माना होता जिसमें कीमतें 1991–92 से भी बहुत कम थीं तो हमारे 1994–95 के एक रुपये की क्रय–शक्ति इस आधार (1961–62 = 100) की तुलना में और भी बहुत ही कम रह जाती।

अतः तकनीकी दृष्टि से मौद्रिक नकदी शेष को सामान्य कीमत स्तर के सूचकांक से भाग देकर हम वास्तविक नकदी शेष ज्ञात कर सकते हैं। अर्थात् यदि सांकेतिक मुद्रा को M तथा कीमत स्तर को P कहें तो M/P वास्तविक नकदी शेष को दर्शाएगा। यह M/P वस्तुतः हमारे चुने हुए आधार वर्ष की कीमतों में दिए हुए नकदी शेष की क्रय–शक्ति दिखाता है क्योंकि हमने P का आकलन उस आधार वर्ष को ध्यान में रखते हुए ही किया है।

जब भी कीमतों में परिवर्तन आता है, मौद्रिक और वास्तविक नकदी शेषों का यह अंतर महत्त्वपूर्ण बन जाता है। अतः मुद्रा की माँग का वि॰ ॰षण करते समय इस बात पर ग़ौर करना ज़रूरी है कि जन–सामान्य मौद्रिक नकदी शेष की माँग करते हैं या फिर वास्तविक नकदी शेष की । इस तरह से कीमत स्तर नकद मुद्रा की माँग का एक निर्धारक तत्त्व बन जाता है। हमने इकाई 18 के भाग 18.3, 18.4 एवं 18.5 में मुद्रा की माँग के विषय में और भी चर्चा की है।

बोध प्रश्न 1

1) अर्थव्यवस्था में मुद्रा विनिमय–प्रक्रिया को किस प्रकार सहज बना देती है?

....

....

....

....

....

2) मुद्रा की आपूर्ति के दो मानों M_1 तथा M_3 को समझाइए।

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3) मुद्रा की सट्टा माँग बहुत कम ब्याज दर पर क्षैतिज–अक्ष के समानांतर क्यों हो जाती है?

....

....

....

....

....

16.5 मुद्रा बाज़ार

वस्तु बाज़ार (वास्तविक बाज़ार) के साथ–साथ मुद्रा बाज़ार को भी सम्मिलित करके हमें एक अर्थव्यवस्था के संतुलन तक पहुँचने में सुविधा होती है। अतः पहले मुद्रा बाज़ार के संतुलन को अलग से समझ लेना आवश्यक है। परंतु मुद्रा बाज़ार के संतुलन से पूर्व इस बाज़ार का अर्थ स्पष्ट करना भी बहुत उपयोगी रहेगा।

16.5.1 मुद्रा बाज़ार का अर्थ

वस्तु बाज़ार एवं साधन बाज़ार की तरह ही मुद्रा में भी माँग एवं पूर्ति की शक्तियाँ इस प्रकार कार्य करती हैं कि माँग और पूर्ति एक–समान होने पर संतुलन स्थापित हो जाता है।

मुद्रा की भूमिका निरंतर बदलती रही है। इर्विंग फिशर (Irving Fisher) जैसे क्लासिकल

अर्थशास्त्री यही मानते थे कि मुद्रा तो वस्तुओं एवं सेवाओं के लेन–देन में काम आती है। अतः मुद्रा बाज़ार का वस्तु बाज़ार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। परंतु जे.एम.केन्ज़ (J.M.Keynes) ने पहले–पहल यह बात सुझाई कि लोग मुद्रा केवल दैनंदिन लेन–देन के लिए ही नहीं धारण करते बल्कि इसलिए भी धारण करते हैं कि यह सबसे अधिक तरल परिसम्पत्ति है। अतः मुद्रा की माँग होती है और यदि मुद्रा की आपूर्ति दी गई हो तो मुद्रा बाज़ार में संतुलन भी ज्ञात किया जा सकता है। मुद्रा (सबसे तरल परिसम्पत्ति) का परित्याग करने के लिए जो कीमत मिलती है उसे ही ब्याज का नाम दिया गया है। अतः जब मुद्रा की माँग तथा पूर्ति समान होती है तो ब्याज की संतुलन दर का निर्धारण होता है। उस (संतुलन) ब्याज की दर पर मुद्रा (तरलता) की माँग मुद्रा की पूर्ति के समान होती है।

मुद्रा बाज़ार में ब्याज की दर के निर्धारण के पीछे शक्तियों का विवेचन हम चित्र 16.1 की सहायता से कर रहे हैं। चित्र 16.1 में हमने मुद्रा की आपूर्ति तथा इसकी सट्टा माँग X–अक्ष पर (करोड़ रुपयों में) तथा ब्याज की दर (प्रतिशत) Y–अक्ष पर दिखाई है। तीन प्रतिशत ब्याज दर पर मुद्रा की माँग 2 करोड़ है पर पूर्ति 3 करोड़ रुपया है। इससे ब्याज की दर पर दबाब पड़ता है। यह दर घटती रहेगी जब तक कि यह दर घटकर 2 प्रतिशत नहीं रह जाती। इसपर माँग बढ़कर 3 करोड़ हो जाती है और पूर्ति के समान हो जाती है, तभी संतुलन हो पाता है। यदि ब्याज की दर 1 प्रतिशत हो तो मुद्रा की माँग 5 करोड़ रुपये होगी, परंतु पूर्ति केवल 3 करोड़ है। अतः ब्याज की दर बढ़ेगी जब तक कि यह बढ़कर 2 प्रतिशत न हो जाए। तभी माँग (= 3 करोड़) पूर्ति के समान हो जाएगी और संतुलन संभव हो पाएगा। अतः मुद्रा बाज़ार में संतुलन ब्याज दर है 2 प्रतिशत तथा माँग एवं पूर्ति है 3 करोड़ रुपया।

चित्र 16.1

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

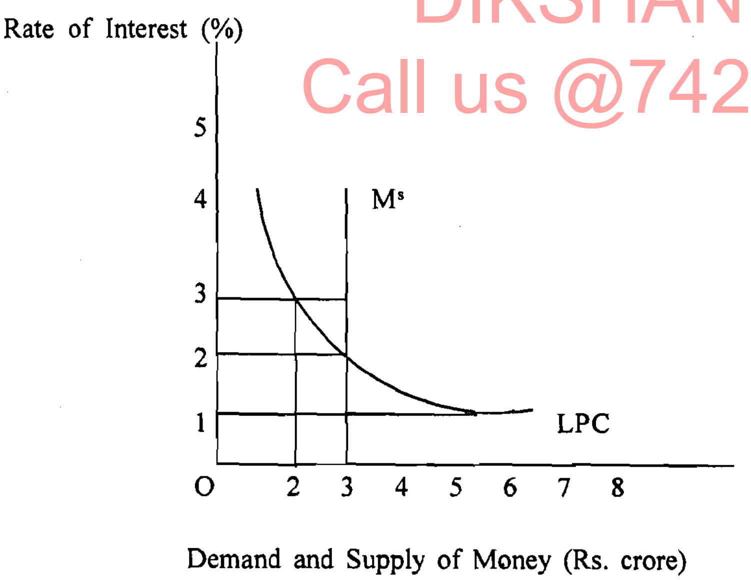

16.5.2 मुद्रा का संतुलन

हमने 16.1 में मुद्रा की केवल "सट्टा माँग" को ही सम्मिलित किया है। यदि मुद्रा की कुल माँग और कुल पूर्ति चाहते हैं तो हमें इसमें मुद्रा की लेन–देन (Transactionary) व पूर्वोपाय (precautionary) माँगों को भी जोड़ना होगा। ऐसा हमने चित्र 16.2 में दर्शाया है।

चित्र 16.2

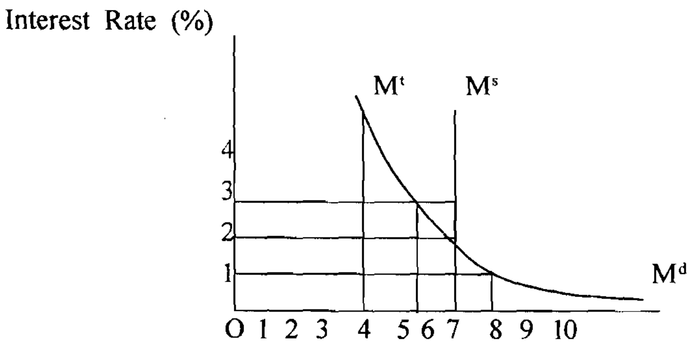

चित्र 16.2 मुद्रा की माँग के दोनों घटकों को पृथक-पृथक प्रस्तुत कर रहा है। उदग्र (vertical) रेखा M^t मुद्रा की विनिमय माँग दिखाती है। यह ब्याज की दर से अप्रभावित रहती है। दूसरा घटक, अर्थात् सट्टा माँग M^t के ही एक बिंदु से आरंभ होने वाली दाहिनी ओर ढलवाँ वक्र द्वारा दिखाई गई है। जिस बिंदु पर नीति निर्धारकों द्वारा निश्चित की गई मुद्रा की आपूर्ति M^s को यह वक्र काटती है, वहीं पर मुद्रा का संतुलन होता है।

मुद्रा की विनिमय तथा पूर्वापाय माँग M^t ब्याज की आय Y का एक वर्धमान फ़लन है तथा सट्टा माँग M_{sp} ब्याज की दर (r) का ह्रासवान फलन है। M^t तथा M_{sp} को जोड़कर ही हमें मुद्रा की समग्र माँग M_{sp} प्राप्त होती है। मुद्रा की आपूर्ति M_{sp} ब्याज दर (r) से निरपेक्ष रहती है। यही बातें हमने चित्र 16.2 में दर्शाई हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

हमने चित्र 16.2 इस प्रकार बनाया है कि Y–अक्ष के समानांतर उदग्र रेखा M^t 4 करोड़ रुपये की राशि दर्शाती है। इस रेखा का Y–अक्ष के समानांतर होना ही यह बात भी स्पष्ट करता है कि मुद्रा की विनिमय माँग (M^t) ब्याज की दर r से अप्रभावित रहती है। इसी 4 करोड़ रुपये से आगे ढलवाँ वक्र मुद्रा की सट्टा माँग M_{sp} को दर्शाता है। इन्हीं M^t तथा M_{sp} के योग से मुद्रा की समग्र माँग M^d बनती है। मुद्रा की आपूर्ति 7 करोड़ रुपये रखी हैं, अतः 2 प्रतिशत ब्याज की दर पर $M^s = M^d$। यदि ब्याज की दर 3 प्रतिशत हो तो मुद्रा की आपूर्ति M^s तो 7 करोड़ रुपये ही रहती है पर M^d घटकर 6 करोड़ रह जाती है। इसके कारण ब्याज की दर घटकर 2 प्रतिशत पर आ जाती है, जबकि पूर्ति 7 करोड़ रुपये ही रहती है। इस दशा में ब्याज की दर पुनः बढ़कर 2% हो जाएगी। अंततः 2 प्रतिशत ब्याज दर पर ही मुद्रा की आपूर्ति M^s तथा माँग M^d एक–दूसरे के समान होते हैं। यही मुद्रा बाज़ार का संतुलन है।

16.5.3 LM वक्र और इसकी व्युत्पत्ति

अब हम इस स्थिति में पहुँच गए हैं कि LM वक्र प्रस्तुत करें। इस वक्र पर $M^d = M^s$ यानि मुद्रा की सट्टा माँग M^d_{sp} विभिन्न ब्याज की दरों r तथा आय के स्तरों Y पर सट्टे के लिए उपलब्ध मुद्रा की मात्रा M^s_{sp} के समान होती है। हम LM वक्र की व्युत्पत्ति के लिए भी इकाई 15 में प्रयुक्त 4 भागों वाले चित्र की तकनीक का प्रयोग करेंगे। LM वक्र की आकृति तथा ढाल चित्र 16.3 में बनाए गए हैं।

चित्र 16.3

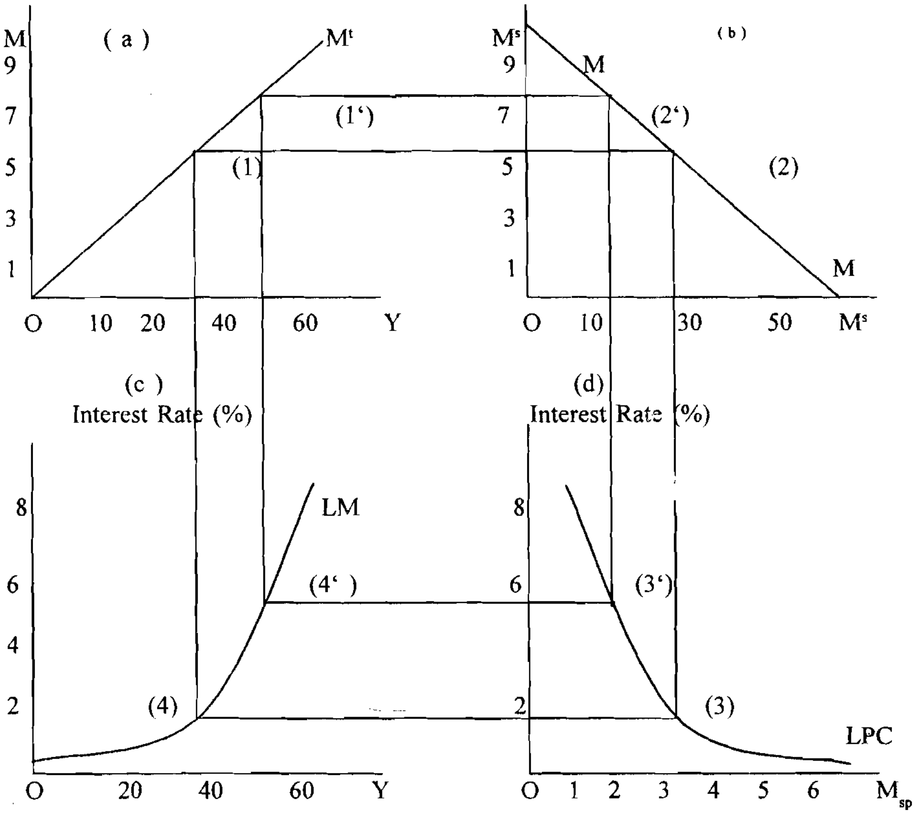

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 16.3 : LM वक्र की व्युत्पत्ति दर्शाता है। भाग (a) में मुद्रा की विनिमय माँग M^t है तथा भाग (b) के दोनों ही अक्ष मुद्रा की पूर्ति M^s दिखा रहे हैं। भाग (c) में मुद्रा की सट्टा माँग M_{sp} है। यह M_{sp} भाग (b) में सट्टेबाजी के लिए उपलब्ध मुद्रा M^s_{sp} के समान होनी चाहिए, तभी संतुलन होगा। भाग (d) में इस प्रकार के संतुलन बिंदु से जुड़े हुए आय -Y ब्याज दर -r को इकट्ठा कर हमने LM वक्र बनाया है।

हमारे चित्र 16.3 के चार भाग हैं– (a), (b), (c) तथा (d)। भाग (a) में मुद्रा की विनिमय तथा पूर्वोपाय माँग M^t का स्तर उदग्र अक्ष पर तथा आय (Y) का स्तर X–अक्ष पर दर्शाया है। जब आय के स्तर 40 हैं तो M^t 5 है। यह बिंदु 1 द्वारा दिखाया गया है। भाग (b) में दोनों अक्षों पर मुद्रा की आपूर्ति M^s दिखाई गई है। यह आपूर्ति 8 है। बिंदु 2 यह बताता है कि भाग (a) की $M^t = 5$ की पूर्ति के बाद $8 - 5 = 3$ इकाई मुद्रा सट्टेबाज़ी के लिए बच रहती है। भाग (c) में मुद्रा की सट्टा माँग M_{sp} को X–अक्ष तथा ब्याज की दर r को Y–अक्ष पर रखा गया है। मुद्रा बाज़ार के संतुलन के लिए यह जरूरी है कि भाग (b) की $M^s_{sp}=3$ भाग (c) की M_{sp} के समान हो। यह समानता ब्याज दर $r = 2$ प्रतिशत पर संभव हो पाती है। अंत में हमने भाग (d) में Y–अक्ष पर ब्याज दर तथा X–अक्ष पर आय का स्तर दिखाया है। भाग (a) में $Y = 40$ पर $M^t = 5$। मुद्रा की पूर्ति $M^s = 8$ में से 5 तो M^t के निमित्त काम आ जाती है। शेष $3 = M^s_{sp}$। यही M^s_{sp} जब M_{sp} के समान होती है तो 2 प्रतिशत ब्याज दर पर मुद्रा बाज़ार में संतुलन होता है। चित्र 16.3 का भाग (d) यह दिखाता है कि संतुलन तभी संभव जब $Y = 40$ हो और $r = 2\%$ हो। यह बिंदु (4) हमें दिखाता है कि जब ब्याज दर $r = 2$ प्रतिशत तथा आय स्तर $Y =$ (40 तो तरलता की माँग उसकी आपूर्ति के समान है। अतः यह बिंदु (4) LM के वक्र का एक बिंदु होगा।

इसी तरह से यदि हम आय के उच्च स्तर $Y = 50$ से आरंभ करें तो हमें LM वक्र का एक अन्य बिंदु ज्ञात कर सकते हैं। इस नए आय स्तर पर $M^t = 7$ अतः M^s_{sp} केवल 1 रह जाता है। M_{sp} के स्तर $M^s_{sp}=1$ के समान तभी हो पाएगा जबकि ब्याज दर $r = 6$

प्रतिशत। अतः Y = 50 तथा r = 6 प्रतिशत पर हमें मुद्रा बाज़ार का नया संतुलन बिंदु (4') प्राप्त होगा। भाग (a) में बिंदु (1'), भाग (b) में (2') तथा भाग (c) में (3') इससे जुड़े हुए मध्यवर्ती चरणों को दर्शाने वाले बिंदु हैं।

हम बिंदुओं, (4) तथा (4') आदि की तरह i तथा y के जोड़े दिखाने वाले अनेक अन्य बिंदु निर्धारित कर सकते हैं। इन्हीं से मिलकर LM वक्र बनती है।

यह बात स्पष्ट है कि आरंभ में LM वक्र X–अक्ष के समानांतर है, पर धीरे–धीरे यह बाएँ से दाएँ, ऊपर की ओर उठने लगती है। भाग (c) की तरलता (माँग) अधिमान–वक्र LPC का ब्याज की अति निम्न दरों पर X–अक्ष के समानांतर होना ही LM वक्र की इस प्रारंभिक प्रवृत्ति का कारण है।

16.5.4 L-M वक्र का ढाल तथा खिसकाव

भाग 16.5.3 में LM व की व्युत्पत्ति के बाद आइए अब उन कारकों की ओर ध्यान दें जो इसके ढाल को प्रभावित करते हैं। LM वक्र की ढाल का निर्धारण करने वाले दो कारक भाग (a) में Mt का ढाल तथा भाग (c) में LPC का ढाल है। यह चित्र 16.4 की सहायता से दिखाएँगे।

चित्र 16.4

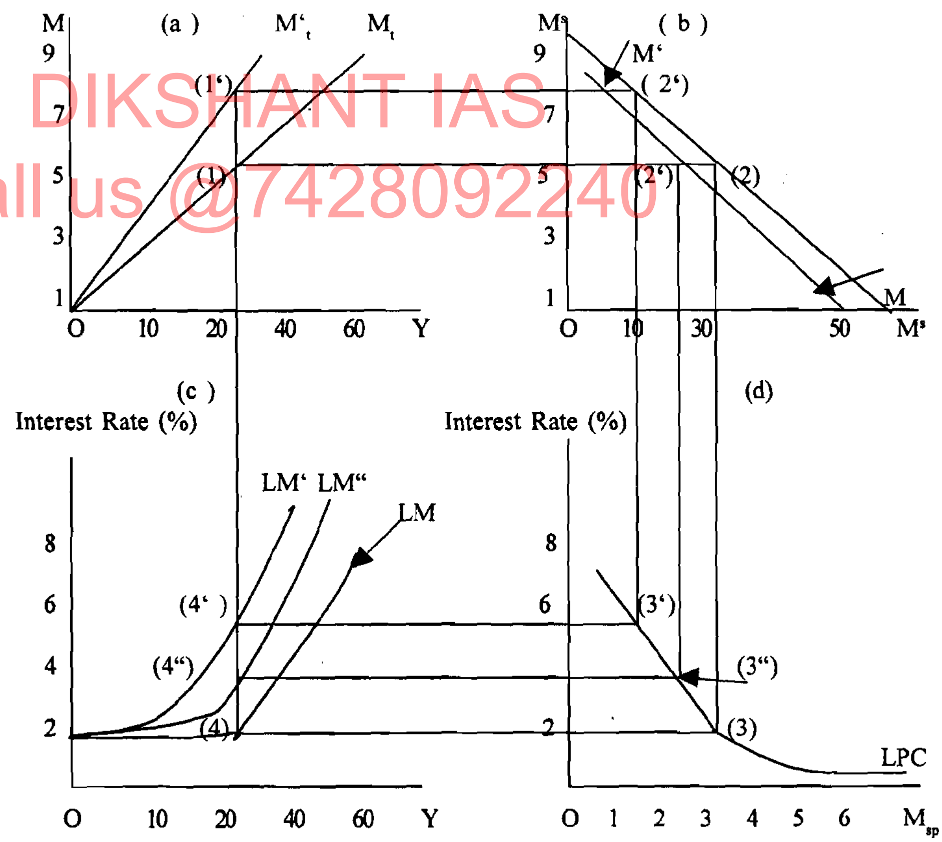

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस चित्र (16.4) में भी हमने चार भागों वाले चित्र को अपनाया है। यहाँ भी पिछले चित्र 16.3 में बनाए गए M_t,MM, LPC तथा LM वक्र ही दर्शाए गए हैं। मान लीजिए कि हम अब भाग (a) में एक नए M'_t वक्र का शामिल करते हैं। यह नया वक्र M_t से अधिक ढाल वाला है अर्थात् अब आय का अपेक्षाकृत अधिक अंश की माँग विनिमय तथा पूर्वोपाय उद्देश्यों के लिए है। आइए देखें कि इसका LM वक्र पर क्या प्रभाव पड़ता है। पहले जब Y = 40 था M_t = 5 था जैसा कि बिंदु (1) पर दिखाया गया है। अब M_t = 7 है जोकि बिंदु

(1') पर दिखाया गया है। इस $M_t = 7$ पर भाग (b) में मुद्रा आपूर्ति की केवल 1 इकाई ही सट्टेबाज़ी के लिए बच रहती है जैसा कि भाग (b) के बिंदु (2') पर दिखाया गया है। इस मुद्रा आपूर्ति तथा मुद्रा की सट्टा माँग की समानता भाग (c) के बिंदु (3') होती है। यहाँ ब्याज की दर r = 6 प्रतिशत। अब हम भाग (d) में बिंदु (4') अंकित कर सकते हैं जहाँ r = 6 प्रतिशत, Y= 40। इसी तरह के अन्य सभी बिंदुओं को मिलाकर हमें LM' वक्र प्राप्त होता है, जोकि LM वक्र की अपेक्षा अधिक तेज़ी से ऊपर उठता है। अब हम कह सकते हैं कि एक तेज़ी से ऊपर उठने वाले M_t वक्र से हमें तेज़ी से ऊपर उठने वाले LM वक्र की प्राप्ति होती है।

इसी विधि का अनुसरण कर हम दिखा सकते हैं कि यदि भाग (c) में LPC वक्र अधिक तेज़ी से ऊपर उठने वाला हो अर्थात् वह ब्याज दर r के प्रति अपेक्षाकृत कम संवेदनशील हो तो भी LM वक्र तेज़ी से ऊपर बढ़ेगा।

LM वक्र का खिसकाव

LM वक्र मुद्रा में परिवर्तन के कारण खिसकता है। चित्र 16.4 के भाग (b) में हमने एक नया मुद्रा आपूर्ति वक्र M'M बनाया है जो यह दिखाता है कि आपूर्ति 8 से घटकर 7 रह गई है। अतः अब हमें भाग (a) में M_t=5 पर भाग (b) में बिंदु (2") मिलता है जिससे आगे भाग (c) में बिंदु (3") मिलता है, जिसपर r = 3 प्रतिशत है। अंततः हम भाग (d) में बिंदु (4') पर पहुँचते हैं। इसी तरह से M'M" वक्र पर ऐसे सभी बिंदुओं से हम नए LM वक्र LM" पर पहुँच सकते हैं। अतः मुद्रा की आपूर्ति में गिरावट से LM वक्र बाईं ओर खिसक जाता है तो उसकी वृद्धि से यह वक्र दाहिनी खिसक जाएगा। किंतु, यदि मुद्रा की आपूर्ति में जिस समय परिवर्तन हो उस समय अगर LPC वक्र X–अक्ष के समानांतर हो तो फिर LM वक्र नहीं खिसकेगा। इसी कारण से LM वक्र चाहे बाएँ खिसके या दाएँ– इसका उद्गम बिंदु LM वक्र के समानांतर भाग से ही रहता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

16.5.5 मुद्रा बाज़ार में आधिक्य तथा अभाव

आइए अब हम मुद्रा बाज़ार में आधिक्य तथा अथाव दिखाने के लिए LM वक्र बनाएँ। यह चित्र 16.5 है।

चित्र 16.5

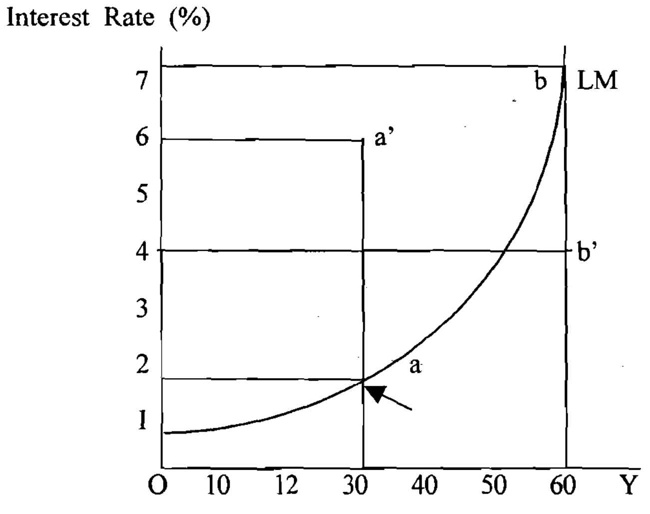

चित्र 16.5 दर्शाता है कि अगर हम किसी कारण से LM वक्र से ऊपर किसी बिंदु पर हों तो आय का स्तर पूर्ववत् रहते हुए बाज़ार में ब्याज दर अधिक हो जाती है। इस कारण M_{sp} में गिरावट आती है और मुद्रा बाज़ार में अधिपूर्ति दिखाई पड़ने लगती है। पर इसके विपरीत, अगर हम LM से नीचे किसी बिंदु पर हों तो फिर ब्याज दर कम होने के कारण M_{sp} अधिक हो जाती है, अतः अधिभाग दिखाई पड़ती है।

हमने LM वक्र की परिभाषा ही इस प्रकार की है कि यह मुद्रा बाज़ार में संतुलन ही दर्शाता है। अब दो बिंदुओं (a) तथा (a') पर विचार करें। बिंदु (a) पर r = 2 प्रतिशत तथा Y = 30 होते हुए मुद्रा बाज़ार संतुलन में है। पर बिंदु (a') पर r = 6 प्रतिशत है, जोकि r = 2 प्रतिशत से कहीं अधिक है। अतः ब्याज की ऊँची दर पर बाज़ार में मुद्रा की आपूर्ति इसकी माँग की अपेक्षा कहीं अधिक हो जाती है और बाज़ार में आधिक्य की स्थिति आ जाती है। अतः LM से ऊपर के बिंदु मुद्रा बाज़ार में आधिक्य की अवस्था दर्शाते हैं। इसी तरह बिंदुओं (b) तथा (b') द्वारा हम अभाव की दशा का विवेचन कर सकते हैं। बिंदु (b) पर Y = 60 पर संतुलन r = 7.5 है। लेकिन परिभाषा के अनुसार, बिंदु b' पर मुद्रा की माँग मुद्रा की पूर्ति से अधिक है। अतः बिंदु b' मुद्रा बाज़ार में अभाव की स्थिति दिखाता है। इस प्रकार LM वक्र से नीचे कोई भी बिंदु मुद्रा बाज़ार में अभाव की स्थिति दर्शाता है।

16.5.6 राष्ट्रीय आय के संतुलन स्तर के निर्धारण में L-M वक्र का महत्त्व

इकाई 15 में हमने राष्ट्रीय आय के निर्धारण पर चर्चा की थी। पर वहाँ सारा विश्लेषण केवल वस्तु बाज़ार तक ही सीमित रहा था। हमने निवेश, राजकीय व्यय, कर, संतुलित बजट तथा निर्यात से जुड़े हुए गुणकों की कार्य–पद्धति की व्याख्या भी इस तरह की थी जैसे अर्थव्यवस्था में मुद्रा का कोई बाज़ार नहीं है। वस्तु बाज़ार (IS) के साथ–साथ मुद्रा बाज़ार (LM) का प्रयोग निवेश, राजकीय व्यय, कर अथवा निर्यात के राष्ट्रीय आय के स्तर पर पड़ने वाले प्रभावों को एक नए स्वरूप में स्पष्ट करता है। वस्तुतः अब ब्याज की दरों में परिवर्तन आते हैं और इनके कारण आय के परिवर्तन उस स्तर तक नहीं पहुँच पाते जोकि ब्याज दर स्थिर रहने पर संभव हो जाता था।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

एक उदाहरण द्वारा हम राष्ट्रीय आय निर्धारण में LM वक्र की भूमिका को समझा सकते हैं। मान लीजिए कि सरकारी व्यय में वृद्धि से राष्ट्रीय आय बढ़ती है। इसके कारण विनिमय और पूर्वोपाय उद्देश्यों के लिए अधिक मुद्रा की आवश्यकता होती है। परिणामस्वरूप सट्टेबाजी के लिए मुद्रा आपूर्ति कम रह जाती है। इसके कारण ब्याज की दर बढ़ेगी— यदि तरलता अधिमान–वक्र पूर्ववत् रहे। वर्तमान पूँजी दक्षता दरों के रहते हुए, ब्याज दर की वृद्धि में रखने योग्य है कि मुद्रा बाज़ार की अनुपस्थिति में राजकीय व्यय की वृद्धि से राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो सकती थी। यह वृद्धि निवेश गुणक के मूल्य पर निर्भर है। परंतु मुद्रा बाज़ार के समावेश के परिणामस्वरूप बाज़ार में ऐसी स्थिति पैदा हो जाती है कि निजी निवेश में कमी आकर राष्ट्रीय आय में भी कमी आ जाती है। अतः राष्ट्रीय आय उतनी ही बढ़ पाती जितनी मुद्रा बाज़ार की अनुपस्थिति में बढ़ सकती थी। समष्टि अर्थशास्त्र में इसी को 'ह्रासकारी प्रभाव' (Crowding out effect) कहते हैं अर्थात् व्यय की वृद्धि से ब्याज की दर बढ़ जाती है। इससे निजी व्यय, विशेषकर निवेश पर दुष्प्रभाव पड़ता है। गुणक विश्लेषण के संदर्भ में कहा जा सकता है कि IS के साथ LM का प्रयोग करने पर निवेश गुणक का आकार अपेक्षाकृत कम रह जाता है। दूसरे शब्दों में राष्ट्रीय आय पर गुणक का पूरा प्रभाव महसूस नहीं होता।

बोध प्रश्न 2

1) यदि LPC X–अक्ष के समानांतर हो तो मुद्रा की आपूर्ति में वृद्धि के प्रभावों का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

2) यदि मुद्रा की सट्टा माँग ब्याज दर के प्रति असंवेदनशील हो तो LM वक्र की आकृति कैसी होगी?

....

....

....

....

....

3) 'ह्रासकारी प्रभाव' (crowding-out effect) का अर्थ समझाइए।

....

....

....

....

....

16.6 सारांश

इस इकाई में हमने वस्तु विनिमय व्यवस्था की त्रुटियों तथा मुद्रा की आवश्यकता पर चर्चा की है। मुद्रा के विभिन्न कार्यों से आपको परिचित कराया गया है। मुद्रा की आपूर्ति के चार मान हैं तथा उनकी पर्याप्त विस्तार से व्याख्या की गई है। मुद्रा की माँग को विनिमय, पूर्वोपाय तथा सट्टा माँगों में विभाजित किया गया है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

मुद्रा की माँग को प्रभावित करने वाले कारकों का क्लासिकल एवं केन्ज़ीय अवधारणाओं के संदर्भ में विवेचन किया गया है।

मुद्रा की आपूर्ति तथा मुद्रा का विवरण हमने मुख्यतः मुद्रा बाज़ार का विश्लेषण करने तथा LM वक्र का निर्धारण करने के उद्देश्य से दिया है। हमने चार भागों वाले चित्र द्वारा पहले LM की व्युत्पत्ति एवं फिर इसके ढाल एवं खिसकन का विवेचन किया है।

अंततः हमने मुद्रा बाज़ार में आधिक्य एवं अभाव और राष्ट्रीय आय के संतुलन स्तर के निर्धारण में LM वक्र की भूमिका पर चर्चा की है।

16.7 शब्दावली

वस्तु विनिमय : एक वस्तु या सेवा का दूसरी वस्तु या सेवा में लेन–देन।

मंदड़िए : शेयर/बॉण्ड बाज़ार में कीमत कम होने की आशा करने वाले व्यापारी।

बॉण्ड बाज़ार : वह बाज़ार जिसमें बॉण्डों की माँग एवं पूर्ति से उनकी कीमत तय होती है।

तेजड़िए : वह व्यापारी जिन्हें शेयर/बॉण्ड कीमतें बढ़ने की आशा होती है।

ह्रासकारी प्रभाव : वह स्थिति जब सरकारी व्यय की वृद्धि से राष्ट्रीय बढ़ने

पर ब्याज दर में वृद्धि से निजी निवेश कम हो जाता है।

स्थगित भुगतान : भविष्य में भुगतान।

दोहरा संयोग : वस्तु विनिमय व्यवस्था की सफलता की एक आवश्यक शर्त— पहले व्यक्ति को जिस वस्तु की आवश्यकता है उसी वस्तु के बदले में उसके पास उपलब्ध वस्तु स्वीकार करने को उत्सुक दूसरे व्यक्ति का मिलना ही दोहरा संयोग है।

वित्तीय बाज़ार : इसे वास्तविक बाज़ार भी कहते हैं। इस बाज़ार में समग्र माँग समग्र पूर्ति के समान हो जाती है।

अंतर्बैंक जमाएँ : एक बैंक द्वारा अन्य बैंकों के पास की गई जमाएँ।

अनिर्धारित विनिमय दर : ऐसी विनिमय दर जिसका वैज्ञानिक आधार नहीं होता। जैसे वस्तु विनिमय दर।

LM वक्र : आय तथा ब्याज दर के उन संयोजनों का समुच्चय जिनपर मुद्रा की माँग उपलब्ध पूर्ति के समान हो जाती है।

नकदी पाश : LM वक्र का वह अंश जहाँ मुद्रा की पूर्ति का ब्याज दर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता अथवा जहाँ अति–न्यूनतम ब्याज दर पर मुद्रा की माँग परिमित रहती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

तरल परिसम्पत्ति : वह सम्पत्तियाँ जिन्हें फौरन बिना नुकसान भुनाया जा सके।

मुद्रा बाज़ार : ऐसा बाज़ार जहाँ मुद्रा की माँग एवं आपूर्ति द्वारा ब्याज दर का निर्धारण हो।

आभास मुद्रा (Near Money) : वे परिसम्पत्तियाँ जो तरल नहीं होती लेकिन उन्हें आसानी से नकदी या मुद्रा में बदला जा सकता है।

मौद्रिक नकदी कोष : किसी विनिमयकर्ता द्वारा नकदी या मुद्रा के रूप में रोकड़ा रखी गई राशि।

ब्याज की सामान्य दर : केन्ज़ द्वारा प्रतिपादित विचार— सामान्य परिस्थितियों में बाज़ार में प्रचलित ब्याज दर।

ग़ैर-मुद्रा वित्तीय परिसम्पत्तियाँ : वह वित्तीय पत्रक आदि जो मुद्रा नहीं हैं।

पोर्टफोलियो या पत्रक संग्रह : किसी निवेशक द्वारा धारित बॉण्ड, अंशपत्र ऋणपत्र, हुंडियों आदि का समुच्चय।

वास्तविक नकदी शेष : कीमत सूचक द्वारा समंजित नकदी शेष।

स्टॉक मदें : ऐसी मदें जिन्हें समय के एक निश्चित बिंदु पर मापा जा सके।

16.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Shapiro Edward (1984), :*Macro Economic Analysis* (5th Edition); Galgotia, Publications, New Delhi (Chapter 4-8)

Hansen, Alven H. (1953) : A Guide To Keynes, International Students Edition, McGraw-Hill Company, Inc. Tokyo (Chapter 1-6)

16.9 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

बोध प्रश्न 1

1) मुद्रा बाज़ार की विभाज्यता तथा दोहरे संयोग की अनिवार्यता से जुड़ी कठिनाइयों को हटाकर विनिमय को सरल बनाता है। साथ ही साथ, विनिमय दर की अनिर्धारिता भी समाप्त हो जाती है।

2) M_1 जनता के पास करेंसी + बैंकों की शुद्ध माँग जमाएँ + भारतीय रिज़र्व बैंक की अन्य जमाएँ
   M_3 = M1+ बैंकों के पास सावधि जमाएँ

3) इसे दो प्रकार से समझाया जा सकता है–

   क) ब्याज दर इतनी कम हो जाती है कि लोग बॉण्ड की अपेक्षा नकदी धारण ही अच्छा समझने लगते हैं।

   ख) ब्याज की दर इतनी कम हो जाती है कि सभी इसमें वृद्धि की अपेक्षा करते हैं। अतः वे मानते हैं कि बॉण्डों की कीमतें गिरेंगी। ऐसी दशा में लोग बॉण्ड की अपेक्षा नकदी अपने पास रखना बेहतर समझेंगे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

1) LPC X–अक्ष के समानांतर हो तो मुद्रा की आपूर्ति में वृद्धि के कारण ब्याज दर कम नहीं होती। यही नदकी–जाल की स्थिति कहलाती है।

2) चार भागों वाले चित्र के भाग (c) में हम देख सकते हैं कि यदि मुद्रा की सट्टा माँग ब्याज दर के प्रति संवेदनशील नहीं हो तो LMC Y–अक्ष के समानांतर हो जाती है। ऐसी स्थिति में LM भी Y–अक्ष के समानांतर हो जाएगी।

3) 'ह्रासकारी प्रभाव' वह स्थिति है जबकि राजकीय निवेश अथवा व्यय की वृद्धि की आय पर पूरा (गुणक) प्रभाव नहीं पड़ता। इसका कारण यह है कि ब्याज दर में वृद्धि के कारण निजी निवेश में कमी आने लगती है। इसी कारण से गुणक प्रभाव पूरी तरह कारगर नहीं हो पाता।

इकाई 17 वस्तु एवं मुद्रा बाज़ारों का समन्वयन : प्रतिष्ठित एवं केन्ज़ीय अवधारणाएँ

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य
17.1 प्रस्तावना
17.2 वस्तु बाज़ार संतुलन
    17.2.1 वस्तु बाज़ार के घटक
    17.2.2 निवेश–बचत समानता
    17.2.3 ब्याज दर एवं राष्ट्रीय आय के विभिन्न संयोजनों पर निवेश–बचत समानता
17.3 मुद्रा बाज़ार का संतुलन
    17.3.1 मुद्रा बाज़ार के घटक
    17.3.2 मुद्रा की माँग एवं आपूर्ति की समानता
17.4 वस्तु तथा मुद्रा बाज़ार का एकीकरण
    17.4.1 विभिन्न ब्याज दर राष्ट्रीय आय संयोजनों पर IS तथा LM वक्र
    17.4.2 वस्तु तथा मुद्रा बाज़ारों में संतुलन पुनः स्थापित करने के लिए कदम
17.5 क्लासिकी दृष्टिकोण : IS-LM वक्र विश्लेषण के माध्यम से
    17.5.1 क्लासिकी दृष्टिकोण का नीतिगत प्रभाव
17.6 केन्ज़ीय दृष्टिकोण और IS-LM वक्र विश्लेषण
    17.6.1 केन्ज़ीय दृष्टिकोण के नीतिगत अर्थ
17.7 सारांश
17.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
17.9 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा–संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

17.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप निम्नलिखित समझा सकेंगे :

- वस्तु बाज़ार संतुलन;
- मुद्रा बाज़ार संतुलन;
- वस्तु तथा मुद्रा बाज़ार का एकीकरण;
- वस्तु एवं मुद्रा बाज़ारों में असंतुलन की दशाएँ;
- संतुलन की पुनःस्थापना के लिए आवश्यक कदम;
- इस विषय में क्लासिकी अवधारणा और उसके नीतिगत अर्थ; तथा
- इस विषय में केन्ज़ीय दृष्टिकोण और उसके नीतिगत अर्थ।

17.1 प्रस्तावना

यह इकाई वस्तु एवं मुद्रा बाज़ारों के एकीकरण से संबंधित है। आप इकाई 15 में वस्तु बाज़ार तथा इकाई 16 में मुद्रा बाज़ार का अध्ययन कर चुके हैं। आपने देखा था कि वस्तु बाज़ार का संतुलन ब्याज दर तथा राष्ट्रीय आय के अनेक संयोजनों पर संभव था। इसी तरह से मुद्रा बाज़ार भी ब्याज दर तथा राष्ट्रीय आय के अनेक संयोजनों पर संतुलन में हो सकता है। इस इकाई में हम इस प्रकार से दोनों बाज़ारों को इस प्रकार से इकट्ठा

लाएँगे कि ब्याज दर तथा राष्ट्रीय आय का वह संयोजन ज्ञात कर सकें जिस पर ये दोनों बाज़ार भी एक–साथ संतुलन में हों।

17.2 वस्तु बाज़ार संतुलन

वस्तु बाज़ार के संतुलन से आप इकाई 15 से ही परिचित हैं। वस्तु बाज़ार अथवा वास्तविक बाज़ार में संतुलन तभी होता है जब चक्रीय प्रवाहों में से रिसाव इन प्रवाहों में होने वाली वृद्धि के समान हो। इस वृद्धि में हम स्वतंत्र निवेश, सरकारी व्यय तथा निर्यात को रखते हैं– ये सभी व्यय राष्ट्रीय आय एवं ब्याज की दरों द्वारा निर्धारित बचत, कराधान और आयात आदि को शामिल करते हैं। इस प्रकार विभिन्न ब्याज दर– राष्ट्रीय आय संयोजनों पर हमें संतुलन की अनेक स्थितियाँ ज्ञात हो जाती हैं। इसी विश्लेषण से हमें वस्तु बाज़ार की अभाव एवं आधिक्य की स्थितियों की पहचान करने में भी सहायता मिलती है।

17.2.1 वस्तु बाज़ार के घटक

वस्तु घटक के मुख्य घटक हैं– निवेश, सरकारी व्यय तथा निर्यात। हम यह मानकर चल रहे हैं कि विदेशी पूँजी प्रायः प्रवाहशून्य है तथा कीमत स्तर पूर्व–निर्धारित है। ये तीनों घटक वृद्धियाँ हैं तथा स्वतंत्र मदें हैं जिनपर राष्ट्रीय आय का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस बाज़ार के दूसरे घटक– बचत, कराधान तथा आयात हैं जो कि रिसाव हैं। बचतें राष्ट्रीय आय बढ़ने के साथ बढ़ती हैं हालाँकि ब्याज की दर में परिवर्तन का भी बचतों पर असर पड़ता है। कर भी राष्ट्रीय आय के स्तर के साथ–साथ बढ़ते हैं। कभी–कभी बचतों को प्रयोज्य आय का बढ़ता फलन भी माना जाता है। आयात भी सामान्यतः राष्ट्रीय आय के बढ़ने के साथ बढ़ते हैं। हालाँकि यह संभव है कि कुछ आयातों पर राष्ट्रीय आय का प्रभाव न पड़ता हो।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

17.2.2 निवेश-बचत समानता

इकाई 15 में हमने बताया था कि ऐसी अर्थव्यवस्था, जिसमें न तो सरकार है और साथ–साथ यह बंद अर्थव्यवस्था (यानि इसमें निर्यात और आयात नहीं होते) में वस्तु बाज़ार में संतुलन उस स्थिति में सुनिश्चित होता है जब प्रत्याशित निवेश प्रत्याशित बचत के समान हो। यह समानता आगे समग्र माँग और समग्र पूर्ति एक–समान होते हैं, राष्ट्रीय आय का संतुलन स्तर कहलाता है और यही वस्तु बाज़ार में संतुलन का संकेत है।

आय का कोई अन्य स्तर जहाँ निवेश बचत के समान नहीं होता वहाँ समग्र माँग भी आपूर्ति के समान नहीं होती। अतः वस्तु बाज़ार में असंतुलन हो जाता है। यह असंतुलन दो प्रकार का हो सकता है– (1) वस्तु बाज़ार में आधिक्य, अर्थात् समग्र आपूर्ति समग्र माँग से अधिक हो– या बचत निवेश की अपेक्षा ज्यादा हो; और (2) वस्तु बाज़ार में अभाव–यहाँ समग्र आपूर्ति समग्र माँग से कम रह जाती है–या दूसरे शब्दों में बचत निवेश से कम पड़ती है।

17.2.3 ब्याज दर एवं राष्ट्रीय आय के विभिन्न संयोजनों पर निवेश-बचत समानता

विभिन्न ब्याज दरों तथा राष्ट्रीय आय के संयोजनों पर वस्तु बाज़ार के संतुलन इकाई 15 में IS वक्र के रूप में प्रस्तुत किया गया था। यह IS वक्र जो कि ब्याज दरों और आय स्तरों के विभिन्न संयोजनों पर वस्तु बाज़ार का संतुलन दिखाती है चित्र 17.1 में पुनः दर्शाई गई है। हम इसका भाग 17.4.1 में प्रयोग करेंगे।

चित्र 17.1

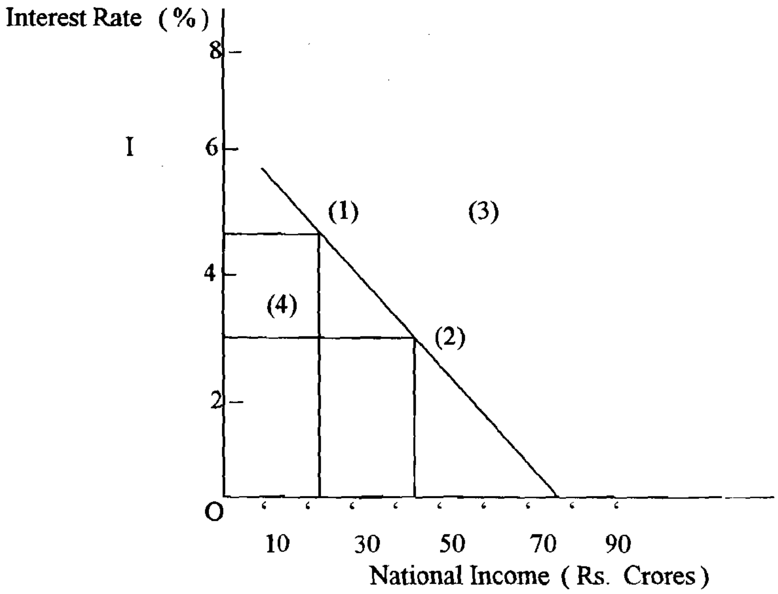

चित्र 17.1 में हमने इकाई 15 के चार भाग वाले चित्र के अंतिम भाग (d) में बनी IS वक्र को ही दुबारा प्रस्तुत किया है। उदग्र-अक्ष पर ब्याज की दर तथा क्षैतिज-अक्ष पर राष्ट्रीय आय का स्तर दिखाया गया है।

हमने इस चित्र 17.1 में X–अक्ष पर राष्ट्रीय आय तथा Y–अक्ष पर ब्याज की दर रखी है। IS वक्र का बिंदु (1) 5 प्रतिशत ब्याज दर एवं 20 करोड़ रुपए राष्ट्रीय आय दिखाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इसी तरह, बिंदु (2) पर ब्याज दर = 3 प्रतिशत और राष्ट्रीय आय = 40 करोड़ रुपए। दोनों ही बिंदुओं की यह भी विशेषता है कि इन पर निवेश तथा बचत भी एक–दूसरे के समान रहती हैं। हमें IS के प्रत्येक बिंदु पर यही निवेश बचत समानता प्राप्त होती है। चित्र में बिंदु (3) वस्तु बाज़ार में आधिक्य का द्योतक है। इसी प्रकार, बिंदु (4) पर अभाव की स्थिति है। वस्तुतः IS वक्र से ऊपर के सभी बिंदुओं पर आधिक्य तथा नीचे के सभी बिंदुओं पर अभाव पाया जाता है।

17.3 मुद्रा बाज़ार का संतुलन

मुद्रा बाज़ार के संतुलन की विस्तृत चर्चा हमने इकाई 16 में की है। इस बाज़ार में संतुलन वहाँ होता है जहाँ मुद्रा की माँग और इसकी आपूर्ति समान हो। मुद्रा की आपूर्ति एक प्रकार का स्टॉक है जिसे किसी समय के निश्चित बिंदु पर मापा है। मुद्रा की माँग तीन प्रकार की होती हैं, जिनमें से दो, अर्थात् विनिमय माँग तथा पूर्वोपाय माँग, को तो हम M_t द्वारा इकट्ठे ही दिखाते हैं। तीसरा घटक सट्टा माँग है। इसे M_{sp} द्वारा दिखाते हैं। मुद्रा की समग्र माँग M^d द्वारा दिखाई जाती है ($M^d = M_t + M_{sp}$)। हम यह भी जानते हैं कि M_t राष्ट्रीय आय का एक वृद्धिमान फलन है तथा Msp ब्याज की दर का ह्रासमान फलन है। अतः ब्याज की दर तथा राष्ट्रीय आय के विभिन्न संयोजनों पर हमें मुद्रा बाज़ार में पृथक्–पृथक् संतुलन प्राप्त होते हैं। इससे हमें मुद्रा बाज़ार में आधिक्य एवं अभाव की दशाओं को जानने में भी सहायता मिलती है।

17.3.1 मुद्रा बाज़ार के घटक

मुद्रा बाज़ार के घटक हैं– मुद्रा की आपूर्ति, मुद्रा की विनिमय एवं पूर्वोपाय माँग; तथा सट्टा माँग। मुद्रा की आपूर्ति का निर्धारण मौद्रिक अधिकारी स्वतंत्र रूप से करते हैं। मुद्रा की

विनिमय तथा पूर्वोपाय माँग राष्ट्रीय आय के साथ–साथ बढ़ती है। मुद्रा की सट्टा माँग ब्याज की दर के साथ घटती है। बहुत ही कम ब्याज दर पर तो यह माँग अपरिमित हैं। वस्तु बाज़ार की भाँति ही यहाँ भी कुछ घटक स्वतंत्र हैं, कुछ राष्ट्रीय आय पर निर्भर हैं तो अन्य का निर्धारण ब्याज दर द्वारा होता है।

17.3.2 मुद्रा की माँग एवं आपूर्ति की समानता

आपने इकाई 16 में देखा ही था कि मुद्रा बाज़ार में माँग एवं आपूर्ति की समानता ही संतुलन को सुनिश्चित करती है। इसी समानता से यह भी तय हो जाता है कि मुद्रा की सट्टा माँग इस उद्देश्य के लिए उपलब्ध मुद्रा की आपूर्ति के समान हो। (यह मात्रा वस्तुतः कुल आपूर्ति तथा विनिमय+पूर्वोपायी माँगों के बीच अंतर के समान होती है।)

चित्र 17.2

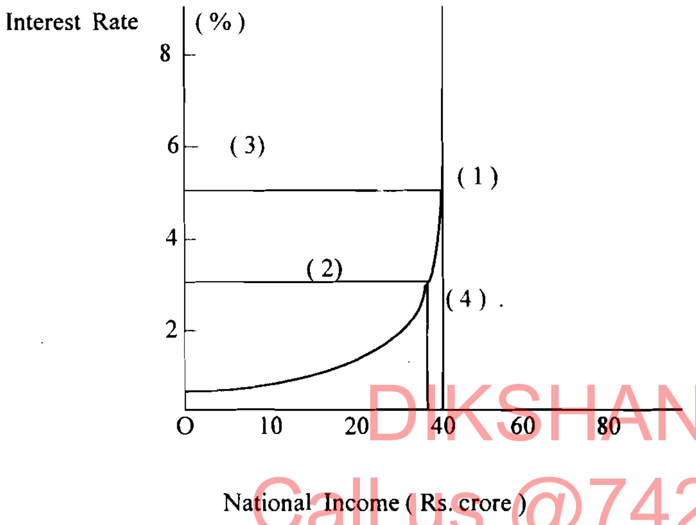

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 17.2 वस्तुतः इकाई 16 में बनाई गई LM वक्र ही है। यहाँ भी उदग्र-अक्ष पर प्रतिशत ब्याज दर और क्षैतिज-अक्ष पर राष्ट्रीय आय दिखाई गई है। LM वक्र का प्रत्येक बिंदु मुद्रा बाज़ार में संतुलन दिखाता है।

हमने चित्र 17.2 में X–अक्ष पर राष्ट्रीय आय तथा Y–अक्ष पर ब्याज की (प्रतिशत) दर दिखाई है। LM वक्र पर बिंदु (1) दिखाता है कि 5 प्रतिशत ब्याज तथा 45 करोड़ रुपये राष्ट्रीय आय होने पर मुद्रा की माँग (तरलता की माँग) मुद्रा की आपूर्ति के समान होगी। इसी तरह, बिंदु (2) यह बताता है कि 3 प्रतिशत ब्याज और 40 करोड़ राष्ट्रीय रुपये राष्ट्रीय आय होने पर भी मुद्रा की माँग एवं आपूर्ति समान होती है। इसी प्रकार से LM वक्र के सभी बिंदु मुद्रा की माँग एवं आपूर्ति की समता ही दिखाते हैं। पर, चित्र का बिंदु (3) मुद्रा बाज़ार में आधिक्य दिखाता है। बिंदु (4) इसी तरह से अभाव का परिचायक है। मुद्रा बाज़ार में असंतुलन का अर्थ हैं माँग का पूर्ति के समान नहीं होता। यह असंतुलन दो प्रकार का हो सकता है : (1) मुद्रा की आपूर्ति का माँग से अधिक होना, या फिर (2) मुद्रा की आपूर्ति का माँग से कम रह जाना। इस LM वक्र का हम चित्र 17.1 की IS वक्र के साथ प्रयोग कर भाग 17.4 में वस्तु एवं मुद्रा बाज़ारों में एक–साथ संतुलन का निर्धारण करेंगे।

17.4 वस्तु एवं मुद्रा बाज़ारों के एकीकरण

वस्तु एवं मुद्रा बाज़ारों के एकीकरण का अर्थ है दोनों बाज़ारों में एक–साथ संतुलन स्तर का निर्धारण करना कि दोनों में ही ब्याज की दर तथा राष्ट्रीय आय के स्तर का एक ही संयोजन निर्धारित हो। आपने इस इकाई के भाग 17.2 तथा 17.3 में देखा है कि वस्तु

बाज़ार का सार IS तथा मुद्रा बाज़ार का सार LM वक्र में निहित है। अतः दोनों बाज़ारों में एकीकरण स्थापित करने का अर्थ होगा एक ही द्वि–आयामी चित्र, जिसमें X–अक्ष पर राष्ट्रीय आय तथा Y–अक्ष पर ब्याज की दर हो, पर IS तथा LM दोनों वक्रों का अंकन। हम उस प्रक्रिया को भी सुनिश्चित करेंगे जिसके माध्यम से, यदि एक अथवा दोनों ही बाज़ारों में असंतुलन हों, दोबारा संतुलन कैसे स्थापित किया जाए। यह इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि अर्थव्यवस्था में ब्याज दर एवं राष्ट्रीय आय का केवल एक ही संयोजन हो सकता है।

17.4.1 ब्याज दर और राष्ट्रीय आय के विभिन्न संयोजनों पर IS तथा LM वक्र

आइए हम चित्र 17.1 और 17.2 को चित्र 17.3 में इकट्ठे दिखाएँ।

चित्र 17.3

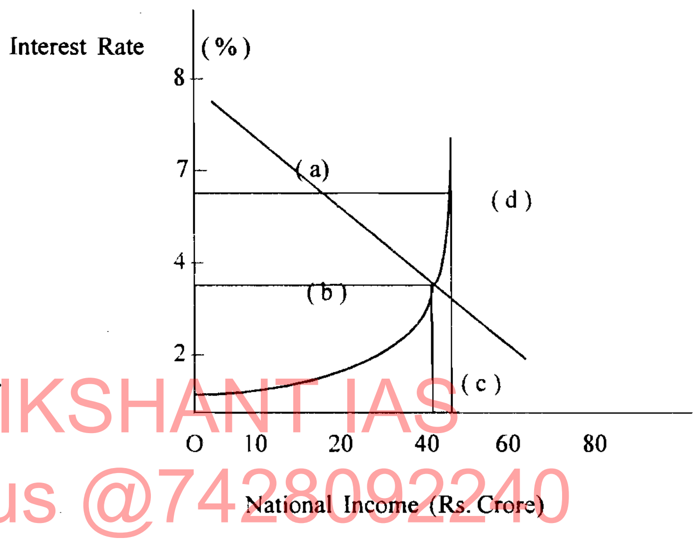

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

> **चित्र 17.3 में हमने चित्र 17.1 तथा चित्र 17.2 को एक-साथ बना दिया है। IS वस्तु बाज़ार का संतुलन दिखाती है तो LM मुद्रा बाज़ार का। जहाँ दोनों वक्र एक-दूसरे को काटती हैं वहाँ पर ही ब्याज दर तथा राष्ट्रीय आय का ऐसा संयोजन मिलता है जिसपर अर्थव्यवस्था के वास्तविक एवं मौद्रिक क्षेत्र में एक-साथ संतुलन स्थापित हो जाता है।**

हम जानते ही हैं कि IS तथा LM वक्रों के विभिन्न बिंदु क्रमशः वस्तु एवं मुद्रा बाज़ारों में विभिन्न ब्याज दरों तथा राष्ट्रीय आय स्तरों पर संतुलन दिखाते हैं। चित्र 17.3 का क्षेत्र (a) मुद्रा तथा वस्तु, दोनों बाजारों में आधिक्य दिखाता है। क्षेत्र (b) में वस्तु बाज़ार में अभाव, पर मुद्रा बाज़ार में आधिक्य है। क्षेत्र (c) में दोनों बाज़ारों में अभाव रहता है। क्षेत्र (d) में वस्तु बाज़ार में आधिक्य, पर मुद्रा बाज़ार में अभाव है। केवल बिंदु (1) पर ऐसा एकमात्र बिंदु है जहाँ IS तथा LM वक्र काटते हैं तथा दोनों ही बाज़ारों में एक–साथ संतुलन स्थापित हो जाता है। इस संतुलन अवस्था में ब्याज दर 3 प्रतिशत तथा राष्ट्रीय आय का स्तर 40 करोड़ रुपये है। अन्य किसी भी बिंदु पर दोनों बाज़ारों में एक–साथ संतुलन नहीं हो पाता।

17.4.2 वस्तु तथा मुद्रा बाज़ारों में संतुलन पुनः स्थापित करने के लिए कदम

आइए हम चित्र 17.3 को एक बार फिर बनाइए और इसके माध्यम से वस्तु तथा मुद्रा बाज़ारों में पुनः संतुलन की स्थापना की प्रक्रिया को समझें (अगर क्षेत्र (a), (b), (c) अथवा (d) जैसा असंतुलन हो गया हो)। इस प्रक्रिया की व्याख्या हम चित्र 17.4 में कर रहे हैं।

चित्र 17.4

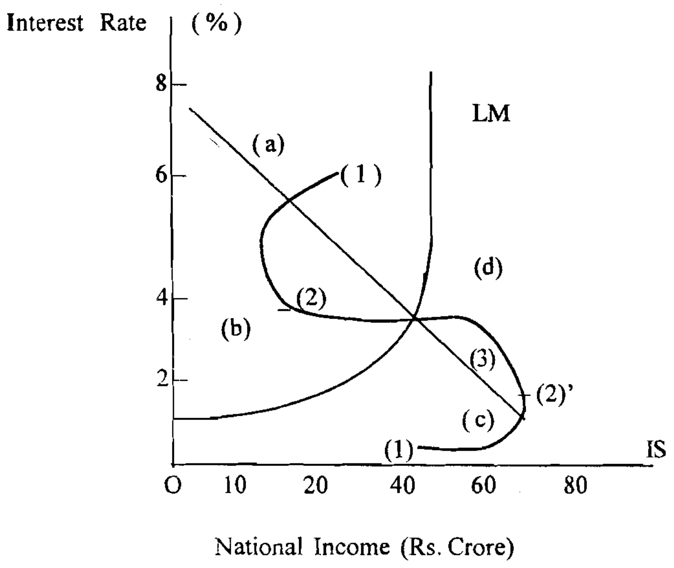

चित्र 17.4 में हम यह समझा रहे हैं कि यदि अर्थव्यवस्था IS तथा LM के छेदन बिंदु से परे हटकर (a), (b), (c) अथवा (d) किसी भी क्षेत्र में चली जाए तो फिर इसमें संतुलन की पुनः स्थापना किस प्रकार होगी?

हम चित्र 17.4 में यह दिखा रहे हैं अर्थव्यवस्था असंतुलन से पुनः संतुलन की ओर किस प्रकार जाती है। आइए (a) में बिंदु (1) पर ध्यान दें। इस बिंदु पर वस्तु तथा मुद्रा, दोनों ही बाज़ारों में आधिक्य है। वस्तु बाज़ार में आधिक्य समाप्त करने के लिए **संकुचनवादी राजकोषीय नीति** का प्रयोग आवश्यक हो जाता है (यानि चाहे सरकारी व्यय में कटौती की जाए, या स्वतंत्र निवेश में या फिर कर बढ़ाए जाएँ अथवा निर्यात घटाए जाएँ।) इन सभी से राष्ट्रीय आय कम होती है। बिंदु (1) की बाईं ओर तीर का निशान आय की कमी की ओर इंगित करता है। इसी प्रकार, मुद्रा बाज़ार में आधिक्य का निदान ब्याज दर कम करना या **विस्तारी मौद्रिक नीति** अपनाना होगा। यही बात बिंदु (1) पर नीचे की ओर निर्देश कर रहे तीन तीर चिह्नों से स्पष्ट होती है। पर संकुचनवादी राजकोषीय और विस्तारी मौद्रिक नीतियों का अनुसरण हमें क्षेत्र (b) के बिंदु (2) तक ले जाता है। यहाँ पर वस्तु बाज़ार में अभाव तथा मुद्रा बाज़ार में आधिक्य रहता है। अब हमें अपनी राजकोषीय नीति का स्वरूप बदलना पड़ता है, वह भी मौद्रिक नीति की ही भाँति विस्तारी हो जाती है। यह अंततः हमें बिंदु (3) पर ले जाती है जहाँ वस्तु तथा मुद्रा बाज़ारों में एक-साथ संतुलन स्थापित हो जाते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

हम क्षेत्र (c) के बिंदु (1') से भी अपनी यह संतुलन यात्रा आरंभ कर सकते हैं। यहाँ दोनों ही बाज़ारों में अभाव की स्थिति है। इसे ठीक करने के लिए हम संकुचनकारी मौद्रिक तथा विस्तारी राजकोषीय नीति अपनाएँगे। ये नीतियाँ हमें क्षेत्र (d) में बिंदु (2') तक ले जाती हैं। अब वस्तु बाज़ार में आधिक्य तथा मुद्रा बाज़ार में अभाव होगा। अब हम मौद्रिक और राजकोषीय नीतियों, दोनों को ही संकुचनकारी रखते हुए बिंदु (2') से बिंदु (3) पर आगे बढ़ते हैं। यहीं हमें अंततः बिंदु (3) पर ले जाती हैं जहाँ दोनों बाज़ारों में पुनः एक-साथ संतुलन स्थापित हो जाता है।

संतुलन की पुनः स्थापना कितनी शीघ्रता से संभव हो पाती है यह बात तो IS तथा LM वक्रों के ढाल पर निर्भर करती है। यदि IS वक्र का ढाल LM की तुलना में अधिक हो तो बिंदु (3) का संतुलन भी अधिक तेज़ी से प्राप्त हो सकता है।

बोध प्रश्न 1

1) चित्र 17.4 के क्षेत्र (d) में कोई बिंदु चुनिए। अब संतुलन बिंदु (3) तक पहुँचेन के लिए आप क्या कदम उठाएँगे?

....

....

....

....

....

2) अति–न्यून ब्याज दर पर LM वक्र X–अक्ष के समानांतर क्यों हो जाती है?

....

....

....

....

....

3) संकुचनकारी मौद्रिक एवं राजकोषीय नीतियों में अंतर बताइए।

....

DIKSHANT IAS

....

Call us @7428092240

....

....

....

17.5 IS-LM तकनीक के माध्यम से क्लासिकी दृष्टिकोण

हम 17.4.1 में विकसित IS-LM तकनीक का प्रयोग कर क्लासिकी एवं केंजीय दृष्टिकोणों में भेद स्पष्ट कर सकते हैं। क्लासिकी अर्थशास्त्री मानते थे कि मुद्रा की जरूरत केवल लेन–देन उद्देश्य के लिए पड़ती है। उनका यह भी दृढ़ विश्वास था कि अर्थव्यवस्था सदा ही पूर्ण रोज़गार की अवस्था में रहती है तथा समग्र माँग कम होने के कारण बेरोज़गारी जैसी समस्या कभी पैदा नहीं हो सकती। जे.बी.से. (J.B. Say) ने अपना "बाज़ार का नियम" प्रतिपादित किया, जिसके अनुसार पूर्ति स्वमेव ही अपनी माँग का सृजन कर लेती है। यदि यह मानें कि बचत है ही नहीं "से" का नियम कुछ इस प्रकार कार्य करेगा– वस्तुओं को उत्पादन करने के लिए हमें साधन सेवाएँ चाहिए तथा साधन–स्वामियों को इनकी एवज में साधन आय प्राप्त होती है। इसी साधन आय का प्रयोग कर वे साधन–स्वामी उद्यमों द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं को खरीद लेते हैं।

आय वितरण के सीमांत उत्पादन सिद्धांत से परिचित ही हैं : किसी भी उत्पादन साधन को अभी तक प्रयोग में लाया जाता है जब तक कि उसका सीमांत आगम उत्पाद उसे दिए जाने वाले प्रतिफल के समान नहीं हो जाता। इस प्रकार साधन प्रतिफलों का योग कुल उत्पादन के मूल्य के समान ही होता है। अतः माँग की कमी होने का प्रश्न ही नहीं उठता। यदि बचत होती है तो साधन आय का भाग उपभोग पर खर्च होगा, शेष बचत होगा। उपभोग व्यय उपभोक्ता वस्तुओं और सेवाओं पर खर्च होता है तथा बचत निवेश

करने के लिए प्रयोग में आती है। यदि बचत निवेश के ही समान रहे तो भी अर्थव्यवस्था में माँग का अभाव नहीं हो पाएगा। क्लासिकी अवधारणा में बचत–निवेश समानता ब्याज की दर में परिवर्तन से होती है। श्रम की माँग उसकी पूर्ति में समानता वास्तविक मज़दूरी दर में परिवर्तन से आती है। हम क्लासिकी अर्थशास्त्रियों का दृष्टिकोण IS-LM वक्र की तकनीकों द्वारा समझा सकते हैं (देखें चित्र 17.5)।

चित्र 17.5

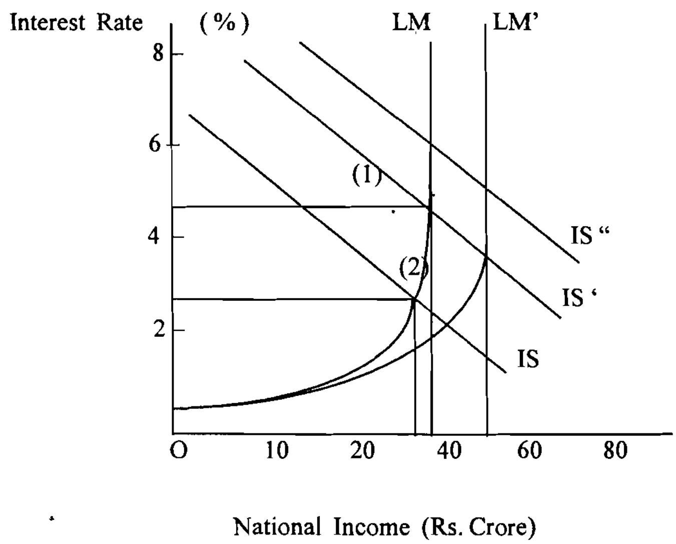

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 17.5 में हमने दिखाया है कि बिंदु (1) से आगे LM वक्र Y-अक्ष के समानांतर हो जाती है। इसे क्लासिकी विस्तार-सीमा (range) कहा जाता है। इसका अर्थ यह है कि यदि निवेश अथवा राजकीय व्यय की वृद्धि से IS' यह खिसककर IS" हो जाए तो ब्याज दर 5 प्रतिशत से बढ़कर 7.5 प्रतिशत हो जाएगी पर राष्ट्रीय आय 45 करोड़ रुपये ही रहेगी। यदि राष्ट्रीय आय को बढ़ाकर 55 करोड़ रुपये करना हो तो मुद्रा की आपूर्ति को बढ़ाना होगा अर्थात् LM को खिसककर LM' तक पहुँचाना होगा (IS' को स्थिर रखते हुए)।

यह आसानी से समझा जा सकता है कि मौद्रिक नीति के प्रभाव का निर्धारण करने में IS वक्र के ढाल का बहुत महत्त्व होता है। यदि IS वक्र IS' से अधिक ढालू (sleeper) होता तो राष्ट्रीय आय को 55 करोड़ तक पहुँचाने के लिए कहीं अधिक मौद्रिक विस्तार की आवश्यकता होती। दूसरे शब्दों में, IS के अधिक ढालू होने से मौद्रिक प्रभावशाली रहती है। यदि IS कम ढालू हो तो मौद्रिक नीति अधिक प्रभावशाली हो जाती है।

17.5.1 क्लासिकी दृष्टिकोण के नीतिगत प्रभाव

आइए देखें कि क्लासिकी दृष्टिकोण का क्या नीतिगत अर्थ है। एक बार फिर चित्र 17.5 पर गौर कीजिए। इस चित्र 45 करोड़ रुपये की राष्ट्रीय आय के संतुलन स्तर पर दोनों बाज़ार (वस्तु एवं मुद्रा बाज़ार) संतुलन में है। अगर पूर्ण रोज़गार संतुलन आय स्तर 55 करोड़ रुपये हो तो उसकी प्राप्ति तभी संभव होगी जब हम LM को खिसककर LM' तक पहुँचने दें अर्थात् मुद्रा की पूर्ति को बढ़ने दें। LM का कितना खिसकना होगा, यह बात IS के ढाल पर निर्भर है। हमारे चित्र में यह पूर्ण रोज़गार संतुलन बिंदु (2) से जुड़ा है, जहाँ IS' तथा LM' परस्पर काटती है। बिंदु (2) पर राष्ट्रीय आय का संतुलन स्तर 55 करोड़ रुपये है। दूसरी ओर, यदि IS वक्र IS' वक्र से अधिक ढालू होता तो LM वक्र को और ज्यादा खिसकाना पड़ता। अर्थात् पूर्ण रोज़गार स्तर पाने के लिए मुद्रा की आपूर्ति और ज्यादा बढ़ानी पड़ती। अतः हमें तुरंत यह अनुभूति होती है कि जब LM अपने क्लासिकी विस्तार सीमा में हो अर्थात् Y–अक्ष के स्थानांतर हो तो राष्ट्रीय आय के संतुलन स्तर को

प्रभावित करने वाली एकमात्र नीति मौद्रिक नीति ही होती है। ऐसी दशा में राजकोषीय नीति तो केवल ब्याज की दर को प्रभावित कर पाती है। यदि विस्तारी राजकोषीय नीति का अनुसरण कर हम IS' से खिसककर IS" पर पहुँच जाए तो भी ब्याज की दर अवश्य 5 प्रतिशत से बढ़कर 7.5 प्रतिशत हो जाती है और राष्ट्रीय आय के 45 करोड़ रुपये के स्तर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

अंतः क्लासिकी विस्तार–सीमा में केवल मौद्रिक नीति ही प्रभावपूर्ण होती है। मौद्रिक नीति का प्रभाव भी IS के ढाल पर ही निर्भर है। यदि IS वक्र अधिक ढालू होगा तो मौद्रिक नीति कम प्रभावपूर्ण रहेगी और यदि कम ढालू होगा तो यह मौद्रिक नीति अधिक प्रभावशाली होगी। विस्तारी राजकोषीय नीति (IS की बाहर की ओर खिसकन) से ब्याज की दर में वृद्धि के पीछे कारण यह है कि अथवा राजकीय व्यय में वृद्धि से राष्ट्रीय आय बढ़ेगी। कितनी बढ़ेगी यह गुणक के मूल्य पर निर्भर है। इस आय वृद्धि के फलस्वरूप मुद्रा की विनिमय माँग में वृद्धि होगी। अतः मुद्रा की आपूर्ति स्थिर रहने की दशा में सट्टेबाजी के लिए उपलब्ध मुद्रा की मात्रा कम रह जाएगी। इसी से ब्याज दर बढ़ेगी। हम यह भी कह सकते हैं कि सरकारी निवेश अथवा व्यय की वृद्धि से निजी निवेश गिर जाता है और परिणामस्वरूप ह्रासकारी प्रभाव (crowding-out effect) शुरू हो जाता है।

17.6 केन्ज़ीय दृष्टिकोण और IS-LM वक्र विश्लेषण

क्लासिकी विस्तार–सीमा में LM वक्र Y–अक्ष के समानांतर था। अब हम एक दूसरी चरम सीमा लेते हैं जहाँ LM वक्र X–अक्ष के समानांतर हो जाता है जहाँ कि मुद्रा की माँग अपरिमित (infinity) हो जाती है। इस विस्तार–सीमा में केन्ज़ीय दृष्टिकोण अपने सबसे प्रभावशाली रूप में होता है। ऐसा चित्र 17.6 की सहायता से दिखाया जा सकता है—

DIKSHANT IAS

चित्र 17.6

Call us @7428092240

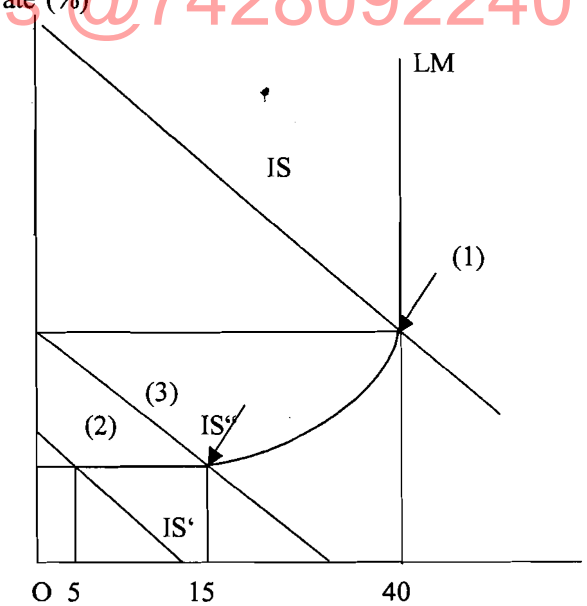

> **चित्र 17.6 में हम LM वक्र के X-अक्ष के समानांतर भाग पर ही अपना ध्यान केंद्रित कर रहे हैं। यही केन्ज़ीय अवधारणा का पूर्ण प्रभावोत्पादकतापूर्ण क्षेत्र है। यहाँ पर अर्थव्यवस्था 'नकदी जाल' में बंधी होती है और मौद्रिक नीति के परिवर्तन प्रभावी नहीं हो पाते पर राजकोषीय नीति पूरी तरह से प्रभावपूर्ण सिद्ध होती है।**

आइए चित्र 17.6 पर गौर करें। IS वक्र LM वक्र को बिंदु (1) पर काटती हैं। यहाँ ब्याज

दर = 3 प्रतिशत तथा राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय आय = 40 करोड़ रुपये है। ब्याज दर 0.5 प्रतिशत पर LM वक्र X–अक्ष के समानांतर हो जाता है। यही 'नकदी जाल' की स्थिति है। यहाँ सट्टेबाजी के लिए मुद्रा की माँग की अपरिमित हो जाती है। यह विस्तार–सीमा, 'केन्ज़ीय विस्तार सीमा' कहलाती है।

केन्ज़ीय अथवा आय पर संतुलन जाल विस्तार–सीमा में 0.5 प्रतिशत ब्याज दर पर 5 करोड़ रुपये की राष्ट्रीय आय पर संतुलन है। यह बिंदु (2) द्वारा निर्दिष्ट है। यदि हम राष्ट्रीय आय को बढ़ाकर 15 रुपये तक पहुँचाना चाहें तो मौद्रिक नीति सफल नहीं होगी क्योंकि ब्याज दर 0.5 प्रतिशत स्तर पर ही रहेगा। दूसरी ओर, स्वतंत्र निवेश या फिर राजकीय व्यय में वृद्धि करके गुणक प्रभाव द्वारा राष्ट्रीय आय में यह वृद्धि सहज ही प्राप्त कर सकती हैं। आप जानते ही हैं कि स्वतंत्र निवेश और राजकीय व्यय की वृद्धि को हम IS के दाहिनी ओर खिसकाव द्वारा दिखाते हैं। अतः यदि यह वक्र IS' से खिसककर IS" हो जाए तो राष्ट्रीय आय भी 5 से बढ़कर 15 करोड़ रुपये हो सकती है। IS वक्र के इसी खिसकाव को विस्तारी राजकोषीय नीति का नाम दिया जात; है। इसके विपरीत, राष्ट्रीय आय को कम करने के लिए हमें संकुचनकारी राजकोषीय नीति अपनानी होती है।

अतः यह स्पष्ट है कि इस केन्ज़ीय विस्तार–सीमा में उपयुक्त नीति केवल राजकोषीय नीति, यानी राजकीय व्यय अथवा कराधान में परिवर्तन की नीति ही है।

17.6.1 केन्ज़ीय दृष्टिकोण के नीतिगत अर्थ

एक बार फिर चित्र 17.6 पर ध्यान दें। प्रारंभिक संतुलन स्तर बिंदु (2) पर है जहाँ ब्याज की दर 0.5 प्रतिशत है तथा राष्ट्रीय आय 5 करोड़ रुपये है। अगर पूर्ण रोज़गार आय स्तर 15 करोड़ रुपये हो तो उस तक पहुँचने के लिए स्वतंत्र निवेश या फिर राजकीय व्यय बढ़ाना आवश्यक हो जाता है। यही बात IS' से IS" तक के खिसकाव द्वारा दिखाई है क्योंकि LM तो X–अक्ष के समानांतर है। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस अवस्था में पूर्ण रोज़गार स्तर वहाँ प्राप्त होता है जहाँ IS" तथा LM वक्र एक–दूसरे को काटने हैं यानी बिंदु (3) पर। यहीं पर राष्ट्रीय आय का संतुलन स्तर 15 करोड़ रुपये होता है। इस प्रकार केन्ज़ीय विस्तार–सीमा में जब LM वक्र X–अक्ष के समानांतर हो जाता है तो आय के स्तर में परिवर्तन लाने के लिए केवल राजकोषीय नीति कारगर होती है। अगर मौद्रिक नीति अपनाई जाती है तो यह असफल सिद्ध होगी क्योंकि यह ब्याज की दर में परिवर्तन द्वारा लागू की जा सकती है, जबकि इसके अपनाने से ब्याज की दर में कोई परिवर्तन नहीं होता।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भाग 17.5.1 में जिस ह्रासकारी प्रभाव की हमने चर्चा की थी, वह प्रभाव इस केन्ज़ीय विस्तार–सीमा में पूर्णतः अनुपस्थित रहता है। इसी कारण यहाँ गुणक प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। हम यह भी कह सकते हैं कि इस नकदी जाल विस्तार–सीमा में केन्ज़ बाज़ार के अस्तित्व को ही नकार देते हैं।

आइए अब अंत में हम केन्ज़ीय तथा क्लासिकी विस्तार–सीमाओं के बीच मध्यवर्ती विस्तार–सीमा को देखें। पाठक स्वयं ही यह कार्य कर सकते हैं। चित्र 17.6 के बिंदु (1) को देखिए : यहाँ ब्याज दर = 3 प्रतिशत तथा राष्ट्रीय आय = 40 करोड़ रुपये। मान लीजिए कि आय का पूर्ण रोज़गार स्तर 42 करोड़ रुपये है। यह स्तर प्राप्त करने के लिए हम तो LM वक्र को स्थिर रख, LM व्रक्र को सीधे हाथ की ओर खिसका सकते हैं। यही प्रभाव IS वक्र को स्थिर रखकर LM वक्र को सीधे हाथ की ओर खिसकाकर भी प्राप्त हो सकता है। यही नहीं, हम IS तथा LM दोनों को ही सीधे हाथ की ओर खिसककर भी इस पूर्ण रोज़गार स्तर की आय पर पहुँच सकते हैं। यह स्वाभाविक ही है कि यदि दोनों वक्रों को एक–साथ खिसकाएँ तो केवल एक ही वक्र खिसकाने की तुलना में, दोनों अपेक्षाकृत कम खिसकाने से ही काम चल सकता है।

राष्ट्रीय आय के पूर्ण रोज़गार स्तर की प्राप्ति में मौद्रिक एवं राजकोषीय नीतियों की सापेक्ष प्रभावोत्पादकता IS तथा LM के ढालों पर निर्भर करती है। सामान्य नियम यह है कि

यदि IS वक्र किसी दिए हुए LM वक्र की तुलना में कम ढालू हो तो राजकोषीय नीति अधिक प्रभावोत्पादक होती है। दूसरी ओर, यदि IS वक्र अधिक ढालू हो तो मौद्रिक नीति अधिक प्रभावपूर्ण सिद्ध होगी।

ऊपर बताई गई मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियों की सापेक्ष प्रभावोत्पादकता की चार संभावनाओं का आकलन पाठक स्वयं चित्र की सहायता से करके देख सकते हैं।

बोध प्रश्न 2

1) 'ह्रासकारी प्रभाव' (crowding out effect) के कार्य करने में क्या–क्या चरण निहित हैं?

....

....

....

....

....

2) यदि IS वक्र दिया हुआ हो और LM वक्र का ढाल हो जाए तो आप किस नीति की सिफारिश करेंगे—मौद्रिक अथवा राजकोषीय?

....

....

DIKSHANT IAS

....

....

Call us @7428092240

....

3) यदि कर बढ़ा दिया जाए और वस्तु बाज़ार के साथ–साथ मुद्रा बाज़ार भी हो तो तर्क द्वारा समझाइए कि इससे कि प्रकार राष्ट्रीय आय कम गिरेगी।

....

....

....

....

....

17.7 सारांश

हमने इस इकाई का आरंभ वस्तु बाज़ार के घटकों तथा उसके संतुलन से किया है। फिर वस्तु बाज़ार में संतुलन प्राप्त करने के उद्देश्य से निवेश–बचत समानता की चर्चा की है। ब्याज दर तथा राष्ट्रीय आय के विभिन्न संयोजनों से ही हम निवेश–बचत समानता तक पहुँचे हैं। इसी प्रकार, ब्याज दर और आय के विभिन्न संयोजनों पर मुद्रा बाज़ार का संतुलन, उसके विभिन्न घटकों, मुद्रा की माँग तथा पूर्ति की समानता के बारे में चर्चा की गई है।

ब्याज दर तथा राष्ट्रीय आय का एकमात्र ऐसा संयोजन प्राप्त करने के लिए जिस पर वस्तु बाज़ार और मुद्रा बाज़ार में एक–साथ संतुलन हो, हमने IS तथा LM वक्रों की सहायता से वस्तु और मुद्रा बाज़ारों के एकीकरण करने के बारे में चर्चा की है। यदि यहाँ एक या दोनों बाज़ार असंतुलन में हों, तो पुनः संतुलन में लाने की प्रक्रिया का विश्लेषण भी हमने किया है।

अंततः IS-LM तकनीक द्वारा क्लासिकी, केन्ज़ीय तथा मध्यवर्ती विस्तार–सीमाओं की भी विस्तृत चर्चा की गई है। क्लासिकी एवं केन्ज़ीय दृष्टिकोणों के नीतिगत अर्थों पर चर्चा के साथ हमने इस इकाई का समापन किया है।

17.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Lipsey, Richard G (1983) : *An Introduction to Positive Economics* (6th Ed., ELBS and Weidenfild and Nicolson: London (Chapter 35-36)

Shapiro, Edward, 1984: *Macro Econmic Analysis* (5th Ed.); Galgotia Publications: New Delhi (Chapter 1-12)

Samuelson, Paul 8A (1973) : *Economic* (9th Ed.); International Student Edition, McGraw-Hill Kagakusho Ltd.: Tokyo (11-12)

17.9 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

बोध प्रश्न 1

1) क्षेत्र (d) में मुद्रा बाज़ार में अभाव तथा वस्तु बाज़ार में आधिक्य है। अतः संकुचनकारी मौद्रिक नीति (ब्याज दर वृद्धि) तथा ऐसी ही राजकोषीय नीति (राष्ट्रीय आय कम करना) उचित होगा। एक तीर ऊपर तथा दूसरा बाईं ओर इंगित करेगा। ये नीतियाँ हमें क्षेत्र (a) में पहुँचा देंगी। वहाँ से संतुलन बिंदु (3) तक का मार्ग तो हम जानते ही हैं (चित्र 17.4)।

2) जब ब्याज दर बहुत कम होती हैं तो सभी को इनके बढ़ने की आशा होती है। इसे बॉण्डों की कीमतें गिरने की आशा भी कहा जा सकता है। अतः लोग अपनी सम्पत्ति को सरल रूप में ही रखना बेहतर मानते हैं। इसी कारण न्यून ब्याज दर पर मुद्रा की माँग अपरिमित हो जाती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3) संकुचनकारी मौद्रिक नीति में मुद्रा की आपूर्ति कम की जाती है और ब्याज की दर बढ़ा दी जाती है। ब्याज दर वृद्धि से निवेश कम होकर राष्ट्रीय आय कम होती है। इसी से इसे संकुचनकारी नीति कहा जाता है।

   कर आगम को स्थिर रख सरकारी व्यय में कटौती अथवा सरकारी व्यय स्थिर रखकर आगम में वृद्धि करना संकुचनकारी राजकोषीय नीति कहा जाता है। इस दशा में राजकीय व्यय तथा कर गुणकों के प्रभावस्वरूप राष्ट्रीय आय गिर जाती है।

बोध प्रश्न 2

1) सरकारी/निवेश व्यय की वृद्धि से राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है। यह वृद्धि गुणक के मूल्य पर निर्भर होती है। राष्ट्रीय आय बढ़ने से मुद्रा की विनिमय माँग बढ़ती है और सट्टेबाजी के लिए उपलब्ध मुद्रा कम रह जाती है। इस कारण ब्याज की दर बढ़ती है जिसके परिणामस्वरूप निजी निवेश घटता है तथा इसी से राष्ट्रीय आय में कमी आ जाती है। अतः स्वतंत्र व्यय में प्रारंभिक वृद्धि से राष्ट्रीय आय में उतनी वृद्धि नहीं हो पाती जितनी कि मुद्रा बाज़ार नहीं होने की दशा में संभव हो सकती थी।

2) यहाँ राजकोषीय नीति अधिक उपयुक्त होगी क्योंकि हम केन्ज़ीय विस्तार–नीति में पहुँच रहे हैं, LM वक्र का ढाल कम हो रहा है।

3) कर गुणक हम -C'1-C द्वारा दिखाते हैं। यहाँ C = सीमात उपभोग प्रवृत्ति है।

   कर में वृद्धि से राष्ट्रीय आय में कमी इसी कर गुणक के आकार पर निर्भर है। राष्ट्रीय आय की इस कमी से मुद्रा की विनिमय माँग में कमी आती है। मुद्रा की आपूर्ति स्थिर रहने पर इससे सट्टेबाजी के लिए उपलब्ध मुद्रा की मात्रा बढ़ जाती है। इसके परिणामस्वरूप ब्याज दर कम होती है। इससे राष्ट्रीय आय बढ़ने लगती है।

   अतः मुद्रा बाजार के समावेश के कारण कर वृद्धि से राष्ट्रीय आय उतनी नहीं गिरती।

इकाई 18 मुद्रा की माँग के सिद्धांत : क्लासिकी, केन्ज़ीय तथा आधुनिक स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य
18.1 प्रस्तावना
18.2 अर्थव्यवस्था में मुद्रा की भूमिका
18.3 मुद्रा की माँग की वैकल्पिक अवधारणाएँ
18.4 मुद्रा का परिमाण सिद्धांत या क्लासिकी दृष्टिकोण
18.5 मुद्रा की माँग का केन्ज़ीय सिद्धांत
    18.5.1 मुद्रा की विनिमय माँग
    18.5.2 मुद्रा की पूर्वोपायी माँग
    18.5.3 मुद्रा की सट्टा माँग
18.6 मुद्रा का परिमाण सिद्धांतः आधुनिक स्वरूप
18.7 तीनों स्वरूपों में मुद्रा की माँग की तुलना
18.8 सारांश
18.9 शब्दावली
18.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें
18.11 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

18.0 उद्देश्य

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- मुद्रा का महत्त्व समझ सकेंगे तथा इसके कार्यों को जान सकेंगे;
- जान सकेंगे कि लोग मुद्रा या नकदी अपने पास क्यों रखना चाहते हैं;
- समझ पाएँगे कि मुद्रा की माँग के सैद्धांतिक परिणाम क्या होते हैं; तथा
- विभिन्न मुद्रा माँग सिद्धातों और उनपर आधारित नीतियों की तुलना कर सकेंगे।

18.1 प्रस्तावना

वस्तु विनिमय व्यवस्था में वस्तुओं का वस्तुओं या सेवाओं के बदले ही लेन-देन होता है। यदि व्यक्ति 'क' के पास जूते फालतू हों तथा 'ख' के पास चावल, तो उन दोनों में लेन-देन तभी हो पाएगा जबकि 'क' को चावल तथा 'ख' को जूतों की आवश्यकता हो, तथा वे दोनों एक-दूसरे के संपर्क में भी आ जाएँ। इसे ही वस्तु विनिमय (Barter) व्यवस्था कहते हैं। इसे बिना मुद्रा का प्रयोग किए प्रत्यक्षतः वस्तुओं/सेवाओं का आदान-प्रदान भी कहते हैं।

वस्तु विनिमय व्यवस्था की त्रुटियाँ

वस्तु विनिमय व्यवस्था में कई तरह की त्रुटियाँ या समस्याएँ पाई जाती है। उनमें से चार मुख्य इस प्रकार हैं :

i) **मूल्य के सामान्य मानदण्ड का अभाव** : इस व्यवस्था में वस्तुओं के मूल्यांकन का कोई सामान्य माध्यम नहीं होता। यह आवश्यक नहीं कि सभी वस्तुओं के मूल्य समान हों। अगर

'क' के पास चावल व 'ख' के पास गेहूँ हो तो वह कितने गेहूँ कितनी चावल की मात्रा के बदले आदान-प्रदान करेंगे? सामन्य मूल्यांकन मानदण्ड के अभाव में 'क' तथा 'ख' कि माँगों की पारस्परिक तीव्रता ही गेहूँ एवं चावल की विनिमय दर का निर्धारण कर पाएगी।

ii) **माँग के दोहरे संयोग की अनिवार्यत** : वस्तु विनिमय में यदि विनिमय कर्त्ताओं में माँग का दोहरा संयोग नहीं बने तो लेन-देन संभव नहीं होता। जब तक दोनों व्यक्ति एक-दूसरे के पास फालतू वस्तु के ही आकांक्षी नहीं हों, वे लेन-देन कर ही नहीं पाएँगे। जब तक यह दोहरा संयोग पूरी तरह से ठीक न बैठे वे व्यक्ति लेन-देन नहीं कर पाते। यदि गेहूँ बेचने वाले किसान को जूते चाहिए तो जूते बेचने वाले ऐसे व्यक्ति को ही तलाश करना होगा जिसे गेहूँ की ज़रूरत हो।

iii) **वस्तुओं की अविभाज्यता** : बहुत सी वस्तुओं को छोटी इकाइयों में बाँट पाना संभव नहीं होता। यदि 'क' के पास एक घोड़ा हो तथा 'ख' के पास एक किलोग्राम चावल हो और वे दोनों क्रमशः चावल व घोड़े के खरीददार भी हों तो भी विनिमय संभव नहीं होगा। एक किलोग्राम चावल के बदले तो कोई घोड़ा देने वाला नहीं होगा और जीवित घोड़े के छोटे टुकड़े कर पाना संभव नहीं होता। अतः यहाँ दोहरे संयोग के बाद भी लेन-देन नहीं हो पाता।

iv) **धन के संग्रह की कठिनाइयाँ** : वस्तु विनिमय व्यवस्था की एक अन्य कठिनाई भविष्य में प्रयोग के लिए धन-संग्रह से जुड़ी है। गेहूँ, चावल, घोड़ा, चमड़ा आदि सभी वस्तुएँ बहुत टिकाऊ नहीं होती। समय के साथ-साथ ये बिगड़ने लगती है। अतः इन्हें भविष्य में प्रयोग के लिए सहेज कर नहीं रखा जा सकता।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

वस्तु विनिमय व्यवस्था ऐसी साधारण, अत्यंत ही अविकसित अर्धव्यवस्थाओं में ही उपयुक्त रह सकती थी जहाँ भौतिक आवश्यकताएँ बहुत सीमित थीं, तथा एक जैसी-सी चीज़ें खाने, एक-से कपड़े पहनने वाले लोग एक जैसे से ही कार्यों में संलग्न रहते थे। पर जैसे-जैसे सभ्यता का विकास हुआ, मनुष्य तरह-तरह की चीज़ें प्रयोग करने लगा, हर प्रकार के कार्य में श्रम-विभाजन का प्रसार हुआ और वस्तु विनिमय की त्रुटियाँ और अधिक उजागर होती गईं। इसी से किसी ऐसे वैकल्पिक विनिमय माध्यम की आवश्यकता महसूस होने लगी जिससे वस्तु विनिमय की कठिनाइयों से उबरकर लेन-देन सहज भाव से हो सके। इसी ने मुद्रा को जन्म दिया।

मुद्रा को मानव समाज के महानतम आविष्कारों में से एक माना जा सकता है। इसकी हमें अपने आप में उस तरह से आवश्यकता नहीं होती जैसे रोटी, कपड़ा या रहने के लिए घर की जरूरत होती है। मुद्रा की जरूरत तो लेन-देन चलाने के लिए रहती है। इसकी क्रय-शक्ति ही में वस्तुओं और सेवाओं के आदान-प्रदान में सहायक होती है। इस दृष्टि से मुद्रा एक विलक्षण वस्तु बन जाती है।

18.2 अर्थव्यवस्था में मुद्रा की भूमिका : इसकी विशेषताएँ एवं कार्य

हम अपने नित्यप्रति के लेन-देन में मुद्रा के कार्य से परिचित हैं। आर्थिक लेन-देन के माध्यम के रूप में मुद्रा का यह कार्य ऐतिहासिक दृष्टि से इसका सबसे पुराना कार्य है। ऐसा इसलिए है क्योंकि मुद्रा सभी को स्वीकार होती है। संक्षेप में, जो कुछ भी ऋण भुगतान सहित लेन-देन में स्वीकार हो उसे मुद्रा कहते हैं। यह मुद्रा की सर्वग्राह्यता के कारण संभव होता है। मुद्रा के समेत सभी विनिमयों या भुगतानों या भुगतानों में सहज भाव से 'स्वीकार्य' चीज़ हो तो कहा जाता है। यह सबसे अधिक प्रचलित विनिमय यानि क्रय-शक्ति के अंतरण का माध्यम है। इसकी सबसे बड़ी विलक्षणता इसकी सर्वमान्य स्वीकार्यता है। इसे खर्च करने या इससे ऋण चुकाने के लिए इसे किसी और चीज़ में बदलने की जरूरत नहीं होती 'अर्थव्यवस्था में सभी इसे मुद्रा के रूप में स्वीकार कर लेंगे'' यही विश्वास किसी चीज को मुद्रा का स्वरूप प्रदान करता है। किसी ने ठीक ही कहा है

मुद्रा के बस काम हैं चार

माध्यम, मान, मानक, भण्डार

मुद्रा के कार्य

मुद्रा के चार मुख्य कार्य हैं :

i) **विनिमय का माध्यम**

हम जानते ही हैं कि वस्तु विनिमय में दोहरे संयोग के बिना लेन-देन नहीं हो पाता। मुद्रा इस कठिनाई को हल कर देती है। सभी व्यक्ति, क, ख, ग अपने-अपने अथवा उत्पादन मुद्रा के बदले और लोगों को बेच सकते हैं तथा प्राप्त मुद्रा से अपनी आवश्यक चीज़ें खरीद सकते हैं। मुद्रा की यह विशेषता बड़े पैमाने पर वाणिज्य और व्यापार के विकास से जुड़ी हुई है। मुद्रा के प्रादुर्भाव ने सभी व्यापार कार्यों को किफायती और शीघ्र सम्पन्न होने वाला बना दिया है।

ii) **मूल्यांकन की इकाई**

परंपरा से ही मुद्रा को लेखे की इकाई या ऐसे मूल्यमान के रूप में प्रयोग किया जाता है जिसमें सभी वस्तुओं के मूल्य निर्धारण के लिए प्रयोग किया जा सकता है। इसी के कारण अलग-अलग इकाई में पाई जाने व सेवाओं के मूल्य व्यक्त किए जा सकते हैं। इसी के कारण अलग-अलग मात्राओं की इकाइयों में व्यक्त वस्तुओं का हिसाब-किताब लगाना सहज हो पाया है। ज़रा कल्पना कीजिए कि मुद्रा के अभाव में राष्ट्रीय आय का अनुमान, या किसी परियोजना की लागत, एक साथ कई वस्तुएँ बनाने वाली फर्म की कुल आगम-आदि के आँकड़े किस प्रकार प्रस्तुत किए जाते? मुद्रा अवधियों और क्षेत्रों के बीच में आर्थिक तुलनाएँ संभव बनाती हैं। यदि मुद्रा का साँझा मानदण्ड नहीं होता तो वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन, वितरण एवं उपयोग संबंधी सामाजिक व्यवहार का अध्ययन करने वाला विज्ञान (अर्थशास्त्र) भी विकसित नहीं हो पाता।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

iii) **स्थगित भुगतानों का मानक**

मुद्रा ही वह मानक या इकाई है जिसमें भविष्य के भुगतानों का निर्धारण हो पाता है। इनमें ब्याज, लाभ, भाड़ा, वेतन, पेंशन, बीमा किश्त तथा ऋण आदि सभी प्रकार के भुगतान शामिल हैं। किसी भी मौद्रिक अर्थव्यवस्था में अधिकतर भुगतान मुद्रा में ही नियत होते हैं। पर, यदि मुद्रा के मूल्य में बहुत उतार-चढ़ाव आने की स्थिति में यह मुद्रा न केवल मूल्य का अच्छा मानदण्ड सिद्ध नहीं होती बल्कि भुगतानों के मानक के रूप में तो इसकी स्वीकार्यता बहुत ही धूमिल हो जाती है।

iv) **मूल्य का भण्डार**

मुद्रा मूल्य का भण्डार भी है। लोग अपनी संपत्ति को मुद्रा के रूप में जमा कर सकते हैं। यह विशेषता मुद्रा के विनिमय के माध्यम स्वरूप से ही जुड़ी है। मुद्रा लेन-देन में प्रयोग एक वस्तु विनिमय को दो चरणों में बाँट देता है– क्रय तथा विक्रय। वस्तु विनिमय में क्रय-विक्रय साथ-साथ संपन्न होते थे। मुद्रा विनिमय में यह दोनों कार्य अलग-अलग स्थान तथा समय में भी संभव हो जाते हैं। यह तभी हो पाता है जबकि विनिमय के माध्यम को मूल्य का भण्डार भी माना जा सके। मुद्रा का सामान्य क्रय-शक्ति स्वरूप तथा इसका पूर्णतया तरल परिसम्पत्ति होना इस कार्य में बहुत सहायक होता है। यह सत्य है कि मुद्रा ही मूल्य का एकमात्र भण्डार नहीं है, हम सोना, अंशपत्र या बाण्ड आदि का भी इस रूप में प्रयोग कर सकते हैं। पर मुद्रा ही सबसे तरल है, अन्य सभी मूल्य भण्डारों को प्रयोग में लाने से पूर्व उन्हें मुद्रा में परिवर्तित करना अनिवार्य रहता है। मुद्रा को ही लोग लेन-

देन में सहज स्वीकार करते हैं। हाँ, यह बात सत्य है कि मुद्रा के मूल्य में उतार-चढ़ाव इसके मूल्य के मानदण्ड, स्थगित भुगतान के मानक तथा मूल्य भण्डार स्वरूप को प्रभावित अवश्य करते हैं।

बोध प्रश्न 1

1) एक घोड़े को विनिमय का माध्यम बनाने में किस तरह की कठिनाइयाँ आती हैं?

....

....

....

....

....

2) आप जानते ही हैं कि मुद्रा को स्थायी, विभाज्य, टिकाऊ तथा लाने ले-जाने में सहज होना चाहिए। निम्न वस्तुओं को मुद्रा के रूप में प्रयोग करने के लिए वरीयता क्रम प्रदान करें और कारण भी बताएँ।

(i) चीनी; (ii) घोड़ा; (iii) नमक; (iv) खाने के लिए तैयार इडली; (v) सोना

....

....

....

DIKSHANT IAS

....

Call us @7428092240

....

3) वस्तु विनिमय तथा मौद्रिक अर्थव्यवस्थाओं में अंतर बताइए।

....

....

....

....

....

18.3 मुद्रा की माँग के वैकल्पिक सिद्धांत

समाज के मुद्रा के भण्डार में परिवर्तन के प्रभावों को ठीक से समझने के लिए मुद्रा बाज़ार के संतुलन की प्रक्रिया को समझना बहुत आवश्यक होता है। मुद्रा धारकों के लिए मुद्रा एक परिसम्पत्ति है। अतः इसकी माँग व पूर्ति और बाज़ार का होना आवश्यक है। इसकी माँग तो सामान्य जनता ही करती है। आपूर्ति सरकार तथा बैंक व्यवस्था द्वारा होती है तथा उनके लिए मुद्रा एक देयता (liability) है। मुद्रा की माँग करने वाले (जनसामान्य) तथा आपूर्ति करने वाले (सरकार, बैंक व्यवस्था) को मिलाकर मुद्रा बाज़ार का गठन होता है। इस इकाई में हम यह मानकर चलेंगे कि मुद्रा की आपूर्ति मुद्रा प्राधिकारी द्वारा स्वतंत्र रूप से निर्धारित होती है।

मुद्रा एक स्टॉक है, अर्थात् इसकी किसी भी समय बिंदु पर एक निश्चित मात्रा होती है। एक सम्पत्ति के रूप में इसकी माँग से आशय है कि जनसामान्य कितनी मुद्रा अपने पास

रखना चाहते हैं। यह माँग किसी भी उद्देश्य से हो सकती है तथा इसकी समग्र समय सीमा (अर्थात् कितने समय तक लोग मुद्रा अपने पास रखना चाहते हैं) कुछ भी हो सकती है।

खर्च आदि के लिए जेब में नकदी रखना या रुपयों को मटके में भरकर दबा देना— दोनों ही बातें उद्देश्य तथा समय अवधि की दृष्टि से भिन्न-भिन्न होते हुए भी मुद्रा की माँग तो दर्शाती ही हैं। मुद्रा की माँग के विभिन्न सिद्धांतों की व्याख्या के रूप में हम इस इकाई में आगे मुद्रा धारण के पीछे विभिन्न उद्देश्यों का अध्ययन करेंगे।

मौद्रिक विश्लेषण समग्र या समष्टिकारी विश्लेषण है। अतः हम सारे जनसामान्य की समग्र मुद्रा माँग का ही विश्लेषण यहाँ करने वाले हैं। यह समाज के सभी गृहस्थों तथा ग़ैर बैंक फर्मों की मिली-जुली मुद्रा की माँग होगी।

मुद्रा माँग सिद्धांत मुख्यतः इस माँग के निर्धारक तत्त्वों की पहचान करने तथा उनके निर्धारक होने के कारणों को समझने पर ही बल देते हैं। अतः मुख्य प्रश्न है : लोग अपने पास मुद्रा क्यों रखना चाहते हैं? इसकी कई व्याख्याएँ हुई हैं। इस इकाई में हम इन व्याख्याओं की खुलकर चर्चा करेंगे। मुद्रापूर्ति में परिवर्तन के आर्थिक प्रभाव क्या होते हैं? हर व्याख्या (सिद्धांत) इसका अपने-अपने ढंग से उत्तर देता है।

मुद्रा की माँग का क्लासिकल (नव-क्लासिकल) सिद्धांत, जो कि मुद्रा का परिमाण सिद्धांत (Quanitity Theory of Money-OTM) के नाम से लोकप्रिय है मूलतः कीमत स्तर के निर्धारण का सिद्धांत है। पर केन्ज़ के प्रभाव से मुद्रा की माँग का सिद्धांत ब्याज की दर, उत्पादन तथा रोजगार निर्धारण का सिद्धांत भी बन गया है। फ्रीडमैन ने अपने पुनःकथन (restatement) के माध्यम से परिमाण सिद्धांत को पुनः प्रतिष्ठा प्रदान करने का प्रयास किया है। इन्होंने केन्ज के मुद्रा धारण उद्देश्यों तथा उनसे जुड़े घटकों की पूरी तरह अनदेखी कर केवल समग्र मुद्रा माँग पर ही अपना विश्लेषण केन्द्रित रखा। अतः घटकों पर ध्यान देने के स्थान पर फ्रीडमैन ने मुद्रा की माँग के प्रमुख निर्धारक कारकों के पहचान पर बल दिया। इनका सिद्धांत केन्ज़ीय कम और क्लासिकल अधिक प्रतीत होता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

मुद्रा के माँग सिद्धांतों को हम तीन वर्गों में बाँट सकते हैं :

क) क्लासिकल मुद्रा माँग यानि QTM;

ख) केन्ज़ीय मुद्रा माँग सिद्धांत; तथा

ग) क्लासिकल QTM की फ्रीडमैन की व्याख्या

18.4 क्लासिकल मुद्रा का परिमाण सिद्धांत (QTM) कीमत स्तर सिद्धांत

मुद्रा के परिमाण सिद्धांत के कई लोकप्रिय स्वरूप हैं। इनमें एक है फिशर का विनिमय स्वरूप। इसे फिशर के विनिमय समीकरण (Fisher equation of transactions) का नाम भी दिया जाता है।

$M.V = P.T$ यहाँ T को आय के स्तर का पर्याय मानकर प्रयोग किया गया है।

क्लासिकल समष्टि अर्थशास्त्र मे QTM को मुद्रा की माँग का सिद्धांत माना गया है। इसका अभिप्राय है कि जन सामान्य के हाथों मे मुद्रा की मात्रा ही कीमत स्तर का निर्धारण करती है। क्लासिकल अर्थशास्त्री यही मानते थे कि अर्थव्यवस्था सदा अपनी पूर्ण क्षमता के अनुरूप (यानी पूर्णरोजगार स्तर) ही उत्पादन करती है। क्लासिकल मतानुसार मुद्रा की माँग को उत्पादन के मौद्रिक मूल्य से इस प्रकार जोड़ा जा सकता है

$M.v = P.y$, यहाँ
M = मुद्रा की माँग;
v = मुद्रा के परिचलन की दर;
P = कीमत स्तर; तथा
y = वास्तविक उत्पादन स्तर।

इसी समीकरण को v तथा y का मान अल्पकाल में स्थिर मानकर उपरोक्त समीकरण को QTM में यानि मुद्रा का परिमाण सिद्धांत में परिवर्तित किया गया है। अब जबकि v तथा y स्थिर हैं और साथ में यह पूर्वधारणा भी हो कि P में अपने आप कोई परिवर्तन संभव नहीं, तो इसका अर्थ यह है कि कीमतस्तर (P) मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन पर निर्भर है न कि मुद्रा की पूर्ति (M) कीमत स्तर में परिवर्तन पर। इससे हमें एक सीधा-सा परिणाम मिलता है। इसके अनुसार मुद्रा की आपूर्ति में कोई भी अल्पकालीन वृद्धि (या कमी) उसी अनुपात में कीमत स्तर में भी परिवर्तन लाएगी। यदि उन पूर्वधारणाओं में से कोई भी पूर्वधारणा सही न निकले तो मुद्रापूर्ति और कीमत स्तर के बीच अनुपातिक संबंधों पर प्रश्नचिह्न लगता है। इस सिद्धांत को कीमत स्तर के सिद्धांत के नाम से भी जाना जाता है।

18.5 केन्ज़ीय मुद्रा माँग सिद्धांत

इस सिद्धांत का प्रतिपादन केन्ज़ ने अपनी पुस्तक *"रोजगार, ब्याज एवं मुद्रा का सामान्य सिद्धांत"* में 1936 में किया था।

केन्ज़ के सिद्धांत को समझने के लिए दो प्रश्नों को अलग-अलग रखना आवश्यक है :

DIKSHANT IAS

एक तो मुद्रा की माँग क्यों होती है? तथा दूसरे, इस माँग के निर्धारक तत्त्व कौन-कौन से हैं। ये दोनों ही प्रश्न एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। केन्ज़ की मुद्रा की माँग के तीन घटक हैं : विनिमय माँग, पूर्वोपायी माँग तथा सट्टा माँग।

Call us @7428092240

केन्ज़ ने मुद्रा की माँग निर्धारक तत्त्व दो ही माने हैं :

(i) मौद्रिक आय यानि y; तथा (ii) ब्याज की दर यानि r

अतः एक फलन के रूप में : $M^d = M^d\,(y, r)$

केन्ज़ ने कैंब्रिज परंपरा के अनुसार मुद्रा की माँग का निर्धारक तत्त्व मौद्रिक आय माना है। पर उनका कहना था कि मौद्रिक आय कुल मुद्रा माँग के केवल दो घटकों— विनिमय माँग तथा पूर्वोपायी माँग की ही व्याख्या कर सकती है—मुद्रा की कुल माँग (जिसमें सट्टा माँग भी शामिल है) की नहीं। वस्तुतः सट्टा माँग की ओर सबका ध्यान आकर्षित करना ही इस संदर्भ में केन्ज़ का एक महत्त्वपूर्ण मौलिक योगदान माना जाता है। केन्ज़ के अनुसार मुद्रा की माँग का यह घटक ब्याज की दर का अनुलोम फलन (declining function) है। ब्याज की दर को उन्होंने अर्थव्यवस्था में केवल मौद्रिक कारकों से निर्धारित विशुद्ध मौद्रिक प्रभाव ही माना। मुद्रा की सट्टा माँग सट्टेबाज़ी के उद्देश्य से प्रेरित होती है। यह माँग बाज़ार में ब्याज की दरों में परिवर्तन और इससे जुड़ी अनिश्चितताओं से ही होता है।

18.5.1 मुद्रा की विनिमय माँग (M^d)

दैनिक जीवन में हर प्रकार के लेन-देन के लिए मुद्रा की आवश्यकता पड़ती है। सामान्यतः हमारी आमदनी का प्रवाह व्यय संबंधी प्रवाह से एकदम मेल नहीं खाता। व्यक्ति को महीने या सप्ताह के अंत में एक साथ आमदनी मिलती है पर वह पूरी अवधि लगभग समान रूप से खर्च करता रहता है। इसीलिए व्यक्ति को अपने रोज़मर्रा के खर्च के लिए कुछ न कुछ

राशि नकद में अपने पास रखनी पड़ती है। इसी नकदी की माँग को मुद्रा की विनिमय माँग कहते हैं। हमारी आमदनी का स्तर बाज़ार में वस्तुओं और सेवाओं पर नियंत्रण का निर्धारण करता है। सामान्य भुगतान संबंधी व्यवहार ही हमारी नकदी संबंधी जरूरतों का स्तर तय करता है। सामान्यत: अधिक आय वाले व्यक्ति नित्यप्रति कुछ ज्यादा चीज़ें खरीदते हैं तथा कम आमदनी वाले व्यक्ति अपेक्षाकृत कम वस्तुओं की ही खरीदारी की सोच पाते हैं। अत: स्वाभाविक है कि मुद्रा की विनिमय माँग आय के स्तर से जुड़ी हो। अधिक आय वाले को अधिक नकदी की आवश्यकता पड़ती है।

$$M^d = M^d(y)$$

क्लासिकल अर्थशास्त्री या मुद्रा के परिमाण सिद्धांतवादी भी मुद्रा की विनिमय संबंधी माँग के विषय में बात करते थे, विनिमय के माध्यम के रूप में मुद्रा की भूमिका पर बल देते थे। पर पूर्वोपायी तथा सट्टा माँग तो केन्ज़ की ही वैचारिक देन है। इन्हीं को उन्होंने अपना 'तरलता अधिमान' (यानि मुद्रा की माँग) का अतिरिक्त स्रोत माना।

हम यह कह सकते हैं कि मुद्रा की विनिमय माँग राष्ट्रीय आय y का एक स्थिर अनुपात k होती है। अत: $M^d = k.y = k.p.y,\ o < k < 1$

इसी समीकरण का अर्थ है कि यदि मौद्रिक आय 800 करोड़ रुपये हो तथा k=2/5 तो फिर अर्थव्यवस्था में मुद्रा की विनिमय माँग 320 करोड़ रुपये (800×2/5) होगी। इसका यह भी अर्थ है कि समाज अपने 800 करोड़ रुपये मूल्य के उत्पादन के विक्रय आदि के वित्तीयन का कार्य 320 करोड़ रुपये की नकदी से सुचारू रूप से चला सकता है। यदि राष्ट्रीय मौद्रिक आय बढ़कर 1000 करोड़ रुपये हो जाए तथा k=2/5 ही रहे तो मुद्रा की विनिमय माँग भी 400 करोड़ रुपये हो जाएगी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

हम जानते हैं कि $M^d = k.y$

$\Delta M^d_t = K\ \Delta y$

जहाँ ΔM^d_t = मुद्रा की विनिमय माँग में परिवर्तन

Δy = मौद्रिक आय के परिवर्तन

इसी प्रकार राष्ट्रीय (मौद्रिक) आय में 200 करोड़ रुपये की कमी के कारण मुद्रा की विनिमय माँग भी 80 करोड़ रुपये कम हो जाएगी।

चित्र 18.1

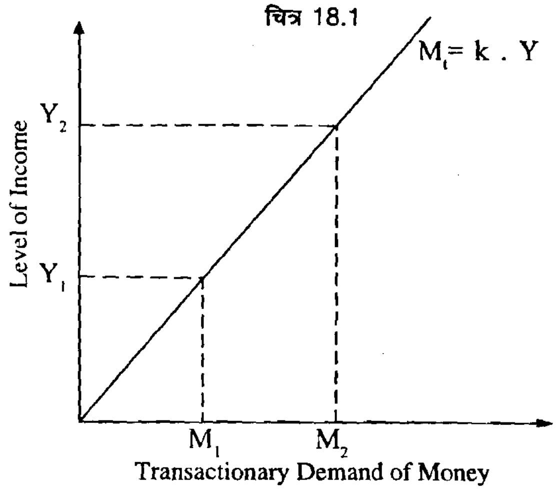

चित्र 18.1 मुद्रा की माँग को मौद्रिक आय के k अनुपात के रूप में दर्शाता है। जब आय में y_2-y_1 वृद्धि होती है तो मुद्रा की माँग M_2-M_1 बढ़ जाती है। ध्यान दें कि YM_2-M_1=k(y_2-y_1)

मुद्रा की विनिमय माँग (M^d) तथा मौद्रिक आय के संबंध को ही चित्र 18.1 में दिखाया गया है। मुद्रा की विनिमय माँग को ऊर्ध्व-अक्ष तथा मौद्रिक राष्ट्रीय आय को क्षैतिज-अक्ष पर दर्शाया गया है। जब राष्ट्रीय आय का स्तर OY_1 हो तो मुद्रा की विनिमय माँग OM_1 होगी। आय बढ़कर OY_2 हो जाने पर यह मुद्रा की माँग भी OM_2 हो जाती है। अतः राष्ट्रीय आय में OY_2-OY_1 की वृद्धि के फलस्वरूप मुद्रा की अतिरिक्त विनिमय माँग OM_2-OM_1 होगी।

अतः इस सिद्धांत के अनुसार राष्ट्रीय आय (मौद्रिक) का स्तर ही मुद्रा की विनिमय माँग का निर्धारक तत्त्व होगा। मुद्रा की विनिमय माँग पर ब्याज की दर का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। चित्र 18.2 में मौद्रिक राष्ट्रीय आय के तीन स्तर $Y_1<Y_2<Y_3$ हैं। इनसे जुड़ी मुद्रा की माँग M_1, M_2 तथा M_3 है। ऊर्ध्व-अक्ष पर ब्याज की दर तथा क्षैतिज पर मुद्रा की माँग दिखाई है। मुद्रा के इन माँग-वक्रों का ऊर्ध्व सीधी रेखाओं के रूप में दिखाया जाना इस बात का परिचायक है कि माँग पर ब्याज की दर का कोई प्रभाव नहीं है।

चित्र 18.2

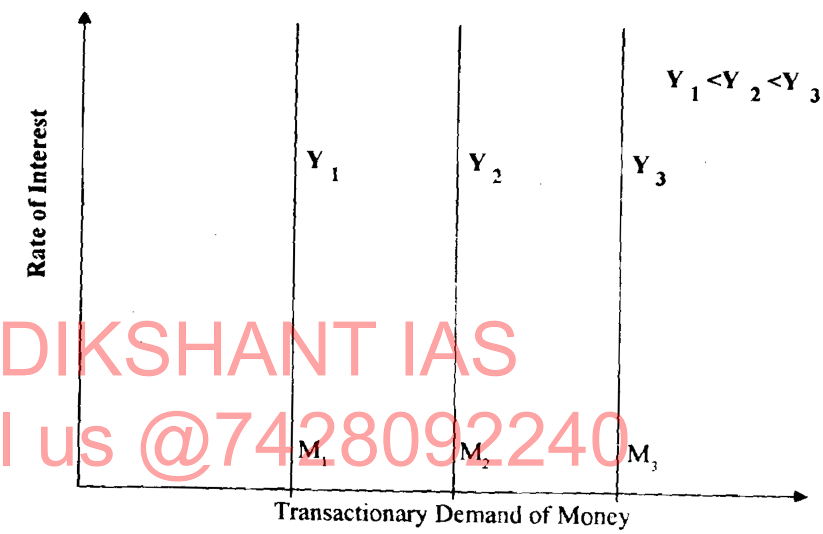

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 18.2 इसी तथ्य पर बल देता है कि मुद्रा की विनिमय उद्देश्य से प्रेरित माँग पर ब्याज दर का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। Y_1, Y_2 तथा Y_3 मौद्रिक आय के तीन पृथक्-पृथक स्तर हैं तथा इन स्तरों पर लेन-देन के लिए जन-सामान्य की मुद्रा की माँग भी पृथक्-पृथक् स्तरों पर स्थिर रहती हैं। उस पर ब्याज की दर का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

18.5.2 मुद्रा की पूर्वोपायी माँग (M^d)

पूर्वोपायी माँग वस्तुतः अचानक पड़ सकने वाली आवश्यकता की पूर्ति के लिए पहले से ही कुछ प्रावधान रखने की माँग है। जहाँ व्यक्ति दुर्घटना या बीमारी जैसी दुर्संभावनाओं से निपटने के लिए कुछ नकदी संभाल कर रखते है वहीं फर्में भी प्रौद्योगिकी में अचानक परिवर्तन होने पर मशीनों आदि को बदलने के इंतजाम के लिए पहले से ही कुछ व्यवस्था करना प्रारंभ कर देती हैं। इन्हीं से मुद्रा की पूर्वोपायी माँग का सृजन होता है। व्यक्ति या फर्म का पूर्वोपाय संबंधी पूर्वानुमान उनकी वर्तमान आय के स्तर पर ही निर्भर करता है। अतः हम पूर्वोपायी माँग को भी मौद्रिक राष्ट्रीय आय पर आश्रित मानते हैं। उच्च आय स्तर पर इन आकस्मिकताओं के लिए जन-सामान्य एवं फर्म आदि ज़्यादा राशि अपने पास रखना चाहेंगें। अतः मुद्रा की पूर्वोपायी माँग M^d_p राष्ट्रीय आय के स्तर Y पर निर्भर है।

$$M^d = g(y)$$

केन्ज ने मुद्रा की विनिमय तथा पूर्वोपायी माँगों को मौद्रिक राष्ट्रीय आय का एक [illegible] फलन मानकर उन्हें एक साथ ही रखना उचित समझा। मुद्रा की माँग के एक महत्त्वपूर्ण निर्धारक के रूप में ब्याज की दर तो केवल तीसरे उद्देश्य अर्थात् सट्टेबाजी के माध्यम से ही प्रवेश पाती है।

बोध प्रश्न 2

1) क्लासिकल मुद्रा के परिमाण सिद्धांत की मुख्य मान्यताएँ क्या हैं?

....

....

....

....

....

18.5.3 मुद्रा की सट्टा माँग (M^d_p)

विनिमय के माध्यम के साथ-साथ मुद्रा मूल्य के भण्डार का भी कार्य करती है। मुद्रा की सट्टा माँग मुद्रा की एक परिसम्पत्ति के रूप में यानि मूल्य के भण्डार के रूप में माँग है। केन्ज़ ने इसे ही तरलता अधिमान का नाम दिया है। यही केन्ज के मुद्रा माँग सिद्धांत का नवीन व क्रांतिकारी तत्त्व है। इसके माध्यम से ही केन्ज ब्याज की दर तथा मुद्रा की माँग (आंशिक रूप से) के बीच विपरीत संबध स्थापित कर पाया। मुद्रा की सही माँग मौद्रिक सिद्धांत मे केन्ज़ का मुख्य स्तंभ है और इसी से उन्होंने मुद्रा के परिमाण सिद्धांत पर प्रहार किया।

मुद्रा की सट्टा माँग सट्टे के उद्देश्य से प्रेरित होती है। यह माँग ब्याज दरों में उतार-चढ़ाव और उससे जुड़ी अनिश्चितताओं के कारण होती है। विश्लेषण सरल रखने के लिए केन्ज़ ने सभी परिसम्पत्तियों (शेयर, बाण्ड आदि) को बेमियादी बाण्ड मान लिया। अतः ये बाण्ड ही ऐसी गैर मुद्रा वित्तीय परिसम्पत्ति हैं जिनकी मुद्रा से प्रतिस्पर्धा है। मुद्रा अपने पास रखने पर हमें कोई ब्याज नहीं मिलता पर बाण्ड से ब्याज की आमदनी होती है। हाँ मुद्रा का मौद्रिक रूप में पूँजी मूल्य स्थिर रहता है, पर बाण्ड के पूँजी मूल्य में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। यह भी संभव है कि भविष्य में बाण्ड का मूल्य इतना कम हो जाए कि उससे प्राप्त हुई ब्याज आय के बाद भी घाटा ही रहे। बाण्ड का मूल्य वास्तव में उसकी कूपन दर तथा बाजार में ब्याज दर के अनुलोम का गुणनफल ही होता है। यदि किसी बाण्ड पर 10 रुपये प्रतिवर्ष का कूपन हो तथा बाज़ार मे ब्याज की दर 4% प्रतिवर्ष हो तो बाण्ड का बाजार मूल्य होगा 10-0.04=250 रुपया। बाजार मे ब्याज दर बढकर 5% हो जाने पर बाण्ड का मूल्य भी घटकर 200 रुपये ही रह जाएगा (10-0.05=200)। अतः बाण्ड का मूल्य ब्याज की दर का अनुलोम फलन है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

आर्थिक इकाइयाँ अपनी सम्पत्ति का एक भाग वित्तीय परिसम्पत्तियों के रूप में रखते हैं। मुद्रा और बाण्ड (बेमियादी) के हमारे दो परिसम्पत्ति मॉडल में बाण्डों का मूल्य ब्याज दर के साथ-साथ घटता-बढ़ता रहता है। अतः उनसे पूँजीगत लाभ या हानि की संभावना होती है। इसीलिए बाण्ड धारक की (बाण्ड से) प्रतिवर्ष होने वाली आय ब्याज की दर+पूँजीगत लाभ या हानि के समान होगी। बाण्ड में निवेश करते समय हमारी आर्थिक इकाई ब्याज की वर्तमान दर को तो ध्यान में रखेगी ही, वह भविष्य में ब्याज दर के उतार-चढाव का भी पूर्वानुमान लगाने की भी चेष्टा करेगी। अतः बाण्ड तथा मुद्रा बाज़ार में सट्टे का प्रवेश सहज भाव हो ही जाता है।

केन्ज़ के सिद्धांत में कोई आर्थिक इकाई किसी भी ब्याज की दर पर मुद्रा या बाण्ड में से एक ही अपने पास रखेगी। सटोरियों को दो वर्गों में बाँटा जाता है : तेजड़िये तथा मंदड़िये।

तेजडिये वे होते हैं जो भविष्य में बाण्ड मूल्यों के बढने की आशा में रहते हैं तथा मन्दड़िये हमेशा ही बाण्ड मूल्य गिरने की उम्मीद में होते हैं। अतः तेजड़िये अपनी सारी नकदी को

बाण्ड खरीदने में लगा देते हैं पर मन्दड़ियों को अगर लगता है कि बाण्ड मूल्य गिरने से पूँजी हानि ब्याज की आय से ज़्यादा होगी तो वे सारे बाण्ड बेच डालते हैं इस तरह से वे अपनी हानि कम से कम करने का प्रयास करते हैं। अतः मुद्रा की सट्टा माँग का स्रोत केवल मन्दड़िये ही होते हैं। ये व्यक्ति बस अवसर की तलाश में नकदी जमा करके रखते हैं जब उन्हें बाण्ड मूल्य दुबारा बढ़ने के आसार दिखाई पड़ने लगेंगे। अतः जब बाण्ड मूल्य बहुत कम होते हैं, तो सभी तेजड़िये बन जाते हैं। इस बिन्दु पर (r^*) मुद्रा की सट्टा माँग शून्य होगी। पर ब्याज दर कम होने पर (r_1) बाण्ड मूल्य बढ़ जाते हैं तथा कुछ तेजड़िये बन जाते हैं। अतः M_1 मात्रा में मुद्रा की सट्टा माँग पैदा हो जाती है। और कम ब्याज की दर (r_2) पर तो और मंदड़ियों की संख्या और बढ़ जाती है तथा मुद्रा की सट्टा माँग M^2 तक पहुँच जाती है। केन्ज़ की यह ब्याज की दर से विपरीत संबंध वाली मुद्रा की सट्टा माँग-वक्र ही चित्र 18.3 में दिखाई गई है।

चित्र 18.3

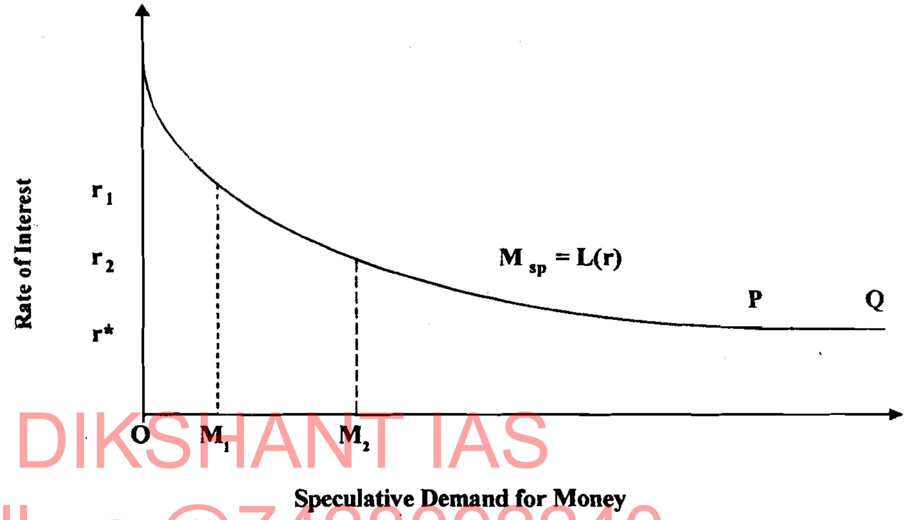

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 18.3 में हमने दिखाया कि मुद्रा की सट्टा माँग ब्याज की दर से अनुलोम रूप से संबंधित है। अतिन्यून ब्याज दर, r पर तो यह मुद्रा माँग-वक्र क्षैतिज-अक्ष के स्थानान्तर हो जाती है : देखिए बिन्दु P तथा Q। इसी को केन्ज़ ने नकदी जाल (ligquidity trap) का नाम दिया था।

केन्ज़ का कहना था कि बहुत कम ब्याज दर r पर यह सट्टा माँग पूर्णतः लोचशील हो जाती है। इसी से एक नकदी जाल की स्थिति पैदा होता है। चित्र 18.3 में यह माँग-वक्र का हिस्सा PQ है। यह स्थिति तब आती है जबकि अतिन्यून ब्याज दर पर सभी मंद गति हो जाते हैं। अतः सभी उन्हें बेचकर नकदी प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। बैंक व्यवस्था तथा वित्तीय संस्थाएँ ब्याज से होने वाली आय पर ही निर्भर रहती है। अतः यह दर r, ऐसी न्यूनतम दर होगी जिससे और नीचे जाना संभव नहीं होता।

एक फलन के रूप में हम कह सकते हैं : $M^d_p = L(r)$

हम यह पहले देख चुके हैं कि मुद्रा की विनिमय तथा पूर्वोपाय माँग आय के स्तर पर निर्भर होती हैं। यह संबंध अनुपातिक होता है तथा अनुपात है k अतः मुद्रा की समग्र माँग होगी :

$$M^d = k.(P.y) + L(r)$$

अर्थात् मुद्रा की माँग के दो घटक हैं, एक आय के मौद्रिक स्तर पर तथा दूसरा ब्याज की दर पर निर्भर करता है। यही मुद्रा का माँग-वक्र चित्र 18.4 में दिखाया गया है।

चित्र 18.4

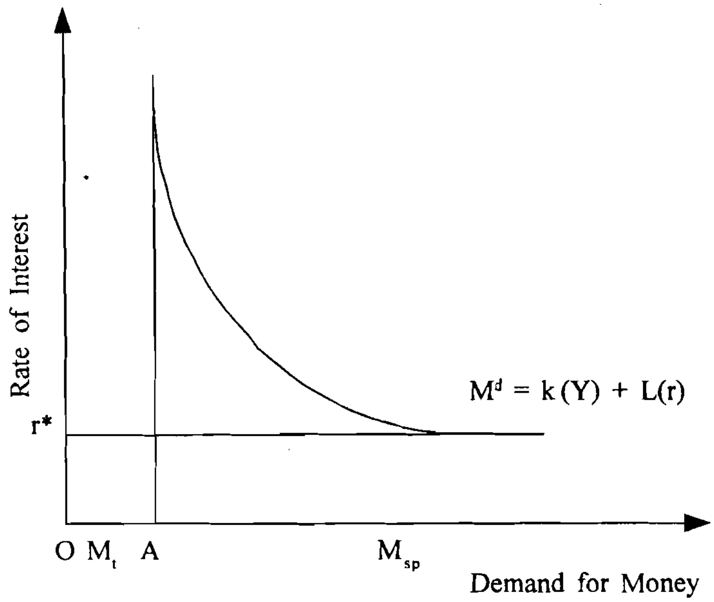

चित्र 18.4 बताता है कि मुद्रा की समग्र माँग आय तथा ब्याज की दर दोनों पर निर्भर होती है। इसे ब्याज तथा मुद्रा अक्षों पर दर्शाया गया है। मौद्रिक आय के प्रत्येक स्तर पर हमें ऐसी ही एक मुद्रा माँग-वक्र प्राप्त होगी। यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस प्रकार के चित्र में OA ही मुद्रा की विनिमय माँग होगी। इससे आगे का वक्र सट्टा माँग दर्शाता है।

इस इकाई में मुद्रा की पूर्ति को हमने बाह्य रूप से निर्धारित माना है। दूसरे शब्दों में, देश के मुद्रा प्रधिकारी (जैसे भारत सरकार तथा भारतीय रिज़र्व बैंक) मुद्रा की पूर्ति का निर्धारण करते हैं तथा इस मामले में फर्मों और परिवारों का कोई योगदान नहीं रहता।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अतः $M^s = M$ (स्थिर स्तर), जहाँ M^s मुद्रा की आपूर्ति।

मुद्रा बाज़ार में संतुलन तभी होगा जब मुद्रा की माँग उसकी पूर्ति के समान हो अर्थात् बाज़ार में उपलब्ध मुद्रा भण्डार उतना ही हो जितनी जनसामान्य को आवश्यकता है। यथा

$$M^d = k.p.y + L(r) = M = M^s$$

इस समीकरण का अभिप्राय है कि y तथा r के स्तर ऐसे होने चाहिए कि जनसामान्य उतनी ही मुद्रा अपने पास रखने को उत्सुक हो जाएँ जितनी कि मुद्रा प्राधिकारी उपलब्ध कराना चाहते हैं। देखिए चित्र 18.5

चित्र 18.5 में $M^d = OA$ तथा $M^s = OB$ मुद्रा की माँग तथा पूर्ति समान होने का अर्थ है कि जनसामान्य OB मात्रा में मुद्रा अपने पास रखें। ताकि $M^d_p = L(r)$ का स्तर OB-OA अर्थात् AB के समान होना चाहिए। अतः मुद्रा बाज़ार का संतुलन तभी होता है जब ब्याज की दर अपने संतुलन स्तर re पर पहुँच जाए। तभी M^d_p का स्तर AB के समान होगा। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि मुद्रा बाज़ार में ब्याज की दर के माध्यम से ही संतुलन स्थापित होता है। यहाँ p, k, y तथा M^s सभी बाह्य रूप से निर्धारित होते हैं।

इसीलिए केन्ज़ का मानना था कि ब्याज की दर एक पूर्णतः मौद्रिक तत्त्व ही है। इसका निर्धारण मुद्रा की माँग तथा पूर्ती ही करते हैं। यह क्लासिकल अर्थशास्त्रियों के मुद्रा के परिमाण सिद्धांत के एकदम विपरीत हैं। उनके विचार में तो ब्याज की दर भी एक वास्तविक तत्त्व था जिसका निर्धारण वस्तु बाज़ार में वास्तविक बचत तथा निवेश की माँग द्वारा होता था।

मुद्रा की आपूर्ति में परिवर्तन के प्रभाव

मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन का अर्थ होगा चित्र 18.5 में M^s वक्र खिसककर M^s_1 बन जाए। इसके क्या परिणाम होंगे? इस आपूर्ति वृद्धि से ब्याज की दर कम होगी बाण्डो के मूल्य बढ़ेंगे तथा तेजड़ियों की बिरादरी पहले की अपेक्षा ज्यादा सक्रिय हो जाएगी। अतः मुद्रा की सट्टा माँग बढ़ने लगेगी। यह बढ़ोतरी तब तक ज़ारी रहेगी जब तक कि मुद्रा की अतिरिक्त राशि निपट न जाए। मुद्रा बाज़ार में नया संतुलन r_1 ब्याज की दर स्थापित हो पाएगा।

चित्र 18.5

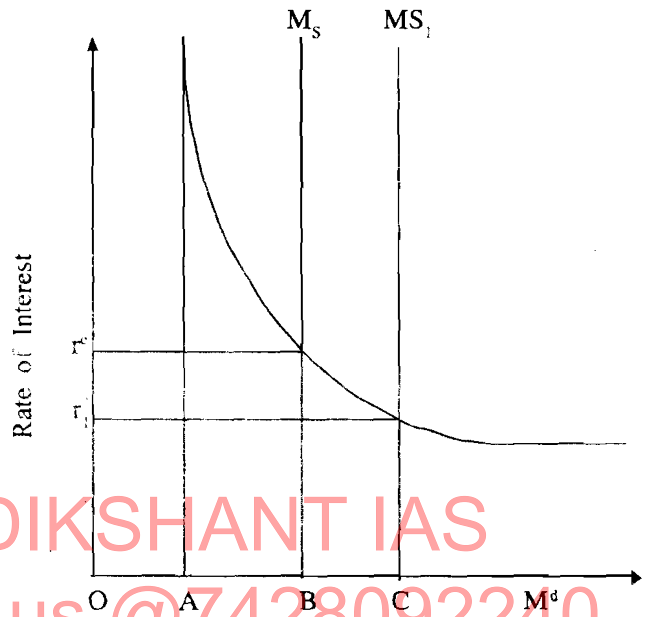

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 18.5 : यहाँ M^d मुद्रा की समग्र माँग है तथा M^s आपूर्ति। यह आपूर्ति किसी भी मौद्रिक आय स्तर पर नीति निर्धारित आपूर्ति होती है। जहाँ भी $M^d = M^s$ वहीं पर संतुलन तथा ब्याज की दर re निर्धारित होगी। ध्यान दें कि मुद्रा की कुल माँग OB में से OA तो विनिमय माँग है तथा AB सट्टा माँग है। यदि M^s को बढ़ाकर M^s_1 कर दिया जाए तो ब्याज की नई दर भी r_1 हो जाएगी। अब सट्टा माँग भी बढ़कर AC हो जाती है।

मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन के विस्तृत विवरण के लिए इकाई 16 को एक बार फिर से दोहरा लें।

बोध प्रश्न 3

1) मुद्रा की माँग की क्लासिकल एवं केन्ज़ीय अवधारणाओं में कुछ मुख्य अन्तर क्या थे?

....

....

....

....

....

2) चित्रों की सहायता से यह समझाइए कि मुद्रा की सट्टा तथा विनिमय माँगों में क्या अन्तर है?

....

....

....

....

....

3) मुद्रा तथा बाण्डों में तीन अन्तर बताइए

....

....

....

....

....

4) छह से आठ पंक्तियों में (एक चित्र बनाते हुए) तरलता अधिमान की अवधारणा समझाइए।

....

....

....

....

....

5) मुद्रा की पूर्ति बढ़ने का (मुद्रा बाज़ार में) क्या प्रभाव होता है?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

....

18.6 मुद्रा का परिमाण सिद्धांत : आधुनिक स्वरूप

शिकागो विश्वविद्यालय के प्रख्यात अर्थशास्त्री मिल्टन फ्रीडमैन ने मुद्रा के परिमाण सिद्धांत को एक नए स्वरूप में प्रस्तुत किया है। उनकी इस प्रस्तुति को ही आज हम मुद्रावाद या नवपरिमाण सिद्धांत कहते हैं। यह क्लासिकल परिमाण सिद्धांत का ही आधुनिक संस्करण है। क्लासिकल QTM मूलतः एक कीमत (स्तर) सिद्धांत ही है। इसे मौद्रिक आय के निर्धारण का सिद्धांत भी मान लिया जाता है। पर फ्रीडमैन ने इसे मूलतः मुद्रा की माँग के सिद्धांत की तरह रचा है। यह केन्ज़ीय धारा से इस दृष्टि से बाहर है कि इसमें मुद्रा धारण के उद्देश्य में कोई भेद करना आवश्यक नहीं समझा गया।

क्लासिकल समष्टि आर्थिक विश्लेषण में मुद्रा के विनिमय का माध्यम होने को ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण माना गया था। पर फ्रीडमैन ने केन्ज़ की ही भाँति मुद्रा को एक परिसम्पत्ति के रूप में ही अपने सिद्धांत में स्थान दिया है। एक दृष्टि से वह केन्ज़ से आगे निकल गए हैं : उन्होंने कहा है कि व्यक्ति अपनी सम्पत्ति को न केवल (i) मुद्रा; (ii) बाण्ड के रूप में ही रख सकते हैं बल्कि वे चाहें तो (iii) अंश पत्र; (iv) भौतिक पदार्थों– (यथा वस्तुओं, दीर्घकालिक प्रयोग की वस्तुओं, भवनों, तथा (v) मानवीय पूँजी के रूप में भी धारण कर सकते हैं। मानवीय पूँजी मनुष्य की उपार्जन क्षमता के रूप में निहित मानी गई है।

फ्रीडमैन उपर्युक्त प्रकार से बनी सकल सम्पत्ति को मौद्रिक माँग का निर्धारक मानते हैं। व्यावहारिक दृष्टि से सकल सम्पत्ति, विशेषकर मानवीय सम्पत्ति का आकलन करना काफी कठिन हो जाता है। इन्हीं कठिनाइयों को ध्यान में रखकर उन्होंने व्यक्ति की स्थायी आय को ही उसकी सम्पत्ति के सूचक के रूप में प्रयुक्त किया है।

आइए अब हम विभिन्न प्रकार की सम्पत्तियों 'w' पर अपेक्षित प्रतिफल दर (Expected rate of return) के बारे में भी चर्चा करें। यह मुद्रा की माँग का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण निर्धारक तत्त्व है।

i) **मुद्रा** : फ्रीडमैन ने मुद्रा के व्यापक स्वरूप, जिसमें नकदी, तथा बैंकों के पास माँग व सावधि जमाएँ भी शामिल हैं, का प्रयोग किया है। मुद्रा से व्यक्ति आश्वस्त रहता है तथा उसका लेन-देन सुगमता से चलता है। पर नकदी से उसे कोई आमदनी नहीं मिलती। बैंक में जमाओं पर अवश्य कुछ थोड़ी बहुत प्राप्ति होती है। कीमत स्तर में उतार-चढ़ाव का भी मुद्रा के मूल्य पर प्रभाव पड़ता है। कीमत वृद्धि से मुद्रा का मूल्य गिर जाता है तो कीमतों का स्तर गिरने से मुद्रा का मूल्य बढ़ जाता है।

ii) **बाण्ड** : यह ऋण-पत्र या सरकारी प्रतिभूतियाँ हैं। इन पर धारक को ब्याज मिलता है।

iii) **अंश-पत्र** : यह निगमित कंपनियों के हिस्से या शेयर हैं। इनके धारक कंपनी के अंशधारी कहलाते हैं। इन पर लाभांश की प्राप्ति होती है।

iv) **भौतिक पदार्थ** : यदि इन चीज़ों के दाम बढ़ जाएँ तो पूँजीगत लाभ होता है। भारत जैसे देश में सोना, भूमि तथा गृह-सम्पत्ति बहुत ही अच्छी सम्पत्तियाँ मानी जाती हैं क्योंकि इनकी कीमतें बड़ी जल्दी ही बढ़ जाती हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

v) **मानवीय पूँजी** : यह मनुष्य की कमाने की क्षमता ही है। इसका निर्धारण व्यक्ति की स्थास्थ्य, शिक्षा, प्रशिक्षण तथा कार्य करने की अवस्था आदि योग्यताओं से होता है।

vi) **ब्याज की दर में परिवर्तन $[r\text{-}(1/r).d_r/d_t]$** : अर्थव्यवस्था में उत्पादन एवं माँग की दशाओं के अनुरूप ही ब्याज की दर में परिवर्तन होते हैं।

(vi) **अपेक्षित स्फीति $[(1/p).dp/dt]$** : अपेक्षित स्फीति दर उत्पादन वृद्धि संबंधी अपेक्षाओं तथा पिछले समय में रही मुद्रा स्फीति दर पर निर्भर है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि :

$$Md=f\,[p,\ w,\ r\text{-}(1/r)\ (dr/dt), 1/p(dp/dt), 1]$$

18.7 मुद्रा की माँग संबंधित तीनों सिद्धांतों की तुलना

अब हम एक ऐसे मुद्दे पर आते हैं जिसके आधार पर केन्ज़ तथा फ्रीडमैन की अवधारणाओं में मुख्यतः भेद किया जाता है। यह मुद्दा मुद्रा की माँग फलन के स्थायित्व का मुद्दा है। स्थायित्व से हमारा अभिप्राय है कि मुद्रा की माँग का अपने निर्धारक तत्त्वों के साथ संबंध बार-बार बदलता न रहे। इसकी दिशा व स्वरूप यथा संभव स्थिर रहने चाहिए।

फ्रीडमैन के मुद्रावादी दृष्टिकोण के अनुसार क्लासिकल मुद्रा माँग फलन $M.v = Py$ काफी स्थिर हैं। दूसरे शब्दों में, मुद्रा के परिचलन का वेग v अपेक्षाकृत स्थिर रहता है। अतः अल्पकाल में मुद्रा की आपूर्ति ही मौद्रिक आय y का निर्धारण कर देती है। वस्तुतः मुद्रावाद का सार यही है कि मुद्रा की आपूर्ति ही मौद्रिक आय की निर्धारक है। आपने खंड 7 में जिस प्रकार से केन्ज़ीय गुणक के आधार पर समग्र माँग का निर्धारण किया था उसी प्रकार

मुद्रावादी दृष्टिकोण भी समग्र माँग का निर्धारण करते हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि मुद्रावादियों की दृष्टि में सकल माँग के निर्धारण में रोजकोषीय नीति नहीं बल्कि 'केवल मुद्रा का ही महत्त्व है'। यदि v का स्तर तय है तो बस m ही मौद्रिक आय के स्तर का निर्धारण करने के लिए पर्याप्त रहेगा। पर कल्पना कीजिए कि v स्थिर नहीं रहती, बल्कि जैसे-जैसे मुद्रा धारण की लागत बढ़ती है, इसका आकार भी बढ़ जाता है। अब तो लोग अपने पास नकदी कम से कम रखना चाहेंगे। दूसरे शब्दों में, मुद्रा परिचलन का वेग v समय के साथ-साथ बढ़ता है। इसी समय यदि राजकोषीय नीति सार्वजनिक व्यय को बढ़ाकर ब्याज की दर की वृद्धि के माध्यम से निजी निवेश को भी कम करने का प्रयास करे तो भी v में वृद्धि होगी तथा मौद्रिक आय उसके परिणाम स्वरूप बढ़ जाएगी। अतः m में वृद्धि के बिना भी राजकोषीय नीति मौद्रिक आय बढ़ा सकती है, यदि ब्याज की दर के साथ-साथ u भी बढ़े। पर v को स्थायी मानकर मुद्रावादी राजकोषीय नीति के महत्त्व को पूरी तरह से नकार देते हैं।

पर केन्ज़ तथा उसके अनुयायियों ने v की अस्थिरता तथा नकदी नाल का सहारा लेकर ही मौद्रिक नीति का प्रभावहीन 'सिद्ध' किया था। जैसे हमने खंड 7 में देखा था कि सामान्य केन्ज़ीय मॉडल में तो मुद्रा को पूरी तरह गौण मानकर अर्थव्यवस्था में समग्र माँग के स्तर के निर्धारण का सारा भार राजकोषीय नीतियों पर डाल दिया गया था।

इसी शताब्दी के छठे व सातवें दशकों को केन्ज़ीय नीति निर्धारकों का चर्मोत्कर्ष काल कहा जा सकता है। पर आठवें दशक से मुद्रा स्फीति में वृद्धि ने एक बार पुनः मुद्रावाद को कुछ प्रतिष्ठा प्रदान की है। यद्यपि केन्ज़ीय एवं मुद्रावादी नीतियों व सिद्धांतों में टकराव अभी ज़ारी है, पर सैम्युलसन तथा नॉरधौस के शब्दों में, "अब आधुनिक समष्टि अर्थशास्त्र की मुख्यधारा में (इन अवधारणाओं में) पूर्ण असहमति का स्थान किसी सीमा तक इनका अभिसरण ले रहा है।"

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 4

1) केन्ज़ीय तथा फ्रीडमैन की मुद्रा की माँग संबंधी अवधारणाओं का भेद संक्षेप में बताएँ।

....

....

....

....

....

18.8 सारांश

इस इकाई का आरंभ हमारे वस्तु विनिमय व्यवस्था से किया था? जिसकी समस्याओं ने ही अंततः मुद्रा को जन्म दिया। लेखे की इकाई, विनिमय के माध्यम तथा मूल्य के भण्डार के रूप में मुद्रा अर्थव्यवस्था में बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करती है। QTM के पक्षधर अर्थशास्त्री मानते थे कि मुद्रा के आवरण की आड़ में अर्थव्यवस्था के सभी वास्तविक लेन-देन होते हैं। उनका यह भी मानना था कि मुद्रा अपने आप में निष्पक्ष 'है' तथा वास्तविक चरों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यह तो आर्थिक तन्त्र में चिकनाई का कार्य करती है, जिससे आर्थिक लेन-देन शीघ्रता से तथा कम से कम लागत पर सम्पन्न होते हैं। वस्तु विनिमय में दोहरे संयोग की अनिवार्यता इस लागत को बहुत बढ़ा देती थी। केन्ज़ ने QTM द्वारा व्यक्त मुद्रा की विनिमय माँग के साथ-साथ दो और मुद्रा धारण के उद्देश्यों की चर्चा की है। ये हैं पूर्वोपाय तथा सट्टा। इनके विश्लेषण एवं मौद्रिक क्षेत्रक परस्पर अलग न रहकर एक-दूसरे से प्रभावित होकर व्यवहार करने लगते हैं। फ्रीडमैन ने मौद्रिक आय के निर्धारण

में मुद्रा को ही केन्द्र बिन्दु माना, पर केन्ज़ को, विशेषकर व्यापक मदी के जिस संदर्भ में उन्होंने अपने "सामान्य सिद्धांत" की रचना की थी, समग्र उत्पादन के स्तर के निर्धारण में मौद्रिक नीति के प्रभावी होने पर काफी संदेह था। उन्होंने मंदी से बाहर निकलने में रोजकोषीय नीति का स्थान ही सर्वोपरि रखा। पर दूसरी ओर इस बात से संतुष्ट होकर कि मुद्रा का परिचलन वेग स्थिर रहता है। फ्रीडमैन तो यही मानते हैं कि राजकोषीय या मौद्रिक नीतियों का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। अतः मुद्रावाद भी इसी बात पर आकर जम जाता है कि वास्तविक चरों के स्तर के निर्धारण में "मुद्रा का कोई महत्त्व नहीं है।" A दूसरे शब्दों में क्लासिकल QTM ही सही थी।

18.9 शब्दावली

वस्तु विनिमय अर्थव्यवस्था : वस्तुओं के बदले वस्तुओं के लेन-देन पर आधारित अर्थव्यवस्था।

पूँजीगत लाभ/हानि : एक परिसम्पत्ति की विक्रय कीमत और उसकी लागत का अंतर। यदि किसी परिसम्पत्ति का विक्रय मूल्य खरीद मूल्य से अधिक हो तो पूँजी लाभ और यदि कम हो तो पूँजी हानि होती है।

क्लासिकल QTM : मुद्रा एक ऐसा आवरण है जिसके पीछे ही सभी आर्थिक गतिविधियाँ होती हैं। मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन केवल मौद्रिक चरों को प्रभावित करती है, वास्तविक चर इससे अप्रभावित रहते हैं। इस सिद्धांत का सत्व यही है कि मुद्रा की पूर्ति कीमत स्तर का निर्धारण करती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

क्लासिकल द्वैध : इसका अर्थ यही है कि वास्तविक तथा मौद्रिक अर्थव्यवस्था एक-दूसरे से स्वतंत्र होकर कार्य करती है।

मुद्रा की आय परिचालक दर : अंतिम वस्तुओं/सेवाओं के विनिमय में एक वर्ष में जितनी बार एक मुद्रा इकाई के एक साथ में जाए वहीं परिचलन दर है।

तरलता अधिमान : अन्य परिसम्पत्तियों की अपेक्षा नकदी को प्राथमिकता देना।

नकदी जाल : ब्याज की वह अतिन्यून दर जिसपर मुद्रा माँग-वक्र क्षैतिज-अक्ष के समानांतर हो जाता है। यहाँ मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि से ब्याज की दर कम नहीं हो पाती।

मुद्रा की पूर्वोपाय माँग : अचानक पड़ जाने वाली आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भी व्यक्ति अपनी आय का कुछ भाग नकद रख छोड़ते हैं। यह उद्देश्य सभी प्रकार की अनिश्चितताओं से प्रभावित होता है।

मुद्रा की सट्टा माँग : बाण्ड या शेयर बाजार में दाम गिरने पर खरीदारी करके पूँजीगत लाभ कमाने की आशा में नकदी का संग्रह। इन सटोरियों को आशा होती है कि इस तरह से खोए गए ब्याज की भरपाई पूँजीगत लाभ से हो जाएगी।

मुद्रा की विनिमय माँग : रोज़-रोज़ चीजों की खरीदारी के लिए नकदी की

ज़रूरत होती ही है। यह माँग मुद्रा के विनिमय माध्यम स्वरूप पर बल देती है।

मौद्रिक आय : चालू कीमतों पर आय का मूल्य।

स्थायी आय : वर्तमान तथा पूर्व कालिक आयों का एक भारित योग।

'से' का नियम : 'पूर्ति अपनी माँग का स्वयं सृजन कर लेती है।' दूसरे शब्दों में किसी भी अर्थव्यवस्था में उत्पादन का स्तर माँग पर नहीं बल्कि पूर्ति पर आश्रित है।

18.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Ackley, Gardner (1977), "*Macro Economics : Theory and Policy*", Macmillan, New York.

Bhaduris Amit (1986), "*Macro Economics, The Dynamics of Commodity Production*", Macmillan, London.

Gupta, Suraj B. (1982), "*Monetary Economics*", S.Chand & Company, New Delhi.

Shapiro, Edward (1985), "*Macro Economics Ayalisis*", Edward Brace Juanovich, New York.

18.11 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 1

1) घोड़े का विनिमय का माध्यम बनाने में समस्या तब पैदा होगी जब आप एक किलो चावल खरीदना चाहेंगे। आप ऐसा नहीं कर पाएँगे क्योंकि जीवित घोड़े के छोटे-छोटे टुकड़े नहीं हो सकते।

2) i) चीनी का मूल्य मौसम के हिसाब से बदल सकता है। यह विभाज्य है पर इसे लाना ले जाना सहज नहीं।

ii) घोड़े बूढ़े होने पर इसका मूल्य कम हो जाएगा। यह विभाज्य भी नहीं है। इसमें टिकाऊपन का भी अभाव है, जीवित जन्तु होने के कारण इसके स्वास्थ्य आदि का भी प्रभाव इसके मूल्य पर पड़ेगा। इसे हर जगह ले जाना भी इतना सरल नहीं है। यह मुद्रा का बहुत ही विचित्र स्वरूप होगा।

iii) नमक मुद्रा का कुछ बेहतर कार्य कर सकता है क्योंकि इसका अपना मूल्य प्रायः स्थिर रहता है; यह विभाज्य भी है और टिकाऊ भी; पर उच्च मूल्य की वस्तुओं के लिए इसकी बहुत भारी मात्रा को लाना ले-जाना आसान नहीं होता।

iv) इडली तो हर तरह से ही मुद्रा का बहुत ही घटिया स्वरूप होगा। यह कुछ घंटों तक की टिकाऊ रह सकती है, इसका मूल्य भी स्थिर नहीं रहता, यह केवल विभाज्य है।

v) सोना मुद्रा के सभी आवश्यक गुणों से सम्पन्न है। अतः दी हुई वस्तुओं में यही सबसे उपयुक्त रहेगा।

स्थायी विभाज्य टिकाऊ आसानी से लाई-ले जाने योग्य :

चीनी

घोड़ा

नमक

इडली

सोना

3) वस्तु विनिमय तथा मौलिक अर्थव्यवस्था के अंतरों का वर्णन भाग 18.1 में है।

बोध प्रश्न 2

1) क्लासिकल QTM की प्रमुख मान्यताएँ ये हैं :

   i) मुद्रा के परिचलन वेग v की स्थिरता; तथा

   ii) वास्तविक आय y की स्थिरता।

बोध प्रश्न 3

1) इस प्रश्न के उत्तर के लिए भाग 18.4 तथा 18.5 देखें। भेद का मुख्य आधार मुद्रा धारण के उद्देश्य ही हैं। क्लासिकल सिद्धांत केवल एक उद्देश्य बताता है जबकि केन्ज़ के सिद्धांत में तीन उद्देश्य बताए गए हैं।

2) मुद्रा की विनिमय माँग केवल मौद्रिक आय तथा सट्टा माँग केवल ब्याज की दर पर आधारित है। दोनों ही समग्र मुद्रा माँग की घटक हैं। देखिए भाग 18.5

DIKSHANT IAS

3)

Call us @7428092240

मुद्रा	बाण्ड
क) मुद्रा पर कोई ब्याज नहीं मिलता	क) ब्याज मिलता है।
ख) यह सभी को स्वीकार्य होती है।	ख) हर कोई इन्हें स्वीकार नहीं करता।
ग) यह अच्छी तरह विभाज्य है।	ग) इसकी विभाज्यता इतनी अच्छी नहीं होती।
घ) इसका मूल्य स्फीति के अनुसार बदलता है।	घ) इनका मूल्य ब्याज की दर के साथ बदलता है।

4) तरलता अधिमान की व्याख्या में 18.5 केन्ज़ीय मुद्रा की माँग के अंतर्गत देखिए।

5) मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि से ब्याज की दर कम होती है। इसके कारण मुद्रा की माँग बढ़ती है। यह क्रम चलता रहता है और अन्ततः एक कम ब्याज स्तर तथा अधिक मुद्रा माँग पर संतुलन हो जाता है जो कि मुद्रा की आपूर्ति के समान होती है।

बोध प्रश्न 4

1) इस प्रश्न का सही उत्तर देने के लिए इकाई के अंतिम तीनों भागों का अध्ययन आवश्यक है। अंतिम भाग तो केवल इनकी तुलना ही करता है।

इकाई 19 मुद्रास्फीति एवं बेरोज़गारी

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य
19.1 प्रस्तावना
19.2 कीमत, कीमत स्तर और उसका माप
  19.2.1 एक सूचकांक क्या होता है?
19.3 मुद्रास्फीति की परिभाषा
19.4 मुद्रास्फीति के समाज तथा अर्थव्यवस्था पर प्रभाव
19.5 मुद्रास्फीति के विभिन्न प्रकार
19.6 मुद्रास्फीति के कारण
  19.6.1 मुद्रास्फीति : माँग–पक्ष
  19.6.2 मुद्रास्फीति : पूर्ति–पक्ष
19.7 संरचनात्मक मुद्रास्फीति
19.8 मुद्रास्फीति विरोधी नीतियाँ
19.9 अव–स्फीति
19.10 मुद्रास्फीति जनित मंदी
19.11 स्फीति तथा बेरोज़गारी : फिलिप्स वक्र
19.12 सारांश
19.13 शब्दावली
19.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें
19.15 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा–संकेत

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

19.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम कीमतों तथा मुद्रास्फीति के विषय में बातचीत करेंगे। मुद्रास्फीति से हमारा नित्यप्रति सामना होता ही रहता है। इस अध्याय में हम विशेष रूप से इन बातों से इन बातों पर ध्यान देंगे :

- कीमत स्तर क्या होता है? तथा उसे कैसे मापा जाता है?
- मुद्रास्फीति से क्या अभिप्राय है?
- मुद्रास्फीति के समाज के विभिन्न वर्गों तथा सामान्य अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ते हैं?
- मुद्रास्फीति विरोधी नीतियाँ अथवा मुद्रास्फीति के उपाय; तथा
- मुद्रास्फीति और बेरोज़गारी के बीच संबंध का फिलिप्स वक्र के माध्यम से विश्लेषण।

प्रस्तुत इकाई में इन प्रश्नों पर बहुत ही सहज भाव से चर्चा करेंगे।

19.1 प्रस्तावना

हम प्रायः समाचार पत्रों में मुद्रास्फीति के बारे में कुछ न कुछ पढ़ते ही रहते हैं। इस विषय के इतने महत्त्व का एकमात्र कारण यह है कि अनियंत्रित मुद्रास्फीति अर्थव्यवस्था पर बुरे प्रभाव डालती है। अर्थव्यवस्था ही नहीं समाज के अधिकतर सदस्यों को इसके बुरे परिणामों को भुगतना पड़ता है। प्रश्न यह है कि मुद्रास्फीति हमारे दैनिक जीवन को किस प्रकार प्रभावित करती है? आइए इस बात को एक परिवार के उदाहरण द्वारा समझने का प्रयास करें। मुद्रास्फीति का सीधा अर्थ है वस्तुओं तथा सेवाओं की कीमतों में वृद्धि। हर परिवार

अपनी सीमित आय से वस्तुओं एवं सेवाओं की कुछ निश्चित मात्राएँ खरीदता है। पर कीमत वृद्धि इस प्रविार को पहले जितनी ही मात्रा में वही वस्तुएँ खरीदने योग्य नहीं छोड़ती। या फिर परिवार को अपना उपभोग पुराने वास्तविक स्तर पर बनाए रखने के लिए अब अधिक रुपये व्यय करने पड़ते हैं। मान लीजिए एक परिवार की आय 100 रुपये है और वह कोई बचत नहीं करता तथा एक ही वस्तु की 25 इकाइयाँ 4 रुपये प्रति इकाई कीमत पर खरीदता है। अब यदि कीमत बढ़कर 5 रुपये हो जाती है वह परिवार केवल 20 इकाइयाँ ही खरीद पाएगा। उपभोग स्तर बनाए रखने के लिए अब उसे 125 रुपये खर्च करने पड़ेंगे। अतः मुद्रास्फीति के कारण परिवार की क्रय–शक्ति कम हो जाती है। उसकी आमदनी अब पहले जितनी वस्तुएँ खरीदने के लिए पर्याप्त नहीं रहती।

हमारे उदाहरण में परिवार केवल एक ही वस्तु का उपभोग करता है, पर वास्तव में हम कितनी ही वस्तुओं तथा सेवाओं का प्रयोग करते हैं। केवल एक वस्तु की कीमत में वृद्धि का संभवतः परिवार के उपभोग पर कोई विशेष दुष्प्रभाव नहीं पड़े क्योंकि यदि एक वस्तु की कीमत बढ़ती है तो कुछ की कम हो सकती है। अतः मुद्रास्फीति का सही असर तो तभी पता चलेगा जब हम परिवार द्वारा प्रयुक्त सभी वस्तुओं ओर सेवाओं की कीमतों का हिसाब लगा लें। दूसरे शब्दों में, हमें सामान्य कीमत स्तर के परिवर्तन का आकलन करना होगा। अतः मुद्रास्फीति को ठीक से समझने से पूर्व हमारे लिए कीमत तथा कीमत स्तर और इनके परिवर्तन के बारे में जान लेना आवश्यक है। भाग 19.2 में इन्हीं बातों पर विचार किया गया है।

19.2 कीमत, कीमत-स्तर तथा इनका माप

कीमतें क्या होती हैं? कीमत स्तर से हमारा क्या अभिप्राय है? दोनों में क्या अंतर है? कीमत स्तर को कैसे मापा जा सकता है? इस भाग में हम इन्हीं बातों पर चर्चा कर रहे हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सरल शब्दों में, किसी वस्तु या सेवा की एक इकाई के लिए चुकाई गई रुपयों की संख्या ही उसकी कीमत है। दूसरे शब्दों में, एक मौद्रिक अर्थव्यवस्था में किसी चीज़ की एक इकाई के क्रय–विक्रय में जितने रुपये लगते हैं उन्हीं रुपयों की संख्या उस वस्तु की कीमत होगी।

कीमत स्तर, एक वस्तु नहीं बल्कि वस्तुओं व सेवाओं के एक निश्चित समूह की कीमत से जुड़ा है। अतः हम जब भी कीमत स्तर के परिवर्तन की बात करते हैं तो वस्तुओं व सेवाओं के उसी समूह के संदर्भ में ही करते हैं। वस्तुएँ अलग–अलग इकाइयों में आती हैं; उनकी कीमतें भी भिन्न होती हैं। अतः समूह की कीमत जानने के लिए हमें उस समूह के घटकों का कोई साँझा मापदण्ड निर्धारित करना होगा। इसी कार्य के लिए कीमत–सूचकांक का प्रयोग होता है। यद्यपि आपका सांख्यिकी पाठ्यक्रम इस विषय में अधिक विस्तृत जानकारी प्रदान करेगा, पर सूचकांकों संबंधी काम चलाऊ जानकारी यहाँ भी दे रहे हैं।

19.2.1 सूचकांक क्या होता है?

सूचकांक परस्पर संबंधित विभिन्न चरों के किसी समूह के परिमाण स्तरों का दो या अधिक समय बिंदुओं पर तुलना करने में काम आते हैं। अतः कीमत सूचकांक किसी वस्तुओं के समूह की कीमतों (में परिवर्ततन) की तुलना करने में काम आते हैं। सामान्यतः हम किसी एक अवधि के कीमत स्तर को (आधार) 100 मानकर अन्य सभी अवधियों में कीमत स्तर को इस आधार की तुलना में व्यक्त करते हैं। अगर हम कहें कि पिछले वर्ष की तुलना में थोक कीमत सूचकांक बढ़ गया है तो इसका अर्थ होगा कि हमने पिछले वर्ष को आधार माना है। अतः उसका सूचकांक 100 है। इस वर्ष का अंक 100 से अधिक या कम हो तभी हम कीमत स्तर की वृद्धि या कमी को दिखा पाएँगे।

किसी वस्तु की चालू कीमत तथा आधार वर्ष की कीमत के अनुपात को 100 से गुणा कर

हम सबसे सरल कीमत सूचक ज्ञात कर सकते हैं :

$i_{t}, 0 = 100(Px/P)$ ..(1) $i_{t,0} = 100(p_t/p_0)$ ....(2)

यहाँ p_t तथा p_o चालू व आधार कीमते हैं।

यदि एक किलो आलू की कीमत 1995 में आठ रुपये थी तथा 1996 में बढ़कर 10 रुपये हो गई तो आलू का कीमत सूचकांक इस प्रकार होगा :

I1995, 1996 =100(10/8) = 125

यह सूचकांक आलू कीमतों में 25 प्रतिशत वृद्धि का परिचायक है; अर्थात हमें अपने आलू के उपभोग को पुराने स्तर पर बनाए रखने के लिए अब उसपर 25 प्रतिशत अधिक राशि खर्च करनी होगी।

बोध प्रश्न 1

1) कीमत का अर्थ है? कीमत स्तर बताता है?

....

....

....

....

....

2) सूचकांक क्या होता है?

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

....

19.3 मुद्रास्फीति की परिभाषा

कीमत और कीमत स्तर की परिभाषाओं के बाद अब हम मुद्रास्फीति के बारे में चर्चा कर रहे हैं। मुद्रास्फीति को सामान्य कीमत स्तर मे निरंतर वृद्धि की प्रवृत्ति कहा जाता है। यहाँ वृद्धि में निरंतरता का बहुत महत्त्व है क्योंकि यदि कीमत स्तर आज बढकर कल वापस गिर जाए तो इसे अल्पकालीन उतार–चढाव ही कहा जाएगा। 'सामान्य कीमत स्तर' का भी इस परिभाषा मे बहुत महत्त्व है। इस बात की काफी संभावना है कि समय के साथ–साथ जहाँ कुछ वस्तुओं की कीमतें बढती हैं वही कुछ की कीमते शायद कम भी हो रही हों। किन्तु यहाँ हमारा अभिप्राय वस्तुओं के उस समूह के सामूहिक कीमत स्तर में निरतर वृद्धि से है। कई बार यह भी संभव है कि देश के सारे उत्पादन के बहुत छोटे से अश की कीमतों में वृद्धि हो और उसका सारी अर्थव्यवस्था की औसत कीमत स्तर पर कोई विशेष प्रभाव न पडे। पर जब हम मुद्रास्फीति की चर्चा करते हैं तो हम पूरे अर्थव्यवस्था में कीमत वृद्धि की निरंतर प्रवृत्ति को ही लेते हैं, किसी एक वस्तु या किसी छोटे से समूह के विषय में नहीं। मुद्रास्फीति की एक और भी विशेषता होती है। कई बार यह खुले रूप में स्पष्ट दिखाई नहीं देती। उदाहरण के लिए यदि अर्थव्यवस्था में कुछ वस्तुओं की कीमतों

पर नियंत्रण लागू हों, या फिर भारत की सार्वजनिक वितरण प्रणाली की भाँति खुले बाज़ार की कीमतों से कम पर ये वस्तुएँ राशन में उपलब्ध कराई जा रही हों, तो भी मुद्रास्फीति का सही प्रभाव दिखाई नहीं पड़ता। ऐसी स्थिति में हम यह कह सकते हैं कि अर्थव्यवस्था में दबी या छुपी हुई मुद्रास्फीति विद्यमान है। ऐसी स्थिति में राशन की दुकान की कीमतें नहीं बल्कि खुले बाज़ार की ऊँची कीमतें ही मुद्रास्फीति दर का कुछ अनुमान लगाने में सहायक हो सकती हैं।

हमने प्रस्तावना में इस बात की ओर इशारा किया था कि निश्चित आय वाले परिवारों पर मुद्रास्फीति का दुष्प्रभाव पड़ता है। कुछ मामलों में यह भी संभव है कि कुछ समय वर्गों पर मुद्रास्फीति का कोई प्रभाव ही न पड़े और कुछ को इससे लाभ भी हो। भाग 19.4 में हम इन्हीं बातों पर चर्चा कर रहे हैं।

19.4 समाज और अर्थव्यवस्था पर मुद्रास्फीति के प्रभाव

मुद्रास्फीति समाज के विभिन्न वर्गों पर भिन्न–भिन्न प्रभाव डालती है। गरीब और निश्चित आय वर्गों पर इसके प्रभाव सबसे अधिक बुरे रहते हैं। उदाहरण के लिए भारत में ही कुल जनसंख्या का एक बहुत बड़ा हिस्सा ऐसे दिहाड़ी मज़दूरों का है जो अन्य व्यक्तियों के खेतों और कारखानों में काम करते हैं और उन्हें काम या दि के अनुसार मजदूरी मिलती है। खेती के क्षेत्र में तो ये दिहाड़ी के अवसर भी साल में दो–चार बार, हफ्ते दस दिन तक सीमित रहते हैं। अतः व्यापक बेरोज़गारी से ग्रस्त हमारे देश में मज़दूरी की दर चाहे जितनी भी कम हो उसपर काम करने के इच्छुक बहुत से लोग कतार बाँधे खड़े हुए हुए मिल ही जाते हैं। मालिकों की तुलना में मज़दूरों की सौदेबाजी करने की क्षमता बहुत ही सीमित रहती है। मुद्रास्फीति के समय मज़दूर इस स्थिति में नहीं होते कि अपने हितों की रक्षा के लिए अपनी मजदूरी बढ़वा सकें। यद्यपि सरकार न्यूनतम मज़दूरी दर निश्चित करती है पर इस दर में परिवर्तन बहुत समय बाद ही किया जाता है। बहुत से क्षेत्रों में तो ये दरें लागू ही नहीं हो पाती। यदि किसी दर्जी को प्रति कपड़ा बारह रुपया सिलाई मिलती है तो मुद्रास्फीति के ज़माने में उसके बारह रुपयों की क्रय–शक्ति निरंतर कम होती जाएगी। गरीब वर्ग की एक और भी समस्या है कि उनके पास बचत इकट्ठा होने की नौबत ही नहीं आती। अतः वे बुरे वक्त में पुरानी बचत का आसरा भी नहीं ले पाते।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

समाज में कुछ वर्ग ऐसे भी होते हैं जिन्हें मुद्रास्फीति से लाभ होता है या जो कम से कम अपने पुराने वास्तविक आय स्तर को बनाए रखने में सफल रहते हैं। संगठित क्षेत्र के मज़दूर और सरकारी कर्मचारी महँगाई भत्ते आदि के माध्यम से मुद्रास्फीति का काफी हद तक सामना कर लेते हैं। आवश्यक वस्तुओं की कमी के दौर में कीमतें बढ़ाकर व्यापारी वर्ग तो मुद्रास्फीति से फायदा उठाने में भी कामयाब रहता है। अतः हम कह सकते हैं कि मुद्रास्फीति का सबसे बुरा प्रभाव गरीब, निश्चित आय कमाने वाले और असंगठित क्षेत्र में काम करने वाले मज़दूरों पर पड़ता है। समाज के अन्य वर्गों पर ये दुष्प्रभाव प्रायः बहुत कम रहता है। कुलमिलाकर मुद्रास्फीति से समाज में आमदनी का पुनः वितरण कुछ इस तरह से होता है कि अमीर और अमीर हो जाते हैं तथा गरीब और गरीब हो जाते हैं।

19.5 मुद्रास्फीति के विभिन्न प्रकार

कीमत वृद्धि की तीव्रता अथवा दर के अनुसार हम मुद्रास्फीति के तीन वर्ग बना सकते हैं। ये हैं : साधारण मुद्रास्फीति, द्रुत मुद्रास्फीति, तथा अति मुद्रास्फीति (Moderate, galloping and hyper inflation)

साधारण मुद्रास्फीति में कीमतें लगातार पर धीमी रफ्तार से बढ़ती हैं। वार्षिक मुद्रास्फीति दर सामान्यतः 10 प्रतिशत से कम ही रहती है। अतः कीमत वृद्धि कुछ निश्चित सीमाओं में ही रहती है इस बारे में कोई खास 'अनिश्चितता' नहीं होती।

कीमतों में निरंतर अच्छी खासी वृद्धि को ही द्रुत मुद्रास्फीति कहा जाता है। आमतौर पर 20 से 40 प्रतिशत प्रतिवर्ष की मुद्रास्फीति दर इसी श्रेणी में आती है। कभी–कभी यह दर 200 प्रतिशत तक भी देखी गई है। दक्षिण अमेरिका के ब्राज़ील, और अर्जेन्टीना आदि देशों में 1970 के दशक में 100 प्रतिशत से अधिक मुद्रास्फीति दर देखने में आई थी।

अति मुद्रास्फीति में तो कीमतों की वृद्धि–दर का कोई ठिकाना ही नहीं रहता। हमें ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं कि डेढ़ ही वर्ष में कीमत सूचकांक 100 से बढ़कर 10,000,000,000 हो गया। ऐसी स्थिति में मुद्रा विनिमय के माध्यम के रूप में भी अपनी मान्यता खो बैठती है उसे मूल्य का भण्डार कहना तो एक मज़ाक ही हो जाता है। ब्राज़ील में 1980 दशक के पूर्वार्द्ध में इसी प्रकार का अति मुद्रास्फीति का दौर चला था।

बोध प्रश्न 2

1) क्या मुद्रास्फीति समाज के सभी वर्गों पर एक–सा प्रभाव डालती है? यदि नहीं तो इसके कारण बताइए।

....

....

....

....

....

2) मुद्रास्फीति के कितने प्रकार होते हैं? उनमें भेद का आधार क्या है? व्याख्या करें।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

....

19.6 मुद्रास्फीति के कारण

कीमत वृद्धि किस कारण से आरंभ हुई थी इसी आधार पर हम मुद्रास्फीति के कारणों का वर्गीकरण करते हैं। हमने व्यष्टि अर्थशास्त्र में सीखा था कि कीमत का निर्धारण माँग और पूर्ति के समानता बिन्दु पर होता है। इसी को संतुलन बिन्दु कहते हैं। यदि माँग में वृद्धि हो जाए तो नया संतुलन पहले से अधिक कीमत स्तर पर ही संभव हो पाता है। यदि पूर्ति में संकुचन हो तब भी कीमत बढ़ जाती है। दोनों ही मामलों में कीमत तब तक बढ़ती है जब तक की माँग व पूर्ति पुनः एक समान न हो जाए। पर पहले मामले में कीमत वृद्धि माँग के विस्तार से हुई थी तो दूसरे में पूर्ति का संकुचन ही ऐसी प्रवृत्ति का जन्मदाता बना है। कई बार उत्पादन लागत में वृद्धि के कारण पूर्ति–वक्र ऊपर खिसक जाता है। इससे भी कीमतें बढ़ती हैं।

अतः प्रक्रिया के आरंभिक कारण के आधार पर हम मुद्रास्फीति को माँगजन्य मुद्रास्फीति (demand-pull inflation) तथा लागतजन्य मुद्रास्फीति (Cost-push inflation) में वर्गीकृत कर सकते हैं। यहाँ हम अर्थव्यवस्था की समग्र माँग और समग्र पूर्ति के संदर्भ में ही मुद्रास्फीति की माँग एवं पूर्ति–पक्षों की चर्चा कर रहे हैं।

19.6.1 मुद्रास्फीति : माँग-पक्ष

मुद्रास्फीति के माँग–पक्ष पर वे कारक जिम्मेदार होते हैं तो, पूर्ति स्थिर रहने पर, समग्र माँग को बढ़ाकर कीमत वृद्धि लाते हैं। ये हैं : सरकारी व्यय में वृद्धि, बचत दर में कमी, करों की दर में कमी तथा वे अन्य सभी कारण जो लोगों के पास ज़्यादा प्रयोज्य आय बच जाने देते हों या फिर मुद्रा की पूर्ति बढ़ा देते हों। आइए देखें कि ये सभी कारक किस–किस तरह से कीमत वृद्धि की प्रवृत्तियों को जन्म देते हैं।

क) सरकारी व्यय वृद्धि के कारण मुद्रास्फीति

मान लीजिए कि सरकार ने नई सड़कें बनाने का फैसला किया है। कितने ही बेरोज़गारों को इसमें काम मिलेगा। वे रोज़ी कमाएँगे। अतः लोगों के पास खर्च करने को अधिक पैसा होगा। अर्थव्यवस्था में वस्तुओं की आपूर्ति तो स्थिर हैं, स्वाभाविक है कि इससे अति माँग की स्थिति पैदा हो जाएगी। इससे निपटने के दो ही रास्ते हैं : या तो वस्तुओं का उत्पादन और पूर्ति बढ़ाई जाए, या फिर उनकी कीमतें बढ़ा दी जाएँ। दोनों से ही माँग व पूर्ति का अन्तर समाप्त किया जा सकता है। पर अल्पकाल में उत्पादन वृद्धि संभव नहीं रहती, अतः कीमतें ही बढ़ जाती हैं और समग्र माँग और समग्र पूर्ति में संतुलन लाती हैं। सरकारी व्यय की वृद्धि के फलस्वरूप समग्र माँग (AD) वक्र ऊपर की ओर खिसक जाता है (चित्र 19.1) पर अल्पकाल में पूर्ति स्थिर रहने के कारण केवल कीमत स्तर में ही वृद्धि होती है। इससे वास्तविक Y पर ही रहती है।

चित्र 19.1

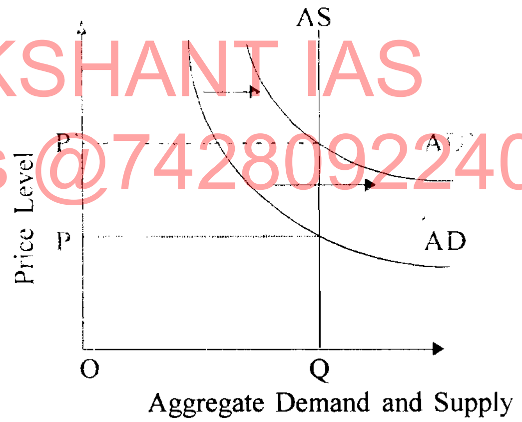

DIKSHANT IAS
Call us@7428092240

चित्र 19.1 में यह दिखाया गया है कि प्रारंभ में समग्र माँग AD तथा समग्र आपूर्ति AS थीं। अतः सारी उत्पादित मात्रा OQ को लोग OP कीमत पर खरीद लेते थे। सरकारी व्यय की वृद्धि से समग्र माँग-वक्र ऊपर की ओर AD[1] पर पहुँच जाता है। परिणामस्वरूप नया संतुलन भी पुरानी AS तथा नई AD के सम्मिलन से होता है। पर नए संतुलन बिन्दु पर उत्पादन OQ ही रहता है. केवल कीमत बढ़कर OP[1] हो जाती है।

ख) केन्ज़ीय मुद्रास्फीति अन्तराल

केन्ज़ का मुद्रास्फीति अन्तराल थोड़ा अलग है लेकिन संबंधित है। केन्ज़ीय सिद्धांत निवेश राष्ट्रीय आय निर्धारण में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। केन्ज़ीय व्यवस्था में अर्थव्यवस्था को तीन क्षेत्रों में बाँटा गया है : परिवार, सरकार तथा निजी क्षेत्र। परिवार श्रम व साधन सेवाओं से आय प्राप्त करते हैं; उसमें से एक भाग उपभोग पर व्यय करते हैं उपभोग और शेष बचत करते हैं। निजी क्षेत्र वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन करता है। लाभ कमाता है तथा उसका एक भाग नई मशीनें खरीदकर निवेश करते हैं। सरकार दोनों ही क्षेत्रों से कर वसूलती है और उस राशि से सडक निर्माण तथा अन्यान्य सार्वजनिक सेवाओं पर व्यय करती है। समग्र राष्ट्रीय आय (Y) इन्ही तीन क्षेत्रों में उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य है। दूसरी ओर, व्यय उपभोग (C), निवेश (I) तथा सरकारी व्यय

(G) का योग है। केन्ज़ ने राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का संतुलन उसी बिन्दु पर माना है जहाँ कुल व्यय यानि C+I+G का योग आय यानि Y के समान होता है (अगर सरकारी क्षेत्र न हो तो उस अवस्था में कुल आय यानि Y केवल C+I के समान होगी)। हमने चित्र 19.2 में यही संतुलन दर्शाया है। C+I+G रेखा 45° की रेखा काटती है। 45° की रेखा वस्तुतः आय = व्यय रेखा ही है। यदि सरकारी व्यय बढ़कर G¹ हो जाए तो हमारा कुल व्यय भी C+I+G¹ हो जाएगा। अब नया संतुलन बिन्दु भी पहले की अपेक्षा ऊँचे आय–व्यय स्तरों पर ही संभव हो पाएगा। पर यदि आय का स्तर बढ़ा पाना संभव न हो तो प्रारंभिक आय स्तर पर हमें MN के समान अति व्यय–या अति माँग का सामना करना पड़ेगा। इसी को हम मुद्रास्फीति अन्तराल कहेंगे, क्योंकि इससे कीमतें बढ़ने की संभावना बढ़ जाती है।

चित्र 19.2

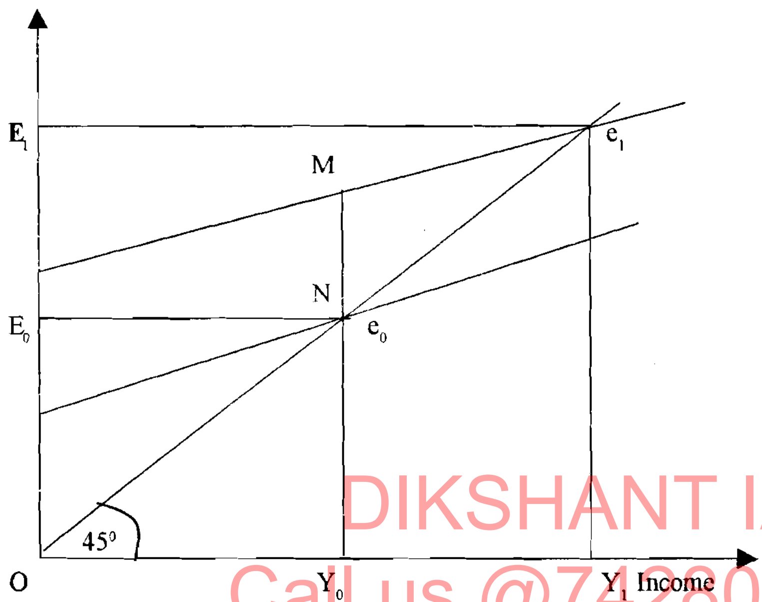

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 19.2 में दिखाया गया है कि सरकारी व्यय G से बढ़कर G_1 होने पर C+I+G भी C+I+G_1 तक उठ जाता है। शुरू में C⁰ विन्दु पर संतुलन था, वहाँ आय Y_0 तथा व्यय E_0 था। पर नए संतुलन बिन्दु e_1 का अर्थ है कि समग्र व्यय व मौद्रिक आय क्रमशः E_1 व Y_1 हैं। पर यदि वास्तविक आय नहीं बढ़ पाती (यानि Y_0 से Y_1 पर नहीं जाती) तो अतिरिक्त माँग के दवाव से कीमतों में ही वृद्धि होती है। इसीजिए MN मुद्रास्फीति अंतराल कहलाता है।

ग) मुद्रास्फीति बढ़ने से पैदा हुई मुद्रास्फीति

यह भी विचारक्रम लगभग पहले जैसा ही है। मुद्रा की आपूर्ति बढने पर लोगो के हाथों में खर्च करने के लिए रकम बढ जाती है। अतः एक अति माँग की अवस्था का जन्म हो जाता है। यहाँ भी असंतुलन की समाप्ति के लिए कीमतों का बढ़ना ही एकमात्र स्वाभाविक विकल्प बच रहता है, क्योंकि इस स्थिति में भी वास्तविक उत्पादन का स्तर अपरिवर्तित रहता है। (देखिए चित्र 19.2)

19.6.2 मुद्रास्फीति : आपूर्ति-पक्ष

माँग–वक्र के स्थिर रहने पर आपूर्ति वक्र के परिवर्तन के परिणामस्वरूप कीमत स्तर की वृद्धि को ही हम पूर्ति–पक्षीय मुद्रास्फीति का नाम देते हैं। इसके तीन भेद होते हैं लागतजन्य मुद्रास्फीति, लाभ–जन्य मुद्रास्फीति तथा आपूर्ति मुद्रास्फीति।

क) लागत-जन्य मुद्रास्फीति

लागतजन्य मुद्रास्फीति [illegible] उत्पन्न होती है जब बाजार शक्ति का प्रयोग कर श्रमिक

संघ अपनी मज़दूरी दर को बढ़ाने और फर्में अपने उत्पादन के दाम बढ़ाने में सफल हो जाते हैं। मज़दूरी बढ़ने के कारण उत्पादन की प्रति इकाई श्रम लागत बढ़ाने में सफल हो जाते हैं। मज़दूरी बढ़ने के कारण उत्पादन की प्रति इकाई श्रम लागत बढ़ जाती है और इसे पूरा करने के लिए उत्पादक कीमतें बढ़ा देते हैं। कीमतें बढ़ने से मज़दूर और अधिक मज़दूरी की माँग करते हैं और उत्पादक फिर कीमतें बढ़ा देते हैं। मज़दूरी दर में निरंतर वृद्धि की यह श्रृंखला कीमतों में निरंतर वृद्धि लाती है। ऐसी मुद्रास्फीति को मज़दूरीजन्य मुद्रास्फीति कहते हैं।

ख) लाभजन्य मुद्रास्फीति

जब फर्में अपने लाभ बढ़ाने हेतु कीमतें बढ़ाती है तो न केवल सभी कीमतें लगती हैं, मज़दूर भी अधिक मज़दूरी की माँग करने लगते हैं। मज़दूरी बढ़ने और आगतें महँगी होने के कारण उत्पादक और कीमतें बढ़ा देते हैं। इस तरह कीमत–मज़दूरी वृद्धि की नई तरंगें आरंभ हो जाती हैं। इसे ही लाभ–जन्य मुद्रास्फीति का नाम दिया जाता है।

इन दोनों ही अवस्थाओं में हर उत्पादन मात्रा पहले की अपेक्षा ऊँची कीमतों पर ही बाज़ार में उपलब्ध हो पाएगी। चित्र 19.3 में समग्र आपूर्ति–वक्र बाईं ओर खिसक जाती है। यह दर्शाती है कि अब उत्पादक Y_1 उत्पादन के लिए P_1 के स्थान पर P_2 कीमत की माँग करेगा। अतः संतुलन कीमत P_1 अब P से अधिक होगी। यही नहीं संतुलन उत्पादन तथा आय का स्तर Y_1 भी Y से नीचा ही रहता है।

मज़दूरीजन्य मुद्रास्फीति तभी संभव हो पाती है जबकि श्रमिक संगठित हो तथा उनके संगठन अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में मज़दूरी वृद्धि करवा पाने में सक्षम हो। भारत में श्रम संगठन इतने व्यापक नहीं हैं और इसीलिए यहाँ के आँकड़ों से मज़दूरीजन्य मुद्रास्फीति की कोई साक्षी नहीं मिल पाती।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इसी तरह से फर्में भी तभी मनमाने ढंग से कीमतें बढ़ाने में सफल हो पाती हैं जबकि वस्तु बाज़ार में काफी अपूर्णताएँ हों। एक प्रतियोगी फर्म के लिए अपनी कीमत बढ़ाना सहज नहीं होता पर एकाधिकारी एवं अल्पाधिकारी बाज़ारों में उत्पादकों को कीमत बढ़ाने पर बिक्री कम होने का कोई डर नहीं रहता। अतः वे बड़े आराम से कीमतें बढ़ा देते हैं।

चित्र 19.3

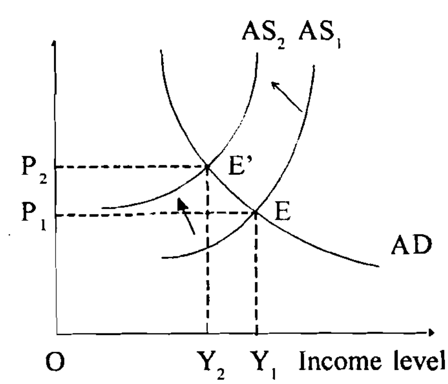

चित्र 19.3 उत्पादन लागतों की वृद्धि समग्र पूर्ति-वक्र को ऊपर खिसका देती है। अब AS_1 के स्थान AS_2 पर ही पूर्ति का स्तर दर्शाता है। उत्पादक अब उसी उत्पादन स्तर के लिए अपेक्षाकृत अधिक कीमत माँगते हैं। पहले वे Y_1 मात्रा P_1 कीमत पर बेचने को तैयार थे पर अब वे P_2 कीमत चाहते हैं। नया संतुलन E_1 पर होगा जहाँ नई संतुलन कीमत P_1 का निर्धारण होता है।

ग) **आपूर्ति-आघात मुद्रास्फीति**

कई बार अचानक आपूर्ति में भारी गिरावट के कारण भी कीमत स्तर बहुत ऊपर उठ जाता है। इस गिरावट के कारणों पर फर्म या श्रमिकों का कोई नियंत्रण नहीं रहता। अचानक प्राकृतिक आपदाओं के कारण फसल नष्ट होने से आपूर्ति अभाव की ऐसी स्थिति पैदा हो जाती है। इसी तरह 1973 तथा 1979 में तेल निर्यातक संघ द्वारा पैट्रोलियम कीमतों की वृद्धि से विश्व भर के देशों में मुद्रास्फीति फैल गई थी। यह सभी आपूर्ति–आघात मुद्रास्फीति के उदाहरण हैं।

19.7 संरचनात्मक मुद्रास्फीति

अभी तक हमने मुद्रास्फीति के जिन कारणों एवं सिद्धांतों की चर्चा की है, वे सभी विकसित औद्योगिक राष्ट्रों के परिप्रेक्ष्य में विकसित हुए हैं। ये भारत तथा अन्य विकासशील देशों में उतनी अच्छी तरह लागू नहीं हो पाते। विकसित पश्चिमी देशों के विपरीत इन देशों में पूँजी, विदेशी मुद्रा (आवश्यक मशीनों तथा सामग्रियों के आयात हेतु), भूमि तथा बुनियादी सुविधाओं (सड़क, रेलें, बिजली आदि) का अभाव ही रहता है। साथ ही साथ विशाल जनसंख्या का खेती पर ही आश्रित होना कृषि भूमि का व्यापक विखण्डन करता है। भूस्वामित्व की विकृत प्रणालियाँ, तकनीकी पिछड़ापन और कृषि निवेश की नीची दर भी यहाँ समस्याओं को और गहन कर देती है। कम विकसित देशों की ये खास विशेषताएँ हैं। इन संरचनात्मक विशेषताओं के आधार पर ही संरचनात्मक मुद्रास्फीति का सिद्धांत विकसित हुआ है। आइए देखें कि ये कारक किस प्रकार कार्य करते हैं।

क) **खाद्यान्न का अभाव**

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

ज़्यादातर गरीब देशों की जनसंख्या का अधिकांश भाग कृषि से ही अपनी रोज़ी–रोटी कमाता है। कहीं–कहीं कुछ उद्योगों के विकास के कारण कुछ लोगों को शहरी क्षेत्रों में भी काम मिलने लगा है। पर कृषि भूमि के स्वामित्व में बहुत अधिक असमानताएँ तथा काश्तकारी प्रणाली, पुरानी घिसी–पिटी तकनीकों तथा कृषि निवेश के अभाव की संरचनात्मक बाधाओं के कारण बढ़ते हुए शहरीकरण व जनसंख्या की खाद्यान्न की माँग को पूरा कर पाना संभव नहीं हो पाता। यही नहीं, कृषि की मौसम पर निर्भरता इतनी अधिक है कि कभी सूखा तो कभी बाढ़ के कारण से भी अनाज की सारी कमी हो जाती है। अतः अनाज के दाम बहुत तेज़ी से बढ़ते हैं और यही मुख्य मजूरी–वस्तु भी है। इसी के कारण अन्य वस्तुओं के दामों में भी वृद्धि का सिलसिला चल पड़ता है। इसीलिए बहुत से अर्थशास्त्री खाद्यान्न कीमतों को ही अल्प विकसित देशों में मुद्रास्फीति का प्रमुख कारक मानते हैं।

ख) **विदेशी मुद्रा का अभाव**

पिछड़े देशों को अपने विकास कार्यों के लिए मशीनों, आवश्यक साज़ सामान व कच्चा माल व कहीं–कही तो खाद्यान्न एवं अन्य उपभोग्य वस्तुओं के आयात पर भारी खर्च करना आवश्यक हो जाता है। पर वस्तुओं की क्वालिटी में कमी आदि के कारण इन देशों की निर्यात आय–आयात आवश्यकता की तुलना में बहुत ही कम रहती है। अतः इन देशों में विदेशी मुद्रा की कमी बनी ही रहती है और घरेलू क्षेत्र में वस्तुओं का अभाव आयात द्वारा पूरा कर पाना संभव नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में कुछ वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि धीरे–धीरे अर्थव्यवस्था में कीमत वृद्धि ले आती है।

यही नही, साधनों का काफी बड़ा भाग भूमि, सोना आदि जैसे अनुत्पादी निवेश में लग जाता है। अन्यथा यह निवेश नए उद्योग, नई सड़कें, मशीनें, सिंचाई की सुविधाएँ आदि विकास कार्यों में लगाया जा सकता है, जिससे इन देशों के विकास की दर ऊपर उठ सकती है। इस तरह से संरचनात्मक कारक अल्प विकसित देशों में मुद्रास्फीति की व्याख्या करते

19.8 मुद्रास्फीति-विरोधी नीतियाँ

अब हम यह तो समझ ही गए हैं कि मुद्रास्फीति के मुख्य–मुख्य कारण क्या होते हैं। आइए अव इसको दूर करने के उपायों की ओर भी कुछ ध्यान दें। अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति को किस प्रकार नियंत्रित किया जा सकता है? इस समस्या के समाधान के लिए इसके कारणों को स्पष्टतः जान लेना आवश्यक होता है। हमें यह पता होना चाहिए कि यह मुद्रास्फीति माँग–पक्ष के कारको से आरंभ हुई है कि पूर्ति–पक्ष से। ऐसा क्यों होता है? यही बात हम समझने का प्रयास कर रहे हैं :

मान लीजिए कि माँग में वृद्धि के कारण मुद्रास्फीति प्रारंभ हुई है। अर्थात् लोगों के पास क्रय शक्ति बढ़ गई है पर उत्पादन या पूर्ति पूर्ववत् ही हैं। इस अवस्था में मुद्रा स्फीति को नियंत्रण में लाने के लिए सबसे अच्छा उपाय तो यही होगा कि किसी तरह से लोगों के पास उपलब्ध अतिरिक्त प्रयोज्य आय को कम किया जाए। सरकार यह कार्य दो तरह से कर सकती है : मुद्रा की पूर्ति घटा कर अथवा करों में राहत का लालच देकर लोगों को बचत करने के लिए प्रोत्साहन देकर। प्रत्यक्षतः मुद्रा की पूर्ति घटाने से वस्तुओं की माँग भी सीधे से ही घट जाती है। पर, बचत प्रोत्साहनों द्वारा उन्हीं लोगों का उपभोग कम होताहै जिनके पास काफी अतिरिक्त धनराशि हो। इससे भी समग्र माँग कम हो जाती है तथा कीमतों पर अंकुश लगता है। चित्र 19.4 में हम यही दिखा रहे हैं कि पूर्ति के AS_1 स्तर पर बने रहते हुए समग्र माँग AD_1 से बढ़कर AD_2 होने पर कीमतें बढ़ती हैं, लेकिन मांग पर नियंत्रण करने के प्रयास इसे पुनः AD_1 तक पहुँचा देते हैं।

चित्र 19.4

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

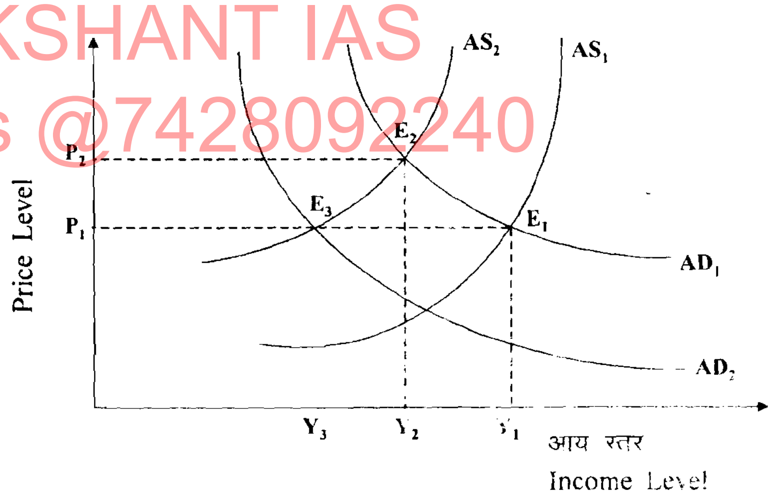

चित्र 19.4 आरंभिक समग्र भाग, AD_1 और समग्र आपूर्ति AS_1 वक्र E_1 पर काटते (intersect) हैं जहां आय का स्तर Y_1 है और कीमतों का स्तर P_1 है। परन्तु उत्पादन लागत में वृद्धि समग्र आपूर्ति को AS_2 की ओर भेजती है। इसके कारण कीमत P_1 से बढ़कर P_2 हो जाती है। इन उच्च कीमतों पर केवल आय का Y_2 स्तर उत्पन्न होगा क्योंकि उपभोक्ता सामान और सेवाओं की अधिक मात्रा खरीद नहीं सकते है। इन परिस्थितियों के अंतर्गत मांग प्रबंधन नीतियों को स्वीकार करने से समग्र मांग AD_2 तक हो जाएगी। इससे कीमतें पुराने स्तर P_1 चली जाएंगी परंतु Y_3 पर आय का स्तर कम हो जाएगा।

परन्तु यदि मुद्रास्फीति का मूल कारक समग्र आपूर्ति का कम होना रहा हो तो मॉग पर नियत्रण के प्रयास सारी अर्थव्यवस्था को ही विकृत कर देंगे। पूर्ति–वक्र AS_1 से AS_2 होने पर मॉग के संकुचन की नीतियो से यद्यपि कीमतें तो कम हो जाएँगी पर उत्पादन मे भी भारी कमी का सामना करना पड़ेगा। अतः श्रम की मांग कम होने से बेरोजगारी की समस्या गंभीर रूप धारण कर लेगी। अतः जब पूर्ति–पक्ष के कारकों से मुद्रास्फीति पैदा हो तो उसका निदान तथा उपचार की खोज भी पूर्ति–पक्षीय कारको मे ही होनी चाहिए। यद्यपि सरकार

अल्पकाल में उत्पादन वृद्धि तो नहीं कर सकती पर लागत वृद्धि के दुष्प्रभावों को अपनी नीतियों द्वारा काफी हद तक सीमित अवश्य कर सकती है।

इस दृष्टि से बिक्री कर, उत्पादन शुल्क आदि अप्रत्यक्ष करों में कमी से उत्पाद लागतें तो कम होती ही हैं, साथ ही वस्तुओं के बाज़ार मूल्य भी कम होने लगते हैं। इससे फर्में पहले की अपेक्षा ज़्यादा माल बेचने में सफल रहती है। पर, फसल खराब होने की दशा में तो सरकार अपने सुरक्षित भण्डार से *सार्वजनिक वितरण प्रणाली* में अधिक मात्रा में अनाज भेजकर ही इस समस्या पर काबू पा सकती है। यहाँ उन अन्य कारकों की चर्चा कर पाना संभव नहीं है जिनसे अब मुद्रास्फीतिकारी नीतियों की सफलता का मूल्यांकन संभव होता है।

19.9 अव-स्फीति

अब हम अवस्फीति के प्रश्न पर आते हैं। *अवस्फीति* वह स्थिति है जब कीमतों में निरंतर गिरने की प्रवृत्ति हो जाती है। इसका एक मुख्य कारण तो समग्र माँग का आपूर्ति से कम होना है। इस अवस्फीति की दशा में केवल कीमतें ही नहीं गिरती बल्कि साथ–साथ उत्पादन भी कम होता है। देशों में बेरोज़गारी बढ़ती है तथा सभी आर्थिक गतिविधियों में शिथिलता आ जाती है। सन् 1929–33 की व्यापक मंदी पूँजीवादी देशों में ऐसी ही भारी अवस्फीति का उदाहरण रहा है। उन वर्षों में कीमतें ही नहीं गिरीं, साथ–साथ इन देशों में बेरोज़गारी अति भयावह रूप धारण कर गई थी तथा आय तेज़ी से गिरी।

19.10 मुद्रास्फीति जनित मंदी

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

केन्ज़ ने जिस प्रकार की परिस्थितियों का विश्लेषण किया था, उनमें तो मुद्रास्फीति अन्तराल से अल्पकाल में ही वास्तविक उत्पादन तथा रोज़गार में वृद्धि हो जाती है। शुरू में कीमतें कुछ बढ़ती हैं पर शीघ्र ही उत्पादन वृद्धि से कीमतों पर अंकुश लग जाता है। अतः केन्ज़ीय परिस्थितियों में मुद्रास्फीति के कारण रोज़गार तथा उत्पादन और वास्तविक आय में सुधार होता है। पर 1976 के दशक में विश्व के कई देशों में कीमतों तथा बेरोज़गारी में साथ–साथ वृद्धि ने अर्थशास्त्रियों को काफी परेशानी में डाल दिया था। वह स्थिति जबकि कीमत वृद्धि के साथ–साथ रोज़गार स्थिर रहता है या फिर गिरने लगता है, मुद्रास्फीति मंदी कहलाती है। इस प्रक्रिया की व्याख्या कुछ इस प्रकार की जाती है :

अर्थव्यवस्था में अगर मुद्रास्फीति दर 6 प्रतिशत है। इससे यह एक स्वाभाविक अपेक्षा हो जाती है कि कीमतें इसी दर पर बढ़ती रहेंगी। इसी अपेक्षित दर के आधार पर श्रमिक संघ नए वेतनमानों की सौदेबाजी भी कर लेते हैं। उत्पादक भी इसके अनुसार अपनी कीमतें निश्चित करते हैं। पर यदि मुद्रास्फीति दर अचानक 6 प्रतिशत से अधिक हो जाए तो श्रमिकों को लगेगा कि उनका पुराना मज़दूरी समझौता मुद्रास्फीति से बचने के लिए पर्याप्त नहीं रह गया है और ज़्यादा मज़दूरी बढ़ने से वस्तुओं की कीमतें भी और ज़्यादा तेज़ी से बढ़ने की संभावना होगी।

अतः हम कह सकते हैं कि आज की कीमत स्तर के निर्धारण में भविष्य में अपेक्षित कीमत स्तर काफी बड़ी भूमिका अदा करता है। इस विचार के अनुसार मुद्रास्फीतिजनित मंदी स्फीति विरोधी नीतियों तथा अपेक्षित व वास्तविक मुद्रास्फीति की दरों में अंतर का मिला–जुला परिणाम है।

हमने भाग 19.8 में देखा था कि मुद्रास्फीति विरोधी नीतियों के फलस्वरूप कीमतें ही नहीं राष्ट्रीय आय भी कम हो सकती है। पर इन नीतियों के दोनों प्रभाव एक साथ महसूस नहीं होते। अभी ये नीतियाँ अपना प्रभाव डाल ही रही होती हैं कि मुद्रास्फीति की अपेक्षित दर वास्तविक मुद्रास्फीति दर के पास पहुँचने का प्रयास ही कर रही होती है। यानि मौद्रिक

आय में वृद्धि की मंदगति मुद्रास्फीति की दर में वृद्धि की और दबाव (जो कि मुद्रास्फीति नियंत्रण में लाने की नीतियों का परिणाम है)। यह वह स्थिति है जब उत्पादन स्तर की अवरुद्धता (Stagnation) तथा बढ़ती मुद्रास्फीति साथ–साथ रहती है।

19.11 मुद्रास्फीति तथा बेरोज़गारी : फिलिप्स वक्र

इस भाग में हम यह जानने का प्रयास करेंगे कि क्या मुद्रास्फीति की दर तथा बेरोज़गारी दर के बीच किसी तरह का संबंध है? यदि कोई संबंध है भी तो इस संबंध का स्वरूप कैसा है?

अर्थशास्त्री बहुत समय से मुद्रास्फीति तथा बेरोज़गारी के बीच संबंध ढूँढते रहे हैं। एक ब्रिटिश अर्थशास्त्री ए.डब्ल्यू. फिलिप्स ने मज़दूरी दर की मुद्रास्फीति तथा बेरोज़गारी के बीच संबंध का अध्ययन किया। उन्होंने 1861 से 1957 तक के ब्रिटिश अर्थव्यवस्था के आँकड़ों का अध्ययन किया। इसमें उन्होंने बेरोज़गारी दर तथा मज़दूरी मुद्रास्फीति दर के बीच विपरीत संबंध पाया। हम जानते हैं कि अन्य बातें पूर्ववत् रहने पर, मज़दूरी मुद्रास्फीति से लागतजन्य मुद्रास्फीति का जन्म होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि मज़दूरी–स्फीति तथा सामान्य मुद्रास्फीति में सीधा संबंध है। मज़दूरी–स्फीति और मुद्रास्फीति की दर के बीच सीधे संबंध तथा मज़दूरीस्फीति और बेरोज़गारी के बीच विपरीत संबंध से यह परिणाम निकलता है कि मुद्रास्फीति की दर और बेरोज़गारी के बीच विपरीत संबंध होता है।

हम जानते हैं कि :

मज़दूरी वृद्धि दर α मुद्रास्फीति दर

DIKSHANT IAS

और मज़दूरी वृद्धि–दर α (1/बेरोज़गारी दर)

Call us @7428092240

इसीलिए

मुद्रास्फीति दर α (1/बेरोज़गारी दर) यहाँ α अनुपातिकता दर्शाता है।

ऐसा हो सकता है। अगर बेरोज़गारी दर कम है और श्रमिक अच्छी तरह संगठित हैं तो वे अधिक आसानी से मज़दूरी वृद्धि की माँग मनवा सकते हैं। बेरोज़गारी कम तथा श्रम बाज़ार में श्रम की कमी आमतौर पर तभी होती है जब वस्तुओं की माँग में वृद्धि हो रही हो तथा खूब मुनाफा हो रहा हो। ऐसे में फर्मों को मज़दूरी बढ़ाने में कुछ खास ऐतराज नहीं होता क्योंकि मुनाफा कमाने के दौर में कोई भी हड़ताल नहीं चाहता। इसके विपरीत ज़्यादा बेरोज़गारी तथा कम माँग एवं कम लाभ की दशा में न तो श्रमिक मज़दूरी बढ़वाने की बात करते हैं और न ही फर्में इसके लिए कभी तैयार हो पाती हैं।

दूसरी व्याख्या श्रम की अति माँग के संदर्भ में है। तेज़ी में जब माँग और लाभ निरंतर बढ़ रहा हो तो यह संभव है कि श्रम की माँग पूर्ति की अपेक्षा अधिक हो जाए। इससे मज़दूरी की दर और साथ–साथ मुद्रास्फीति दर भी बढ़ जाएगी। अतः जैसे–जैसे बेरोज़गारी दर में कमी आती है, मुद्रास्फीति दर बढ़ने लगती है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि ये दोनों व्याख्याएँ तेज़ी से मंदी के दोनों ही दौरों में साथ–साथ भी काम कर सकती हैं। ये एक–दूसरे की विकल्प नहीं हैं।

अतः फिलिप्स वक्र एक दाहिनी ओर ढलवाँ वक्र होगा। इसके क्षैतिज–अक्ष पर बेरोजगारी की दर तथा ऊर्ध्व–अक्ष पर मुद्रास्फीति दर दिखाई जाती है। इसका अभिप्राय है कि बेरोजगारी तथा कीमतों के बीच एक प्रकार का लेनदेन (trade off) होता है। यदि सरकार बेरोज़गारी की दर कम करना चाहती है तो उसे मुद्रास्फीति की दर में वृद्धि स्वीकार करनी होगी। या फिर यदि मुद्रास्फीति की दर कम करनी है तो कुछ बेरोज़गारी स्वीकार करनी

होगी। (देखिए चित्र 19.5)

लेकिन 1970 के दशक में फिलिप्स वक्र की अवधारणा को उस समय धक्का लगा जब पूँजीवादी देशों ने यह अनुभव किया कि उनके यहाँ मुद्रास्फीति की दर में वृद्धि के साथ–साथ बेरोज़गारी की दर भी बढ़ रही है यानि मुद्रास्फीतिजन्य मंदी (Stagflation) की स्थिति बन गई है।

फिलिप्स वक्र की बहुत सारी आलोचनाएँ हैं लेकिन यहाँ हम केवल दो की चर्चा कर रहे हैं :

पहली आलोचना तो यही है कि फिलिप्स का विश्लेषण अल्पकाल में तो सही हो सकता है पर दीर्घकाल में नहीं। अगर मौद्रिक मज़दूरी दर स्थिर रहते हुए कीमतें बढ़ती हैं तो व्यापारियों को प्रति इकाई उत्पादन पर अधिक मुनाफा मिलता है। अतः कीमत वृद्धि के समय उत्पादक उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाते हैं जिनके दाम और जिनसे लाभ) बढ़ रहे हों। इसके कारण इन उद्योगों में श्रम की माँग बढ़ जाती है। अधिक उत्पादन का अर्थ है अधिक मज़दूरों को काम। पर ऐसा अल्पकाल में ही ठीक है। यही फिलिप्स वक्र संबंध भी है क्योंकि मुद्रास्फीति में वृद्धि बेरोज़गारी में कमी लाती है।

चित्र 19.5

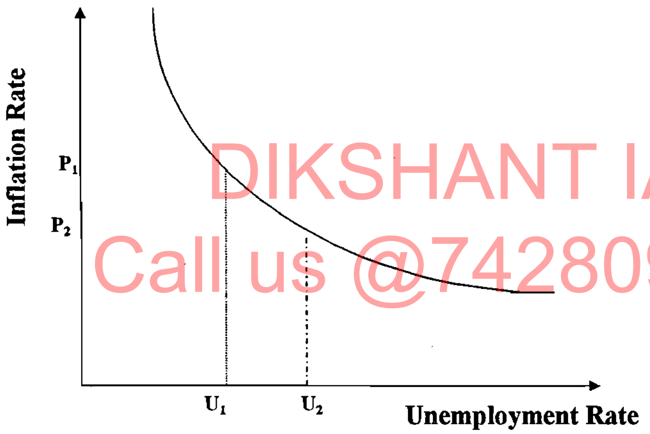

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 19.5 : फिलिप्स वक्र बेरोज़गारी दर तथा मुद्रास्फीति दर के अनुलोम संबंध को दर्शाता है। कीमत वृद्धि दर को P_1 से घटाकर P_2 पर लाने के लिए बेरोज़गारी दर को U_1 से U_2 तक बढ़ने देना पड़ेगा। दूसरे शब्दों में, समाज को बेरोज़गारी घटाने की कीमत उच्च मुद्रास्फीति दर के रूप में चुकानी पड़ती है।

पर दीर्घकालिक व्यवहार बहुत भिन्न होता है। मौद्रिक मज़दूरी स्थिर रहने पर कीमत स्तर बढ़ने का अर्थ होगा वास्तविक मज़दूरी दर, यानि मौद्रिक मज़दूरी तथा सामान्य कीमत स्तर के अनुपात में गिरावट। शीघ्र ही मज़दूर संघों को इस गिरावट की अनुभूति हो ही जाती है तथा वे मज़दूरी स्फीति के अनुपात में मज़दूरी बढ़ाने की माँग शुरू कर देते हैं। अब उत्पादन लागत बढ़ती है तथा उत्पादकों को उत्पादन ज़ारी रखना लाभप्रद नहीं रहता। अतः वे उत्पादन घटाएँगे, जिसके कारण श्रम की माँग व रोज़गार में घटेगा। मुद्रास्फीति दर तो अपने पुराने स्तर पर टिकी रहती है पर बेरोज़गारी दर बढ़ने लगती है। इस तरह से मुद्रास्फीति तथा बेरोज़गारी दरों के बीच लेनदेन का विचार मान्य नहीं रहता। किन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि फिलिप्स वक्र उन 96 वर्षों के अनुभव पर आधारित है जिस दौरान दो विश्वयुद्ध तथा प्रौद्योगिकी में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए।

दूसरी आलोचना इस प्रकार है। फिलिप्स वक्र बेरोज़गारी तथा मुद्रास्फीति की दर बढ़ाने में पूँजी की भूमिका को नज़रअंदाज कर देता है। पूँजीवाद में ज़्यादा से ज़्यादा लाभ कमाने की चाह उत्पादकों को अक्सर पूँजी सघन तकनीकों की ओर खींच ले जाती है। इस कारण से श्रम की आवश्यकता कम रह जाती है, अतः बेरोज़गारी बढ़ती है। इसी समय ये उत्पादक

लाभ बढ़ाने की दृष्टि से 'लागत–जमा–लाभ' की कीमत निर्धारण (mark up pricing) पद्धति को भी बहुत जोरों से अपनाते हैं। इससे स्फीतिकारी प्रवृत्ति जन्म लेती है। इस तरह से भी मुद्रास्फीति एवं बेरोज़गारी में लेनदेन की बात ठीक नहीं जँचती।

इस आलोचना में यह पूर्वधारणा की गई है कि अब प्रौद्योगिक परिवर्तन श्रम की उत्पादिता में तीव्र वृद्धि ला रहे होते हैं तो उसके साथ–साथ वस्तुओं और सेवाओं की समग्र माँग में कोई वृद्धि नहीं होती। पर बढ़ते हुए उपभोक्तावाद तथा विशाल उत्पादन के अनुभव तो इस पूर्वधारणा की पुष्टि नहीं करते।

बोध प्रश्न 3

1) मुद्रास्फीति के विभिन्न कारण बताइए। चित्रों के माध्यम से उनकी व्याख्या करें।

....

....

....

....

....

2) मुद्रास्फीतिजन्य मंदी का क्या अर्थ है?

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

3) अवस्फीति क्या होती है?

....

....

....

....

....

4) कोई एक ऐसा कारण बताइए जिससे फिलिप्स–वक्र मान्य नहीं रहता?

....

....

....

....

19.12 सारांश

इस इकाई में हमने सीखा कि कीमत से अभिप्राय वस्तुओं और सेवाओं के बदले में प्राप्त मुद्रा से है। कीमत स्तर एक समग्रवादी विचार है। कीमत स्तर में वृद्धि का अर्थ है कि रुपये की एक इकाई पहले से कम वस्तुएँ और सेवाएँ खरीद सकती है। यह कीमत स्तर

अनेक वस्तुओं और सेवाओं का सामूहिक कीमत स्तर है, इसीलिए इसे एक कीमत सूचकांक द्वारा दिखाना उचित रहता है। सूचकांक चरों के किसी समूह की दो (या अधिक) अवधियों के बीच तुलना करने का माध्यम होता है। कीमत सूचकांक कई प्रकार के होते हैं।

हमने यह भी जाना कि सामान्य कीमत स्तर में निरंतर होने वाली वृद्धि की प्रवृत्ति को ही मुद्रास्फीति कहते हैं। इसका निश्चित आय वर्ग एवं गरीब वर्ग पर गहरा दुष्प्रभाव पड़ता है। इससे अर्थव्यवस्था की संवृद्धि दर धीमी हो जाती है। मुद्रास्फीति की दर के अनुसार ही हम कहते हैं कि किसी देश में सामान्य मुद्रास्फीति चल रही है या फिर अति–मुद्रास्फीति।

मुद्रास्फीति का आरंभ माँग या पूर्ति दोनों ही पक्षों से हो सकता है। माँग–पक्ष में राजकीय व्यय की वृद्धि, करों में छूट तथा मुद्रा की आपूर्ति में वृद्धि आदि शामिल रहते हैं। पूर्ति–पक्षीय कारणों में कच्चे माल के दामों में वृद्धि, सामान्य उपभोग वस्तुओं की कीमतें बढ़ना तथा मज़दूरी व लाभ आदि का बढ़ना शामिल रहता है। हमने यह भी देखा है कि कितनी ही बार ये माँग एवं पूर्ति–पक्षीय कारक विश्व के अल्पविकसित देशों में मुद्रास्फीति की स्थिति को समझा नहीं पाते। उन देशों की अपनी विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए संरचनात्मक मुद्रास्फीति की अवधारणा का विकास हुआ है। मुद्रास्फीति विरोधी नीतियों के चयन से पूर्व मुद्रास्फीति के प्रारंभिक कारणों का सही निदान बहुत आवश्यक होता है। तभी अपेक्षित परिणाम प्राप्त हो सकते हैं।

हमने यह भी सीखा है कि कीमतों में निरंतर गिरावट की स्थिति ही अवस्फीति कहलाती है। इसमें आय तथा रोज़गार में भी लगातार कमी आती है। मुद्रास्फीतिजनित मंदी वह दशा है जबकि मुद्रास्फीति की दशा में उत्पादन या तो स्थिर रहे या फिर कम भी हो रहा हो।

अन्ततः हमने फिलिप्स वक्र का विश्लेषण किया है। यह बेरोज़गारी तथा मुद्रास्फीति दरों के बीच एक संबंध बताने का प्रयास करती है। यह देखा गया है कि कुछ दशकों को छोड़कर जिसमें वक्र में निहित संबंध ठीक पाए गए, यह वक्र लगभग निरर्थक ही रहा है। अल्प विकसित देशों में तो बेरोज़गारी एक ऐतिहासिक तथ्य है, जिसका मुद्रास्फीति से खास लेना–देना नहीं है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

19.13 शब्दावली

कीमत स्तर : यह समष्टि अवधारणा है और इसका संबंध वस्तुओं तथा सेवाओं के एक समूह की कीमत से है।

मुद्रास्फीति : सामान्य कीमत स्तर में लगातार वृद्धि या वृद्धि की प्रवृत्ति। इससे अभिप्राय उन सभी वस्तुओं की कीमतों से है जो सूचकांक में शामिल होती है। इसको किसी एक वस्तु या वस्तुओं के किसी विशेष वर्ग जैसे खाद्य–उत्पाद की कीमत में वृद्धि नहीं समझना चाहिए।

अवरुद्ध मुद्रास्फीति : कुछ वस्तुओं की कीमतों से मुद्रास्फीति का सही–सही पता नहीं चलता। इसका कारण कुछ वस्तुओं पर आर्थिक सहायता (subsidy) भी हो सकता है। सरकारें प्रायः कमज़ोर वर्गों की मुद्रास्फीति से रक्षा करने के लिए इस प्रकार के कदम उठाती हैं।

अति-मुद्रास्फीति : इसमें मुद्रास्फीति की वार्षिक दर में अभूतपूर्व वृद्धियाँ होती हैं। ऐसा उस समय होता है जब लोग विनिमय के माध्यम के रूप में मुद्रा में विश्वास खो बैठते हैं।

अवस्फीति : इस दशा में कीमतों में निरंतर गिरावट या गिरावट की

प्रवृत्ति देखी जाती है। सामान्यतः इसका काण समग्र माँग का समग्र पूर्ति से कम बने रहना होता है।

मुद्रास्फीतिजन्य मंदी	: वह स्थिति जब बढ़ती हुई मुद्रास्फीति की दशा में उत्पादन स्थिर रहता है या फिर घटता है। यह उन्हीं दशाओं में संभव होता है जब अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक अनम्यता (जैसे परिवतन, विद्युत आदि सुविधाओं का अभाव) हो।
उत्पादन पूर्व अवधि	: किसी परियोजना में पूँजी लगाने तथा उससे उत्पादन प्रारंभ होने के बीच का अंतराल।
मात्रानुपाती प्रणाली	: उत्पादित वस्तुओं की संख्या के आधार पर भुगतान।
पैट्रोलियम निर्यातक देशों का संगठन (OPEC)	: यह विश्व के प्रमुख तेल उत्पादक और निर्यातक देशों का संगठन है। इसमें इण्डोनेशिया, सऊदी अरब शामिल हैं।

19.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Macroeconomics, A. Bhaduri : *The Dynamics of Commodity Production*, 1986, ch.3

Monetary Economics, S.B. Gupta : *Institutions, Theory and Policy*, 1989, ch.4

Monetary Planning in India, S.B. Gupta : 1979, ch.3 and Appendices.

Macroeconomics Analysis, Shapiro Edward : Sixth Edition, ch. 21,22,23.

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

19.15 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

बोध प्रश्न 1

1) कीमत वह दर है जिस पर वस्तु और सेवाओं का मुद्रा से विनिमय होता है। किसी वस्तु की एक इकाई के बदले जितने रुपये दिए जाते हैं, वही उसकी कीमत कहलाती है। कीमत स्तर एक समष्टि अवधारणा है क्योंकि इसका संबंध वस्तुओं और सेवाओं के एक समूह से है। इसका संबंध किसी एक वस्तु की कीमत से नहीं बल्कि समूह में शामिल सभी वस्तुओं व सेवाओं की कीमतों से होता है। अतः जब भी हम कीमत स्तर की बात करते हैं तो वह चीज़ों के किसी समूह के संदर्भ में ही होती है।

2) एक सूचकांक किसी परस्पर संबंधित चरों के आँकड़ों के सामूहिक स्तर की दो या अधिक अवधियों में तुलना करता है। कीमत सूचकांक द्वारा हम वस्तुओं और सेवाओं के समूह के कीमत स्तर के परिवर्तनों की तुलना कर सकते हैं। सूचकांक समय के साथ जुड़ा है। किसी एक वर्ष को आधार मानकर उसका सूचकांक 100 मान लेते हैं। अन्य सभी वर्षों के सूचकांक 100 के अनुपात के रूप में ही व्यक्त किए जाते हैं।

बोध प्रश्न 2

1) मुद्रास्फीति के समाज के अलग–अलग वर्गों पर अलग–अलग प्रभाव पड़ते हैं। संगठित श्रमिक तथा सरकारी कर्मचारी किसी हद तक मुद्रास्फीति काल में अपने हितों का संरक्षण कर पाते हैं। व्यापारी वर्ग तो इससे फायदा ही उठाता है क्योंकि इस समय आवश्यक चीज़ों का अभाव–सा छाया रहता हैं जिनके कारण वे इनकी कीमतें बढ़ा देते हैं। पर गरीब एवं निश्चित

आय वर्ग बहुत हानि होती है एक तो मालिकों की तुलना में इनकी सौदा शक्ति बहुत कम होती है, दूसरे इनके पास कोई जमापूँजी नहीं होती जिससे ये अपना काम चला सकें।

2) मुद्रास्फीति दर की तीव्रता के आधार पर हम मुद्रास्फीति के तीन वर्गों में बाँट सकते हैं, सामान्य, द्रुत तथा अतिस्फीति। जब कीमतें निरंतर पर धीरे–धीरे बढ़ रही हों तो सामान्य मुद्रास्फीति की दशा होती है। यह आमतौर पर 10 प्रतिशत से कम ही रहती है। दूसरी ओर, अच्छी खासी तेजी से कीमत वृद्धि को द्रुत मुद्रास्फीति का नाम दिया जाता है। मुद्रास्फीति दर 20 से 40 प्रतिशत हो जाती है– पर कभी–कभी तो यह बढ़कर 200 प्रतिशत तक भी पहुँच जाती है। *अतिस्फीति* की दशा में तो कीमतें आकाश को ही छूने लगती हैं।

बोध प्रश्न 3

1) मुद्रास्फीति के कारणों को दो वर्गों में बाँटते हैं : माँग–पक्ष तथा पूर्ति–पक्ष। सरकारी व्यय तथा मुद्रा की आपूर्ति आदि वृद्धि को माँग–पक्ष में रखते हैं। फसल खराब हो जाना, किन्हीं आवश्यक वस्तुओं की लागत में अचानक वृद्धि आदि को पूर्ति–पक्ष में रखा जाता है।

अधिक विवरण के लिए वह खंड देखें जिसमें मुद्रास्फीति के कारणों की व्याख्या की गई है।

2) 1960 के दशक तक सभी यह मानते थे कि मुद्रास्फीति रोज़गार तथा उत्पादन स्तर में सुधार लाती है। पर अगले ही दशक में मुद्रास्फीति के साथ–साथ बेरोज़गारी में वृद्धि ने इस विश्वास को गहरी ठेस पहुँचाई। ऐसी परिस्थितियों को, जिसमें मुद्रास्फीति में वृद्धि के साथ–साथ उत्पादन स्थिर रहता है या फिर गिरने लगता है, मुद्रास्फीतिजन्य मंदी (Stagflation) की संज्ञा दी जाती है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इकाई 20 अंतरराष्ट्रीय अर्थशास्त्र की अवधारणाएँ

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य
20.1 प्रस्तावना
20.2 तुलनात्मक लाभ : व्यापार का आधार
    20.2.1 तुलनात्मक लागत-लाभ : व्यापार क्यों होता है?
    20.2.2 रिकार्डो का तुलनात्मक लागत सिद्धांत
20.3 व्यापार की शर्तें
    20.3.1 प्रत्युत माँग की अवधारणा और व्यापार की शर्तें
    20.3.2 व्यापार की शर्तों की किस्में
20.4 व्यापार से लाभ
    20.4.1 व्यापार से लाभों के निर्धारक तत्व
20.5 भुगतान शेष
    20.5.1 भुगतान शेष की संरचना
20.6 सारांश
20.7 शब्दावली
20.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
20.9 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा–संकेत

20.0 उद्देश्य

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- परम लाभ एवं तुलनात्मक लाभों के बीच अंतर कर सकेंगे;
- यह समझ सकेंगे कि तुलनात्मक लाभों के आधार पर अंतरराष्ट्रीय व्यापार कैसे होता है;
- रिकार्डो का अंतरराष्ट्रीय व्यापार प्रतिमान समझ सकेंगे;
- व्यापार से लाभों की व्याख्या कर सकेंगे;
- व्यापार की शर्तों के विभिन्न स्वरूपों में भेद कर सकेंगे; तथा
- भुगतान शेष का विश्लेषण कर पाएँगे।

20.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम अंतरराष्ट्रीय व्यापार के स्वरूप का अध्ययन करेंगे। साथ ही यह भी जानने का प्रयास करेंगे कि विभिन्न देश परस्पर व्यापार क्यों करते हैं। हम अपने अध्ययन का आरंभ इस प्रश्न की समीक्षा से करेंगे कि क्या अंतरराष्ट्रीय व्यापार आन्तरिक व्यापार से मूलभूत रूप में भिन्न होता है? इसके तुरन्त पश्चात् दो अन्य प्रश्नों की समीक्षा होगी : अंतरराष्ट्रीय व्यापार क्यों होता है? तथा इसका संचालन किस प्रकार होता है?

व्यापार से लाभों की व्याख्या के लिए हम दो सिद्धांतों का सहारा लेंगे। इसके बाद हम किसी देश के भुगतान शेष खाते की संरचना को समझकर भुगतान शेष के आधिक्य और घाटे का विश्लेषण करेंगे।

इस इकाई में हम अंतरराष्ट्रीय व्यापार विषयक अवधारणाओं की बहुत ही सरल व्याख्या

कर रहे हैं। हमारा ध्येय इन अवधारणाओं के सार–तत्त्व की सरल अभिव्यक्ति ही है। जटिल उपपत्तियों आदि से परे रहते हुए ही यह कार्य करने का प्रयास किया गया है।

20.2 तुलनात्मक लाभ : व्यापार का आधार

हमारी आवश्यकताएँ अपरिमित हैं किन्तु संसाधन सीमित हैं। हम अपनी सभी आवश्यकताएँ पूरी नहीं कर पाते। संसाधनों की सीमित मात्रा के कारण ही हम उत्पादन एवं उपभोग में उनका 'सबसे श्रेष्ठ' प्रयोग करने का प्रयास करते हैं। एक व्यक्ति अनेक कामों का संपादन कर सकता है– वह कई प्रकार की वस्तुएँ उत्पादित कर सकता है। किन्तु सभी कामों में उसकी प्रभावोत्पादकता एक जैसी नहीं होगी। कुछ कार्य वह बहुत ही अच्छी तरह कर लेगा, किन्तु कुछ ऐसे भी काम होंगे जिन्हें वह अपेक्षतया ठीक ढंग से नहीं कर पाएगा यह बात प्रायः सभी व्यक्तियों पर लागू होती है। इसी कारण से सभी व्यक्ति अपने लिए उन्हीं कार्यों का चयन करते हैं जिन्हें वह और कार्यों की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह से संपादित कर सकते हों। आर्थिक क्रिया–कलापों का यह विभाजन ही श्रम–विभाजन कहा जाता है। यह बात केवल व्यक्तियों ही नहीं वरन् क्षेत्रों एवं राष्ट्रों पर भी समान रूप से लागू होती है।

व्यापार चाहे देश के भीतर हो अथवा बाहर के देशों से हो, विनिमय कार्य ही होता है। हम एक चीज़ के बदले में दूसरी वस्तु प्राप्त करते हैं। व्यक्तियों की भाँति ही देश भी सभी वस्तुओं का स्वयं उत्पादन नहीं कर पाते। एक संवृत अर्थव्यवस्था (ऐसी अर्थव्यवस्था जिसका शेष विश्व से कोई लेन–देन नहीं हो) ही अपनी ज़रूरतों को केवल आंतरिक उत्पादन से पूरा करने का प्रयास करती है। वहीं पर सभी लेन–देन आंतरिक रूप से पूरे होते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

जिस प्रकार की संवृत अर्थव्यवस्था की बात हमने अभी–अभी उठाई है उसमें प्रायः अधिकतम उत्पादन कर पाना या संसाधनों का अभीष्टतम प्रयोग सुनिश्चित कर पाना संभव नहीं होता। आपके विश्व में तो इस प्रकार अलग–थलग रहने वाली संवृत अर्थव्यवस्था की कल्पना कर पाना भी कठिन प्रतीत होता है। आज परिवहन और संचार व्यवस्थाओं के विकास ने स्थान और समय के अंतर को अर्थहीन–सा बना दिया है। परिवहन इतनी तेज़ी से हो रहा है कि सुबह भारत से नाश्ता करके चला व्यक्ति दोपहर का भोजन फ्रांस में तो शाम की चाय तक दुनिया के किसी अन्य भाग में पहुँच सकता है। किन्तु पुराने ज़माने में तो इतने फासलों को तय करने में महीनों लग जाते थे।

अंतरराष्ट्रीय व्यापार में हमें दो प्रश्नों पर विशेष रूप से विचार करना होता है : अंतरराष्ट्रीय व्यापार क्यों होता है? तथा यह व्यापार किस प्रकार होता है? आइए इन पर एक–एक करके विचार करें।

20.2.1 तुलनात्मक लाग्त-लाभ : व्यापार क्यों होता है?

लोग व्यापार क्यों करते हैं? यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। इसका उत्तर बहुत ही सरल है। परस्पर वस्तुओं का विनिमय करना मानव स्वभाव का अंग ही है। पर यह विनिमय निरर्थक नहीं होता। इसका आधार यही है कि कोई भी व्यक्ति सभी आवश्यक वस्तुओं का स्वयं निर्माण नहीं कर सकता। यदि वह किसी तरह उत्पादन कर भी ले तो वह दक्षतापूर्ण एवं न्यूनतम संभव लागत पर तो कभी नहीं हो पाता। यही बात विभिन्न देशों पर भी लागू होती है। यदि किसी देश में खनिजों के प्रचुर भंडार हों, किन्तु कृषि योग्य भूमि का अभाव हो तो अन्न आदि का आयात करना उसकी एक अनिवार्य विवशता हो जाएगी। दूसरे शब्दों में, व्यक्तियों की भाँति देशों की साधन सम्पन्नता में भी अन्तर होते हैं। इसी कारण से कुछ देश किन्हीं वस्तुओं का उत्पादन कर पाने में अन्य देशों की अपेक्षा अधिक कुशल होते हैं। यह संभव है कि एक देश कुछ अन्य देशों की अपेक्षा सभी वस्तुओं

का उत्पाद अधिक कुशलतापूर्वक कर ले, किन्तु यह कौशल स्तर सभी वस्तुओं के उत्पादन में एक जैसा श्रेष्ठतर नहीं होता। किन्हीं वस्तुओं के उत्पादन में यह श्रेष्ठतम होगा तो किन्हीं में श्रेष्ठतर, पर अन्यों में इसका स्तर बस सामान्य ही होगा। सभी उद्योगों में श्रेष्ठता स्तर समान नहीं हो पाता। साधनों की सीमितता (अभाव) तथा समय के दबाव के कारण भी यह देश सभी वस्तुओं का उत्पादन स्वयं नहीं कर पाएगा। अतः मजबूरन यह उन्हीं वस्तुओं के निर्माण पर अपने संसाधनों को केन्द्रित करेगा जिनमें इसका कुशलता स्तर श्रेष्ठतम हो। अतः हम कह सकते हैं कि संसाधन सम्पन्नता के कारण उत्पादन लागतों के स्तर में सापेक्ष अन्तर आ जाते हैं। इन्हीं अन्तरों के कारण व्यापार संभव हो पाता है।

आइए, एक उदाहरण द्वारा इस बात को और स्पष्ट करें। दो देश हैं और वे केवल दो ही चीज़ों का उत्पादन करते हैं (वैसे देशों एवं वस्तुओं की संख्याएँ विशाल होती हैं, पर उत्पादन में विशिष्टता तो केवल दक्षता अथवा न्यून उत्पादन लागत पर ही आधारित रहती है)। उन देशों के नाम हम A तथा B मान लेते हैं और वस्तुओं का नामकरण X तथा Y कर देते हैं। इन वस्तुओं के उत्पादन में श्रम एवं पूँजी की कुछ इकाइयों का प्रयोग होता है।

इन देशों में दी हुई श्रम एवं पूँजी की मात्राओं द्वारा संभव X तथा Y के उत्पादन हम निम्न तालिका में दर्ज कर रहे हैं;

देश	वस्तुएँ	
	X	Y
A	20	10
B	10	20

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

निश्चित श्रम एवं पूँजी का प्रयोग कर देश A 20X या 10Y का उत्पादन कर सकता है। पर देश B में 10X तथा 20Y का उत्पादन संभव है। स्पष्टतः इस उदाहरण के देश A में X तथा देश B में Y का उत्पादन अधिक दक्षता से हो रहा है। X तथा Y के लागत अनुपात A में 1:2 हैं तो B में यही अनुपात 2:1 हो जाता है। इस दशा में यदि देश A में केवल X तथा B में केवल Y का ही उत्पादन किया जाए तो दोनों को ही लाभ रहेगा। X के उत्पादन में A को तथा Y के उत्पादन में B को परमधाम प्राप्त है। परमधाम का यह सिद्धांत एडम स्मिथ की देन है। जो श्रम को ही मूल्यमान का आधार मानते थे। जिनके अनुसार श्रम ही एकमात्र उत्पादक साधन होता है। उनका विचार था कि परम लोगों के यही अन्तर ही अन्तरराष्ट्रीय व्यापार का आधार बनते हैं।

यह लागतों में परम् लाम का विचार इस बात पर आधारित है कि विभिन्न देशों में वस्तुओं के लागत अनुपात अलग–अलग होते हैं, पर प्रत्येक देश एक वस्तु के उत्पादन में निश्चित रूप से अधिक कुशल या बेहतर अवश्य है। यह विचार किसी सीमा तक अविश्वसनीय लगता है। अनेक देशों के समूह में कोई देश सापेक्ष रूप से कम या अधिक दक्ष हो सकता है, किन्तु किसी परम् रूप से बेहतर होने की बात पर सहज ही भरोसा नहीं हो पाता। बेहतरी का विचार ही 'सापेक्ष' है। इसीलिए लागतों के सापेक्ष अन्तरों पर विचार करना अधिक सार्थक रहेगा। डेविड रिकार्डो ने अन्तरराष्ट्रीय व्यापार की व्याख्या का आधार लागतों के तुलनात्मक (सापेक्ष) अन्तरों को ही बनाया था। इसीलिए इसे अन्तरराष्ट्रीय व्यापार का तुलनात्मक लागत सिद्धांत भी कहते हैं। हम इस विचार पर गहनतापूर्वक विचार करने से पूर्व लागतों में अन्तर के एक,अन्य स्वरूप का उदाहरण लेकर कुछ चर्चा कर रहे हैं। पहले उदाहरण ही की भाँति देशों के नाम A तथा B और वस्तुओं के नाम X तथा Y हैं :

देश	वस्तुएँ	
	X	Y
A	20	10
B	10	5

इस उदाहरण में देश A को दोनों ही वस्तुओं के उत्पादन में परम् लाभ प्राप्त हैं। वह उतनी ही श्रम एवं पूँजी को प्रयोग कर क्रमशः 20X तथा 10Y बना सकता है। स्पष्टतः देश अधिक कुशल हैं। यही नहीं, यदि हम उत्पादन में वस्तुओं के अनुपात पर गौर करें तो दोनों ही देशों में यह भी 2X : 14 अथवा 2 : 1 ही है। दोनों ही देशों में 2 इकाई X का मान 14 बनता है। अतः इनके बीच तो व्यापार संभव नहीं होना चाहिए। यद्यपि देश A परम् रूप से दक्ष तथा B परम् रूप से अकुशल है। फिर भी व्यापार से किसी को भी कोई लाभ नहीं होगा। क्योंकि दोनों देशों में लागत अनुपात एक समान है। किन्तु, यदि दोनों उद्योगों में बड़े पैमाने पर उत्पादन की मितव्ययताएँ उपलब्ध हों तो निश्चित रूप से विशिष्टीकरण और व्यापार से दोनों ही देश लाभान्वित हो पाएँगे। पर, यह कह पाना कठिन ही होगा कि कौन–सा देश किस वस्तु का उत्पादन करने में विशिष्टीकरण प्राप्त करे।

20.2.2 रिकार्डो का तुलनात्मक लागत सिद्धांत

हम रिकार्डो के तुलनात्मक लागत सिद्धांत की व्याख्या एक उदाहरण के माध्यम से करेंगे। हमारे इस उदाहरण में भी देश और दो ही वस्तुएँ रहेंगी। इन देशों में एक इकाई X और इकाई Y के उत्पादन के लिए आवश्यक श्रम की इकाइयाँ (घंटों में) हम निम्न तालिका में दर्शा रहे हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

देश	प्रति इकाई वस्तुओं के लिए आवश्यक श्रमिक घंटे	
	X	Y
A	120	100
B	80	90

स्पष्ट है कि देश A में एक X के उत्पादन के लिए 120 घंटे तथा एक Y के लिए 100 घंटे के श्रम आदान की आवश्यकता होगी। देश B में इन्हीं कार्यों में क्रमशः 80 तथा 90 घंटों की मेहनत से काम चल जाता है। देश A में निश्चित रूप से X का उत्पादन सापेक्षतया महँगा रहता है। एक इकाई X की लागत 120/100Y बनती है। दूसरी ओर देश B को दोनों ही वस्तुओं के उत्पादन में परम् लाभ प्राप्त हो रहे हैं। फिर भी वहाँ एक इकाई X की लागत 80/90Y बनती है। अतः देश–A की तुलना में देश–B में X की उत्पादन लागत (Y की इकाइयों के रूप में) कम है। इसी प्रकार यदि Y की उत्पादन लागत का X की इकाइयों के रूप में आकलन करें तो देश–A में यह 100/120X होगी जबकि देश–B में 90/80Y>1Y बनती है। अतः स्पष्ट है कि यद्यपि देश–B दोनों ही उद्योगों में A की अपेक्षा अधिक दक्ष प्रतीत होता है। फिर भी सापेक्ष लागत का आकलन में देश–A Y-वस्तु के निर्माण में B की अपेक्षा अधिक कौशल सम्पन्न सिद्ध होता है। अतः इन दोनों देशों में विशिष्टीकरण की दिशा स्पष्ट हो जाती है : देश–B X के उत्पादन में अधिक सिद्धहस्त है तो देश A में Y का उत्पादन सापेक्षतया कम खर्चीला सिद्ध होता है। अतः रिकार्डो का आग्रह है कि देश–A को अपने संसाधन Y वस्तु के उत्पादन में लगाने चाहिए। B को केवल X उद्योग पर ही ध्यान देना चाहिए। स्पष्ट है कि देश–A में 1Y की अवसर लागत 100/120 = 10/12X है और B में यही अवसर लागत 90/80 = 9/8X है। 10/12 < 9/8 का अर्थ होगा

कि यह अवसर लागत देश–A में कम है। उसे Y का उत्पादन करना ही चाहिए। दूसरी ओर X उद्योग में स्थिति एकदम विपरीत रहनी है। देश–A में इकाई X की अवसर लागत 120/100Y = 12/8Y आकलित होती है जो कि देश B की अवसर लागत 80/90Y = 8/9Y से अधिक है। अतः देश B का X के उत्पादन पर संसाधनों को लगाना ही श्रेयस्कर होगा।

उपरोक्त आकलन से स्पष्ट है कि देश A में आंतरिक रूप से X का मान 1.24 है तथा B में यही मान 8/9Y अर्थात् 0.89Y बनता है। यदि 'A' X का आयात 1.2Y से कम दाम पर कर सके तो उसे लाभ ही रहेगा। इसी प्रकार यदि B को प्रति इकाई X के बदले 0.89Y से अधिक 'दाम' मिल सके तो यह देश भी फायदे में रहेगा। ऐसे व्यापार से दोनों ही भागीदार लाभान्वित होंगे।

रिकार्डो ने दोनों वस्तुओं के बीच की वास्तविक विनिमय पर, जिसपर व्यापार होगा, के विषय में कुछ भी नहीं बताया था। वे तो मात्र यही सुझा रहे थे कि व्यापार क्यों होगा। वास्तविक विनिमय दर तो उन दोनों देशों में वस्तुओं की सम्मिलित माँग पर निर्भर करेगी। यह बात हमें जे.एस.मिल ने समझाई थी। उन्होंने प्रत्युत माँग का विचार प्रतिपादित किया था। वस्तुतः हमारे दूसरे प्रश्न—कि व्यापार किस प्रकार होता है—की व्याख्या के लिए हम जे.एस.मिल के ही आभारी हैं। ये दोनों अवधारणाएँ मिलकर अन्तरराष्ट्रीय व्यापार के प्रतिष्ठित सिद्धांत की रचना करती हैं।

विश्लेषण को आगे बढ़ाने से पूर्व रिकार्डो की मान्यताओं पर ध्यान देना आवश्यक है। मान्यताएँ किसी भी अवधारणा का अभिन्न अंग होती हैं। ये विश्लेषण और सिद्धांत की रचना में बहुत सहायक होती हैं। यदि किसी मान्यता का निष्कर्षों के साथ टकराव होने लगे तो फिर हमें मान्यताओं के स्वरूप की पुनः समीक्षा करनी पड़ती है। रिकार्डो की मान्यताओं को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। पहली श्रेणी 'सहायक' मान्यताओं की है। इसमें हम इन मान्यताओं को शामिल करते हैं: (1) दो देश, (2) दो वस्तुएँ, (3) श्रम लागत (मौद्रिक लागत नहीं), (4) परिवहन लागतों की अनुपस्थिति, (5) निर्बंध व्यापार, (6) स्वर्णमान पर आधारित अंतरराष्ट्रीय लेन–देन व्यवस्था तथा (7) दोनों वस्तुओं के उत्पादन तंत्र में पूर्ण प्रतियोगिता का होना। दो वस्तुओं एवं देशों की मान्यताएँ तो केवल विश्लेषण की सुविधा के लिए ही हैं। हम देशों और वस्तुओं की संख्या को सहज ही बढ़ा सकते हैं। व्यापार तो बस लागतों के तुलनात्मक अन्तरों पर ही निर्भर रहेगा। आइए तीन देशों व तीन वस्तुओं के उदाहरण पर विचार करें :

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

देश	वस्तुएँ		
	X	Y	Z
A	10	11	12
B	9	11	10
C	11	10	9

तालिका में दिए आँकड़े निश्चित श्रम के प्रयोग से विभिन्न वस्तुओं की उत्पादित इकाइयाँ दर्शा रहे हैं। इस अवस्था में भी व्यापार तो लागतों के तुलनात्मक अंतरों पर ही निर्भर रहेगा। देश A सबसे अधिक दक्ष के उत्पादन में है। इसी प्रकार C की सर्वश्रेष्ठता X वस्तु में है। A तथा B दोनों ही Y के उत्पादन में समकक्ष रहते हैं। वस्तुओं और देशों की संख्या चाहे जो भी हो, व्यापार तो वही रहता है।

अगला कदम श्रम लागत को मौद्रिक लागतों में परिवर्तित करना है। हम व्यापार में भागीदार देशों की मौद्रिक इकाइयों में उनके उत्पादन की लागत अभिव्यक्त कर सकते हैं। नियत

श्रम इकाई द्वारा उत्पादित वस्तु इकाइयों की जगह हम प्रति उत्पादित इकाई मौद्रिक लागत का आकलन कर सकते हैं। जिस देश में उत्पादित इकाइयों की संख्या अधिकतम होगी वहाँ मौद्रिक प्रति इकाई लागत न्यूनतम रहेगी। इसके विपरीत नियत श्रम द्वारा अपेक्षाकृत कम इकाइयों का उत्पादन करने वाले देश में प्रति इकाई मौद्रिक उत्पादन लागत अधिक होगी। यह परिवर्तन किसी भी प्रकार से हमारे तुलनात्मक लागत अन्तर सिद्धांत को झुठला नहीं सकता। मौद्रिक लागतों के आकलन के बाद भी व्यापार की शर्तें या विनिमय दरें तो अपरिवर्तित ही रहेंगी। परिवहन लागतों पर भी यही बात लागू होती है। इनके मौद्रिक मान को उत्पादन लागतों में सहज ही जोड़ा जा सकता है। रिकार्डो के मतानुसार व्यापार का आधार तो लागतों में सापेक्ष अन्तर ही रहता है।

यदि स्वर्ण मान की मान्यता को शिथिल कर दिया जाए, तो भी सिद्धांत का मूल स्वरूप अप्रभावित ही रहता है। कागज़ी मुद्रा के व्यवहार से भी व्यापार का आधार लागतों का अन्तर ही बना रहता है।

हाँ, निर्बंध व्यापार की मान्यता आवश्यक है। यदि ये देश सीमाशुल्क और परिमाणात्मक प्रतिबंधों आदि की नीतियों का सहारा लेने लगें तो फिर स्थिति सामान्य नहीं रहेगी। व्यापार में कई प्रकार की विकृतियाँ आ जाएँगी।

रिकार्डो की केवल श्रम लागत की मान्यता का कई अर्थशास्त्रियों ने कड़ा विरोध किया है। इनमें ओटलिन का नाम प्रमुख है। ओटलिन ने अपनी रचना 'अंतरक्षेत्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय व्यापार' के परिशिष्ट में तुलनात्मक लागत सिद्धांत की आलोचना की है। उनका विचार है कि केवल श्रम लागत का मूल्यांकन वस्तु की सही लागत का पूरा आकलन नहीं कर पाता। आज के युग में तो प्रायः सभी इस विचार से सहमत होंगे। अब तो वस्तु की प्रकृति के अनुसार उसकी उत्पादन लागत में श्रम का अंश 30% से 60% तक कुछ भी हो सकता है। पूँजी का महत्त्व भी कम नहीं रह गया है। जैसे ही हम पूँजी की उपादेयता स्वीकार करते हैं, ब्याज की दर स्वमेव महत्त्वपूर्ण प्रतीत होने लगेगी।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

यदि पूँजी लागतों का कुल उत्पादन लागत पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव हो तो फिर ब्याज दर के उतार–चढ़ावों का तुलनात्मक लागतों की गणना पर बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ सकता है। आज के युग में तो टैक्नॉलोजी भी बहुत महत्त्वपूर्ण हो गई है। केवल श्रम की लागत को उत्पादन की समग्र लागत का पर्याप्त माप नहीं माना जा सकता। केवल श्रम ही सभी लागतों का निर्धारक नहीं रह गया है। फिर, श्रम स्वयं भी एक समरूप साधन नहीं है। श्रम के अनेक प्रकार हो सकते हैं, जैसे कि अप्रशिक्षित अकुशल श्रम, कुशल श्रम तथा प्रशिक्षित और तकनीकी दृष्टि से सम्पन्न श्रम आदि। इसके प्रतिफल या परिश्रमिक स्तरों में भी पर्याप्त अन्तर होते ही हैं। अतः यदि केवल श्रम लागत को ही आधार मान लिया जाए तो भी लागतों के तुलनात्मक अन्तरों का निर्धारण इतना सरल नहीं रहता।

रिकार्डो की मान्यताओं के द्वितीय वर्ग में ये हैं :

1) दोनों देशों का आकार समान प्रायः है;

2) इनके उपभोग स्वरूप भी एक जैसे ही है; तथा

3) विशिष्टीकरण सदैव संपूर्ण होगा।

ये मान्यताएँ वास्तव में बहुत ही कड़ी सिद्ध होती हैं। संभवतः पूर्ण विशिष्टीकरण पर अव्यक्त आग्रह के कारण ही इस वर्ग की शेष दो मान्यताओं की रचना हुई होगी। किन्तु इनका सम्मिलित प्रभाव उन देशों के बीच व्यापार की मनाही कर देता है जिनके आकार एवं उपभोग की रचना में भारी अन्तर हो।

हैक्शर और ओटलिन विभिन्न देशों की व्यापार पद्धतियों के अन्तरों की समीक्षा कर रहे थे। उन्होंने व्यापार की व्याख्या में श्रम के अतिरिक्त अन्य कारकों को भी सम्मिलित कर लिया। यही नहीं, देश की समग्र साधन सम्पन्नता को विशिष्टीकरण के साथ जोड़ने का उनका प्रयास बहुत ही महत्त्वपूर्ण रहा है। इनके प्रतिमान में पूर्ण विशिष्टीकरण पर आग्रह भी नहीं है। इस प्रकार से रिकार्डो के प्रतिमान की अनेक त्रुटियों का निराकरण सहज ही हो जाता है। इसकी मुख्य विशेषताएँ यह हैं : (1) व्यापार का आधार केवल श्रम लागतों के अन्तर तक सीमित नहीं रह जाता; (2) व्यापार में भागीदार देशों द्वारा प्रयुक्त संसाधनों के भंडार उनकी विशिष्टीकरण की दिशाओं का निर्धारण करते हैं; (3) देशों के आकार समान होना आवश्यक नहीं; (4) उनके उपभोग स्वरूपों मे भी समानता आवश्यक नहीं रहती तथा अन्त में; (5) व्यापार के कारण पूर्ण विशिष्टीकरण की प्राप्ति अनिवार्य नहीं रहती।

इस अवधारणा की मान्यताएँ इस प्रकार हैं : विभिन्न देशों की संसाधन सम्पन्नता में पर्याप्त अन्तर होते हैं। यद्यपि सभी को सभी प्रकार की तकनीकें सुलभ होती हैं, पर फिर भी, प्रत्येक देश उत्पादन की उन तकनीकों का वरण करता है जिनमें उनके पास प्रचुरता में उपलब्ध संसाधनों का अधिक प्रयोग होता हो। यह साधन प्रचुरता साधन कीमतों में भी झलकनी चाहिए। इस प्रकार, एक श्रम बहुल देश में श्रम अपेक्षाकृत सस्ता होगा और इसके उत्पादन तंत्र में श्रम सघन तकनीकों का प्रयोग होगा। इसी प्रकार पूँजी बहुल देश में पूँजी सस्ती रहेगी तथा पूँजी प्रधान तकनीकों का ही हर उद्योग में व्यवहार होगा। यही नहीं, श्रम प्रधान देश को अपने सापेक्ष रूप से श्रम सघन उद्योग का विस्तार अधिक सहज होगा। इस प्रकार से साधन कीमतों में परिलच्छित होने वाली साधन प्रचुरता ही विशिष्टीकरण के स्वरूप और दिशा की निर्धारक बन जाती है।

DIKSHANT IAS

इन सब बातों पर रिकार्डो ने कोई ध्यान नहीं दिया था। पर इसका यह अभिप्राय कभी नहीं होगा कि उसका सिद्धांत गलत था। इसका अर्थ केवल यही है कि रिकार्डो के सिद्धांत में संपूर्णता नहीं थी एवं वह अधिक परिष्कृत भी नहीं था। व्यापार के कारण अब साधन प्रचुरता पर आश्रित लागतों के अन्तर हो गए हैं। रिकार्डो की लागत मापन की इकाई आज के हिसाब से त्रुटिपूर्ण प्रतीत होती है। किन्तु रिकार्डो के जमाने में तो श्रम लागत के सिद्धांत को ही 'सर्वमान्य' समझा जाता था। वस्तुतः लागत मापन का एकमात्र मानदण्ड यही था। अतः रिकार्डो अपने युग के प्रचलित मानदण्डों का प्रयोग कर सिद्धांत रचना करने के पूरे अधिकारी थे। आज विश्लेषण के अस्त्र और परिष्कृत हो गए हैं। अतः अब रिकार्डो द्वारा गढ़ी गई संरचना के अधिक परिमार्जित एवं उन्नत स्वरूपों और प्रतिमानों की रचना (नए अस्त्रों के आधार पर) की जा सकती है।

Call us @7428092240

बोध प्रश्न 1

1) क्या आंतरिक व्यापार वैदेशिक व्यापार से मूलरूप से भिन्न है? (एक वाक्य में)

....

....

....

....

....

2) उदाहरण सहित बताएँ कि लागत में परम अन्तर क्या होते हैं?

....

....

....

3) क्या लागतों में समान अन्तर होने पर भी व्यापार होगा?

....

....

....

....

....

4) तुलनात्मक लागत सिद्धांत के लाभ बताइए।

....

....

....

....

....

5) तुलनात्मक लागत सिद्धांत की कोई एक महत्त्वपूर्ण त्रुटि बताइए।

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

6) संसाधन सम्पन्नता के अन्तरों के विशिष्टीकरण पर प्रभावों का विश्लेषण करें।

....

....

....

....

....

20.3 व्यापार की शर्तें

अभी तक हम व्यापार के आधार अथवा कारण की चर्चा कर रहे थे। इस चर्चा में व्यापार कैसे किया जाता है? जैसे प्रश्न अनुत्तरित ही रहे हैं। व्यापार हो पाना इस बात पर निर्भर होगा कि अपने उत्पादन की कुछ इकाइयों के बदले एक देश दूसरे देश के उत्पादन की कितनी इकाइयाँ स्वीकार करने को तैयार हैं। वास्तव में दोनों देशों की इस प्रकार की तत्परता विषयक जानकारी जरूरी रहती है।

व्यापार की इन शर्तों का निर्धारण अपने आप में बहुत महत्त्वपूर्ण है। तुलनात्मक लागतें यह तो निर्धारित कर ही देती हैं कि व्यापार की शर्तों की उच्च एवं निम्न सीमाएँ क्या होंगी। वास्तविक बिन्दु का (इन सीमाओं के बीच) निर्धारण दोनों देशों में माँग के स्तर पर निर्भर करेगा। जे.एस.मिल की प्रत्युत माँग की अवधारणा दो देशों के बीच व्यापार की शर्तों के निर्धारण की व्याख्या करती है।

20.3.1 प्रत्युत माँग की अवधारणा और व्यापार की शर्तें

जे.एस.मिल की प्रत्युत माँग की अवधारणा "व्यापार कैसे होता है" की व्याख्या करती है। समस्या सीधी सी है। तुलनात्मक लागत अन्तर यह तो बता ही देते हैं कि किन दामों तक आयात–निर्यात व्यवहारिक हो सकते हैं। यह पूछा जा सकता है कि कोई देश कितना आयात व कितना निर्यात करने को तैयार होगा। रिकार्डो का सिद्धांत इस प्रश्न पर चुप्पी साधे रहता था।

जे.एस.मिल ने इस प्रश्न का उत्तर देने का पहला प्रयास किया था। जब तक हमें व्यापार की शर्तों का ज्ञान नहीं हो हम आयात–निर्यात की मात्राओं का फैसला नहीं कर पाते। मिल ने इस महत्त्वपूर्ण निर्णय तक पहुँचने के लिए रिकार्डो द्वारा निर्मित आधार का ही प्रयोग किया था।

लागतों के अन्तर पूर्व ज्ञात होने के बाद तो व्यापार की शर्त का निराकरण दोनों देशों में वस्तुओं की माँग के स्तर पर ही निर्भर कर सकता है। इस प्रकार से एक–दूसरे के उत्पादन को अपने उत्पादन के बदले खरीदने की तत्परता व्यापार की शर्त की निर्धारक हो जाती है। इसी प्रकार की माँग को मिल ने 'प्रत्युत माँग' के विचार का प्रयोग कर मिल ने व्यापार की प्रक्रिया की व्याख्या की थी।

आइए एक बार फिर दो देशों A, B व दो वस्तुओं के उदाहरण पर फिर से विचार करें :

देश	वस्तुएँ	
	X	Y
A	120	100
B	90	80

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उपलब्ध संसाधनों द्वारा देश–A 120X या 100Y का उत्पादन कर सकता है। इसी प्रकार देश–B में 90X या 80Y का उत्पादन संभव है। देश–B, अपने आप में X के उत्पादन में भले ही Y की अपेक्षा अधिक कुशल है, पर A की तुलना में यह दोनों वस्तुओं के उत्पादन में ही पिछड़ जाता है। तुलनात्मक लागतों का नियम फिर भी हमें यही सूझता है कि देश–A में X तथा B में Y वस्तु का उत्पादन करना अधिक लाभप्रद होगा।

एक बार फिर हम इन देशों के लागत अनुपातों पर विचार कर रहे हैं। देश A 120X के उत्पादन की लागत 100Y चुकाता है। अतः यह X और Y का अनुपात 12 :10 होगा। देश B में यही अनुपात 9 : 8 हो जाता है। अतः यदि देश 10Y प्राप्त करने के लिए 12 से कम X का निर्यात करके काम चला ले तो इसे लाभ रहेगा। इसी प्रकार यदि देश B 8Y के निर्यात के बदले 9 से अधिक X पा सके तो इसे प्रसन्नता ही होगी। अतः यदि व्यापार की शर्त इन सीमाओं के बीच रहें तो दोनों देशों का लाभ होगा।

देश A 100Y के बदले 120X तक देने को तैयार है। देश B 80X के लिए 90X अर्थात् 100Y के बदले 112.50X स्वीकार करने को तैयार है। अतः यदि इन दोनों के बीच 100Y के बदले 112.50 से अधिक और 120 से कम X पर यदि सौदा हो जाए तो दोनों ही फायदे में रहेंगे।

यदि व्यापार शर्त A की आन्तरिक परावर्तन दर के समान हो तो इसे व्यापार में कोई उत्साह नहीं रहता। क्योंकि व्यापार से संभावित सारा ही लाभ B के हिस्से चला जाता है।

प्रत्युत माँग के इस विचार की गई अर्थशास्त्रियों ने आलोचना भी की है। उनका आग्रह है कि केवल माँग पक्ष ही पर्याप्त नहीं होता। हमें पूर्ति अथवा लागत पक्ष पर भी विचार

करना चाहिए। दूसरे शब्दों में, यहाँ हमारा वास्ता दो माँग एवं दो पूर्ति वक्रों से एक साथ पड़ रहा है। मार्शल का विश्लेषण यहाँ बहुत सहायक रहता है। मार्शल ने प्रत्युत माँग के विचार को प्रत्युत माँग वक्रों की रचना के लिए प्रयोग कर विश्लेषण को और आगे बढ़ाया। ये प्रत्युत माँग वक्र यह दर्शाती हैं कि दूसरे देश के उत्पादन की निश्चित मात्राओं के लिए कोई देश अपने उत्पादन की कितनी इकाइयाँ देने को प्रस्तुत हो सकता है। जिस बिन्दु पर दोनों देशों के प्रत्युत माँग वक्र काटते हैं; उसी को संतुलन व्यापार शर्त का निर्धारक माना जाता है। उसी प्रतिच्छेद बिन्दु से यह ज्ञात होता है कि ये देश कितने X का कितनी Y के बदले लेन–देन करेंगे।

20.3.2 व्यापार की शर्तों की किस्में

व्यापार से लाभ की चर्चा की ओर अग्रसर होने से व्यापार की शर्तों के कई भेदों के विषय में बातचीत करना उपयोगी रहेगा। सामान्य भाषा मे व्यापार की शर्त दो देशों के उत्पादों की विनिमय दर ही है। यदि ये देश 5X के बदले 10Y के विनिमय पर सहमत हो तो शर्त होगी 5X : 10Y अथवा X : 2Y। अतः यह तो स्पष्ट ही है कि व्यापार शर्त से हमें व्यापार से लाभ के संकेत भी मिल जाते हैं। उदाहरण के रूप में यदि निर्यात दामों में वृद्धि हो तथा आयात दाम कम या स्थिर हो तो निश्चित रूप से दूसरे देश की तुलना में यह देश फायदे में रहेगा। यह कम निर्यात कर अधिक आयात पाने में सफल रहता है। यदि निर्यात मूल्य स्थिर रहे या कम हो जाए तथा आयात महँगा हो तो फिर इस देश पर पड़े प्रभाव पहली स्थिति से एकदम विपरीत हो जाएँगे। अतः व्यापार शर्तों के भेद–भेदान्तरों की चर्चा करना उचित ही जान पड़ता है।

1) **वस्तु व्यापार शर्तें**

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इसी को कई बार निवल वस्तु विनिमय व्यापार शर्तों का नाम भी दिया जाता है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, शर्तों का निर्धारण वस्तुओं के विनिमय पर निर्भर रहता है। दो देशों के बीच वस्तुओं का आदान–प्रदान भी वस्तु विनिमय ही है। यह किसी देश की निर्यात एवं आयात कीमतों का अनुपात होता है। किसी भी समय पर, वस्तु व्यापार शर्तों का मान होगा :

$$T_C = \frac{P_X}{P_M}$$

यहाँ T_C से वस्तु व्यापार शर्त, P_X से निर्यात दामों तथा P_M से आयात दामों को दर्शाया गया है। समय गुजरने के साथ–साथ व्यापार शर्तों के उतार–चढ़ाव की व्याख्या और अधिक स्पष्ट हो जाती है।

$$TC_o = \frac{PX_o}{PM_o}$$

यदि आरंभिक वर्ष के लिए 0 तथा चालू वर्ष के लिए 1 उपसर्ग का प्रयोग हो तो

$$TC_1 = \frac{PX_1 \;\; PX_0}{PM_0}$$

तथा

2) **सकल वस्तु विनिमय व्यापार शर्त**

यह अवधारणा पूर्व उल्लिखित विचार का ही एक परिवर्तित स्वरूप है। यह देश के सभी

आयातों एवं निर्यातों के दामों पर आधारित होती है। केवल एक वस्तु के आयात और निर्यात पर नहीं।

$$T_g = \frac{Q_M}{Q_X}$$

अतः इसका मान कुछ आयात एवं निर्यात के परिमाण पर निर्भर होगा।

यहाँ Q_M तथा Q_X से हम आयातित मात्रा व निर्यातित मात्रा दिखा रहे हैं।

इस अनुपात का अधिक होना देश के पक्ष में तथा कम होना विपरीत माना जाता है। हम दो अवधियों में आए परिवर्तनों का माप करने के लिए पहले की भाँति दो बार आकलन कर सकते हैं :

आधार वर्ष : $T_{G0} = Q_{M0}/Q_{X0}$

चालू वर्ष : $T_{G1} = Q_{M1}/Q_{M1}$

3) आय (आधारित) व्यापार शर्त

जी.एस. डॉरेन्स ने आय व्यापार शर्तों का विचार प्रतिपादित किया है। यह वस्तु तथा वस्तु विनिमय शर्तों की अवधारणाओं का और परिष्कृत रूप है। इसके आकलन में हम निर्यात मात्र के साथ-साथ निर्यात कीमतों का सूचक भी शामिल कर लेते हैं पर आयात के संदर्भ में केवल आयात कीमत सूचक को ही पर्याप्त माना जाता है। आयात-निर्यात कीमतों का निर्धारण कुल आयात और निर्यात पर निर्भर होता है। इसी लिए इसे हम सकल वस्तु विनिमय शर्त का ही परिवर्तित रूप मान सकते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

आय व्यापार शर्तों को हम इस प्रकार सूत्रबद्ध कर सकते हैं :

$$T_y = \left(\frac{P_x}{P_m}\right) Q_m$$

यहाँ T_y द्वारा आय व्यापार शर्त दिखाई जा रही है। यह T_y किसी देश की निर्यात आधारित आयात क्षमता का निर्धारण करती है।

आय व्यापार शर्त के परिवर्तन देश के कुछ वैदेशिक व्यापार के परिवर्तनों के परिचायक हैं। यदि T_y के मान में वृद्धि हो तो यह देश की आयात क्षमता की वृद्धि का सूचक होगा। T_y की गिरावट का अभिप्राय आयात क्षमता में कमी होता है। यदि आय व्यापार शर्त देश के पक्ष में हो तो इसका यह अभिप्राय नहीं है कि वस्तु व्यापार शर्त भी पक्ष में ही है। वस्तु व्यापार शर्त केवल कीमतों पर आश्रित है। उनके परिवर्तन अनुपात को स्थिर रखते हुए भी हो सकते हैं।

4) एक कारकीय व्यापार शर्त

व्यापार की प्रक्रिया दीर्घ अवधि तक चलती रहती है। संभव है कि इस दौरान विभिन्न साधनों के प्रयोग में भी परिवर्तन आ जाएँ। किसी साधन की उत्पादिता में वृद्धि तो संभव रहती ही है। निर्यात उद्योग में इस उत्पादिता वृद्धि को भी आकलन का अंग बनाने का कार्य हम एक कारकीय व्यापार शर्त द्वारा करते हैं। यहाँ हम वस्तु व्यापार शर्त को निर्यात

$$T_s = \left(\frac{P_x}{P_m}\right) F_x$$

उद्योग में उत्पादिता के सूचक द्वारा गुणा कर देते हैं। अर्थात् :

यहाँ F_x निर्यात क्षेत्र में उत्पादिता वशद्धि का सूचक है।

उत्पादिता की प्रत्येक वृद्धि व्यापार शर्त पर प्रभाव डालती है। अतः केवल एक देश के पक्ष का समावेश करना पर्याप्त नहीं होगा। दूसरे देश, जहाँ से हम आयात कर रहे हैं, की उत्पादिता वृद्धि का महत्त्व भी कम नहीं आँकना चाहिए। इसी दृष्टि से हम द्विकारकीय व्यापार शर्त के विचार की रचना कर रहे हैं। यह होगा :

$$T_d = \left(\frac{P_x}{P_m}\right)\left(\frac{F_x}{F_m}\right) = \frac{P_x F_x}{P_m F_m}$$

यहाँ F_m द्वारा आयात क्षेत्र में उत्पादिता वृद्धि सूचित की जा रही है।

F_x/F_m का अनुपात उत्पादिता परिवर्तनों को सापेक्ष रूप में दर्शा रहा है।

ये व्यापार की शर्तों के कुछ प्रमुख प्रकार या भेद हैं। वैसे प्रो. वाइनर और प्रो. किंडल बर्गर ने "वास्तविक लागत व्यापार शर्त" और "उपयोगिता व्यापार शर्त" की अवधारणाएँ भी प्रस्तुत की हैं।

व्यापार शर्तों का अंतरराष्ट्रीय व्यापार सिद्धांतों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह किसी देश की आयातकर सकने की क्षमता या बाहर से खरीदे गए सामान की कीमत चुका पाने की क्षमता का माप करती हैं। प्रत्येक देश इन शर्तों को अपने पक्ष में रखना चाहता है क्योंकि यह उसकी व्यापार क्षमता का परिचायक बन जाती है। विपक्ष में जा रही शर्तें देश की अंतरराष्ट्रीय बाज़ार से खरीदारी कर सकने की क्षमता में आ रही गिरावट का भान कराती है। व्यापार की शर्तों को ही हम व्यापार से लाभ उठा पाने का माध्यम मान सकते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 2

1) व्यापार की शर्तें क्या होती हैं?

....

....

....

....

....

2) प्रत्युत माँग का अर्थ बताइए।

....

....

....

....

....

3) यदि किसी देश की व्यापार शर्त तथा लागत अनुपात समान हो तो क्या उसे व्यापार से लाभ होगा?

....

....

....

....

....

4) जे. एस. मिल के प्रत्युत माँग विश्लेषण की मुख्य त्रुटि की व्याख्या करें।

....

....

....

....

....

5) प्रत्युत माँग–वक्र के विचार को समझाइए।

....

....

....

....

....

6) वस्तु व्यापार शर्त की अवधारणा समझाइए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

....

....

7) खाली स्थान भरें :

a) T_c =........................द्वारा हम ....व्यापार शर्त दर्शाते हैं।

b) T_y =........................द्वारा हम........................यापार शर्त दर्शाते हैं।

c) T_g =........................द्वारा हम........................व्यापार शर्त दर्शाते हैं।

20.4 व्यापार से लाभ

व्यापार क्यों और कैसे होता है? इन प्रश्नों पर हमने भाग 2.2 या 2.3 में चर्चा की है। उस चर्चा से यह स्पष्ट ही है कि व्यापार से दोनों भागीदार देशों को कुछ न कुछ लाभ अवश्य होते हैं। अंतरराष्ट्रीय व्यापार वास्तव में अंतरराष्ट्रीय श्रम विभाजन ही है। जिस प्रकार किसी देश के आंतरिक श्रम विभाजन से उसके नागरिक लाभान्वित होते हैं उसी प्रकार अंतरराष्ट्रीय श्रम विभाजन से विश्व समुदाय के सदस्य देशों को लाभ पहुँचता है। व्यापार तो इस श्रम विभाजन को विभिन्न देशों के स्तर पर पहुँचाने का माध्यम ही है। अंतरराष्ट्रीय श्रम विभाजन से उत्पन्न होने वाले लाभों के स्रोत इस प्रकार हैं :

i) संसाधनों का अभीष्ट प्रयोग

श्रम विभाजन देश के भीतर एवं देशों के बीच में संसाधनों अभीष्ट आबंटन कर अधिकतम

संभव उत्पादन करने में सहायक होता है। जब व्यक्तियों की तरह से देश भी उन्हीं कार्यों में संलग्न होंगे जिन्हें वह श्रेष्ठतम कर सकते हैं तो निश्चित ही आर्थिक संसाधनों का कुशलतम प्रयोग होगा। संसाधनों का यह कुशलतम प्रयोग ही अधिकतम उत्पादन का मार्ग प्रशस्त करता है।

हम जानते ही हैं कि संसाधन अपरिमित नहीं है, उनका निरंतर एवं विचारहीन प्रयोग उन्हें शीघ्र ही समाप्त कर सकता है। यह समाप्ति अधिकतम उत्पादन किए बिना ही हो जाएगी। अतः यह आवश्यक है कि साधन प्रयुक्ति में पूरे ध्यान से काम लिया जाए। तुलनात्मक लागतों के गणित पर आधारित अंतरराष्ट्रीय व्यापार इस दृष्टि से बहुत उपयोगी सिद्ध होता है। जो देश अन्यों की अपेक्षा कम लागत पर उत्पादन करता है वही संसाधनों का सर्वोत्तम प्रयोग करने में समर्थ होता है। किसी संवृत अर्थव्यवस्था में तो यथासंभव सभी वस्तुओं का आंतरिक रूप से उत्पादन करना पड़ता है पर यह साधन प्रयुक्ति अभीष्टतम नहीं हो पाती। इसी कारण से कहा जाता है जब देश आंतरिक ही नहीं बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर भी व्यापक रूप से क्रय–विक्रय करते हैं तभी विश्व के संसाधनों का वांछनीय प्रयोग संभव हो पाता है।

ii) बड़े पैमाने पर उत्पादन के लाभ

बाज़ार का सीमित आकार श्रम विभाजन की संभावनाओं को सीमित कर डालता है। यदि आंतरिक माँग कम हो तो देश में उत्पादन भी प्रायः कम ही रह जाता है। पर अंतरराष्ट्रीय व्यापार इस सीमा बाधा को निरस्त कर देता है। अब स्वदेशीय ही नहीं बल्कि विश्व भर के उपभोक्ता समाज को ध्यान में रख बहुत बड़े स्तर पर उत्पादन व्यावहारिक हो जाता है। बाज़ार का आकार विराट हो जाता है। अतः सहज ही बड़े पैमाने पर उत्पादन की मितव्ययताओं का लाभ प्राप्त होने लगता है। ये मितव्ययताएँ इस प्रकार हैं :

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

क) बड़े पैमाने पर क्रय-विक्रय की बचतें

बड़े पैमाने पर उत्पादन करने वाली इकाइयाँ आदानों की खरीदारी भी बड़े परिमाण में करेंगी। हम सभी जानते हैं कि इस प्रकार थोक में खरीदारी करना सस्ता पड़ता है। इसी प्रकार थोक विक्रय से बिक्री से जुड़ी लागतें भी कम रह जाती हैं। अतः बड़े स्तर पर उत्पादन क्रय–विक्रय की लागतों में कमी के कारण अपेक्षाकृत सस्ता रहता है।

ख) उत्पादक साधनों की अविभाज्यताओं के कारण सृजित लाभ

प्रत्येक मशीन का कुशलतम उत्पादन स्तर तकनीकी कारकों द्वारा निर्धारित होता है। सीमित बाज़ार के लिए कम उत्पादन करते समय उस मशीन पर प्रति इकाई उत्पादन लागत अधिक रहती है। आप जानते ही हैं कि उत्पादन लागतों को अचल एवं परिवर्ती वर्गों में बाँटा जाता है। परिवर्ती लागतें तो उत्पादन स्तर के साथ–साथ बढ़ती रहती हैं। पर उपयुक्ततम स्तर की प्राप्ति तक अचल प्रति इकाई लागत तेज़ी से कम होती है। इसी कारण से कुल औसत लागत में निरंतर (उपयुक्ततम स्तर तक) गिरावट चलती रहती है। अतः हम कह सकते हैं कि व्यापार के कारण संस्थापित मशीनों को उनके सर्वश्रेष्ठ स्तर पर प्रयोग कर पाना संभव हो जाता है। इसी से कम लागत पर उत्पादन प्राप्त हो जाता है।

ग) गुणवत्ता में सुधार

बड़े पैमाने पर उत्पादन कर अंतरराष्ट्रीय स्पर्धा में अपना माल बेचने का एक अन्य लाभ भी है। प्रत्येक उत्पादक को अपने उत्पादन की गुणवत्ता में निरंतर सुधार लाने का प्रयास करने पड़ते हैं। अन्यथा वे बाज़ार में नहीं टिक पाते। निरंतर शोध एवं विकास व्यवसाय का एक अभिन्न अंग बन जाते हैं। बाज़ार की तीखी स्पर्धा उन्हें निरंतर अपने उत्पादन

को बेहतर और बेहतर तरीकों से तैयार करने को मज़बूर कर देती है। तकनीकी विकल्पों की उपलब्धिता के कारण कुछ सीमाएँ उत्पन्न हो सकती हैं किन्तु स्पर्धा के कारण उत्पादक संसाधनों, कच्चे माल के स्रोतों का विकास करने के साथ–साथ बैंक–व्यवस्था आदि के सुधार के माध्यम से भी अपने उत्पादन की लागत कम करने का प्रयास करते हैं। अतः ये भी व्यापार से लाभ का स्रोत बन जाते हैं।

व्यापार से लाभ केवल संसाधनों के आबंटन और बड़े पैमाने पर उत्पादन की बचतों तक ही सीमित नहीं करते। व्यापार किसी भी देश के विकास प्रयासों एवं उनकी दिशा को भी प्रभावित करता है। यह विकास के अग्रणी क्षेत्रक या इंजिन का दायित्व भी उठा सकता है। सत्य ही है कि किसी भी क्षेत्र का तीव्र विकास देश के अन्य सभी क्षेत्रकों के विकास को बढ़ावा दे सकता है।

20.4.1 व्यापार से लाभों के निर्धारक तत्त्व (कारक)

व्यापार से लाभों का स्तर अनेक प्रकार के कारकों पर निर्भर करता है। हम उनकी व्याख्या निम्न वर्गीकरण के आधार पर कर रहे हैं :

लागत अनुपातों में अंतर

व्यापार से लाभ का स्तर मुख्यतः लागत अनुपातों के अंतर द्वारा ही निर्धारित होता है। यदि किसी देश के लागत अनुपातों में भारी अंतर हो तो उसे लाभ भी अधिक होता है। मामूली से लागत अनुपात अन्तर वाले देश को प्राप्य लाभ भी सीमित रह जाते हैं। अतः व्यापार से संभावित लाभ निश्चित रूप से देश में उत्पादिता और दक्षता को निर्धारित करने वाली सभी परिस्थितियों पर निर्भर करते हैं। आंतरिक व्यवस्था की उत्पादिता व दक्षता जितनी अधिक होगी, लाभ का स्तर भी उतना ही ऊँचा रहेगा।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

प्रत्युत माँग

प्रत्युत माँग का भी लाभ के स्तर पर गहरा प्रभाव होता है। यदि देश A की माँग अधिक हो तथा B उस वर्तमान दर पर पर्याप्त आपूर्ति देने को तत्पर न हो तो फिर व्यापार शर्त B के पक्ष में परिवर्तित हो जाती है। इसी प्रकार यदि A की माँग कम हो तथा B अधिक पूर्ति का इच्छुक हो तो निश्चित रूप से व्यापार शर्त B के विरुद्ध ढल जाएगी। दोनों देशों में माँग की लोचशीलता का सापेक्ष स्तर व्यापार के लाभों का निर्धारक बन जाता है। दूसरे शब्दों में व्यापर से लाभ का स्तर प्रत्युत माँग पर भी निर्भर करता है।

अंततः दो ही मुख्य बातें व्यापार से लाभ से स्तर का निर्णय कर देती है : उत्पादन में जो देश जितना अधिक कुशल होगा उसे व्यापार से उतना ही अधिक लाभ भी होगा। आंतरिक आय का स्तर तथा वस्तु की प्रकृति भी किसी सीमा तक उसकी माँग को प्रभावित कर लाभों पर अपना असर डाल सकती है। सामान्यतः व्यापार में दो ही नहीं अनेक देश सम्मिलित रहते हैं। अतः किसी न किसी रूप में हमें सभी की सापेक्ष दक्षताओं/योग्यताओं तथा माँग को अपने आकलन में समाहित करना पड़ेगा।

कई बार देश का अपना आकार भी लाभों पर निर्णायक प्रभाव छोड़ता है। सामान्यतः एक बहुत छोटा–सा देश अपेक्षतया अधिक लाभ उठा सकता है। ऐसे देश में बड़े पैमाने के उत्पादन में बहुत विशाल बाधाएँ होती हैं पर व्यापार उनका निराकरण कर देता है। किन्तु छोटे देश में संसाधनों की उपलब्धिता भी बहुत सीमित एवं विविधता शून्य हो सकती है। इससे उसकी दक्षता आदि पर विपरीत प्रभाव भी हो सकते हैं। अतः व्यापार से लाभ पर देश के आकार के निश्चित प्रभावों को लेकर कोई सामान्यीकरण संभव नहीं होता।

बोध प्रश्न 3

1) क्या लागत अनुपात समान होने पर भी व्यापार से लाभ होंगे? (लगभग 30 शब्दों में)

....

....

....

....

....

2) व्यापार संभावित दो प्रमुख लाभ बताइए।

....

....

....

....

....

3) लागत अनुपातों का व्यापार से लाभ पर प्रभाव समझाइए।

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

4) क्या व्यापार से लाभों के निर्धारण में माँग का भी महत्त्व होता है? क्यों?

....

....

....

....

....

5) क्या बाज़ार के आकार से व्यापार से लाभ का स्तर प्रभावित होगा? कैसे?

....

....

....

....

....

20.5 भुगतान शेष

इस माँग में हम आपको अंतरराष्ट्रीय व्यापार के मौद्रिक पक्ष से परिचित करा रहे हैं। जब हम किसी अन्य देश से खरीदारी करते हैं तो हमें विदेशी मुद्रा में भुगतान करना पड़ता

है। अतः यहाँ हम जिस व्यापार की बात करेंगे वह वस्तुओं का वस्तुओं के बदले लेन–देन नहीं है। प्रत्येक देश की अपनी मुद्रा एवं मौद्रिक व्यवस्था होती है। इसके कारण कई प्रकार की जटिलताएँ पैदा हो जाती है। हम यहाँ उनमें से कुछ एक के बारे में चर्चा करेंगे।

भुगतान शेष खाते को किसी देश के अंतरराष्ट्रीय लेन–देन दिखाने का आधारभूत माध्यम माना जाता है। यह किसी देश के शेष विश्व के साथ सभी लेन–देनों का सार रूप होता है। निश्चित कालावधि के दौरान एक अर्थव्यवस्था द्वारा शेष संसार से जो भी लेन–देन किए हों उन सभी का इस खाते में लेखा–जोखा होता है। यह अवधि सामान्यतः एक वर्ष ही रहती है। इस दृष्टि से यह भुगतान शेष एक प्रवाह माने जा सकते हैं। इस बात को याद रखना उपयोगी होगा। इसके विपरीत किसी व्यक्ति, फर्म या देश के आंतरिक तुलन पत्र के आँकड़ों को स्टॉक स्वरूप माना जाता है।

भुगतान शेष पर विचार करते समय दो बातों का ध्यान रखना आवश्यक होता है। एक तो जमा तथा नामे के बीच अंतर को स्पष्टतः समझ लेना चाहिए। दूसरे, इन प्रविष्टियों को सही उपखातों में ही दर्ज करना चाहिए।

आइए हम दूसरे कथन से अपनी चर्चा को आगे बढ़ाए। इस कथन से यह संकेत मिलता है कि भुगतान शेष खाते के उपविभाग भी होंगे। भुगतान शेष खाते के एक तालिका के रूप में प्रस्तुत किया जाता है तथा इसके दो मुख्य विभाग बनाए जाते हैं। इन दोनों के कई–कई और आगे स्तर के उपविभाग भी होते हैं। मुख्य उपविभाग ये हैं :

1) **चालू खाता** : इस खाते में सम्मिलित सभी प्रवाह प्रत्यक्षतः राष्ट्रीय खाते को प्रभावित करते हैं। इनमें शामिल हैं :

   i) वस्तुओं का आयात निर्यात

   ii) सेवाओं का आयात–निर्यात

   iii) आय के अंतर्मुखी एवं बाह्यमुखी प्रवाह

   iv) विदेशों में निवेश से प्राप्त आय

   v) अनुदान, भुगतान तथा अन्य प्राप्तियाँ

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

2) **पूँजी खाता** : इस खाते में वे प्रवाह होते हैं जो राष्ट्रीय तुलन पत्र को प्रभावित करते हैं। ये हैं :

   i) प्रत्यक्ष निवेश

   ii) पूँजी पत्रकों में निवेश

   iii) अन्य प्रकार की निजी पूँजी का प्रवाह

   iv) नकद कोषों में परिवर्तन, इसके दो भाग हैं :

      क) आधिकारिक सुरक्षित निधियों में परिवर्तन– यह देश के मौद्रिक अधिकारियों के पास जमा निधियाँ होती हैं– इनमें परिवर्तन विदेशी मुद्रा बाज़ार में हस्तक्षेप के कारण आते हैं।

      ख) बैंकों तथा अन्य विदेशी मुद्रा व्यापारियों के पास जमा निधियों में परिवर्तन।

वास्तव में उल्लिखित मद (क) को तो एक संतुलनकारी प्रविष्टि माना जाता है। यह सरकार की पूँजी पर पूरी तरह अलग होती है। आधिकारिक सुरक्षित निधि से जुड़े लेन–देनों के

पीछे मौद्रिक अधिकारियों द्वारा देश के भुगतान शेष को विचलित रखने या संचालित करने का ध्येय ही प्रमुख होता है।

आइए अब भुगतान शेष खाते के पहले मुख्य मुद्दे पर बात करें। यह है जमा तथा नामे की प्रविष्टियों में भेद। यहाँ दो बातों पर ध्यान देना आवश्यक है : प्रथम तो भुगतान शेष तालिका एक लेखा तालिका है अतः इसके दोनों पक्षों में अंततः संतुलन होना आवश्यक है। सभी जमाओं को योग नामे प्रविष्टियों के योग के समान ही होना चाहिए (यदि कोई अंतर हो तो उसे सांख्यकीय 'भूलचूक' का नाम दे दिया जाता है)। भुगतान शेष खाते में प्रत्येक प्रविष्टी दो बार दर्ज की जाती है; इसका कारण यही है कि इस खाते की रचना द्वि–प्रविष्टि लेखांकन पद्धति पर आधारित होती है। प्रत्येक प्रविष्टि एक बार चालू या पूँजी खाते में दर्ज होती है फिर पूँजी खाते के नकदी संबंधी उपविभाग में भी दर्ज किया जाता है।

दूसरी ध्यान रखने योग्य बात यह है कि कोई भी ऐसा कार्य जिससे किसी विदेशी इकाई पर हमारे देश की किसी इकाई को कुछ देने का दायित्व बनता हो उसे हम 'जमा' मानते हैं। दूसरी ओर यदि हमारी किसी इकाई पर विदेशियों को कुछ भुगतान करने का जिम्मा बनता है तो उसे 'नामे' पक्ष में दिखाया जाता है।

आइए एक देश के भुगतान शेष खाते पर कुछ ध्यानपूर्वक विचार करें।

20.5.1 भुगतान शेष की संरचना

अंतरराष्ट्रीय व्यापार के संदर्भ में दो या वाक्यांशों का प्रायः प्रयोग होता है : व्यापार शेष तथा भुगतान शेष। इन दोनों के अर्थों में भारी विषमता है। व्यापार शेष का विचार भुगतान शेष की अपेक्षा बहुत संकुचित होता है। व्यापार शेष से तात्पर्य केवल वस्तुओं और सेवाओं के व्यापार से है। इन्हें दृश्य और अदृश्य पदार्थों का व्यापार अथवा आयात–निर्यात भी कहते हैं। वस्तुएँ देखी जा सकती हैं, अतः उन्हें 'दृश्य' कहा जाता है। सेवाओं को देखा नहीं जा सकता पर उनके व्यापार की अनुभूति अवश्य रहती है। इसी कारण जहाजरानी बीमा आदि सेवाओं को व्यापार की अदृश्य मदों का नाम दिया जाता है। भुगतान शेष का विचार शेष की अपेक्षा बहुत व्यापक होता है। यह आलोच्य अवधि में शेष विश्व के साथ सभी प्रकार के लेन–देन का लेखा होता है। अतः इसमें अदृश्य एवं दृश्य मदों के व्यापार के साथ–साथ सभी पूँजीगत विनिमय आदि भी सम्मिलित हो जाते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

भुगतान शेष खाते की रचना मूलतः द्वि–प्रविष्टि लेखांकन विधि के नियमों के अनुरूप की जाती है। सामान्य व्यापारी दाहिनी ओर 'जमा' तथा बाईं ओर 'नामे' की रकमें दर्ज करता है। किन्तु भुगतान शेष में हम नामे को दाहिनी और 'जमा' बाईं और दिखाते हैं। पर एक प्रश्न पर विचार अभी नहीं हुआ है— अंतरराष्ट्रीय व्यापार में 'जमा' और 'नामे' का अर्थ क्या है? एक देश की वे सभी गतिविधियाँ जिनके फलस्वरूप उसे नकद की प्राप्ति हो 'जमा' की मदें मानी गई हैं। अतः वस्तुओं और सेवाओं के निर्यात के साथ–साथ पूँजी की आमद की जमा पक्ष में दिखाई जाती है। दूसरी और वस्तुओं और सेवाओं की खरीदारी (आयात) नामे पक्ष में चली जाती हैं क्योंकि हमें इनका भुगतान करना होता है। इन आयातों के साथ–साथ देश किसी अन्य देश या अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं को पूँजी सहायता, ऋण या ब्याज आदि का भुगतान भी करता है। इन संस्थाओं में विश्व बैंक, अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं पूँजी सहायता, ऋण या ब्याज आदि का भुगतान भी करता है (इन संस्थाओं में विश्व बैंक, अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष आदि सम्मिलित हैं)। ये भुगतान होने के नाते 'नामे' पक्ष में ही दिखाए जाते हैं।

अतः सभी लेन–देनों को हम प्राप्ति तथा भुगतान के रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं। प्राप्तियों को बाईं तथा भुगतानों को दाहिनी और लिखा जाता है।

अब बारी आती है भुगतान तथा निर्यात भुगतान शेष खाते की महत्त्वपूर्ण मदें हैं। देश उन वस्तुओं का आयात करता है जिनका यह किन्हीं विवशताओं के कारण स्वयं उत्पादन नहीं कर पाता या फिर जिनकी आंतरिक लागत बहुत अधिक होती है। इसी प्रकार जिन वस्तुओं का आसानी से, अपेक्षतया कम लागत पर उत्पादन होता है, हम उनका निर्यात करने में सफल रहते हैं। इन वस्तुओं में शीघ्र खराब होने वाली तथा दीर्घोपयोगी वस्तुएँ और मशीनें आदि सभी शामिल हैं। कोई भी देश उन्हीं वस्तुओं का आयात करता है जिनकी उसे आवश्यकता प्रतीत होती है। ये सभी दृश्य पदार्थ है। इनमें कुछ का आयात होता है तो कुछ का निर्यात भी चलता रहता है।

व्यापार की अन्य मदों में बीमा, जहाजरानी आदि सेवाएँ आती हैं। ये दृश्य मदों से अलग होती हैं क्योंकि इन्हें वस्तुओं की भाँति देखा नहीं जा सकता, इसी कारण से इन्हें 'अदृश्य' मदों का नाम भी दिया जाता है। जब हम जल या वायु मार्ग से किन्हीं वस्तुओं का निर्यात करते हैं तो परिवहन और बीमा सेवाओं का प्रयोग होता है। आयात में भी इन सेवाओं का प्रयोग रहता है। अतः वस्तुओं के आयात–निर्यात के साथ ही किसी न किसी रूप में सेवाओं का व्यापार भी हो जाता है। सामान्यतः विकासशील देशों को अदश्श्य मदों पर भारी खर्च करना पड़ जाता है—क्योंकि ये वस्तुओं के आयात और निर्यात, दोनों ही कार्यों के लिए किसी अन्य देश द्वारा प्रदान की गई परिवहन व बीमा सेवाओं का प्रयोग करते हैं—यह उनका आयात व्यय ही होगा। उनकी अपनी ये सेवाएँ बहुत विकसित नहीं होतीं।

ये दोनों दृश्य और अदृश्य मदें व्यापार का अंग हैं—अतः इन्हें हम व्यापार मदें कह देते हैं। भुगतान शेष खाते में व्यापार मदों के साथ–साथ अंतरण मदें भी सम्मिलित होती हैं। ये अंतरण मदें वित्तीय अथवा मौद्रिक लेन–देन ही होते हैं। वित्तीय अंतरणों को हम और आगे दो वर्गों में बाँट सकते हैं : अप्रतिदत्त अथवा एकतरफा अंतरण तथा पूँजीगत अंतरण। ये अप्रतिदत्त पूँजीगत अंतरणों से विभिन्न प्रकृति के होते हैं। आज हमारे देश के अनेक नागरिक अन्य देशों में कार्य कर रहे हैं। यदि वे अपनी आय का एक अंश यहाँ अपने सगे संबंधियों को भेजें तो इसके बदले में उन्हें कोई तत्–प्रतितत् नहीं मिलता। इसी तरह विदेशों से प्राप्त उपहार और अनुदान आदि के बदले में भी कोई चीज़ नहीं दी जाती। कभी–कभी किसी देश पर अन्य देशों को देय हर्जाना आदि भी लगा दिया जाता है। सभी भुगतान जिनके बदले में कोई प्रतिदान नहीं मिलता उन्हें हम अप्रतिदत्त अंतरणों का नाम देते हैं (भविष्य में भी कोई प्रतिदान देने का दायित्त्व नहीं होता)। इन मदों के कारणों पर हम विचार नहीं करते। हमें तो इनके प्रभाव से ही वास्ता होता है। ये लेन–देन होते ही हैं—इनके कारण भुगतान भी होते हैं और प्राप्तियाँ भी। भुगतान शेष खाते में हमारा मतलब केवल यही होता है कि हम इस प्रकार के लेन–देन को अप्रतिदत्त उपखाते में ही ध्यानपूर्वक दर्ज करते रहें। यहाँ यह बता देना प्रासंगिक होगा कि विकासशील देशों के नागरिक बड़ी संख्या में विकसित देशों में काम कर रहे हैं। स्वभाविक ही वे अपने परिजनों को निर्वाह के लिए कुछ न कुछ राशियाँ भेजते रहते हैं। इन राशियों को भी ठीक से भुगतान शेष खाते में दिखाया जाना आवश्यक होता है। पर यह राशियाँ अंतरण ही मानी जाती है, इन्हें उन व्यक्तियों की सेवाओं के निर्यात से प्राप्त आय मानकर अदृश्य व्यापार मद नहीं माना जा सकता।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

पूँजीगत खाता भुगतान शेष का दूसरा महत्त्वपूर्ण खाता है। इस खाते में दर्ज रकमें दूसरे देशों तथा विदेशी संस्थाओं से ली गई उधार, ऋणों का भुगतान, ब्याज आदि से संबंधित होती हैं। अब अंतरराष्ट्रीय ऋणों का आना–जाना तो सामान्य बात माना जाता है। विभिन्न देश विकास एवं अन्य कार्यों के लिए उधार लेते ही रहते हैं। इस खाते की मदें भी प्राप्तियों और भुगतानों में बाँटी जाती हैं। अन्य देशों से प्राप्त हुई राशियों को पूँजीगत प्राप्ति की संज्ञा दी जाती है तथा अन्य देशों को दिए गए भुगतान पूँजीगत भुगतान कहे जाते हैं। ये सभी भुगतान शेष लेखे की मुख्य मदें होती हैं। आइए एक विकासशील देश के (काल्पनिक) भुगतान शेष लेखे की रचना करते हुए इस विषय की जानकारी को और अधिक स्पष्ट रूप से समझने का प्रयास करें।

हमने इस लेखे को दो भागों में बाँटा है— भाग 'क' तथा भाग 'ख' तालिका 20.1 में दिखाए गए इस खाते के भाग 'क' में व्यापार मदों का लेखा है। भाग 'ख' में अदृश्य एवं दृश्य व्यापार से जुड़ी हैं वही अंतरण मदें मौद्रिक लेन–देन से संबंधित है। अंतरण मदों को अप्रतिदत्त एवं पूँजीगत अंतरणों में विभाजित किया जाता है। इस तालिका के माध्यम से हम भुगतान शेष लेखे के विषय में कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्षों तक पहुँच सकते हैं।

तालिका 20.1 : भुगतान शेष (करोड़ रुपयों में)

भाग 'क' व्यापार मदें				
जमा			**नामे**	**अतिरेक या घाटा**
(i) दृश्य निर्यात	750	दृश्य आयात	950	- 200
(ii) अदृश्य निर्यात	200	अदृश्य आयात	150	+ 50
व्यापार मदों का योग	950		1100	- 150
भाग 'ख' अंतरण मदें				
(iii) अप्रतिदत्त प्राप्तियाँ	150	अप्रतिदत्त भुगतान	100	+ 150
(iv) पूँजीगत प्राप्तियाँ	200	पूँजीगत भुगतान	100	+ 100
अंतरणों का योग	350		200	+ 150

एक बात पर ध्यान दें। (i) से (iv) तक की मदों में दोनों पक्षों के योगफल समान बनते हैं। यही नहीं कुल अतिरेक अथवा घाटा भी शून्य होता है हमें जमा पक्ष पर 1300 करोड़ रुपये की रकमें मिल रही हैं। इतना ही योगफल नामे पक्ष का है। दूसरे शब्दों में, जमा तथा नामे पक्षों में संतुलन है। देश के कुल भुगतान इसकी कुछ प्राप्तियों के समान हैं। लेखाकार की दृष्टि से भुगतान शेष खाता सदैव संतुलन में ही रहता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

किन्तु जब हम इस लेखे के अलग–अलग भागों पर विचार करते हैं तो यह सदैव संतुलन की बात सही नहीं रहती। फिर तो प्राप्तियाँ और भुगतान बराबर नहीं रहते। आइए व्यापार खाते पर ग़ौर करें। यहाँ दृश्य निर्यात है रुपये 750 करोड़। पर आयात 950 करोड़ का हुआ है। अर्थात् देश ने निर्यात् की तुलना में 200 करोड़ रुपये मूल्य का अधिक आयात किया है। दश्श्य मदों के व्यापार में घाटा है।

इसका अर्थ यही होगा कि यह देश अपनी आयात आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाने योग्य निर्यात नहीं कर पा रहा। इसकी आयात ज़रूरतें अधिक व्यापक या विस्तृत हैं। इसके निर्यात कम होने के अनेक कारण हो सकते हैं— हो सकता है इस देश के उत्पादन की विश्व बाज़ार में अधिक माँग नहीं हो, उसकी गुणवत्ता न्यून या कीमत अधिक हो आदि। संक्षेप में यही कह सकते हैं कि इस देश की निर्यात क्षमता सीमित होने के कारण इसके दृश्य व्यापार में घाटा रहता है।

अदृश्य मदों के व्यापार में कुछ दूसरा ही चित्र दिखाई पड़ रहा है। यहाँ निर्यात रुपये 200 करोड़ का है तो आयात मूल्य रुपये 150 करोड़ ही है। अर्थात् अदृश्य मदों के व्यापार में यह देश 50 करोड़ रुपयों का आधिक्य कमाता है।

व्यापार खाते में कुल मिलाकर यह बात स्पष्ट होती है : दृश्य आयात रुपये 950 करोड़ तथा निर्यात रुपये 750 करोड़ है। अदृश्य निर्यात रुपये 200 करोड़ है तो आयात रुपये 150 करोड़ के समान है। अतः व्यापार खाते पर कुल प्राप्तियाँ 740+200=रुपये 950 करोड़ की हैं और कुल भुगतान की देनदारी 950+150=रुपये 1100 करोड़ बनती है। कुल

देनदारियाँ अधिक हैं। अतः व्यापार खाते में घाटा है। हम कह सकते हैं कि व्यापार शेष में रुपये 150 करोड़ का घाटा है।

आइए, अब अंतरण खाते पर विचार करें। हमने इन मदों को अप्रतिदत्त और पूँजीगत अंतरणों की उपश्रेणियों में बाँटा है। अतः इनकी प्राप्तियों और देनदारियों पर अलग–अलग विचार करेंगे। तालिका 20.1 से यह तो साफ दिखाई दे रहा है कि अप्रतिदत्त प्राप्तियाँ भुगतानों से अधिक हैं। इस देश को रुपये 150 करोड़ प्राप्त होते हैं तो यह रुपये 100 करोड़ का भुगतान करता है। दूसरे शब्दों में, अप्रतिदत्त अंतरणों में कुछ आधिक्य है। यह आधिक्य रुपये 50 करोड़ के समान है। पूँजीगत अंतरणों में भी देश की प्राप्तियाँ भुगतानों की अपेक्षा अधिक हैं। संभव है ये प्राप्तियाँ विश्व बैंक अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष या फिर किसी अन्य विकसित देश से ऋण के रूप में मिली हों। देश की इस मद की प्राप्तियाँ इसके द्वारा चुकाए गए ऋण और ब्याज से अधिक है। अप्रतिदत्त अंतरणों में रुपये 50 करोड़ का आधिक्य था। पूँजीगत अंतरणों में भी कुल मिलाकर रुपये 100 करोड़ का आधिक्य है। इस प्रकार अंतरण खाते में 100+50 =रुपये 150 करोड़ का आधिक्य है।

आइए, अब भुगतान शेष खाते के समग्र घाटे या आधिक्य की बात करें। हम सभी उपखातों को घाटे या आधिक्य के अनुसार रख रहे हैं। व्यापार मदों में कुल भुगतान रुपये 1100 करोड़ और प्राप्तियाँ रुपये 950 करोड़ की रहीं। अर्थात् रुपये 150 करोड़ का घाटा रहा। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि भुगतान शेष में इतना घाटा हो गया। हमें अंतरण खाते का भी हिसाब लगाना पड़ेगा। यहाँ तो अप्रतिहत और पूँजी अंतरण दोनों में ही आधिक्य है। इन आधिक्यों का योगफल रुपये 150 करोड़ है। दूसरे शब्दों में, व्यापार के घाटे की प्रतिपूर्ति अंतरणों के अतिरेक से हो जाती है। देश की कुल प्राप्तियाँ उसके भुगतानों के एकदम समान हो जाती हैं। तालिका 20.1 में दिखाए गए आँकड़ों के अनुसार इस देश की कुल प्राप्तियाँ रुपये 1300 करोड़ है। इतना ही भुगतान इसे करना पड़ रहा है। अतः न घाटा है न आधिक्य। इस तरह से लेखांकन की दृष्टि से तो भुगतान शेष खाता संतुलन में ही है। यह सदैव संतुलित रहता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

किन्तु एक अन्य प्रश्न बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। कितनी ही बार हम कहते हैं कि किसी देश का भुगतान संतुलन उसके पक्ष में नहीं है। यह बात विकासशील देशों के संदर्भ में अक्सर उठती ही रहती है। इसका अर्थ होना चाहिए कि कुल लेन–देन में घाटा हो रहा है। पर हमारी तालिका के अनुसार तो न घाटा है न आधिक्य। हम तो यह कह चुके हैं कि भुगतान शेष सदैव संतुलन में ही रहता है। क्या यहाँ कोई विरोधाभास है? दोनों ही बातें तो एक साथ सत्य नहीं होंगी। यदि भुगतान शेष में घाटा हो तो यह संतुलित नहीं हो सकता। दूसरे यदि संतुलन हो तो फिर घाटे या आधिक्य का सवाल ही कहाँ उठ पाएगा?

इस टकराव का समाधान सहज है। यह सत्य है कि भुगतान शेष में सदैव संतुलन रहता है। पर यह संतुलन लेखात्मक संतुलन ही है। इसका कारण यह है कि यदि भुगतान दायित्व प्राप्तियों से अधिक हों तो किसी न किसी तरह भुगतान तो करना ही पड़ेगा। यहाँ हमें अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं से उधार लेने को बाध्य होना पड़ता है। यह उधार की रकम 'जमा' पक्ष में दिखाकर हम कुल प्राप्तियों को भुगतान दायित्वों के 'समान' दिखाने में सफल हो जाते हैं। जिस प्रकार का वर्गीकरण उपर्युक्त भुगतान शेष खाते में प्रयोग किया जाता है। उससे हम किसी प्रकार से भुगतान शेष का घाटा या आधिक्य या असंतुलन दिखा ही नहीं सकते। जब तक भुगतान करने के लिए बाध्य होकर उधार ली गई रकम को अलग से नहीं दिखाया जाता, हमें यह स्पष्ट नहीं हो सकता कि भुगतान का 'दबाव' कितना है।

प्रो. जे.ई. मीड़ ने इसी की व्याख्या करते हुए भुगतान शेष के खाते की मदों को स्वयं प्रेरित तथा उत्प्रेरित लेन–देनों में विभाजित किया है। इस खाते की मदें स्व–प्रेरित, उत्प्रेरित या फिर आंशिक रूप से स्व–प्रेरित (उत्प्रेरित) हो सकती हैं। इस वर्गीकरण के आधार पर हम भुगतान शेष की उचित व्याख्या कर सकते हैं। उन्होंने सामान्य व्यापार से जनित मदों को स्व–प्रेरित कहा है। यदि हम कुछ निर्यात कर पाते हैं तो यह निर्यात मूल्य स्वप्रेरित

प्राप्ति होगी। दूसरी ओर जब हम देखभाल कर विश्व बाज़ार से आयात करते हैं तो वह भी हमारा अपना विवेकपूर्ण निर्णय होगा। यह भुगतान भी स्व–प्रेरित है। किन्तु इसके विपरीत यदि हम किसी मित्र देश की सहायता करना चाहें तो हमारे सामने दो विकल्प होंगे : हम उसे सीधे से कुछ वित्तीय सहायता दे दें या फिर उससे कुछ खरीदारी करलें। ये लेन–देन विशुद्ध रूप से स्व–प्रेरित नहीं है। इन्हें उत्प्रेरित विनिमय कहा जाता है। यहाँ किसी देश की सहायता करने का ध्येय ही उत्प्रेरणा है। इस उत्प्रेरणा के पीछे राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक या फिर धार्मिक कारण भी हो सकते हैं। विभाजन की कसौटी यही है कि यहाँ किसी न किसी तरह से उस देश का लाभ पहुँचाने या उसकी सहायता करने का मंतव्य स्पष्ट होता है। ये लेन–देन वास्तव में उस लक्षित देश के भुगतान शेष के असंतुलन के सूचक या मापक हैं।

इस प्रकार प्रो. मीड के अनुसार : वास्तविक भुगतान शेष का घाटा उस राशि द्वारा मापा जा सकता है जिसे उत्प्रेरित वित्त के रूप में प्राप्त करने को कोई देश बाध्य हो जाता है। विदेशी विनिमय नियंत्रण बिना विनिमय दर में ह्रास से बचने के लिए जिस राशि को उधार लेना आवश्यक हो सकता है। वही राशि भुगतान शेष के संभावित घाटे का अनुमान मानी जाती है।

इस संभावित घाटे को ही किसी देश के भुगतान शेष के असंतुलन का सही मापक समझा जाता है।

बोध प्रश्न 4

1) भुगतान शेष क्या है? (लगभग 20 शब्दों में)

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

2) भुगतान शेष तथा व्यापार शेष में भेद करें।

....

....

....

....

3) भुगतान शेष सदैव संतुलन में किस दृष्टि से रहता है?

....

....

....

....

4) अदृश्य लेन–देन क्या होते हैं?

....

....

....

....

....

5) भुगतान शेष खाते की किन्हीं दो महत्त्वपूर्ण मदों के नाम बताएँ।

....

....

....

....

....

6) भुगतान शेष में घाटे का अर्थ समझाएँ।

....

....

....

....

....

7) क्या व्यापार शेष का घाटा ही भुगतान शेष का घाटा होता है?

....

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

20.6 सारांश

इस इकाई में अंतरराष्ट्रीय अर्थशास्त्र के कई आयामों पर चर्चा हुई है। व्यापार के कारणों से प्रारंभ इस इकाई में एडमस्मिथ की परम् लाभ तथा उसके साथ ही डेविड रिकार्डो की तुलनात्मक लागत अवधारणा पर विस्तृत चर्चा की गई है। साथ ही हैक्शर, ओटलिन द्वारा प्रस्तुत आधुनिक तुलनात्मक लागत सिद्धांत पर भी विचार किया गया है। इसके बाद व्यापार में संभावित लाभों की ओर ध्यान दिया गया। ये हैं– साधनों का अभीष्ट प्रयोग और बड़े पैमाने पर उत्पादन की मित्व्ययताएँ विभिन्न प्रकार की व्यापार शर्त संबंधी अवधारणाओं पर भी चर्चा की गई है। यथा– वस्तु व्यापार शर्त, सकल वस्तु विनिमय शर्त, आय व्यापार शर्त और एक कारकीय एवं द्वि–कारकीय व्यापार शर्त। इनके प्रत्युत माँग के साथ संबंधों की व्याख्या भी की गई है। अंततः अंतरराष्ट्रीय व्यापार के मौद्रिक आयामों की चर्चा में व्यापार शेष और भुगतान शेष का अर्थ समझाया गया है। फिर किसी भी देश के व्यापार एवं भुगतान शेष खातों के मुख्य घटकों की व्याख्या की गई है।

20.7 शब्दावली

तुलनात्मक लागत लाभ : विभिन्न देशों में अलग–अलग वस्तुओं की लागतों के अनुपात लागतों में तुलनात्मक लाभ का माप करते हैं। किसी देश को तुलनात्मक लागतों में लाभ प्राप्त हो सकता है। इसी कारण वह देश अन्यों के मुकाबले

अधिक दक्षतापूर्वक (कम लागत पर) उत्पादन कर पाता है। फिर भी किन्हीं अन्य वस्तुओं के उत्पादन में यह देश औरों से पीछे भी हो सकता है।

श्रम विभाजन : कोई भी व्यक्ति प्रत्येक कार्य में समान रूप से कुशल नहीं हो पाता। किसी कार्य में वह सबसे कुशल है तो किसी में अन्य लोग उससे कुशल हो सकते हैं। सभी लोगों द्वारा उन्हीं कार्यों को करना जिनमें वे सर्वाधिक कुशल है, ही श्रम विभाजन है।

अग्रणी क्षेत्रक : विकास की एक सीढ़ी पर जबकि देश लम्बी उछाल के लिए तैयार हो रहा हो, कोई एक क्षेत्रक बहुत त्वरित गति से विकास करने लगता है। इसके प्रभावस्वरूप अन्य क्षेत्रों की गतिविधियों को भी बढ़ावा मिलता है। इसीलिए इस क्षेत्रक को 'अग्रणी क्षेत्रक' का नाम मिल जाता है।

प्रत्युत माँग : दो देशों द्वारा अपने उत्पादन के बदले दूसरे के उत्पादन की माँग।

व्यापार की शर्तें : वह दर जिस पर दो देशों के बीच वस्तुओं का आदान–प्रदान होता है।

प्रत्युत माँग वक्र : वह वक्र जो किसी देश की विदेशी उत्पाद के बदले अपना उत्पादन देने की तत्परता को दर्शाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

भुगतान शेष : निश्चित अवधि में किसी देश के शेष विश्व से सभी लेन देनों का लेखा।

व्यापार शेष : दृश्य एवं अदृश्य मदों के कुल लेन–देन का लेखा।

व्यापार की दृश्य मदें : दो देशों के बीच खरीदी बेची गई वस्तुएँ। इन्हें देखा जा सकता है– अतः दृश्य पदार्थ कहा जाता है।

व्यापार की अदृश्य मदें : सेवा मदें। यथा– परिवहन, बीमा आदि। इनका भी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर व्यापार होता है।

अप्रतिदत्त लेन-देन : इन मदों में तुरंत या भविष्य में भी कोई तत् प्रतितत् प्रतिदान नहीं होता।

पूँजीगत आदान-प्रदान : एक देश से दूसरे को पूँजी का अंतरण।

संतुलन : वह बिंदु जहाँ परस्पर विपरीत शक्तियाँ मिलती हैं। जहाँ प्राप्तियाँ और भुगतान समान हो जाते हैं।

20.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Sodersten, B. (1980), *International Economics*, Mcmillan, London

Kenen, Peter (1994), *The International Economy*, Cambridge University Press, Cambridge, UK.

Krugman, Paul R. and Maurice Obstfeld (1997), *International Economics:- Theory and Policy (Fourth Edition)*, Addison-Wesley, Massachusetts, USA

20.9 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

बोध प्रश्न 1

सभी प्रश्नों के लिए भाग 20.2 पढ़ें।

बोध प्रश्न 2

1) अपने उत्तर के लिए भाग 20.3 देखिए।

2) अपने उत्तर के लिए उपभाग 20.3.1 देखिए।

3) अपने उत्तर के लिए उपभाग 20.3.2 देखिए।

4) अपने उत्तर के लिए उपभाग 20.3.2 देखिए।

5) अपने उत्तर के लिए उपभाग 20.3.2 देखिए।

6) अपने उत्तर के लिए उपभाग 20.3.3 देखिए।

7) अपने उत्तर के लिए उपभाग 20.3.3 देखिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 3

1) अपने उत्तर के लिए उपभाग 20.4.2 देखिए।

2) अपने उत्तर के लिए उपभाग20.4.1 देखिए।

3) अपने उत्तर के लिए उपभाग 20.4.2 देखिए।

4) अपने उत्तर के लिए उपभाग 20.4.2 देखिए।

5) अपने उत्तर के लिए उपभाग 20.4.1 देखिए।

बोध प्रश्न 4

1) अपने उत्तर के लिए भाग 20.5 देखिए।

2) अपने उत्तर के लिए भाग 20.5 तथा उपभाग 20.5.1 देखिए।

3) अपने उत्तर के लिए उपभाग 20.5.1 देखिए।

4) अपने उत्तर के लिए उपभाग 20.5.1 देखिए।

प्रश्न 5, 6 एवं 7 के लिए भी उपभाग 20.5.1 पढ़ें।

इकाई 21 सार्वजनिक अर्थशास्त्र

इकाई की रूपरेखा

21.0 उद्देश्य
21.1 प्रस्तावना
21.2 बाज़ार की विफलता
21.3 सार्वजनिक पदार्थ
21.4 बाह्यताएँ
21.5 सार्वजनिक व्यय
    21.5.1 सार्वजनिक व्यय संवृद्धि से जुड़ी अवधारणाएँ
    21.5.2 सार्वजनिक व्यय के प्रकार
21.6 सार्वजनिक आगम (राजस्व)
21.7 बजटीय घाटे के माप
21.8 बाज़ार ऋण
21.9 सारांश
21.10 शब्दावली
21.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें
21.12 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा–संकेत

21.0 उद्देश्य

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

अर्थशास्त्र की मूल अवधारणाओं से जुड़े इस पाठ्यक्रम की इस अंतिम इकाई में हम उन परिस्थितियों पर विचार कर रहे हैं जहाँ बाज़ार व्यवस्था संसाधनों का अभीष्ट तक आबंटन कर पाने में विफल रहती है। साथ ही आपको सरकार के आर्थिक क्रियाकलापों से भी परिचित कराया जाएगा। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप कर सकेंगे :

- बाज़ार विफलता परिस्थितियों का सूचीकरण;
- कल्याण अथवा क्षेत्र अर्थशास्त्र की दो मौलिक अवधारणाओं की परिभाषा;
- बाह्यतापूर्ण परिस्थितियों की पहचान और व्याख्या;
- सार्वजनिक पदार्थों की पहचान और विशेषताओं का वर्णन;
- सरकार का राजस्व और व्यय की मदों की व्याख्या और मापन;
- बजट के घाटे के विभिन्न मापकों की समीक्षा; तथा
- बाज़ार ऋणों की व्याख्या।

21.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम दो मुख्य धाराओं पर चर्चा कर रहे हैं। एक हम लोक वित्त की अवधारणों पर बातचीत करना चाहते हैं—यह हमारी इकाई का द्वितीय अर्द्धांश होगा। इसमें सरकार का राजस्व, व्यय, बजट का घाटा और उस घाटे की पूर्ति की विधियों पर बातचीत की जाएगी। दूसरे शब्दों में, हमारा सरोकार सरकार द्वारा कर–संग्रह, उसका प्रयोग तथा घाटा रहने पर उसे पूरा करने के लिए अपनाए गए तरीकों से होगा। इकाई का प्रथम अर्द्धांश हमारे इसी अध्याय के प्रारंभिक खंडों में चर्चित व्यष्टि अर्थशास्त्र की कुछ अवधारणाओं के और आगे विकास से जुड़ा है।

21.2 बाज़ार की विफलता

इस पाठ्यक्रम में हमने बाज़ार व्यवस्था की कार्य–प्रणाली तथा उसके विभिन्न स्वरूपों; जैसे कि पूर्ण प्रतियोगिता एकाधिकार और एकाधिकारी प्रतियोगिता पर काफी विस्तार से बातचीत की थी। इस इकाई के वर्तमान भाग में हम उन परिस्थितियों का निरूपण कर रहे हैं जहाँ बाज़ार व्यवस्था संसाधनों की उपयुक्त आबंटन कर्त्री सिद्ध नहीं हो पाती। कुछ ऐसे हालात होते हैं जिनके अंतर्गत बाज़ार स्वमेव ही सभी संसाधनों का सबसे अच्छा 'बँटवारा' कर देता है। इन परिस्थितियों पर हम अभी शीघ्र ही विचार करेंगे। वैसे अनेक अध्येताओं का मत है कि शर्तें बहुत ही कठिन होती हैं। इनकी सहजपूर्ति संभव नहीं हो पाती। हाँ यह बात सभी को स्वीकार्य है कि यदि ये शर्तें पूरी हो रही हों तो फिर बाज़ार के साथ किसी प्रकार की छेड़खानी करने से बचना ही बेहतर होता है।

ये शर्तें क्या हैं? सबसे पहली बात तो यही है कि पूर्ण प्रतियोगिता विद्यमान हो। इसका अर्थ होगा कि कोई भी क्रेता या विक्रेता बाज़ार कीमत को अपने व्यवहार से प्रभावित नहीं कर पाएगा। बाज़ार से जुड़ी जानकारी व्यापक रूप से बिना लागत से सर्वसुलभ होगी। दूसरी बड़ी शर्त है कि बाध्यताएँ अनुपस्थित रहें। हम बाध्यताओं और उनके प्रभावों के बारे में भाग 21.4 में विस्तार से चर्चा करेंगे। पर यहाँ इतना जान लेना पर्याप्त रहेगा कि बाह्यताओं के कारण किसी एक आर्थिक इकाई के व्यवहार से अन्य इकाइयों को मनचाहे ही कुछ लाभ हो सकते हैं या लागतें प्रतिफलों से जुड़ी हैं। हम मानते हैं कि उत्पादन प्रक्रिया में वृद्धिमान प्रतिफल नहीं होंगे। इस बारे में ही हमने उत्पादन फलन से जुड़ी इकाई में बात की थी। पर इस अवधारणा को एक बार दोहराना उचित ही रहेगा।

पैमाने के प्रतिफलों से हमारा तात्पर्य उत्पादक साधनों का प्रयोग एक साथ एक अनुपात में बढ़ाने पर उत्पादन पर पड़े प्रभावों से है। यदि उत्पादन साधन वृद्धि के अनुपात से अधिक अनुपात में बढ़ें तो हम इसे पैमाने के वृद्धिमान प्रतिफल कहते हैं। यदि सभी साधनों का प्रयोग दुगुना करने से उत्पादन दुगुने से अधिक हो जाए तो यही स्थिति मानी जाएगी। इस स्थिति में ऐसी चिन्ताजनक बात क्या है? वास्तव में वृद्धिमान प्रतिफलों के परिणामस्वरूप सभी संसाधनों के प्रतिफलों का भुगतान कर देने पर भी कुछ न कुछ बच रहता है। यह सामान्य से अधिक लाभ की ओर संकेत करता है इस दशा में पूर्ण प्रतियोगिता का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

यहाँ मुख्य बात यह है कि पूर्ण प्रतियोगिता अर्थशास्त्रियों द्वारा रचित क्षेमशास्त्र की अति महत्त्वपूर्ण कसौटी के सफल रहने की एक शर्त है। आर्थिक रचनाओं में इस कसौटी को "पैरेटा अभीष्टता" का नाम दिया गया है। आइए इसका अर्थ समझने का प्रयास करें। ऐसा कोई परिवर्तन जो किसी को निकृष्टता की ओर धकेले बिना ही किसी अन्य व्यक्ति को लाभान्वित कर रहा हो, "पैरेटो उत्कृष्ट" परिवर्तन कहा जाता है। क्षेम अर्थशास्त्र के दो वक्तव्य है, जिन्हें 'क्षेमशास्त्र के मूलभूत प्रमेय' कहा जाता है। पहला प्रमेय है : एक पूर्ण प्रतियोगी अवस्था पैरोटो अभीष्ट है। दूसरा प्रमेय है : किसी भी 'पैरोटो अभीष्ट' अवस्था को किसी पूर्ण प्रतियोगी अवस्था के समतुल्य निरूपित किया जा सकता है। अतः लगता है कि पैरेटो अभीष्टता और पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार के संतुलन के बीच कोई न कोई गहन संबंध अवश्य है। पैरेटो अभीष्टता स्वतः ही साधनों की बरबादी से बचते हुए उन्हें कुशलतम ढंग से विभिन्न वैकल्पिक प्रयोजनों में आबंटित कर देती है।

बोध प्रश्न 1

1) बाज़ार किन शर्तों के अंतर्गत संसाधनों का श्रेष्ठतम आबंटन कर पाता है?

....

....

....

....

2) पैरेटो अभीष्टता का विचार समझाइए। कोई अवस्था किसी अन्य की तुलना में पैरेटो उत्कृष्ट कब होती है?

....

....

....

....

....

3) क्षेमशास्त्र के दो नियम बताइए।

....

....

....

....

....

21.3 सार्वजनिक पदार्थ

सार्वजनिक पदार्थों के नाम से अक्सर यह भ्रम होता है कि इन आपूर्ति सरकारी या सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा की गई है। पर यह सदैव सत्य नहीं होता। यह तो ठीक है अधिकांश सार्वजनिक पदार्थों की व्यवस्था सरकार ही करती है। पर आगे चलकर हम उन कारणों की समीक्षा करेंगे जिनके प्रभावस्वरूप निजी क्षेत्र द्वारा भी सार्वजनिक पदार्थों की आपूर्ति हो जाती है। यदि कोई पदार्थ दो विशेषताओं से युक्त हो तो भले ही सरकार ने उनकी व्यवस्था नहीं की हो, हम उसे सार्वजनिक पदार्थ ही मानेंगे। ये दो विशेषताएँ हैं : उपभोग या प्रयोग में प्रतिद्वंद्विता का अभाव तथा अन–अपवर्जन। आइए इनके अभिप्राय को स्पष्ट रूप से समझ लें।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

उपभोग में अ-प्रतिद्वंद्विता

इस विचार का सरल सा अर्थ है कि उत्पादन की मात्रा निश्चित होते हुए भी एक व्यक्ति द्वारा इन पदार्थों के उपभोग समाज के अन्य सदस्यों के लिए उपलब्ध परिमाण में कोई कमी नहीं आती। दूसरे शब्दों में, किसी पदार्थ में उपभोग की अप्रतिद्वंद्विता का गुण विद्यमान होगा। यदि उसके उत्पादन के बाद अनेक व्यक्तियों द्वारा उसका पूरा–पूरा उपभोग करते हुए भी उसकी मात्रा कम नहीं हो। आइए कुछ उदाहरणों पर ग़ौर करें। सर्दी की ठिठुरती शाम को आप आग जलाकर सेक रहे हैं। यदि आपका कोई मित्र भी साथ आकर बैठ जाए तो आपको मिट रहे ताप में कोई कमी नहीं आएगी। राष्ट्रीय सुरक्षा तो इस प्रकार की अप्रतिद्वंद्विता का एक बहुत ही सटीक उदाहरण है। देश के एक व्यक्ति द्वारा सुरक्षा की अनुभूति अन्य देशवासियों की सुरक्षा अनुभूति को कम नहीं करती। यह सच है कि सीमावर्ती क्षेत्रों के निवासियों को बाहरी हमले की विभीषिका अधिक झेलनी पड़ती है, पर उनकी सैन्य सुरक्षा की व्यवस्था करने से शेष देश की सुरक्षा भी अपने आप सुनिश्चित हो जाती है अतः यहाँ उपभोग में प्रतिद्वंद्विता नहीं होती। प्रदूषण नियंत्रण तथा अनेक जन–स्वास्थ्य कार्यक्रम भी इसी प्रतिद्वंद्विता विहीनता के अन्य सटीक उदाहरण हैं।

वैसे सामान्यतः हम अर्थशास्त्र में उन्हीं वस्तुओं की चर्चा अधिक करते हैं जिनके उपभोग में प्रतिद्वंद्विता होती है। यदि कमीज़ों के उत्पादित स्टॉक में से एक व्यक्ति एक कमीज़ ले ले तो अन्यों के लिए उपलब्ध संख्या में एक की कमी हो जाती हैं। ऐसे प्रतिद्वंद्वितापूर्ण पदार्थों के आबंटन या राशन की व्यवस्था करनी पड़ती है। पर प्रतिद्वंद्विता मुक्त पदार्थों

का लेकर ऐसी कोई समस्या नहीं उठती। आपको ध्यान होगा कि प्रतिद्वंद्वितापूर्ण पदार्थों के आबंटन की व्यवस्था बाज़ार तंत्र माँग और पूर्ति के माध्यम करता है।

अन-अपवर्जन

यह सार्वजनिक पदार्थों का दूसरा गुण है। इस विचार को स्पष्ट करने के लिए हम अपवर्जन युक्त निजी पदार्थ से तुलना का सहारा लेंगे। एक निजी पदार्थ जैसे कि एक सेब का फल लीजिए। यदि आप उस सेब को खा लेते हैं तो फिर कोई अन्य व्यक्ति उसी सेब को नहीं खा पाता। अतः अन्य सभी लोग उसके उपभोग से अपवर्जित हो गए— वंचित हो गए। अतः किसी निजी पदार्थ का उपभोग इस प्रकार सीमित रखा जा सकता हैं। दूसरी ओर किसी सार्वजनिक पदार्थ के उपभोग को लेकर इस प्रकार की अपवर्जना प्रायः संभव नहीं हो पाती। यदि अपवर्जना का प्रयास किया जाता है तो उसकी लागत बहुत भारी आती है। उन पदार्थों का लाभ कुछ ही व्यक्तियों तक सीमित रख पाना बहुत मँहगा रहता है। कोई भी व्यक्ति उन पदार्थों का उपभोग कर ही लेता है, चाहे वह उनके लिए कीमत चुकाए या नहीं। अर्थशास्त्री इस संदर्भ में प्रकाश–स्तंभ का उदाहरण देते हैं। आस–पास से गुजरने वाले जलयानों को प्रकाश स्तंभ से प्राप्य दिशा ज्ञान का लाभ उठाने से रोक पाना संभव नहीं होता। यही नहीं, एक जलयान द्वारा स्तंभ के प्रकाश से लाभ उठा लेने पर अन्य यानों के लिए उपलब्ध प्रकाश राशी किसी प्रकार से कम नहीं होती। अतः इस प्रकाश स्तंभ में सार्वजनिक पदार्थ के दोनों गुण विशेष विद्यमान होते हैं : अप्रतिद्वंद्विता और अनापवर्जन।

इन दोनों गुणों के बीच भेद को ठीक से ध्यान में रखना बहुत महत्त्वपूर्ण है। प्रतिद्वंद्विता का अर्थ है एक व्यक्ति द्वारा उपभोग से अन्यों के लिए उपलब्ध परिमाण में कमी नहीं आती। फिर भी कई बार प्रतिद्वंद्विता नहीं होने पर भी संभव हो जाता है कि कुछ व्यक्तियों को उपभोग से वंचित कर दिया जाए। केवल टेलीविज़न इसका एक अच्छा उदाहरण है। जो कार्यक्रम केबल पर चल रहा है, उसे एक व्यक्ति द्वारा देखे जाने से अन्यों को उपलब्धिता पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता। किन्तु जो लोग केबल तंत्र के संचालक को भुगतान नहीं करते, वह उनके कनेक्शन काटकर उन्हें कार्यक्रम देखने से रोक (अपवर्जित) कर सकता हैं। जिनके पास टेलीविज़न यंत्र नहीं हो। अथवा जो किसी चैनल का चंदा नहीं भरते हों, उन्हें प्रसारित कार्यक्रम देखने को नहीं मिल पाते। ध्यान रहे कि यहाँ दर्शनीय कार्यक्रमों के परिमाण में कोई कमी नहीं आ रही। दूसरा उदाहरण किसी सिनेमाघर का लिया जा सकता है। जो लोग अन्दर बैठे हैं वे तो समान रूप से चलचित्र का आनंद उठा सकते हैं। पर जिन्होंने टिकट नहीं खरीदे वे इस आनंद की अनुभूति से अपवर्जित या वंचित रह जाते हैं। यहाँ भी चलचित्र एक अप्रतिद्वंद्विता पूर्ण पदार्थ तो है पर यह अनापवर्जन युक्त नहीं है। उन्हीं पदार्थों को हम विशुद्ध सार्वजनिक पदार्थ कहते हैं जिनमें अप्रतिद्वंद्विता और अनापवर्जन दोनों ही विशेषताएँ विद्यमान हों। वैसे सार्वजनिक पदार्थ कहलाने के लिए कम से कम अप्रतिद्वंद्विता का गुण तो होना ही चाहिए। हमारे उपर्युक्त उदाहरणों में प्रतिद्वंद्विता का अभाव होते हुए भी अपवर्जन की संभावना विद्यमान है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

क्लबीय पदार्थ, भीड़ और अशुद्ध सार्वजनिक पदार्थ

हमने पिछले अनुच्छेद में ही कहा है कि विशुद्ध सार्वजनिक पदार्थों में दोनों ही घोषित लक्षण होने चाहिए। पर अनेक अवस्थाओं में अप्रतिद्वंद्विता के बाद भी अपवर्जन संभव होता है। जैसा कि केबल टेलीविज़न, सिनेमाघर आदि के विषय में हमने कहा ही है। ऐसे पदार्थों को क्लबीय पदार्थ कहा जा सकता है। यह बात किसी क्लब से सदस्यों पर लागू होने वाली सी लगती है। उन सदस्यों को समान रूप से क्लब की सुविधाएँ प्राप्य होती हैं-- उनका उपभोग साँझा होता है। पर जो व्यक्ति क्लब के सदस्य नहीं होते उन सुविधाओं के उपभोग से वंचित रह जाते हैं। इसीलिए उन सार्वजनिक पदार्थों को जिनमें प्रतिद्वंद्विता नहीं होती पर अपवर्जन संभव हो उन्हें क्लबीय पदार्थ कहा जाता है।

अशुद्ध सार्वजनिक पदार्थों का भी अपना विशिष्ट वर्ग है। इनके उपभोग में प्रतिद्वंद्विता तो स्पष्ट रूप से होती है पर अपवर्जन प्रायः असंभव या बहुत ही महँगा रहता है। इसका बहुत अच्छा उदाहरण एक भीड़ भरी सड़क है। एक व्यक्ति द्वारा अपना वाहन चलाने से अन्यों को सड़क का प्रयोग करने से रोका नहीं जा सकता पर उस वाहन द्वारा घेर लिया गया सड़क का क्षेत्र उसी समय पर किसी और द्वारा प्रयोग नहीं हो सकता। अतः सड़क क्षेत्र निश्चित रूप से प्रतिद्वंद्विता पूर्ण पदार्थ है। यही बात सागर–तट पर भी लागू होती हैं। कोई व्यक्ति अन्य लोगों को सागर–तट की सीमा निहारने से नहीं रोक सकता। किन्तु बहुत भीड़ हो जाने पर प्रत्येक व्यक्ति को उपलब्ध तट–प्रदेश का क्षेत्र तो सीमित ही रह जाता है। अतः सागर–तट भी एक प्रतिद्वंद्विता युक्त पदार्थ होगा। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि भीड़भाड़ भरे क्षेत्र भी अशुद्ध सार्वजनिक पदार्थ हैं पर इनकी प्रकृति क्लबीय पदार्थों से बिल्कुल विपरीत होती है। इनमें प्रतिद्वंद्विता अवश्य होती है पर अपवर्जन प्रायः नगण्य ही रहता है।

सार्वजनिक पदार्थों पर चर्चा को आगे बढ़ाने से पूर्व इनके प्रकार भेद या वर्गों पर एक दृष्टिपात अच्छा रहेगा। एक चरमसीमा पर तो हम विशुद्ध सार्वजनिक पदार्थों को रखते हैं— इनमें अप्रतिद्वंद्विता और अनापवर्जन, दोनों ही गुण विद्यमान होते हैं। मध्यवर्ती क्षेत्र में वे अशुद्ध सार्वजनिक पदार्थ आते हैं जिनमें अप्रतिद्वंद्विता और अनापवर्जन में से एक ही गुण होता है। जिन पदार्थों में ये दोनों ही गुण नहीं होते, उन्हें तो हम निजी पदार्थ ही कहते हैं— सार्वजनिक नहीं। अनापवर्जन और अप्रतिद्वंद्विता के लक्षणों की विद्यमानता के आधार पर विभिन्न संभावनाओं को हम निम्न तालिका द्वारा भी दिखा सकते हैं :

प्रतिद्वंद्विता एवं अपवर्जन	अप्रतिद्वंद्विता तथा अपवर्जन
प्रतिद्वंद्विता और अनापवर्जन	अप्रतिद्वंद्विता एवं अनापवर्जन

DIKSHANT IAS

सार्वजनिक पदार्थों की व्यवस्था अथवा आपूर्ति

Call us @7428092240

निजी क्षेत्र आमतौर पर सार्वजनिक पदार्थों की आपूर्ति ठीक से नहीं कर पाता। इसका मुख्य कारण यही है कि लोगों को इनके उपभोग से अपवर्जित नहीं किया जा सकता और इसी के कारण उनसे कीमत वसूल कर पाना सरल नहीं रहता। अतः निजी उद्यमियों को इन पदार्थों की व्यवस्था करने का कोई उत्साह नहीं होता।

यदि सिद्धांत रूप से कुछ लोगों का अपवर्जन संभव हो तो भी उपभोग में प्रतिद्वंद्विता का अभाव उस अपवर्जन को बेहद खर्चीला बना देता है। उस वस्तु का उत्पादन होने के बाद किसी अतिरिक्त व्यक्ति को वह पदार्थ सुलभ कराने की सीमांत लागत शून्य हो जाती है। सामाजिक सार्वजनिक पदार्थों के विषय में यह अनापवर्जन आबंटन क्षमता की दक्षता को बहुत ही कम कर देता है। निजी पदार्थों की अपेक्षा यह स्थिति बहुत ही अलग होती है उनका तो वही व्यक्ति उपभोग कर पाते हैं जो कीमत चुका रहे हों। जहाँ सार्वजनिक प्रबंध करने की बात हो वहाँ भी इसी अनापवर्जन के कारण एक गंभीर समस्या पैदा हो जाती है। इसे ''मुफ्तखोरी' की समस्या कहते हैं। उदाहरण के लिए किसी रिहायशी क्षेत्र में आन्तरिक सुरक्षा व्यवस्था की बात ही लें। यदि यह व्यवस्था आरंभ हो जाती है तो इसके लिए आवश्यक चन्दा नहीं देने वाले घर के निवासियों को सुरक्षा से वंचित रख पाना संभव नहीं होता। कुछ न कुछ परिवार मुफ़्त में ही उस व्यवस्था से लाभान्वित होते रहते हैं। इस कारण से मुफ्तखोरी को बढ़ावा मिलता और लोगों के खर्च पर फायदा उठाने की प्रवृत्ति बलवती होती है। पर यदि बहुत अधिक लोग इसी दिशा में प्रवृत्त हो जाएँ तो फिर इस सुविधा के लिए वित्तीय प्रबंध कर पाना संभव कर पाना संभव नहीं रहता। इसी कारण से जहाँ भी उपभोगक्ताओं के चन्दे से सार्वजनिक सुविधाओं की व्यवस्था का प्रश्न उठता है, वे सुविधा प्रारंभ ही नहीं हो पातीं। उनकी आपूर्ति सदैव आवश्यकता से कम रहती है।

एक प्रतियोगी बाज़ार में उत्पादन को उस स्तर तक पहुँचा दिया जाता है जहाँ माँग और

पूर्ति समान हो, वही बिन्दु निजी पदार्थों के लिए अभीष्ट उत्पादन स्तर कहलाता है। ऐसे बाज़ारों में माँग–वक्र सीमांत सामाजिक हितलाभ वक्र का रूप धारण कर लेता है (MSB) और पूर्ति–वक्र को सीमांत सामाजिक लागत (MSC) का पर्याय माना जाता है।

हमारी पिछले अनुच्छेद की मान्यताएँ तभी उचित सिद्ध होती हैं जबकि समाज के अर्थतंत्र में बाध्यताएँ नहीं हों। यदि सार्वजनिक पदार्थ के उत्पादन का प्रश्न हो तो भी इसे उस बिन्दु तक बढ़ाया जाना चाहिए जब MSB = MSC। किन्तु समस्या यह है कि सार्वजनिक पदार्थों की समग्र माँग–वक्र निजी माँगों के क्षैतिज योग के समान नहीं होती। यहाँ तो सारे व्यक्ति सार्वजनिक पदार्थ की सभी इकाइयों का एक साथ उपभोग कर सकते हैं क्योंकि इनके उपभोग में प्रतिद्वंद्विता नहीं होती।

चित्र 21.1

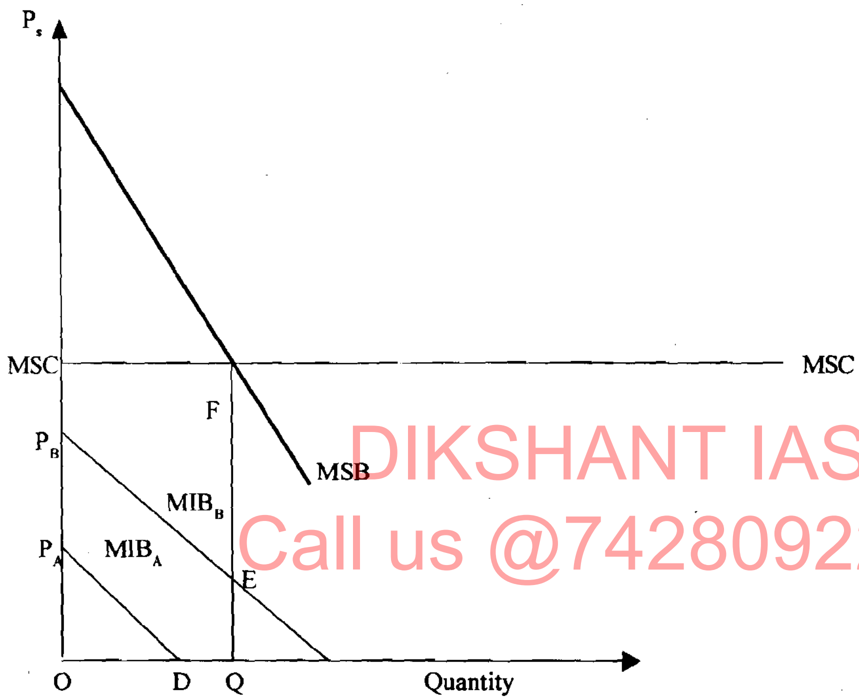

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

चित्र 21.1 में हम वैयक्तिक माँग-वक्रों के ऊर्ध्व योग द्वारा सामाजिक पदार्थों की माँग-वक्र की रचना कर रहे हैं।

सुविधा के लिए हम केवल दो व्यक्तियों की कल्पना कर रहे हैं। उनकी अपनी–अपनी माँग–वक्र क्रमशः MIB_A तथा MIB_B हैं। सामाजिक माँग–वक्र MSB की रचना उन दोनों वक्रों को एक के ऊपर एक जोड़कर की गई है (ऊर्ध्व योग इसी को कहते हैं)। सुविधा की दृष्टि से ही हमने यह मान लिया है कि आपूर्ति–वक्र अथवा सामाजिक सीमांत लागत–वक्र क्षैतिज हैं। यहाँ Q इकाई उत्पादन के लिए A को प्राप्त MIB=QD तथा B को प्राप्त MIB=QE। अप्रति द्वंद्व के कारण ये दोनों ही सारा–सारा उत्पादन प्रयोग कर सकते हैं। अतः Q बिन्दु पर MSB=QD+QE=QF। सामाजिक दृष्टि से अभीष्ट उत्पादन OQ रहता है। इसी पर MSB द्वारा MSC का प्रतिच्छेदन होता है। इस बिन्दु से बाईं ओर MSB का स्तर MSC से अधिक रहता है। अतः उत्पादन वृद्धि ठीक प्रतीत होती है। अतः OQ ही अभीष्ट तक उत्पादन स्तर है। यहीं A तथा B के सीमांत हित लाभ सामाजिक सीमांत लागत के समान होते हैं।

हमारा उपर्युक्त विश्लेषण बहुत ही सरल है। हम किन्हीं परिस्थितियों में MSC वक्र को दाहिनी ओर ऊपर उठते हुए भी बना सकते हैं। यदि यह पदार्थ विशुद्ध सार्वजनिक पदार्थ नहीं हो फिर ये भी ज़रूरी नहीं रहता कि सभी व्यक्ति इसकी संपूर्ण मात्रा का ही उपभोग करें (जैसे कि शिक्षा)।

वास्तव में व्यक्तियों की निजी हित लाभ–वक्र की रचना कर पाना भी सरल नहीं होता। यदि व्यक्तियों की संख्या बहुत विशाल हो तो समस्याएँ भी उतनी ही गहन और जटिल हो जाती हैं। अक्सर व्यवहारिक दृष्टि से समाज के सभी व्यक्तियों की ओर से अफसर और नेता मिलकर सार्वजनिक पदार्थों के वितरण के स्वरूप और सामाजिक लागतों का न्यूनाकलन या फिर हित लाभों का अधिमूल्यन (या दोनों ही) होने की संभावना अधिक रहती है। परिणामस्वरूप सामाजिक पदार्थों का आवश्यकता से अधिक उत्पादन और उसी के कारण शुद्ध सामाजिक हानि की संभावना बन जाती है।

सामाजिक पदार्थों की आपूर्ति से जुड़ी एक और समस्या उनकी समान कीमत से जुड़ी है। मान लो कि एक अप्रतिद्वंद्वितापूर्ण पर अपवर्जनीय पदार्थ है। सरकार सामाजिक अभीष्टता की नीति के आधार पर उस पदार्थ की MSB=MSC स्तर पर आपूर्ति का प्रावधान करती है। सरकार सभी उपभोक्ताओं से इस सेवा की एक ऐसी कीमत वसूल करना चाहती है जिस पर कि वे सभी इस सेवा का पूरा–पूरा उपभोग करें। ऐसी दशा में प्रायः सभी उपभोक्ता अपनी क्षमता से अधिक खरीदारी करने को उत्सुक दिखाई पड़ते हैं। कोई भी किसी से कम खरीदारी करने को तैयार नहीं होता। हम यही बात चित्र 21.2 में दिखा रहे हैं।

चित्र 21.2

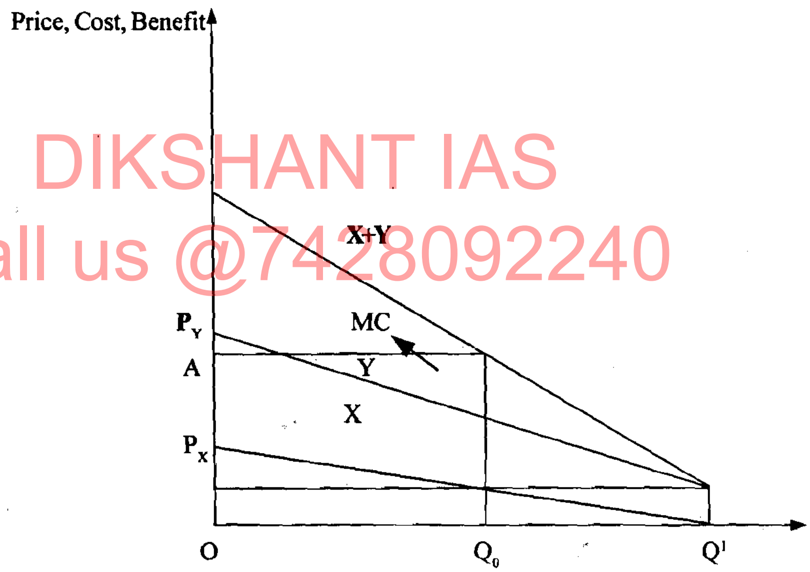

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

हम यहाँ भी दो व्यक्तियों X तथा Y का उदाहरण ले रहे हैं उनके लिए वस्तु। सेवा का सीमांत मान क्रमशः X तथा Y रेखा द्वारा दर्शाया गया है। इस सेवा की प्रत्येक इकाई का दोनों ही पूरा–पूरा प्रयोग कर सकते हैं। अतः सामाजिक सीमांत मूल्यमान X+Y रेखा द्वारा दिखाया जा सकता है। यदि सीमांत लागत OA स्थिर हो तो MSB=MSC संतुलन दर्शाएगा। सामाजिक दृष्टि से X+Y वक्र का OA ऊँचाई की क्षैतिज रेखा से प्रतिच्छेदन ही संतुलन बिन्दु होगा। X को OQ_0 मात्रा का उपभोग करने को प्रोत्साहित करने के लिए कीमत OP_X होनी चाहिए, किन्तु इस कीमत पर Y व्यक्ति OQ_1 मात्रा का दावेदार बन जाएगा। अतः सभी से एक कीमत वसूलने के प्रयास में हमें कुल आपूर्ति से अधिक माँग की जटिलता का सामना करना पड़ सकता है। यहाँ समस्या का एक ही समाधान हो सकता है कि किसी न किसी तरह X से OP_X तथा Y से OP_Y कीमत वसूल की जाए। तभी दोनों OQ_0 मात्रा का प्रयोग करेंगे। यह वही उत्पादन स्तर है जो कि MSB=MSC द्वारा निर्धारित हुआ था। इस उत्पादन स्तर पर उत्पादन की सारी लागतें भी पूरी हो जाती हैं क्योंकि स्थिर सीमांत लागत का अर्थ है MC=AC। यही OP_X+OP_Y के भी समान हो जो समग्र औसत आगम तो दर्शाता है। यह संतुलन जहाँ व्यक्तियों को निजी सीमांत हित लाभ

(MIB) के समान कीमत चुकानी पड़े तथा समग्र उगाही से उत्पादन की सारी लागतें भी पूरी हो जाएँ 'लिडॉल संतुलन' के नाम से जाना जाता है। किन्तु यहाँ भी व्यक्तियों की वास्तविक वरीयताओं तथा प्रतिक्रियाओं को ठीक से जान पाने की *समस्या* बनी रहती है। इस समस्या को *माँग अभिव्यक्ति प्रक्रिया* की रचना की समस्या कहा जाता है। कुछ अर्थशास्त्रियों ने "अभिप्रेरणा संगत प्रक्रिया" की रचना की विधियाँ भी सुझाई हैं वहाँ आत्मकेंद्रित व्यक्ति भी अपनी वास्तविक वरीयताएँ प्रकट करने को प्रेरित हो जाते हैं।

विशिष्ट (गुण संपन्न) पदार्थ

अभी तक हमने जिन निजी, शुद्ध और अशुद्ध सार्वजनिक पदार्थों की चर्चा की है उनका एक साँझा गुण यह रहा है कि उपभोग करने न करने का अंतिम फैसला उपभोक्ता ही करता था। यहाँ तक कि मुफ़्तखोर भी उस सेवा से लाभ न उठाने को स्वतंत्र रहता था। किन्तु सैन्य प्रतिरक्षा आदि कुछ ऐसे मामले भी हैं जहाँ सार्वजनिक सुविधा के 'उपभोग' के विषय में व्यक्तियों को निर्णय लेने की 'स्वतंत्रता' इतनी निर्बाध नहीं होती।

अतः ऐसी परिस्थितियाँ भी होती हैं जहाँ कोई बाह्य संस्था (सरकार) यह निर्धारित कर देती हैं कि ये पदार्थ उपभोग के योग्य हैं और सभी को इनका उपभोग करना ही होगा। ऐसे पदार्थों को हम विशिष्ट (गुण संपन्न) पदार्थों का नाम देते हैं। इसका एक उदाहरण तो मोटरसाइकिल की पिछली सीट पर बैठने वालों को भी हेल्मेट पहनकर अपने सिर की सुरक्षा करने का आदेश ही है। ये हेल्मेट निजी पदार्थ हैं पर जब सरकार इनको पहनना आवश्यक बना देती है तो ये विशिष्ट पदार्थ भी बन जाते हैं।

अतः विशिष्ट पदार्थ वे हैं जिनका उपभोग किन्हीं सामाजिक हितों के चिन्तन के आधार पर किया जाता है। ये सामाजिक तकाजों से प्रतिबिंबित होते हैं और प्रायः निजी 'हित' को सामाजिक या बृहतरहित के 'अधीनस्थ' स्तर पर पहुँचा देते हैं। यह एक निहित मान्यता है कि दीर्घकाल तक साथ–साथ रहने से जाते हैं। आधुनिक लोकतांत्रिक सरकारों को इन सांझी सामाजिक वरीयताओं का प्रतिनिधि माना जाता है। कई बार विशिष्ट पदार्थों के संबंध में पितृभाव भी दिखाई देता है। ये पदार्थ सरकार ही नहीं निजी संस्थाएँ भी प्रदान कर सकती हैं। ऐसा उस समय होता है जब कोई संस्था किसी वस्तु का प्रयोग 'आवश्यक' समझ कर नकदी नहीं वस्तु रूप में ही उसे सभी को दानस्वरूप उपलब्ध कराना प्रारंभ कर दे।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

21.4 बाह्यताएँ

बाह्यताओं का शाब्दिक अर्थ है बाहर से या बाहरी। यह ऐसी स्थिति है जिसमें कोई उत्पादक या उपभोक्ता किसी अन्य आर्थिककर्ता की गतिविधियों से अनायास ही प्रभावित हो जाता है। जहाँ किसी कर्ता के कार्य से अन्य लोगों का क्षेम स्तर प्रभावित (दुष्प्रभावित) होता हो उसे हम बाह्यतापूर्ण स्थिति कहते हैं।

बाह्यताएँ किन्हीं कार्यों के अतिरिक्त प्रभावों की तरह होती हैं। इनके उदाहरण अनेक हैं। किसी व्यक्ति को रोग प्रतिरोधक टीकाकरण से लाभ होता है।

उसके आस–पास रहने वालों को भी लाभ है क्योंकि उन्हें उस व्यक्ति के माध्यम से रोग के संक्रमण का जोखिम नहीं रहता। यह अप्रत्यक्ष लाभ ही बाह्यता है।

उत्पादन में भी बाह्यता आ जाती है। एक उद्योग अपने कर्मचारियों में प्रशिक्षण पर बहुत व्यय करता है। बाद में कुछ कर्मचारी किसी दूसरे उद्यम में चले जाते हैं तो यह (दूसरा) उद्यम भी उन कर्मचारियों की अधिक कुशलता से लाभान्वित होता रहता है। इसी तरह एक अन्य बहुचर्चित उदाहरण रहा है उस मधुमक्खी पालक का, जो किसी सेबों के बाग के पास अपना अड्डा बना लेता है। ये मक्खियाँ फूलों से मकरंद संग्रह कर मधु का निर्माण

करती हैं। यदि बाग का मालिक अपने पौधों की देख–रेखकर अधिक व्यय करता है तो मधु का उत्पादन भी एक अतिरिक्त प्रभाव की तरह से स्वतः ही बढ़ जाता है। यहाँ मधुमक्खी पालक को बाह्यताओं का लाभ होता है।

बाह्य लागतें भी हो सकती हैं। प्रदूषण तो एक स्पष्ट–सा उदाहरण है। किसी कारखाने का धुआँ आस–पास रहने वालों को श्वास तंत्र के रोगों से आक्रांत कर सकता है तो उसकी गंदगी का प्रवाह साथ बहने वाली नदी के जल को जहरीला बनाकर मछलियों का विनाश कर सकता है। यही नहीं उस नदी की मछलियाँ खाने वाले लोग भी अनेक व्याधियों के शिकार हो सकते हैं। इस प्रकार यह कारखाना अन्य लोगों पर बाह्य लागतें थोप देता है। कई बार हम मनोवैज्ञानिक प्रभावों को भी बाह्यताओं में सम्मिलित कर लेते हैं। आपके सुन्दर उपवन को देख आपका पड़ौसी होने के नाते मैं भी खुश हो सकता हूँ। तो रात को बहुत तेज़ स्वर में संगीत का "शौक फ़रमाते" हुए मैं आपकी नींद और चैन भी हराम कर सकता हूँ। इन दोनों ही उदाहरणों में बाह्यताएँ हैं– मेरे लिए बाह्य लाभ आपके लिए बाह्य लागत।

सार्वजनिक पदार्थों और बाह्यताओं में किस प्रकार के संबंध होते हैं? एक दृष्टि से दोनों में बहुत साम्य दिखाई देता है– दोनों में ही उपभोग या प्रयोग में प्रतिद्वंद्विता विहीनता विद्यमान होती है। हमने टीकाकरण का उदाहरण दिया था। यहाँ भी एक व्यक्ति का टीकाकरण अन्यों द्वारा रोग जोखिम घटाने की संभावनाओं को कम नहीं करता। अतः इसमें भी किसी न किसी प्रकार की प्रतिद्वंद्विता विहीनता दिखाई पड़ ही जाती है। अतः सार्वजनिक पदार्थों और बाह्यताओं में संबंध अवश्य है। हाँ, इतना ध्यान रखना आवश्यक है कि सभी सार्वजनिक पदार्थ बाह्यताओं को जन्म दे सकते हैं पर सभी बाह्यताओं का सार्वजनिक पदार्थों के ही कारण से सृजित होना आवश्यक नहीं होता। हमारे उपर्युक्त उदाहरणों में सार्वजनिक पदार्थों ने उपयोग की बाह्यताओं को जन्म दिया है, अतः बाह्यताओं की उपस्थिति सार्वजनिक पदार्थों का एक आवश्यक 'लक्षण' दिखाई देता है। किन्तु बाह्यताएँ तो निजी क्षेत्र (सेब का बाग और मधु का उत्पादन) जैसी स्थितियों में भी सृजित हो जाती है। अतः सार्वजनिक पदार्थ की विद्यमानता बाह्यताओं के अस्तित्व की आवश्यक पूर्वशर्त नहीं हो सकती।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बाह्यताओं की समस्या का सामना कैसे करें?

बाह्यताओं की समस्याओं से निपटने के दो तरीके रहे हैं। एक तरीके में तो बाज़ार व्यवस्था को तिलांजली देना नहीं बल्कि उसकी सामान्य कार्यप्रणाली में इन्हें भी स्थान प्रदान करना है। दूसरा परंपरागत तरीका बाज़ार की सीमा से बाहर निकलकर कराधान के माध्यम से लागतों को आत्मसात् करना है। यह दूसरा तरीका ब्रिटिश अर्थशास्त्री ए.सी. पीगू ने बहुत ही ज़ोर–शोर से सुझाया है।

पीगू के समाधान को ठीक से समझने के लिए उनके बाह्यता विषयक विवेक को समझ लेना आवश्यक है। इस दृष्टि से उपभोग और उत्पादन की बाह्यताओं का सकारात्मक एवं नकारात्मक वर्गों में विभाजन उचित प्रतीत होता है। अतः बाह्यताएँ चार प्रकार की होंगी :

1) उपभोग में सकारात्मक बाह्यताएँ– जैसे कि टीकाकरण;
2) उपभोग में नकारात्मक बाह्यताएँ– तेज़ संगीत;
3) उत्पादन में सकारात्मक बाह्यताएँ– कागज़ मिल द्वारा नदी में गंद बहाना;
4) उत्पादन में सकारात्मक बाह्यताएँ– मधुमक्खी पालक और बाग।

आइए, अब योग के तर्कों पर विचार करें। उनका मुख्य आग्रह है कि बाह्यताओं की उपस्थिति में यदि पूर्ण प्रतियोगिता हो भी तो साधनों के आबंटन पैरेटो अभीष्टता नहीं आ पाती। इस विचार को समझने के लिए लागतों और हित लाभों के निजी एवं

सार्वजनिक/सामाजिक स्वरूपों के भेद को जान लेना आवश्यक है। बाह्यताओं के कारण सामाजिक एवं निजी लाभ तथा लागतें परस्पर साम्य की स्थिति से परे चली जाती हैं। सामाजिक लाभ (लागत) निजी तथा बाह्य लाभों (लागतों) का योग बन जाते हैं। इन संबंधों के निरूपण के लिए निम्न सूत्रों का प्रयोग किया जा सकता है :

MPC = सीमांत निजी लागत

MEC = सीमांत बाह्य लागत

MSC = सीमांत सामाजिक लागत

$\therefore$ MSC = MPC + MEC

इसी प्रकार

MPB = सीमांत निजी हित लाभ

MEB = सीमांत बाह्य हित लाभ

MSB = सीमांत सामाजिक हित लाभ

$\therefore$ MSB = MPB + MEB

कुल मिलाकर दक्षता का तकाज़ा रहता है कि MSC और MSB समान हों। यदि MSB > MSC तो उत्पादन बढ़ाना श्रेयस्कर होगा।

आइए, अब बाह्यताओं के एक समाधान पर विचार करें। इसमें बाज़ार व्यवस्था को नकारा नहीं जाता। इस विचार के प्रणेता *रोनाल्ड कोस* हैं। कोस के विचार के अनुसार यदि पूर्ण प्रतियोगिता हो तो फिर निजी व्यक्ति आपस की सौदेबाज़ी द्वारा सरकारी हस्तक्षेप के बिना ही बाह्यताओं का समाधान कर सकते हैं (बस लेन-देन की अतिरिक्त लागतें नहीं लगती हों)। पर पीगू का मत है कि उस आर्थिक इकाई पर, जो अन्य लोगों पर बाह्य लागतें थोप रही है, कर लगाए जाने चाहिए। साथ ही जिन लोगों को वे लागतें भुगतनी पड़ रही हों उन्हें संग्रहित कर राशि में से कुछ साहाय्य दिए जाने चाहिए।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

इसके विपरीत कोस का विचार था कि लागते थोंपने वाला व्यक्ति भुक्तभोगियों को मौद्रिक क्षतिपूर्ति प्रदान कर सकता है। इनके अनुसार तो किन्हीं कार्यों के नकारात्मक परिणामों से आशंकित व्यक्ति उन कार्यों को होने से ही रोकने के लिए उनके कर्त्ताओं को 'रिश्वत' या धन देकर भी निश्चंत हो सकते हैं। इस प्रकार कोस का मत है कि लोगों की आपसी सौदेबाज़ी भी बाह्यताजनित समस्याओं का समाधान कर सकती है। उनका यह भी विचार है कि सौदेबाज़ी न केवल आबंटन की दक्षता को पुनःस्थापित कर सकती है। बल्कि वे मानते हैं कि बाह्य प्रभाव किसी रूप से समाज में मान्य सम्पत्ति के अधिकारों की रचना से भी जुड़े हुए हैं। कोस के विचार, कि पूर्ण प्रतियोगिता की दशा में विनिमय लागत शून्य होने पर ऐच्छिक सौदेबाज़ी बाध्यताओं की समस्याओं का समाधान कर सकती है, को अर्थशास्त्री *कोस का प्रमेय* भी कहते हैं। इस विचार के प्रतिमादन पर कोस महाशय को अर्थशास्त्र के नॉबेल पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया जा चुका है।

बोध प्रश्न 2

1) उपयोग में प्रतिद्वंद्विता और अनापवर्जन में भेद करें।

....

....

....

....

....

2) 'अशुद्ध' सार्वजनिक पदार्थ क्या होते हैं?

....

....

....

....

....

3) विशिष्ट 'गुणसंपन्न' पदार्थ क्या होते हैं? क्या ऐसे सभी विशिष्ट पदार्थ सार्वजनिक पदार्थ होते हैं?

....

....

....

....

....

4) बाह्यताएँ क्या होती हैं? बाह्यताओं का सामना करने की पीगू और कोस की विधियों की तुलना करें।

....

....

....

....

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

21.5 सार्वजनिक व्यय

सरकार को अपने कार्यों एवं समाज की व्यवस्था पर अनेक प्रकार के व्यय करने पड़ते हैं। इन सभी खर्चों को सार्वजनिक व्यय कहा जाता है। विश्व के सभी देशों में सार्वजनिक व्यय में वृद्धि की प्रवृत्ति पायी गई है। अनेक अर्थशास्त्री सरकार के लिए अनहस्तक्षेप की नीति के पक्षधर रहे हैं— पर सरकार द्वारा कुछेक प्रकार के व्यय तो आवश्यक ही समझे जाते हैं। धीरे–धीरे सामाजिक क्षेम के विचार प्रायः सभी देशों में सर्वमान्य हो चले हैं और सरकारें धीरे–धीरे सामाजिक क्षेम कार्यक्रम चला रही हैं। रक्षा और प्रशासन पर व्यय भी अनिवार्य हो गए हैं।

21.5.1 सार्वजनिक व्यय संवृद्धि से जुड़ी अवधारणाएँ

सार्वजनिक व्यय से जुड़ी दो प्रमुख अवधारणाएँ हैं। पहली अवधारणा जर्मन अर्थशास्त्री एडोल्फ वैग्नर (1875–1917) की देन है। उन्होंने जर्मन अर्थव्यवस्था के ऐतिहासिक अध्ययन के आधार "सरकारी गतिविधियों की संवृद्धि का नियम" प्रतिपादित किया था। उनका मत रहा है कि विभिन्न स्तरों पर सरकार के दायित्व और कार्यों में निरंतर वृद्धि होती रहती है। सरकारी क्षेत्र का प्रसार अर्थव्यवस्था की अपेक्षा तीव्रतर रहता है। परिणामतः सरकारी व्यय में भी वृद्धि होती है। इस व्यय वृद्धि का मापन कई प्रकार से हो सकता है: (क) सरकार के व्यय के स्तर में प्रत्यक्ष वृद्धि; (ख) सरकारी व्यय और सकल राष्ट्रीय उत्पाद के अनुपात में वृद्धि; तथा (ग) अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र के अनुपातिक अंश में वृद्धि। सरकारी व्यय की प्रत्यक्ष वृद्धि का आकलन भी चालू या फिर स्थिर कीमतों पर किया जा सकता है। जनसंख्या की वृद्धि का हिसाब लगाने के लिए इन आँकड़ों की प्रतिव्यक्ति

आधार पर गणना हो सकती है। वैसे वैग्नर के विश्लेषण से यह स्पष्ट नहीं हो पाया था कि वे किस आधार पर सरकारी कार्यों की संवृद्धि की बात कर रहे थे। *मस्ग्रेव* का विचार है कि सबसे सटीक मापन उल्लिखित 'ग' द्वारा होता है। 'ख' में भी सरकारी व्यय की सकल राष्ट्रीय उत्पाद के प्रति लोचशीलता का आकलन किया जा सकता है।

वैग्नर का नियम मुख्यतः आधुनिक और प्रगतिशील सरकारों पर लागू होता है। उन्होंने स्वयं इस नियम को आधुनिक सरकार की प्रारंभिक गतिविधियों पर मान्य कहा था। उनका विचार था कि आधुनिक औद्योगिक समाज के विकास के साथ–साथ सामाजिक प्रगति का दबाव बढ़ेगा और उद्यमों को भी समाज के प्रति अधिक संवेदनशील होना पड़ेगा। इसी कारण से सार्वजनिक और सरकारी गतिविधियों का प्रसार होगा।

सार्वजनिक व्यय की दूसरी मुख्य अवधारणा के प्रणेता जैक वाइज़मैन और अलान पीकाक हैं– इसे *वाइज़मैन पीकॉक अवधारणा* कहा जाता है। इन्होंने 1890–1955 की अवधि में ब्रिटेन के सार्वजनिक व्यय का अध्ययन करते हुए पाया कि व्यय की वृद्धि निरंतर समान रूप से नहीं होती– इसमें सीढ़ियों की तरह से रह–रहकर उछाल दिखाई पड़ते हैं। इन उछालों का कारण किसी न किसी सामाजिक विपत्ति का सामना करने के लिए सरकार द्वारा अचानक अधिक व्यय करने की विवशता होता है। उनका विचार था कि राजस्व का वर्तमान स्तर इस बढ़े हुए व्यय के लिए पर्याप्त नहीं होता और व्यय की ज़रूरतें पूरा करने के लिए राजस्व संग्रह को बढ़ाने के लिए करों का बोझ भी बढ़ाना पड़ता है। इस अवधारणा का मुख्य मुद्दा असामान्य कारकों एवं कारणों से ही संबद्ध है– पर आज प्रायः सभी देशों में सरकारी व्यय में निरंतर वृद्धि दिखाई पड़ रही है। बकनन और ट्यूल्लोक कस संयुक्त राज्य अमेरिका के अनुभव के आधार पर आग्रह है कि सरकार के व्यय और उत्पादन वृद्धि के बीच प्रायः विसंगति ही रहती है। इसका खर्च बहुत तेज़ी से आगे भागता रहता है। इसके उन्होंने दो कारण बताए हैं। एक तो सरकारी अधिकारियों पर खर्च उनके उत्पादन की तुलना में (निजी क्षेत्र की अपेक्षा) अधिक तेज़ी से बढ़ता है। दूसरे क्षेमकारी गतिविधियों के प्रसार के कारण सरकार से हस्तांतरण आय प्राप्त करने वालों का अनुपात भी बढ़ता जा रहा है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

तो कुल मिलाकर सरकारी गतिविधियों और व्यय में निरंतर वृद्धि के मुख्य कारण क्या हैं? प्रथमतः तो सरकार के परंपरागत कार्यों का ही प्रसार हो रहा था। प्रतिरक्षा पर अधिक ध्यान दिए जाने के कारण रक्षा व्यय में वृद्धि हो रही थी। सरकारी कर्मचारियों के वेतन बढ़ रहे थे। दूसरे, क्षेमकार्यों से जुड़ी सरकारी गतिविधियों के प्रभाव प्रसार में वृद्धि हो रही थी। तीसरे, सरकार द्वारा निवेश में भी भारी वृद्धि देखी गई। चौथे, जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के कारण भी सरकार की व्यय प्रतिबद्धता का प्रसार हुआ है। पाँचवाँ कारण, जनसंख्या के नागरीकरण के कारण जनसुविधाओं पर व्यय में वृद्धि रहा है। फिर छठे, आधुनिक सरकारें अपने व्यय की व्यवस्था के लिए प्रायः उधार ले लेती हैं– इससे उनके व्यय में ब्याज की मद और जुड़ जाती है। और अंत में आजकल आयोजन के माध्यम से देश की अर्थव्यवस्था के सर्वांगीण विकास के दायित्व के कारण भी सरकारी व्यय में अप्रत्याशित वृद्धि पायी जा रही है।

21.5.2 सार्वजनिक व्यय के प्रकार

सरकार अनेक प्रकार के खर्च करती है, उसके व्यय को अनेक प्रकार से वर्गीकृत भी किया जाता है। पर उनकी चर्चा से पूर्व निजी और सार्वजनिक व्यय का अन्तर समझना भी आवश्यक है। क्या दोनों में कोई समानता भी होती है? इतनी समता तो अवश्य है कि निश्चित उद्देश्यों के संदर्भ में दोनों ही व्यय के आधार पर अच्छा प्रतिफल पाना चाहेंगे। निवेश के बारे में तो यह बात विशेषकर लागू होती है। सरकार तथा निजी संस्थाएँ सभी किसी न किसी उद्देश्य फलन को 'अधिकतम' करना चाहते हैं।

अन्तर तो निजी एवं सरकारी उद्देश्य फलनों की रचना के कारण उत्पन्न होते हैं। निजी

निकाय और सरकार दोनों ही व्यय के लिए रुपया जुटाते हैं। पर उनकी विधियाँ बहुत अलग होती हैं। सरकार पहले व्यय का फैसला करके उसके लिए धन जुटाने की चिन्ता करती है। किन्तु निजी निकाय अपनी आगम को ध्यान में रखकर ही व्यय का कार्यक्रम बनाते हैं। सरकार में लचीलापन अधिक होता है—यह अपेक्षाकृत अधिक दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखकर किया जाता है।

आइए अब सरकारी व्यय के प्रकारों पर बात करें। सरकारी व्यय का कई प्रकार से वर्गीकरण किया जाता है। सदियों से प्रचलित एक परंपरागत तरीका तो लेखांकन विधि ही है। इससे सरकार को व्यय पर कड़ी नज़र रखने तथा नियंत्रण निर्देशन में भी सहायता मिलती है। इससे व्यय क्षरण, साधनों की बर्बादी और गबन आदि पर भी नियंत्रण हो सकता है। यह अंकेक्षण प्रेरित विधि अनेक प्रकार से उपयोगी होते हुए भी व्यय के प्रभावों के विषय में कोई जानकारी नहीं दे पाती। अतः नीति निर्धारण में सहायक हो सकने वाली एक आय वर्गीकरण पद्धति की रचना की गई है। यहाँ वर्गीकरण में आर्थिक आधार भी सम्मिलित कर लिया गया है—इससे व्यय के आर्थिक प्रभावों के विषय में बेहतर जानकारी मिल सकती हैं।

व्यय को आर्थिक आधार पर वर्गीकृत करने की कई विधियाँ हैं। दो वर्ग तो उत्पादक और अनुत्पादक व्यय तथा हस्तांतरण और अहस्तांतरण व्यय के बीच विभाजक ही है। उत्पादक व्यय मुख्यतः निवेश ही होता है। निवेश व्यय को उत्पादक इसलिए कहा जाता है कि इससे अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है। दूसरी ओर उपभोग व्यय को अनुत्पादक मान लिया जाता है। यह विचार अहस्तक्षेपवादी चिंतन पर आधारित है। एडम स्मिथ के समय में तो यह वर्गीकरण बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना जाता था। इसके अनुसार प्रतिरक्षा, प्रशासन तथा कानून और व्यवस्था पर व्यय अनुत्पादक घोषित हो जाता था। सरकार को शेष अर्थव्यवस्था से बाहर माना जाता था। आजकल इस प्रकार का मत उचित नहीं समझा जाता। इसीलिए अनेक कारणों से यह वर्गीकरण भी अव्यवहारिक हो गया है। एक कारण तो यही है कि सरकार अर्थव्यवस्था का अभिन्न अंग है, इसे अनेक प्रकार के व्यय करने होते हैं जिनसे सारी अर्थव्यवस्था प्रभावित होती है। दूसरे कई ऐसे संसाधन भी होते हैं जो आय की दृष्टि से प्रत्यक्षतः उत्पादक नहीं होते हैं, फिर भी आर्थिक विकास के लिए बहुत ही आवश्यक होते हैं। सामाजिक सेवाओं को इसी श्रेणी में रखा जा सकता है। इनमें से सार्वजनिक निर्माण तो भविष्य में आय का साधन भी बन सकते हैं। इनके कारण राष्ट्रीय आय में वृद्धि तो निर्विवाद ही है। तीसरी मुख्य बात यह है कि उत्पादक होने के लिए संसाधनों का स्थूल दृश्य रूप आवश्यक नहीं होता। मानवीय पूँजी में निवेश अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता को बहुत बढ़ा सकता है। इससे प्रत्यक्ष उपयोगिता की प्राप्ति भी होती है। चौथे, कुछ आवश्यक व्ययों के अभाव में अर्थव्यवस्था और समाज का अस्तित्व भी संकट में पड़ सकता है। राष्ट्रीय प्रतिरक्षा एक ऐसी ही मद है। इसके अतिरिक्त शोध और विकास आदि पर व्यय अप्रत्यक्ष रूप से अर्थतंत्र की उत्पादिता को बढ़ाने में सहायक होते हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

सार्वजनिक व्यय को वर्गीकृत करने की दूसरी विधि पीगू ने सुझाई है। उन्होंने हस्तांतरण और ग़ैर हस्तातंरण व्यय का विभाजन करने की बात उठाई थी। इस मत के अनुसार ऐसा कोई भी व्यय जिसके बदले में वास्तविक संसाधन प्राप्त नहीं होते, हस्तातंरण माना जाएगा। इसके उदाहरण के रूप में पेंशन, उपहार आदि रखे जा सकते हैं।

21.6 सार्वजनिक आगम (राजस्व)

किसी भी सरकार को प्रशासन चलाने और आर्थिक विकास की गतिविधियों के संचालन के लिए वित्त जुटाने की आवश्यकता पड़ती है। सरकार द्वारा संग्रहित सभी राशियों का साँझा नाम सार्वजनिक आगम है। इस आगम के कई प्रकार हो सकते हैं जिनमें से प्रमुख हैं— कर, बाज़ार ऋण, मुद्रा से आय, सार्वजनिक उद्यमों से आमदनी, परिसम्पत्तियों से बिक्री, फीस, जुर्माने, उपहार और दान आदि। ह्यु डॉल्टन जैसे अर्थशास्त्रियों ने सार्वजनिक प्राप्तियों

और राजस्व के बीच भेद किया है। उनके अनुसार राजस्व एक संकुचित अवधारणा है। इसमें बाज़ार से उधार, परिसम्पत्तियों की बिक्री और करेन्सी नोटों की छपाई से आमदनी को शामिल नहीं किया जा सकता। वैसे मोटे तौर पर सार्वजनिक राजस्व और आगम को एक ही बात मान लिया जाता है।

सार्वजनिक आगम के स्रोत— आइए सरकार के बजट के राजस्व पक्ष में इसकी प्राप्तियों पर विचार करें। राजस्व और पूँजी व्यय की भाँति ही राजस्व और पूँजीगत प्राप्तियाँ भी इस खाते में दिखाई जाती हैं।

भारत के बजट में राजस्व प्राप्तियों को राजस्व खाते के रूप में दिखाया जाता है। इन्हें कर और ग़ैर कर–राजस्व की दो श्रेणियों में बाँटा जाता है। इनके अन्तर के विषय में हम आगे चलकर बात करेंगे। अभी तो इतना कहना पर्याप्त रहेगा कि ग़ैर कर–राजस्व में करेन्सी और सिक्कों की ढलाई ब्याज, लाभांश और लाभ की प्राप्ति तथा सरकार की प्रशासनिक सेवाओं, लोक सेवा आयोग और जेलों आदि में ग़ैर कर प्राप्तियों को शामिल किया जाता है।

अब पूँजीगत प्राप्तियों पर विचार करते हैं। राजस्व प्राप्तियाँ सामान्यतः एक वर्ष से कम अवधि से जुड़ी होती हैं। इसके विपरीत पूँजीगत प्राप्तियाँ दीर्घकालिक गतिविधियों से जुड़ी हैं। पूँजीगत प्राप्तियों का एक बड़ा स्रोत बारह महीने से लम्बी अवधि के ऋणपत्रों की माध्यम से बाज़ार की उधार है। विदेशी ऋण इस वर्ग में दूसरी मुख्य उपश्रेणी है। सरकार द्वारा दिए गए ऋणों की वसूली भी पूँजीगत प्राप्तियों का एक स्रोत है। भारत के केन्द्रीय बजट में केन्द्र सरकार द्वारा राज्यों, संघशासित प्रदेशों और ग़ैर सरकारी संस्थाओं को दिए गए ऋणों की वसूली इसी श्रेणी में दिखाई जाती है। भविष्य निधियाँ और अनेक प्रकार जमाएँ भी सरकार की पूँजीगत प्राप्तियों में सम्मिलित हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

आइए अब कर और ग़ैर कर–राजस्वों के बीच भेदों को समझने का प्रयास करें। कर की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसका भुगतान अनिवार्य होता है और इसके बदले में कोई निश्चित प्रतिदान नहीं मिलता। दूसरे शब्दों में, जो लोग सरकार को कर चुकाते हैं उन्हें कोई निश्चित और प्रत्यक्ष तत–प्रतितत सरकार से नहीं मिलता। कर किसी चीज़ की कीमत नहीं है और कर दाता होने के नाते कोई व्यक्ति सरकार से किसी प्रत्यक्ष लाभ की माँग नहीं कर सकता। सरकार द्वारा उगाहे गए करों के प्रयोग से होने वाले लाभ इस आधार पर विभाजित नहीं होते कि करदाता कौन थे। कर व्यक्तियों, समूहों तथा अन्य कानूनी इकाइयों कर लगाई गई अनिवार्य देनदारी होते हैं।

आइए करों से जुड़ी कुछ बातों का स्पष्टीकरण करें। सबसे पहली बात तो कर का आधार है। यह आधार उस विषय की कानूनी व्याख्या है जिसके अनुसार कर लगाया जाता है। उदाहरण के रूप में आयकर का आधार कर दाता की आय है। इसी प्रकार उत्पादन शुल्क का आधार किसी वस्तु का उत्पादन या प्रसंस्करण है।

करापात : यह उस इकाई — व्यक्ति, समूह आदि — से सम्बद्ध है जिसे कर का भार वहन करना पड़ता है। कई बार जिस करदाता पर *कर* लगाया जाता है वह उसके वास्तविक भार को किसी और पर विवर्तित करने (टाल देने) में सफल हो जाता है। उदाहरण के लिए विक्रय–कर विक्रेता पर लगाया जाता है। किन्तु वह इस कर की राशि वस्तु की कीमत बढ़ाकर ग्राहक से वसूल कर देता है। दूसरी ओर, आयकर का भार किसी और पर टाल पाना संभव नहीं होता। यदि आपको आयकर देना है तो आप उसकी राशि की किसी और से वसूली नहीं कर सकते। प्रारंभिक रूप से कर लगाने को कराघात कहते हैं और अंतिम रूप से उसके भार का वहन करापात कहा जाता है।

जिन करों का भार किसी और पर टाला नहीं जा सकता उन्हें प्रत्यक्ष कर कहते हैं जबकि कुछ अन्य करों के वास्तविक बोझ को विवर्तित किया जा सकता है। आयकर का विवर्तन

संभव नहीं होता। इसे हम प्रत्यक्ष कर कहते हैं। दूसरी ओर, विक्रय–कर और उत्पादन शुल्क का विवर्तन संभव है। उन्हें अप्रत्यक्ष कर कहा जाता है। प्रत्यक्ष करों में कराघात और करापात उसी इकाई पर होता है। अप्रत्यक्ष करों में आपात और आघात की इकाइयाँ अलग–अलग होती हैं।

बोध प्रश्न 3

1) वाइज़मैन पीकॉक की सार्वजनिक व्यय की संवृद्धि से जुड़ी अवधारणा की व्याख्या करें।

....

....

....

....

....

2) इनमें भेद करें :

क) निजी और सार्वजनिक व्यय

....

....

....

ख) उत्पादक और अनुत्पादक सार्वजनिक व्यय

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

....

....

....

ग) हस्तातंरण और ग़ैर हस्तातंरण सार्वजनिक व्यय

....

....

....

3) राजस्व और पूँजीगत प्राप्तियों में भेद करें। इनके दो–दो उदाहरण दें।

....

....

....

....

....

21.7 बजटीय घाटे के माप

आमतौर पर सरकारी व्यय के सरकारी प्राप्तियों के अधिक होने को ही बजटीय घाटा कहा जाता है। किन्तु अर्थशास्त्रियों ने इस घाटे को मापने के कई तरीके बना लिए हैं। सबसे बड़ी समस्या तो यह है कि विशेषज्ञगण एक ही विचार के लिए अलग–अलग नाम गढ़ लेते

हैं और फिर बहस होती रहती है। इस भाग में हम लोक वित्त से जुड़े साहित्य में सुझाए गए सैद्धांतिक मापकों और भारत सरकार द्वारा अपने वार्षिक प्रपत्रों में प्रयोग किए जा रहे घाटे के मापकों पर चर्चा करेंगे।

हम प्रारंभ में ही घाटे और ऋण में भेद स्पष्ट कर देना चाहते हैं। घाटे से हमारा अभिप्राय किसी वर्ष की अवधि ने सरकार द्वारा उस वर्ष की आगम से अधिक खर्च से है। दूसरी ओर, सार्वजनिक ऋण उन सभी ऋणों का इकट्ठा नाम है जो अभी तक सरकार लेती रही है और जिनका भुगतान किया जाना बाकी है। इस दृष्टि से सरकार का घाटा एक प्रवाह बन जाता है जिसका किसी काल अवधि के अनुसार मापन हो सकता है। इसके विपरीत, सार्वजनिक ऋण एक स्टॉक है जिसे किसी समय बिंदु पर मापा जाता है। एक और बात का संबंध वास्तविक घाटे और नामिक घाटे के बीच भेद से है। वास्तविक घाटे से हमारा तात्पर्य कीमतों में हुई वृद्धि का प्रभाव दूर कर किसी आधार वर्ष से तुलना करने वाले घाटे के आँकड़ों से है जबकि नामिक घाटा चालू वर्ष के कीमत स्तर पर ही आधारित होता है।

आइए, अब घाटे के विभिन्न मापकों और अवधारणाओं पर बातचीत करें। इस दृष्टि से यह बेहतर होगा कि हम भारत सरकार के बजट में प्राप्तियों और व्यय की विभिन्न मदों पर भी विचार करने चलें।

व्यय की मदों को दो वर्गों में बाँटा गया है : राजस्व खाते पर व्यय, पूँजी खाते पर व्यय। इन दो खातों में मूल अंतर यही है कि राजस्व खाता चालू वित्तीय वर्ष के व्यय से जुड़ा है। जबकि पूँजी खाते पर हुआ व्यय दीर्घ अवधि के कार्यों से जुड़ा हुआ रहता है। राजस्व खाते पर व्यय की मदों को आगे ब्याज और गैर ब्याज व्यय में बाँटा गया है। इसी प्रकार पूँजी खाते का व्यय ऋण और अग्रिम तथा पूँजी खर्च में बाँट दिया गया है।

DIKSHANT IAS

सरकार के बजट के आगम पक्ष में इसकी प्राप्तियाँ दर्ज की जाती हैं। राजस्व और पूँजी व्यय की भाँति ही राजस्व प्राप्तियाँ और पूँजीगत प्राप्तियाँ अलग-अलग दिखाई जाती हैं। राजस्व प्राप्तियों में दो उपसमूह हैं : कर-राजस्व और गैर कर-राजस्व। गैर कर-राजस्व में तीन प्रकार की प्राप्तियाँ दिखाई जाती हैं : ब्याज, गैर ब्याज राजस्व और अनुदान। पूँजीगत प्राप्तियों के चार प्रकार हैं : वसूली, राजकोषीय हुण्डियों के अतिरिक्त उधार, अन्य पूँजीगत प्राप्तियाँ तथा सरकारी परिसम्पत्तियों की बिक्री।

Call us @7428092240

कुल व्यय और कुल आगम का अन्तर ही बजटीय घाटा है। इसकी पूर्ति राजकोषीय हुण्डियों के आधार पर उधार तथा नकद कोष को कम करके की जाती है। आइए, अब राजस्व और व्यय की मदों को तालिकाबद्ध करने का प्रयास करें।

I) राजस्व प्राप्तियाँ

- क) शुद्ध कर-राजस्व
- ख) गैर कर-राजस्व
  - i) ब्याज
  - ii) गैर ब्याज
  - iii) अनुदान

II) पूँजीगत प्राप्तियाँ

- क) वसूलियाँ
- ख) राजकोषीय हुण्डियों के अतिरिक्त उधार

ग) अन्य पूँजीगत प्राप्तियाँ

घ) सार्वजनिक परिसम्पत्तियों की बिक्री

III) कुल प्राप्तियाँ (I + II)

IV) राजस्व खाते पर व्यय

क) ब्याज का भुगतान

ख) ग़ैर ब्याज भुगतान

V) पूँजी खाते पर व्यय

क) ऋण और अग्रिम

ख) पूँजीगत खर्च

VI) कुल व्यय (IV + V)

VII) राजकोषीय हुण्डियों द्वारा उधार और नकद कोषों में कमी।

ऊपर लिखी ग़ैर प्राप्तियों और व्ययों के आधार पर घाटे के कई मापों की रचना की जा सकती है। आइए, इन पर विचार करें।

1) **राजस्व खाते पर घाटा या राजस्व घाटा** : यह राजस्व खाते पर प्राप्तियों से राजस्व व्यय के अधिक होने का मापक है। दूसरे शब्दों में IV - I.

DIKSHANT IAS

2) **पूँजी खाते पर घाटा** : यह पूँजी खाते पर व्यय का पूँजीगत प्राप्तियों का अधिक होना दर्शाता है। अर्थात् V - II.

Call us @7428092240

3) **बजटीय घाटा** : यह 1 और 2 में दिखाए गए घाटों का योगफल ही है।

आइए, अब बजट से जुड़े एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर विचार करें : क्या सरकार को सदैव घाटे से बचना चाहिए या अपना बजट संतुलित रखना चाहिए? क्या बजट में घाटा अर्थव्यवस्था के लिए हानिकारक है? घाटे में कमी या इसकी समाप्ति के बारे में अनेक विशेषज्ञ और संस्थाएँ क्यों आग्रह करते हैं?

बीसवीं शताब्दी के पहले तीन दशकों तक प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का यही मत था। सरकार को उपयुक्त समय अवधि में अपने बजट संतुलित ही रखने चाहिए। दूसरे शब्दों में, कुल राजस्व संग्रह और कुल सार्वजनिक व्यय को समान रखने पर बल दिया जाता था। पर इसमें यह बात विचारणीय थी कि "उपयुक्त समय अवधि क्या थी। सामान्यतः इसे एक वर्ष ही माना जाता था। अतः प्राप्ति पक्ष में उधार या ऋण शामिल नहीं किए जाते थे। साथ ही बजट को एक लेखा ही माना जाता था। इस पद्धति में कभी–कभार कुछ परिवर्तन भी सुझाए जाते थे। एक सुझाव तो यही रहा था कि पिछले ऋणों की वापसी को चालू वर्ष के घाटे का अंग नहीं माना जाए। हाँ, ब्याज को ज़रूर घाटा में रखा जा सकता था।

संतुलित बजट के पक्षधरों के मुख्य तर्क क्या रहे हैं? एक तो वे सरकारी बजट को भी निजी व्यक्तियों के बजट के समान ही मानते थे। जैसे गृहस्थों को घाटे से बचने की सलाह दी जाती थी वैसे ही सरकार को भी घाटे से बचने को कहा जाता था। आज तो उपभोक्ता ऋणों और साख पत्रकों (क्रेडिट कार्ड) का ज़माना है– उनसे अपना बजट संतुलित रखने की कोई बात नहीं करता। सरकार के बजट को संतुलित रखने के पीछे यही विचार था कि सरकार शेष अर्थव्यवस्था से बाहर की कोई इकाई थी और उसे संतुलन में रहना ही

चाहिए था। वैसे उन दिनों सरकारों का फिजूल खर्च होना कोई नई बात भी नहीं थी।

बजट घाटे को लेकर दूसरी आपत्ति वस्तुतः इस घाटे को पूरा करने की विधि को लेकर थी। उनका मत था कि घाटा पूरा करने के लिए छापी गई मुद्रा से देश में कीमतों की वृद्धि की ज़ौखिम पैदा हो जाती है।

तीसरा तर्क तो बहुत ही विलक्षण था। कहा जाता था कि लोग करों का बढ़ना पसंद नहीं करते। पर दूसरी ओर सरकार का व्यय बढ़ता ही रहता है। तो सरकार को घाटे की पूर्ति के लिए सार्वजनिक ऋणों द्वारा पूरा करना बड़ा सरल लगता था, क्योंकि लोग बड़ी खुशी से सरकार को उधार दे देते थे— खासकर जब ब्याज की दर भी ऊँची होती। सरकारों को भी उधार और नए नोटों द्वारा घाटे पूरा करना बहुत 'सुखद' लगता था। इसी कारण वे बेतहाशा खर्च करती रहती थीं। इससे घाटा और बढ़ता रहता था। घाटे से पैदा हुई स्फीति के कारण घाटा और बढ़ जाता था। अतः घाटे में आत्मपोषण एवं संवर्धन की बहुत बड़ी विशेषता होती है। इसी कारण इन विशेषज्ञों का आग्रह था कि घाटे को तो पैदा होते ही समाप्त कर देना चाहिए।

हमें यह भी बात ध्यान रखनी होगी कि जो घाटे को नियंत्रित रखने का आग्रह करते हैं वही विशेषज्ञ यह भी कहते हैं कि सरकार को करों का स्तर नीचा रखना चाहिए। इनका यह विचार है कि निम्न दरों के कारण लोग कर दायित्व का निर्वाह करने से बचने का प्रयास कम करते हैं। दूसरे कम करों के कारण और काम करके अधिक कमाने की संप्रेरणा भी दुष्प्रभावित नहीं होती। अतः ऊँचे करों के कारण तो उत्पादन और उत्पादिता दोनों पर ही बुरा असर पड़ेगा। इनका आग्रह है कि न्यून घाटा और न्यून करों की दरों के लिए सरकार को अपना व्यय सीमित रखना चाहिए। वैसे यही विशेषज्ञ यह भी कहते हैं कि सरकार को मुनाफा कमा पाने वाले कार्यों— होटल, पर्यटन आदि से भी दूर रहना चाहिए। अतः स्पष्ट ही लगता है कि घाटा कम करने के पक्षधर मूलतः अहस्तक्षेपवादी दर्शन में ही विश्वास करने वाले पुरातनपंथी हैं।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बजट घाटे के पक्ष में भी कोई तर्क हो सकते हैं? आपको ध्यान होगा कि केन्ज़ ने महामंदी से अर्थतंत्र को उबारने के लिए घाटे की वित्त–व्यवस्था का ही सुझाव दिया था। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् अमेरिकी अर्थव्यवस्था की तीव्र आर्थिक संवृद्धि के वर्षों में (1950 व 1960 के दशक) बजट का घाटा एक सामान्य सी बात मानी गई थी। इस घाटे के पक्ष या इससे भयभीत नहीं होने के पक्ष में कुछ और तर्क इस प्रकार हैं :

बजट का संतुलन अपने आप में कोई ध्येय नहीं हो सकता। सार्वजनिक बजट अपने लक्ष्यों और संरचना की दृष्टि से निजी बजट से अलग होते हैं। संतुलित बजट के विचार से लगता है कि बजट का शेष अर्थव्यवस्था पर कोई प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए पर आज तो बजट को समाज की आर्थिक नीतियों का दर्पण एवं एक मुख्य अस्त्र माना जाता है। फिर यदि समग्र आय की तुलना में घाटा मामूली हो तो इसके स्फीतिकारी होने की संभावना बहुत ही क्षीण रह जाती है। ये तो हम पहले ही कह चुके हैं कि घाटा अर्थव्यवस्था को मंदी के दौर से उबरने में सहायक ही रहता है।

21.8 बाज़ार ऋण

पिछले भाग में आपने बजट में घाटे के कई स्वरूप देखे हैं। इसे चाहे जिस रूप में परिभाषित किया जाए, अंततः घाटे का अर्थ है व्यय की आय पर अधिकता। इस भाग में हम घाटे को पूरा करने के एक माध्यम— 'बाज़ार से उधार' पर चर्चा कर रहे हैं।

सार्वजनिक ऋण

किसी भी समय बिंदु पर सरकार की समग्र ऋण देनदारी को सार्वजनिक ऋण कहा जाता

है। इसकी कई प्रकार की परिभाषाएँ की जाती हैं। इसके स्वरूप को समझाने के लिए आइए हम सरकार के देनदारी संबंधी दायित्वों की रचना को जानने का प्रयास करें। एक तो सरकार करेन्सी या मुद्रा का निर्गमन करती हैं। भले ही दिखाने के लिए यह निर्गमन रिज़र्व बैंक कर रहा है किन्तु यह भी सरकार तन्त्र का एक अंग है। इसीलिए समस्त निर्गमित मुद्रा को सरकार का शेष समाज के प्रति देनदारी दायित्व ही माना जाता है।

दायित्वों का दूसरा घटक अल्पकालिक ऋण है— सामान्यतः निर्गमन के समय इसकी अवधि एक वर्ष से कम रहती है और दूसरा मुख्य स्रोत राजकोषीय हुण्डियाँ तथा केन्द्रीय बैंक होता हैं कुछ ऐसे ऋण भी होते हैं जिनकी परिपक्वता तिथि निश्चित नहीं होती, जब सुविधा हो उनका कुछ भाग चुका दिया जाता है। इनमें भविष्य निधि, लघु बचत और सुरक्षित निधियाँ आदि शामिल हैं। भारत में सरकार विशेष प्रकार की प्रतिभूतियाँ ज़ारी कर विश्व—बैंक आदि अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के प्रति अपने दायित्वों का निर्वाह करती है। इन्हें विशेष ऋणों का नाम भी दिया जाता है।

इन बाज़ार ऋणों का अपने आप में विशेष महत्त्व है। भारत की सरकार तो इन्हें घाटे के आकलन में शामिल ही नहीं करती। ये दीर्घकालिक उधार होते हैं—इनकी भुगतान परिपक्वता की अवधि एक वर्ष से अधिक होती है। सरकार का दावा है ये दीर्घ अवधि के ऋण हैं, ये घाटे के प्रतीक नहीं हो सकते क्योंकि ये तो व्यय प्रवाह पर निजी के स्थान पर सार्वजनिक नियंत्रण के द्योतक हैं। इस कारण ये स्फीतिकारी नहीं हो सकते। पर इस दृष्टिकोण की सत्यता संदेहास्पद है। रिज़र्व बैंक स्वयं ही अधिकांश बाज़ार उधार लेता रहता है। इस बैंक द्वारा उधार चाहे लघु अवधि का हो या दीर्घ का—असर तो एक ही होता है : नए नोटों का निर्गमन।

बोध प्रश्न 4

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

1) सार्वजनिक घाटे तथा सार्वजनिक ऋण में भेद करें।

....

....

....

....

....

2) बजट के पूँजी बाज़ार पर प्रभाव समझाइए।

....

....

....

....

....

21.9 सारांश

इस इकाई में आपको परंपरागत लोक वित्त की कुछ अवधारणाओं सहित सार्वजनिक अर्थशास्त्र से परिचित कराया गया है। हमने बाज़ार की विफलता से इकाई को आरंभ किया था। फिर पैरेटो श्रेष्ठता तथा अभीष्टता की चर्चा करते हुए पूर्ण प्रतियोगिता से इसके संबंधों पर विचार किया। यहीं पर क्षेत्र अर्थशास्त्र के दो मूलभूत प्रमेयों की परिभाषा भी की गई है।

हमारा अगला पड़ाव सार्वजनिक पदार्थों की व्याख्या रहा। इनकी दो विशेषताएँ हैं : अप्रतिद्वंद्विता तथा अनापवर्जन। इनसे सम्पन्न किसी भी पदार्थ को विशुद्ध सार्वजनिक पदार्थ कहा जा सकता है। हमने अशुद्ध सार्वजनिक पदार्थों के दो मुख्य उदाहरण क्लबीय पदार्थ और भीड़भाड़ वाली सुविधाओं की भी चर्चा की है। फिर सार्वजनिक पदार्थों की आपूर्ति की व्यवस्था के संदर्भ में सामाजिक एवं वैयक्तिक हित लाभ फलनों की रचना के अंतरों का स्पष्टीकरण किया गया है। हित लाभों का ऊर्ध्व योग ही सामाजिक फलन बनाता है—क्षैतिज नहीं। यहीं पर लिंडॉल संतुलन की चर्चा भी आई है।

हमारी चर्चा का अगला भाग बाह्यताओं से जुड़ा है— ये बाज़ार की विफलता का ही एक दृष्टांत है। हमने चार प्रकार की बाह्यताओं की बात उठाई है। साथ ही इनका सामना करने के सुझावों पर भी विचार किया है। पीगू ने तो करो और साहाय्यों (subsidies) के माध्यम से इनका निराकरण सुझाया था। दूसरा रास्ता संपत्ति अधिकारों के आबंटन से जुड़ा है। यहाँ कोस के अनुसार व्यक्ति स्वयं ही सौदेबाज़ी द्वारा पारस्परिक लाभप्रद समाधान निकालने में सफल हो जाते हैं। कोस महाशय के महत्त्वपूर्ण प्रमेय से भी यही परिचय हुआ है।

बाज़ार विफलता, सार्वजनिक पदार्थ और बाह्यताएँ तो व्यष्टि अर्थशास्त्र से जुड़ी इकाइयों में निहित अवधारणाओं का और आगे विकास भी कही जा सकती हैं। इनके बाद हमने सार्वजनिक आगम या राजस्व, घाटा, बाज़ार ऋणों आदि के लोक वित्त से जुड़े विचारों पर चर्चा की है। लोक आगम के संबंध में प्राप्तियों और राजस्व का भेद करते हुए राजस्व को कर और ग़ैर–कर वर्गों में बाँटा गया है। फिर बजट के घाटे और उसे पूरा करने के तरीकों की बात आई, यहाँ घाटे के स्वरूपों और घाटे तथा ऋण के अंतर पर चर्चा की गई है।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

21.10 शब्दावली

संतुलित बजट	:	ऐसा सरकारी बजट जिसमें सकल राजस्व और सकल व्यय समान हों।
पूँजी व्यय	:	दीर्घकालिक आधार पर किया गया व्यय।
पूँजीगत प्राप्तियाँ	:	दीर्घकालिक स्वरूप की मद से आगम।
सार्वजनिक व्यय की सकल राष्ट्रीय उत्पाद लोचशीलता	:	सरकारी व्यय के प्रतिशत परिवर्तन का सकल राष्ट्रीयउत्पाद के प्रतिशत परिवर्तन से अनुपात।
पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार	:	ऐसी बाज़ार व्यवस्था जिसमें कोई क्रेता–विक्रेता कीमत को प्रभावित नहीं कर पाए। समरूप वस्तु का व्यापार हो, पूरी जानकारी प्रत्येक को बिना लागत सुलभ हो और जिस बाज़ार में आना या उससे निकलना निर्बन्ध हो।
विशुद्ध सार्वजनिक पदार्थ	:	ऐसे पदार्थ जिनमें अप्रतिद्वंद्विता तथा अनापवर्जन के गुण हों।
राजस्व व्यय	:	अल्पकालिक कार्यों पर व्यय।
राजस्व प्राप्तियाँ	:	एक वर्ष से कम अवधि की गतिविधियों से प्राप्तियाँ।
अल्पकालिक ऋण पत्र	:	एक वर्ष से कम अवधि के ऋण–पत्र।

20.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Bhatia, H.L, *Public Finance* (Latest edition) Vikas: New Delhi

Browning, Edgar and Jacquelene Browning (1994), *Public Finance and Price System* (Fourth Edition) Prentice Hall: Englewood Cliffs New Jersey

Musgrave, Richard A. and Peggy B. Musgrave (1989), *Public Finance in Theory And Practice* (Fifth Edition) McGraw-Hill International Edition: New York

Stiglitz, Joseph E. (1994), *Public Sector Economics,* Third Edition, W.W. Norton & Co.: New York

21.12 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

बोध प्रश्न 1

सभी प्रश्नों के लिए भाग 21.2 पढ़ें।

बोध प्रश्न 2

प्रश्न 1, 2, 3 के लिए 21.3 पढ़ें और उत्तर लिखें।

प्रश्न 4 के लिए भाग 21.4 पढ़ें।

DIKSHANT IAS
Call us @7428092240

बोध प्रश्न 3

1) अपने उत्तर के लिए भाग 21.5 देखिए।

2) अपने उत्तर के लिए भाग 21.5 देखिए।

3) अपने उत्तर के लिए भाग 21.6 देखिए।

बोध प्रश्न 4

1) अपने उत्तर के लिए भाग 21.7 देखिए।

2) अपने उत्तर के लिए भाग 21.8 देखिए।